पाश्चात्य साहित्यशास्त्र-कोश





डॉ० राजवंश सहाय "हीरा"

पाश्चात्य साहित्यशास्त्र-कोश

डॉ. राजवंश सहाय "हीरा"
एम. ए. (हिंदी-संस्कृत) पी. एच. डी., डी. लिट., अवकाश प्राप्त प्रोफ़ेसर
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
मगध विश्वविद्यालय
बोध गया

आशुतोष अवस्थी
अध्यक्ष
श्री [illegible] समिति (उ.प्र.)



प्रकाशक
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
प्रेमचंद मार्ग, राजेन्द्र नगर, पटना-16

भारत सरकार के विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रंथ-निर्माण योजना के अंतर्गत मानव-संसाधन-विकास मंत्रालय (शिक्षा विभाग) के अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना द्वारा प्रकाशित।

☐ प्रकाशित ग्रंथ संख्या — 404

☐ प्रथम संस्करण — अगस्त 1998, 1100 (एक हजार एक सौ) प्रतियाँ

☐ मूल्य — [illegible]

☐ संगणकीय अक्षरांकण — *तारा फोटो सेटर्स*

☐ मुद्रक —

विजयश्रीऑफसेटप्रिंटर्स, न्यू बहादुरपुर, मारवाड़ी कॉलोनी, पटना-16. फोन - 657554

☐ *प्रकाशक* :— बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी
प्रेमचंद मार्ग, राजेन्द्रनगर
पटना-16

इस गौरवशाली प्रकाशन के लिए
मेरी बधाई !

उच्च शिक्षामंत्री
अध्यक्ष,
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी,
पटना

आमुख

"पाश्चात्य साहित्यशास्त्र-कोश" नामक संदर्भग्रंथ को हिंदी संसार के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे परम संतोष का अनुभव हो रहा है। कोश तीन भागों में विभक्त है। इसकी रचना शिप्ले कृत। डिक्शनरी ऑफ द वर्ल्ड लिटरेचर तथा डिक्शनरी ऑफ द वर्ल्ड लिटरैरी टर्म्स, कौशल्स 'इंसाइक्लोपेडिया ऑफ लिटरेचर' तथा डॉ. नगेन्द्र-संपादित साहित्य-कोश के आधार पर हुई है। इसमें पाश्चात्य साहित्यालोचन के प्रमुख आचार्यों, मुख्य संकल्पनाओं, प्रधान साहित्यिक, दार्शनिक, सौंदर्यशास्त्रीय, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक वादों, प्रमुख भाषाओं की आलोचना का विकास, प्राचीन एवं नवीन साहित्य-रूपों, तथा प्रसिद्ध पारिभाषिक शब्दों का विवरण एवं परिचय प्रस्तुत किया गया है।

इस कोश में प्राक् प्लेटोयुग से लेकर आधुनिक युग की बहुचर्चित 'नई समीक्षा' पर्यंत साहित्यक स्थापनाओं का परिचय देते हुए लगभग 50 आचार्यों के विवरण प्रस्तुत किए गए हैं, जो संक्षिप्त, किंतु पूर्ण हैं। इसी क्रम में यूनानी, लातिनी, रूसी, जर्मन, इंगलिश, फेंच तथा अमेरिकी आलोचना का संक्षिप्त इतिहास पृथक्-पृथक् शीर्षकों में दिया गया है और विभिन्न प्रकार के 40 वादों एवं 200 प्रमुख साहित्यिक पारिभाषिक शब्दों का भी परिचय प्रस्तुत किया गया है तथा पाश्चात्य समीक्षा के सभी युगों का भी आलोचनात्मक विवरण सन्निविष्ट है। इसमें सारा विषय अकारादिक्रम से गुंफित है और पहले अँग्रेजी शब्द देकर उसकी देवनागरी ध्वनि प्रस्तुत की गई है, तत्पश्चात हिंदी पर्याय रखे गए हैं। हिंदी हिंदी पर्यायों को भारत सरकार द्वारा प्रकाशित कोशों के आधार पर रखा गया है तथा यत्र-तत्र डॉ. नगेन्द्र के 'साहित्यकोश' डॉ. हरदेव बाहरी प्रणीत 'बृहत् अँग्रेजी हिंदी-कोश' तथा डॉ. फादर कामिल बुल्केकृत 'अँग्रेजी हिंदी कोश' से भी सहायता ली गई है और ध्यान रखा गया है कि उनमें एकरूपता बनी रहे। इसके लेखन में अँग्रेजी के प्रसिद्ध ग्रंथों तथा पाश्चात्य-समीक्षा-विषयक प्रामाणिक हिंदी पुस्तकों एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित एतद्विषयक निबंधों से सहायता ग्रहण की गई है और यथासंभव गृहीत सामग्री का उल्लेख कर दिया गया है; किंतु, यत्र-तत्र प्रमादवश वैसा न हो सका हो, तो उसके लिए लेखक क्षमाप्रार्थी है। इसमें यथाशक्य प्रामाणिक और पूर्ण सामग्री देने का प्रयास किया गया है, पर संभव है

कुछ त्रुटियाँ भी रह गईं हों। पूर्व विवेचित सामग्री को सजा कर एक स्थान पर रखना ही लेखक का कार्य रहा है, इसमें उसका कुछ भी अपना नहीं है। इसमें जो कुछ भी उत्तम है, वह गुरुजनों का प्रसाद है, जिनके चरणों में बैठकर लेखक ने इस विषय का अध्ययन किया है वे हैं—आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा, डॉ. शिवनंदन प्रसाद, डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र 'माधव' तथा प्राचार्य शिवबालक राय। लेखक सभी गुरुजनों के प्रति अपनी प्रणति निवेदित करता है। यदि इस कोश के द्वारा पाश्चात्य साहित्यशास्त्र के अध्ययन की दिशा में कुछ सहायता मिल सकी और इसका उपयोग किया गया तो लेखक अपना परिश्रम सार्थक समझेगा। बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के विद्वान निदेशक डॉ. अमर कुमार सिंह ने इसके प्रकाशन में रुचि दिखाई और अकादमी की प्रकाशन-योजना में इसे स्थान देकर मुझे आभारी बनाया है। उनकी इस कृपा के लिए कृतज्ञ हूँ। अकादमी के अन्य पदाधिकारियों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

राजवंश सहाय "हीरा"

समर्पण

गुरु तुल्य, पूज्य,

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी

पूज्य गुरुदेव डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र 'माधव'

पूज्य गुरुदेव आचार्य

नलिन विलोचन शर्मा

की पावन स्मृति में

लेखक द्वारा रचित अन्य कोश

(1) भारतीय साहित्यशास्त्र-कोश (बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना)

(2) संस्कृत साहित्य कोश, चौखम्भा विद्या भवन, चौक वाराणसी

प्रकाशकीय

'पोथि पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय......

डॉ. राजवंश सहाय कृत 'पाश्चात्य साहित्य शास्त्रकोश' को प्रकाशित करते हुए बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी प्रसन्नता और गौरव का अनुभव करती है। डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' साहित्य-शास्त्र के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान और अत्यंत अनुभवी अध्यापक थे। इस ग्रंथ के प्रकाशन से पूर्व उनके द्वारा लिखित 'भारतीय साहित्य शास्त्र कोश' और 'भारतीय आलोचना शास्त्र' का प्रकाशन क्रमश: 1973 और 1976 में बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा किया गया था, जिसका व्यापक स्वागत साहित्य शास्त्र के विद्वानों और अध्येयताओं द्वारा हुआ था। डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' को विद्वद् समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने का गौरव बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी को ही प्राप्त हुआ। यह काम किसी पेशेवर प्रकाशन संस्थान से संभव भी नहीं था, जो बाजार में चलनेवाले नामों को सौदा-सुलुफ का माध्यम बनाते हैं और उसके आधार पर अपने व्यापार की अट्टालिकाएँ खड़ी करते हैं। बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी ने लेखकीय गुणवत्ता को ही अपने प्रकाशन के मूल आधार के रूप में ग्रहण किया है। मुझे आज भी वह दिन स्मरण आ रहा है जिस दिन डॉ. 'हीरा' पाश्चात्य साहित्य शास्त्र की पाण्डुलिपि लेकर ग्रंथ अकादमी कार्यालय आये थे और बहुत भावुक होकर यह कहा था 'अंतिम दिनों में अंतिम थाती आपके कार्यालय को सुपुर्द करने आया हूँ। यदि आपका कार्यालय प्रकाशन का आश्वासन भी दे दे तो चैन से अंतिम सांस ले सकूँगा।' प्रकाशन की स्वीकृति की जानकारी के कुछ ही दिनों के बाद डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' का निधन हो गया। मुझे और अकादमी परिवार के सभी सदस्यों को इस बात की गहरी पीड़ा है कि लेखक के जीवनकाल में इस कृति का प्रकाशन नहीं हो पाया। आर्थिक विवशता ही इस पीड़ा के लिए उत्तरदायी है।

डॉ. एस. सर्वपल्ली राधाकृष्णन कहते थे कि बनारस की गलियों में संस्कृत धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र के ऐसे ऐसे पंडित हैं, मैं जिनके चरण की धूल भी नहीं हूँ। उनसे प्राप्त ज्ञान और उन बातों को अँग्रेजी में लिखने के कारण ही दुनिया मुझे जानती है। वे विद्वान केवल अँग्रेजी नहीं जानते। औरंगाबाद जैसी छोटी जगह के एक महाविद्यालय में हिंदी के प्राध्यापक के रूप में काम करने वाले डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' साहित्य-शास्त्र के ज्ञान-क्षेत्र के विलक्षण, अद्भुत और अद्वितीय प्रतिभा-पुत्र थे।

हिंदी के अध्ययन-अध्यापन के विस्तार और उसकी जरूरत को देखते हुए यह आवश्यक है कि साहित्य-शास्त्र के ऐसे संदर्भ-ग्रंथ हिंदी में सुलभ किए जाएँ, जिनके सहारे कम समय में ही गंभीर विषयों की अपेक्षित जानकारी प्राप्त की जा सके।

'पाश्चात्य साहित्य शास्त्र-कोश' में पाश्चात्य साहित्य के शास्त्र से संबंधित तत्त्वों तथा सिद्धांतों का ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस

संदर्भ में तत्तत् विषयों से संवद्ध ग्रंथों, ग्रंथकारों तथा तद्विषयक विरोधी तथा अविरोधी मतों का परिचय देते हुए उनके मूल स्रोतों तथा आधारभूत सामग्रियों का निदर्शन किया गया है।

हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतीय रस और ध्वनि सिद्धांतों के आलोक में सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षाएँ प्रस्तुत की थीं, किंतु उन्होंने भी यत्र-तत्र पाश्चात्य समीक्षा के सिद्धांतों की ओर संकेत किया था। शुक्लोत्तर समीक्षा की दुनिया में सौन्दर्याश्रित और ध्वनिमूलक समीक्षाओं पर पाश्चात्य समीक्षकों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मार्क्सवाद और पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र की वैचारिक धाराओं के सन्निवेश से एक व्यापक पृष्ठभूमि हिंदी समीक्षा की निर्मित हुई जो साहित्य रूपों के विधिवत अध्ययन-विश्लेषण की सुसंगत, समृद्ध भूमि दे रही है। इससे आलोचना में भी मूल्यमानों के रूप में वे आधारभूत तत्त्व विकसित हुए हैं जो साहित्य की आंतरिक एकता या सार्वभौमिकता पर बल देते हैं। पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र जिस गति से विकसित हुआ है, उसे देखते हुए हिंदी में भी उसके अध्ययन की उपयोगिता को समझा गया है और इस विषय पर यह पुस्तक अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण साबित होगी। अरस्तु से लेकर जॉपाल सार्त्र तक सैकड़ों समीक्षकों, विचारकों और मनीषियों ने अनेक संदर्भों में काव्य-सृजन, काव्यानुभूति और काव्यानंद का विवेचन-विश्लेषण अपने ढंग से किया है। इससे अनेक सिद्धांत एवं वाद आये और नवीन मानदंडों का निर्धारण हुए, जिसे समग्रता से उपस्थित करने और समझाने में यह पुस्तक समर्थ है। पाश्चात्य साहित्य शास्त्रियों के सिद्धांतों ने अनेक नवीन सिद्धांतों एवं वादों को जन्म दिया और उनसे नवीन मानदंडों का निर्धारण हुआ। जीवन और जगत् के परिवेश में साहित्य को समझने और परखने का उपक्रम हुआ। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक का कहना है कि सौंदर्य विषयक धारणा का निरूपण भी बड़े व्यापक स्तर पर हुआ। फलत: नये वादों का विवाद पाश्चात्य समीक्षा का वैशिष्ट्य हो गया। सामाजिक मूल्यों को साहित्य के साथ संबद्ध कर देने से साहित्य के मूल्यांकन की कसौटी ही परिवर्तित हो गई और साहित्य समीक्षक विशद् मनोभूमि को साहित्य-समीक्षा में सहज़ ही स्थान देने लगे। मनुष्य के निजी अस्तित्व और उसकी सामाजिक चेतना का निर्धारण करने के लिए नई दृष्टि का उन्मेष हुआ तथा नए समीक्षा सिद्धांत स्थापित हुए। बीसवीं सदी में यह कार्य और तेजी से हुआ और पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धांतों का जाल इतना घना हो गया कि उसे सम्यक् रूप से समझना सरल नहीं रहा। डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' ने इस कार्य को चुनौती के रूप में स्वीकार करते हुए इस ग्रंथ को लिखा।

पुस्तक में पाश्चात्य साहित्य शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों से लेकर पाश्चात्य साहित्य सिद्धांतों के विश्लेषण को सरल भाषा में हिंदी पाठकों के लिए सुलभ बनाया गया है। सिद्धांतों के निरूपण में प्रामाणिक बने रहने के लिए पाद-टिप्पणियाँ का उपयोग किया गया है, ताकि मूल लेखक के वक्तव्य को ठीक ठीक समझा जा सके। जगह-जगह उन प्रश्नों को समेटने की कोशिश भी हुई है जिनका साहित्य मीमांसा में

विवेचन विश्लेषण बराबर होता रहा है। भारतीय साहित्य शास्त्र का चार-दशकों से भी अधिक समय तक अध्यापन करने और उनका लेखन करने के साथ, पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र की गहरी जानकरी रखने के कारण डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' की दृष्टि एक व्यापक परिदृश्य से जुड़ी रही है और उनका यह प्रयत्न भी प्रशंसनीय है कि पाश्चात्य साहित्य शास्त्र का कोई शब्द या सिद्धांत इस पुस्तक की परिधि से बाहर नहीं निकल पाये।

पुस्तक की रचना में डॉ. हीरा ने परीक्षोपयोगी साँचे नहीं अपनाए। विषय चयन, अनुक्रम और विवेचन इसका प्रमाण है। इस ग्रंथ की शैली में ताजगी, सर्जनात्मकता और सरलता मिलती है। सैद्धांतिक मीमांसा के प्रसंग में अनुशासनजन्य एकरसता के आने का खतरा बना रहता है और वह खतरा तब अधिक होता है जब लेखक अध्यापक हो। किंतु, सैद्धांतिक मीमांसा के क्रम में रोचकता को बनाए रखने का श्रेय उनके रचनात्मक व्यक्तित्व को है। एक बड़ी बाधा विदेशी लेखकों और ग्रंथों के नामों के सही उच्चारण को लेकर रही है और यह बाधा भी इस ग्रंथ रचना से दूर हुई है। इतना ही नहीं,·ग्रंथकार द्वारा जाने माने तथ्यों को भी नई व्यवस्था देने का प्रयत्न हुआ है जो व्यवस्था अध्ययन की नई दिशा का संकेतक है।

पुस्तक के अध्ययन से स्पष्ट है कि प्लेटो का कला विषयक दृष्टिकोण विधेयात्मक है और अरस्तू का दृष्टिकोण विश्लेषणात्मक है। विधेयात्मक दृष्टिकोण के अंतर्गत बताया जाता है कि कला कैसी होनी चाहिए और विश्लेषणात्मक दृष्टि के अंतर्गत कलात्मक उपादानों के वर्गीकरण या प्रकारों का विश्लेषण-परीक्षण होता है। कला की अनुकरणमूलकता की उद्भावना का श्रेय प्लेटो को है। यह पढ़कर थोड़ा आश्चंर्य होंता है कि प्लेटो दर्शन और काव्य को एक दूसरे का विरोधी मानता हूँ, जबकि दर्शन और काव्यालोचन एक दूसरे के पूरक हैं। प्लेटो की तार्किकता और अभिव्यंजना-शैली प्रशंसनीय है, किंतु, उसमें पुनरुक्ति दोष है। मेरी राय है कि काव्य-चिंतन के प्रसंग में समय के विकास के साथ वैचारिक परिपक्वता और तार्किकता का महत्त्व बढ़ा और काव्य-लक्षण के निर्धारण के प्रसंग में सामाजिक पर पड़ने वाले प्रभाव का केंद्र भी बदलता रहा है और इसका रुख कभी समाज-चेतना से व्यक्ति चेतना की ओर रहा है और कभी व्यक्ति-चेतना के समाज चेतना की ओर। प्लेटो से पूर्व भी, यूनानी साहित्य में काव्य-संबंधी धारण पुष्ट हो चुकी थी और हेसियड (आठवीं सदी ई० पूर्व) अन्तः प्रेरणा को कविता का हेतु मानते हुए भी उसमें शिक्षा और आदर्श की प्रधानता को स्वीकार करता है। प्लेटो कविता की कसौटी 'सत्य' को मानता हं, आनंद को नहीं। अरस्तू प्लेटो के कथन का प्रतिवाद करते हुए कविता या कला कृति का संबंध सौंदर्य से बैठाते हुए उसे आनन्ददायक मानता है। प्लेटो और अरस्तू की काव्य संबंधी धारणा-अवधारणा से सहमत-असहमत होते हुए भी लौंगिनुस, होरेस, सिसरी, वर्जिल, क्विंहीलियन उनसे काफी प्रभावित हुए। आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक 'पाश्चात्य काव्य शास्त्र' में अपना यह अभिमत दिया है कि प्लेटो मूलतः दार्शनिक था,

अरस्तू वैज्ञानिक ।...... प्लेटो के लिए केवल प्रत्यय जगत् सत्य था, अरस्तू के लिए वस्तुजगत् भी उतना ही सत्य था, अत: मीमांस्य था । प्लेटो की दृष्टि आदर्शपरक थी, अरस्तू की यथार्थपरक । अरस्तू के प्रसंग में अनुकरण का अर्थ सर्जनात्मक व्यापार या कलाकृति के रूप में मूलवस्तु का पुनरुत्पादन है । अरस्तू ने प्लेटो के तर्कों की नयी व्याख्या की और बतलाया कि जो कार्य प्रकृति से छूट जाता है, कला उसे पूरा करती है । प्लेटो ने कवि को अनुकर्ता तथा अरस्तू ने कर्ता कहा और यह बहस इतनी लंबी चली कि इसमें रेन देकार्ते, जान लॉक, जार्ज बर्कले, डेविड ह्यूम, कांट, कॉलरिज ने हिस्सा लिया और कवि को कर्ता सिद्ध किया । भारतीय साहित्य शास्त्र की परंपरा में कवि को 'स्वयंभू' कहा गया है और पश्चिम में कॉलरिज ने गौण कल्पना की सहायता से निष्पन्न कवि की सृष्टि को ईश्वर की सृष्टि के समकक्ष बैठाया है ।

होरेस काव्य का विषय सरल, समंजस और कवि की शक्ति के अनुरूप रखने के पक्ष में है । वह शब्द संयोजन में सुरुचि और सावधानी से काम लेने का निर्देश देता है । कविता में वह भावमग्न करने की क्षमता को विकसित करने की सलाह देता है और नाटक की भाषा को वह सर्वजन सुलभ बनाने की बात करता है । होरेस का सिद्धांत औचित्य सिद्धांत के रूप में प्रसिद्ध है । उसका औचित्य सिद्धांत भारतीय आचार्य क्षेमेन्द्र की याद दिलाता है । छंद विधान के संबंध में होरेस की राय है कि किस भाव के लिए कौन सा छंद उपयुक्त होगा, इसके लिए प्राचीन कवियों के प्रयोग को प्रमाण मानना चाहिए । उसकी यह बात आंशिक रूप में ही स्वीकार की जा सकती है । मेरी राय है कि होरेस का औचित्य-सिद्धांत रचना के बहिरंग पक्ष का ही विवेचन कर सकता है । होरेस के समय की जो आभिजात्य धारणाएँ हैं, उनका प्रत्यक्ष प्रभव होरेस के विचारों पर देखने को मिलता है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से उसके ग्रंथ 'आर्स पोएतिका' का महत्त्व अवश्य है, किंतु, काव्य के अंतरंग पक्ष के विवेचन की दृष्टि के उसका योगदान महत्त्वपूर्ण या मूल्यपरक नहीं है । जार्ज सेन्ट्सबरी के अनुसार 'आर्स पोएतिका' का सबसे बड़ा महत्त्व यह है कि उसमें रोमी युग के साहित्य की आलोचनात्मक धारणा की पुष्टि होती है । होरेस ने नैतिक-शैक्षिक मूल्यों और आनन्द के बीच समन्वय का मार्ग बनाने का प्रयत्न किया । काव्यालोचन की स्वायत्तता कायम रखते हुए होरेस ने शुद्ध आलोचना का स्वरूप प्रस्तुत किया और आलोचना को किसी दूसरे अनुशासन का अंग या आश्रित नहीं बनाया । मेरी दृष्टि में होरेस के चिंतन-विवेचन में कई स्थानों पर स्वतंद्ध और मौलिक धारणाएँ भी हैं और वह प्रतिभा को सम्यक् महत्त्व देता है, जो काव्य के अंतरंग महत्त्वों की उद्भाविनी शक्ति है ।

लोंजाइनस के समीक्षात्मक पक्ष की तुलना और समता कुंतक से करते हुए आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा ने लिखा है कि लोंजाइनस के उदात्त के पांचों स्रोत कुंतक की विचार सरणि में वर्तमान हैं । जिसे लोंजाइनस 'विचार' कहता है, वही कुंतक की भाषा में 'अर्थ' है । उसका पद चयन कुंतक की पदवक्रता में गतार्थ हो जाता है । रचना की गरिमा

कुंतक की वाक्य-वक्रता, प्रकरण-वक्रता तथा प्रबंध वक्रता में समाहित है। उदात्त जैसा वक्रोक्ति सिद्धांत भी सभी प्रकार के काव्य पर धारित दुराग्रह और पांडित्य-प्रदर्शन का भाव तो महत्त्वपूर्ण है ही, उसकी प्रतिपादित पद्धति विश्लेषण-प्रधान, मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक आधारों पर व्यवस्थित है। भव्य की प्रतिष्ठा के लिए लोंजाइनस ने काव्य-शैली की उदात्तता या अभिव्यंजना-शक्ति पर विशेष बल दिया है।

वर्ड्सवर्थ के समीक्षात्मक प्रसंग में तीन बातें हैं (क) 18वीं शती की रूढ़, कृत्रिम, अलंकृत काव्य भाषा का खंडन (ख) गद्य और पद्य की भाषा का अभेद (ग) काव्य भाषा और सामान्य ग्रामीण भाषा (अर्थात समाज के निम्न मध्यवर्ग की भाषा) की एकात्मकता। प्रकारांतर से ये तीनों विषय प्रकृतिवाद के ही रूप भेद हैं। वर्ड्सवर्थ कृत्रिमता के विरोधी और नैसर्गिकता के प्रशंसक थे। बाह्य प्रकृति की सुषमा भी उन्हें इसीलिए प्रीतिकर थी। ये तीनों चीजें 18वीं शताब्दी के नव आभिजात्यवाद या नव शास्त्रवाद के विरोध के रूप में उभरी थीं। वर्ड्सवर्थ के आलोचक उसकी कथनी और करनी में साफ अंतर देखते हैं। उनका कहना है कि उसकी वाक्य रचना कहीं-कहीं बहुत उलझी हुई है तथा भाषा शैथिल्य के कारण अभिप्रेत अर्थ ओझल होने लगता है और अनेक स्थानों पर ऐसे प्रयोग मिलते हैं, जो उसके विचारों के प्रतिकूल बहुअक्षरीय हैं। कॉलरिज की समीक्षा पद्धति को उपस्थित करते हुए यह तथ्य सामने आता है कि काव्य की सर्जन-प्रक्रिया का विचार काव्य के गुण-दोष विवेचन से अधिक उपयोगी और आवश्यक है। उसकी आलोचना का प्रस्थान-विंदु तो भाव और अनुभूति हैं पर उनकी परिणति बोध में होती है। कल्पना को कॉलरिज केवल काव्य-सर्जन के लिए ही नहीं, बल्कि उत्कृष्ट आलोचना के लिए भी अनिवार्य मानता है। कॉलरिज वर्ड्सवर्थ की कल्पना को कारयित्री प्रतिभा से जोड़कर आत्मिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है और काव्य-सृष्टि के भावावेग क्षण में भाषा स्वयं निर्मित होती है, ऐसा मानता है। मैथ्यू आर्नल्ड की आलोचना केवल कविता तक ही सीमित नहीं है, उसकी सीमा का विस्तार संस्कृति, धर्म, शिक्षा आदि तक है। काव्य को जीवन की आलोचना कहने का अभिप्राय ही है जीवन को समग्रता में देखना और उसकी उपेक्षा नहीं करना। क्रोचे कला को अंत प्रज्ञा और अभिव्यजना मानता है। उसके अनुसार कला आत्मिक क्रिया है, अतः पूर्णतः आंतरिक है। कला केवल रूप नहीं, वस्तु नहीं, वह अखंड है। अतः, उसका विभाजन संभव नहीं है।

टी. एस. इलियट पर अनेक पूर्ववर्ती आलोचकों का प्रभाव हैं, किंतु, उसने किसी का पूर्णतः अनुगमन नहीं किया है। आलोचना पर कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं लिखने के बावजूद उसकी उक्तियों की सारवत्ता और शक्तिमत्ता ने अँग्रेजी आलोचना की दिशा बदल दी। आरंभ में इलियट ने आलोचना के दो उद्देश्य माने थे: कलाकृति का विशदन और रुचि का परिष्कार। तैंतीस वर्षों के बाद उसने दूसरे दो उद्देश्य सामने रखे: बोध और आस्वाद। इलियट रचना और आलोचना को एक दूसरे का पूरक बतलाता है। इलियट रिचर्ड्स की तरह काव्यानुभूति को सामान्य अनुभूति नहीं मानता, विशिष्ट

अनुभूति मानता है । कविता के संरचनात्मक सामंजस्य के अतिरिक्त वह कलाकृति की वस्तुनिष्ठता का आग्रह करता है जो परंपरा की धारणा तथा इतिहास बोध की धारणा की स्वीकृति पर बल देते हैं। आई. ए. रिचर्डस ने अब तक आती हुई सौंदर्य संबंधी अवधारणा की तरंग को मोड़ दिया । उसने 'संवेगों के संतुलन' तथा पाठक या श्रोता के मन को संपोपित करने के आधार पर काव्य कला की उत्कृष्टता बतलायी है । इनसे पूर्व क्रोचे की सौंदर्य शास्त्रीय मान्यता, जो उसकी इतिहास में रुचि होने के कारण दर्शन की परिधि में अधिक पहुँच चुकी थी, उसे पुन: संवेगों की पृष्ठभूमि पर उतारने का प्रयत्न करती है । क्रोचे के प्रतिपादन में दुरूहता और वौद्धिक्ता अधिक है । हीगेल और विको से प्रभावित रिचर्ड्स ने सौंदर्यशास्त्र को पुन: मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर लाने का प्रयत्न किया । वह उस मान्यता को नकारता है जिसमें वस्तु-सौन्दर्य की बाह्य सत्ता की महत्ता स्वीकार नहीं की गई है । रिचर्ड्स के आलोचना सिद्धांत मूलत: अरस्तू और कॉलरिज की सिद्धांतों पर आधारित है । मेरे गुरु आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा भी यही मानते थे । रिचर्ड्स के सूत्रों को पकड़कर इंगलैंड में विलियम, एम्पसन जैसे आलोचक आगे बढ़े और अमेरिका में 'न्यू क्रिटिसिज्म' विकसित हुई । आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा ने अपनी पुस्तक 'पाश्चात्य काव्य शास्त्र' में लिखा है कि भाषा की प्रकृति (जीनियस) का अभिज्ञान श्रम साध्य भी है, समय साध्य भी और इन दोनों से बढ़कर निष्ठासाध्य । यह निष्ठा भाषा के प्रति आत्मीयता और गौरवबोध से उत्पन्न होती है और डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' की कृति 'पाश्चात्य साहित्य शास्त्र-कोश' उसी दिशा में किया गया प्रयत्न है ।

इस आलेख में इस कृति के सारतत्व की रूपरेखा को सांकेतिक तौर पर प्रस्तुत करने की कोशिश हुई है ताकि एक नजर में पाठक को विषय निरूपण की जानकारी मिल सके ।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अकादमी मे मेरे सहयोगी श्री अमरेन्द्र कुमार झा, सहायक भाषाविद् श्री प्रताप नारायण टंकक महबूब हवारी, प्रशासी अधिकारी श्री दिनेशचन्द्र झा, लेखा पदाधिकारी श्री यदुनन्दन जमादार, प्रशासी पदाधिकारी श्री उपेन्द्र नारायण प्रसाद सिन्हा ने पूरा सहयोग दिया है और वे सब मिलकर ऐसी परिस्थितियाँ के निर्माण में सहयोग दे रहे हैं जिनसे बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी अपने प्रकाशन की गौरवशाली परंपरा को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त कर सके। इन सभी सहयोगियों को मेरी बधाई और मेरा धन्यवाद ।

पुस्तक के प्रूफ संशोधन का कार्य नोवेल्टी प्रकाशन के श्री सीताराम झा ने किया है और अक्षर रचना का कार्य भी नोवेल्टी द्वारा ही पूरा किया गया है । पुस्तक का मुद्रण कार्य भी नोवेल्टी प्रेस ने किया है । इसके स्वत्वाधिकारी श्री नरेन्द्र कुमार झा ने केवल बिहार में, बल्कि पूरे भारत में पुस्तक मेला संस्कृति के अग्रदूत माने जाते हैं । पटना में पुस्तक मेला के अद्यतन विकसित रूप को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने पुस्तक-संस्कृति के जनक बनने का गौरव अल्पायु में ही प्राप्त कर लिया । नोवेल्टी

परिवार के प्रतिभाशाली स्वत्वाधिकारी श्री नरेन्द्र कुमार झा और उनके प्रकाशन परिवार के सदस्यों को मेरा धन्यवाद और बधाई।

राष्ट्रीय जनता दल के कार्यकारी अध्यक्ष प्रखर शिक्षाविद् सांसद डॉ. रंजन प्रसाद यादव बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी की गति विधियों को तीव्र करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। उनकी यह कोशिश रही है कि बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी और अनुग्रह नारायण सिन्हा शोध संस्थान बिहार के बौद्धिक जगत् के उन्नयन में अपनी सक्रिय भागीदारी निर्धारित करें। इसके लिए उन्होंने अनुग्रह नारायण सिन्हा शोध संस्थान को जहाँ लाखों की उद्यतन पुस्तकें, पत्रिकाएँ, भेंट स्वरूप दी हैं वहीं यह हिदायत भी दी कि इनका लाभ बिहार के छात्रों, शोधकर्त्ताओं को संस्थान द्वारा इस रूप में दिया जाय कि उन्हें सामग्रियों के संचयन के लिए बाहर न जाना पड़े। बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी को उन्होंने कामिल बुल्के सभाकक्ष बनाने की प्रेरणा दी और तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू यादव से उस सभाकक्ष का उद्घाटन करवाया। एक शायर ने कहा था—

'पत्ता-पत्ता बूटा बूटा
हाल हमारा जाने है,
जाने न जाने,
गुल ही न जाने,
बाग तो सारा जाने है।

बिहार का समस्त बुद्धिजीवी जगत् उनके योगदान से परिचित है। इस गौरवशाली प्रकाशन के समय मैं उन्हें श्रद्धा पूर्वक स्मरण करता हूँ।

बिहार विधान परिषद् के साहित्य मनीषी सभापति डॉ. जाबिर हुसैन प्रकाशन कार्यों के लिए अकादमी के मनोबल को अपनी व्यस्तताओं के बीच भी बढ़ाते रहे हैं। वे न केवल भाषा और साहित्य की अस्मिता की रक्षा के लिए दृढ़तापूर्वक खड़े रहे हैं, बल्कि अपनी रचनात्मक कृतियों से भी माँ सरस्वती का शृंगार करते रहे हैं। नये प्रकाशन होने पर उन्होंने दूरभाष से अकादमी कर्मियों को बधाई और शुभकामनाएँ अवश्य दी हैं। इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन के अवसर पर मैं उन्हें दिनकर की इन पंक्तियों से स्मरण करता हूँ—

अंगार हार उनका, जिनकी
सुन हाँक समय रुक जाता है
आदेश जिधर का देते हैं,
इतिहास उधर झुक जाता है।

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के पदेन अध्यक्ष एवं राज्य के उच्च शिक्षा मंत्री, डॉ. रामचन्द्र पूर्वे को स्मरण करता हूँ जिनके अध्यक्षताकाल में ग्रंथ अकादमी ने विघ्न

बाधारहित रहकर अपने गौरवशाली प्रकाशन कार्य को संपन्न किया है। उनके लिए दिनकर की दो पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

तेरा विराट् यह रूप, कल्पनापट पर नहीं समाता है
कितना भी कुछ कहूँ, मगर कहने को शेष बहुत रह जाता है।

अंत में, इस ग्रंथ के लेखक डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा' की पुण्य-स्मृति को अपनी प्रणति निवेदित करता हूँ।

(डॉ. अमर कुमार सिंह)
निदेशक।

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी,
प्रेमचंद मार्ग, राजेन्द्र नगर,
पटना-800 016
15 अगस्त, 1998

■

विषय सूची

खण्ड-1

1. Act (एक्ट) अंक 1.17

Action (ऐक्शन) कार्य व्यापार, अभिनयगीत, नट या अभिनेता, जोसेफ एडीसन, सौंदर्यशास्त्र, अलेकजेण्डर पोप, रूपक कथा काव्य, अनुप्रास, संदिग्ध, अस्पष्टता, अमेरिकी आलोचना, आर. डब्ल्यू. रनर्सन, हेनरी डेविड थोरो, एडलर एलेन पो, लोवेल, वाल्ट ह्विटमैन, स्टेडमैन, मार्कट्वेन, हेनरीजेम्स, विस्तारणा, विश्लेषणपरक नाटक, अपकर्ष, दैवी साहित्य, उत्सम्बोधन, व्यावहारिक आलोचना, आद्यरूप, आर्किटेक्चर, एरीस टॉफेनीज

2. Aristotle (अरिस्टोटल) अरस्तू 384 ई. पू. से से 322 ई. यूनानी चिंतक और काव्यशास्त्री 18-50

जाति प्रत्ययवाद की आलोचना, काव्यशास्त्र, अनुकरण सिद्धांत, कॉमदी, महाकाव्य, कथावस्तु, वर्णन-शैली, पात्र, छन्द, शैली, त्रास्दी, कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, त्रासदी का नायक, विचार-तत्त्व, भाषा या पदावली, संगीत, दृश्य विधान, अरस्तू का योगदान, कला, कला कला के लिए है, वातावरण ।

3. Autobiography (ऑटोबायोग्राफी) आत्मकथा 51-68

गाथागीत, नृत्य नाट्य, अपकर्ष, आलोचना का समारम्भ, होमर, प्राचीन काव्यादर्श, प्राचीन काव्य तत्त्व, भाषाणशास्त्र तथा गद्य, एरिस्टोफनीज, जीवनी, ब्वालो, ए. सी. ब्रैडले, विद्रप, परिहास, विद्रूपचित्र, व्यंग्य चित्र ।

4. Catharsis (कैथार्सिस) विरेचन 69-85

अध्याय, पात्र या चरित्र, चरित्र-चित्रण, इतिवृत्त नाटक, सिसरो, वर्णगुम्फ, वाक्रचक्र, परम्परावाद, चरमसीमा, पाठ्यनाटक, विदूषक, कॉमदी, आलोचना, आलोचक के गुण, आलोचना के भेद

5. Cubism (क्यूबिज़म) धनवाद 86-97

दादावाद, दाँते अलिगेरी, डेमेट्रियस, निर्धारणवाद या नियतिवाद, शिक्षाप्रद, नीतिपरक नाटक, डायोनोसियस, शास्त्रार्थनाटक, रौद्र-स्तोत्र

6. Drama (ड्रामा) नाटक 98-110

कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, भाषा, गीत, विचार प्रधान नाटक, रूपककाव्य, नाटककार, नाट्यशास्त्र, पटाक्षेप, शोकगीत, टी. एस. इलियट

(खण्ड-1)

Act (ऐक्ट)
अंक

नाटक के मुख्य विभाग को ऐक्ट या अंक कहते हैं। अरस्तू के मतानुसार नाटक में पाँच अंक होते हैं। नाटक में पाँच अंकों की अनिवार्यता का विचार सर्वप्रथम होरेस ने किया था, पर आधुनिक युग में नाटक तीन अंकों में विभक्त होता है।

Action (ऐक्शन) कार्य-व्यापार

नाटक के घटना-क्रम को ऐक्शन या कार्य-व्यापार कहते हैं। इसके अंतर्गत नाटक में अभिनीत घटनावली आती है।

Action song (ऐक्शन साँग) अभिनयगीत

उस गीत को अभिनय गीत कहते हैं, जिसमें कोई कहानी कही जाए तथा उसके भाव अभिनय, नृत्य या आंगिक चेष्टाओं द्वारा व्यक्त किए जाएँ।

Actor (ऐक्टर) नट या अभिनेता

नाटक में वर्णित या चित्रित पात्रों या पात्र-विशेष का अभिनय करने वाला व्यक्ति नट या अभिनेता कहा जाता है। वह अपनी अभिनय कला द्वारा पात्र को जीवंत रूप में रंगमंच पर प्रस्तुत करता है।

Addison (जोसेफ एडीसन) (1672-1719)

अँग्रेजी आलोचक। एडीसन ने 'टैटलर' (1709-10), 'स्पैक्टेटर' (1711-12, 14) 'गार्जियन' (1713 ई.), 'फ्रीहोल्डर' (1715 ई.) नामक पत्रों के माध्यम से उत्कृष्ट कोटि के निबंधों की रचना कर अँग्रेजी आलोचना को समृद्ध किया। उसने 'स्पैक्टेटर' में प्रकाशित निबंधों में मिल्टन के कथा-संघटन की प्रशंसा की तथा पूर्व-निर्धारित नियमों के प्रयोग को गौण बतलाया। उसने अपने निबंधों के माध्यम से सिद्ध किया कि साहित्य मानव-संस्कृति का साधन है। जीवन के पुरातन मूल्यों में परिवर्तन करने का प्रयत्न करते हुए उसने आलेचना की परंपरागत पद्धतियों पर कशाघात किया। वह कवि की प्रभविष्णुता का रहस्य 'कल्पना के आनन्द' में निहित मानता है तथा आलोचक के लिए परिष्कृत अभिरुचि की आवश्यकता पर वल देता है जिसकी तीन विशिष्टताएँ हैं— मान्य प्राचीन ग्रंथों के प्रति संवेदनशील होना, आलोचक को लेखकों के वैयक्तिक वैशिष्ट्य का अभिज्ञान होना तथा एक ही प्रकार के मंतव्य के विविध अभिव्यक्त स्वरूपों को समझने की दक्षता का होना।

एडीसन ने बर्क (अँग्रेज दार्शनिक) की कल्पना-संबंधी मान्यताओं का, जो दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक आधार पर निरूपित थीं उपयोग करते हुए उन्हें साहित्य में अवतरित किया। उसने कल्पना-तत्त्व का विश्लेषण करते हुए बतलाया कि कल्पना इन्द्रियगोचर सुखात्मक संवेदना है। उसने कल्पना के दो रूपों की कल्पना की—प्रारंभिक कल्पना (Primary imagination) तथा द्वितीयक कल्पना (Secondary imagination)। जब हम अपने समक्ष विद्यमान वस्तुओं को देखते हैं तो हमें प्रारंभिक या आद्य आनन्दानुभव होता है। कल्पना का प्राथमिक रूप यही है अर्थात वह इन्द्रियगोचर अनुभव है। कल्पना के द्वितीय रूप का संबंध स्मृति से होता है। वस्तुओं को देखने से हमारे मन में कुछ संस्कार एकत्र होते हैं, पर जब हम उन वस्तुओं को नहीं देखते तब हमारे वे संस्कार स्मृति शक्ति के द्वारा उद्भावित हो जाते हैं। ऐसे आनन्द ऐन्द्रिक आनन्द से श्रेष्ठतर एवं निर्दोष तथा स्वस्थ होने से जीवन के बहुमुखी आनन्द का संवर्धन करते हैं। एडीसन काव्य का लक्ष्य कल्पना को प्रभावित करना मानता है। कल्पना पहाये कवि या कलाकार के मन में सक्रिय होकर उससे प्रकृति या वस्तु के ऐसे रूप का निर्माण कराती है जिसमें पूर्णता होती है और इस प्रकार उसकी कल्पना-शक्ति का तुष्टिकरण होता है। इसका अन्य पक्ष यह है कि इस प्रकार के विरचित साहित्य

से श्रोता या पाठक विशेष रूप से प्रभावित होता है। कल्पना का प्रथम कार्य है कवि-मानस में विम्ब या वस्तु की भावना की सृष्टि करना तथा दूसरा कार्य है पाठक या श्रोता की कल्पना को प्रभावित करना। कल्पनाजन्य आनन्द का विवेचन करते हुए एडीसन ने कहा है, मैं चाहता हूँ कि पाठक यह याद रखें कि कल्पनाजन्य आनन्द से मेरा अभिप्राय ऐसे आनन्द से है जो वस्तु के प्रत्यक्ष दर्शन से उत्पन्न होता है। इस आनन्द को हम दो भागों में बाँट सकते हैं–(1) वस्तु के प्रत्यक्ष दर्शन से उत्पन्न आनन्द और (2) वह आनन्द जो 'वस्तु' के परोक्ष होने और स्मृति में उसके जगने पर होता है; या ऐसी वस्तुओं के इच्छानुकूल निर्मित विम्ब से उत्पन्न होता है जो या तो परोक्ष हैं या काल्पनिक हैं। कल्पना का आनन्द ऐन्द्रिक आनन्द के समान असंस्कृत या तीव्र नहीं होता है और न बुद्धिजन्य आनन्द के समान संस्कृत होता है। बुद्धिजन्य आनन्द अधिक वांछित होता है; क्योंकि वह किसी नूतन ज्ञान या मानसिक प्रगति पर आधारित होता है। "(समीक्षालोक पृ. 321) समीक्षा-सिद्धांत में कल्पना का समावेश कर एडीसन ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। जॉनसन ने उसकी समीक्षा को वैज्ञानिक कम और प्रयोगात्मक अधिक माना है। एडीसन काव्य-सौंदर्य के लिए पाठकों की रुचि को महत्त्व देता था। उनका कहना था," अपनी रुचि को हमें कला के अनुरूप नहीं बनाना चाहिए, बल्कि हमारी रुचि के अनुरूप कला होनी चाहिए।

एडीसन के विवेचन की अपनी सीमाएँ भी हैं। उसने कल्पना के संबंध में अधिक प्रामाणिक तथ्य उपस्थित नहीं किया है, उसकी एतद्विषयक उद्‌भावनाएँ अधिक स्थूल और ऊपरी हैं। इसका कारण यह भी है कि उस समय तक मनोविज्ञान में इतनी वैज्ञानिकता नहीं आ सकी थी कि वह किसी प्रकार का प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत करता।

Aesthetics (इस्थेटिक्स) सौंदर्यशास्त्र

इस्थेटिक्स या एस्थेटिक्स शब्द यूनानी भाषा के 'ईस्थांनोमाई' (Aisthanomai) शब्द का रूपांतर है। ईस्थानोमाई का अर्थ है चक्षुरिन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्षीकरण या देखना। इसी क्रिया से 'ईस्थैटिकॉस' संज्ञा भी निष्पन्न है। इस दृष्टि से इस्थेटिक्स शब्द का संबंध संवेदना (Sensation) से रहा है और वह सौंदर्यशास्त्र का वाचक नहीं हो सकता। आधुनिक अर्थ में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक अलेग्जेंडर बामगार्टेन ने अपने शोधप्रवंध 'एस्थेटिका' (1760) में किया था। उसके अनुसार 'प्रकृति और कला की सुंदरता,

स्वभाव तथा अवस्थाओं और नियमानुकूलता का ज्ञान' ही सौंदर्यशास्त्र है। अभिप्राय यह कि वह सौंदर्यानुभव से प्रकृति, काव्य और कल्पना के सौंदर्यानुभव का अर्थ ग्रहण करता है। कालांतर में हीगेल ने सौंदर्यशास्त्र का अर्थ, ललितकला का दर्शन (Phylosophy of fine arts) किया और इसी नाम से एक स्वतंत्र ग्रंथ की रचना भी की। सामान्य रूप से सौंदर्यशास्त्र का अर्थ कला और प्रकृति का सामान्य सिद्धांत है। (Theory of beautiful in general, wheather in art or nature comparative Aesthetics, vol, II, Page 1) सौंदर्यशास्त्र में सौंदर्य के स्वरूप, सौंदर्यसिद्धांतों के अन्वेषण, पर्यालोचन, उदात्ततत्त्व का विवेचन तथा कला के विविध पक्षों का विश्लेषण, मूल्यांकन एवं उद्‌घाटन किया जाता है। यह (सौंदर्यशास्त्र) कला में निहित्त आनन्द तत्त्व का विवेचन या सौंदर्य के शास्त्रीय पक्ष का अनुचिंतन करता है। कला का उद्देश्य है आनन्दानुभूति और कलागत आनन्द दो प्रकार का है—बाह्य एवं आन्तर तथा इस आनन्दोपलब्धि के तीन उपादान हैं—कला, प्रकृतिजगत् तथा मानवजगत्। सौंदर्यशास्त्र सभी उपादानों में निहित सौंदर्यानुभूति को बुद्धिगम्य बनाता है।

सौंदर्यशास्त्र के लिए हिंदी में एक अन्य शब्द 'लालित्यशास्त्र' का भी प्रयोग होता है और सौंदर्यबोध को लालित्यबोध कहते हैं। यह शास्त्र पहले दर्शन का एक अंग माना जाता था, पर अब स्वतंत्रशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है और इसकी वैज्ञानिकता संदेह से परे हो चुकी है तथा इसे शास्त्र की स्वतंत्र इकाई प्राप्त है। इसके अंतर्गत ललितकलाओं स्थापत्य मूर्तिकला चित्र, संगीत, नृत्य तथा काव्य—के स्वरूप, अंग एवं प्रविधि पर विचार किया जाता है। सौंदर्यशास्त्र का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। यह अपनी विस्तृत परिधि के अंतर्गत कला का स्वरूप, प्रेरणा, कलाकृति, सौंदर्यानुभूति, रचना-प्रक्रिया, कलात्मक अनुभूति, अभिरुचि, कल्पना, बिम्ब, प्रतीक, सौंदर्य, मनः सृष्टि मूल्य काव्यानुभूति, काव्य के अधिकारी, काव्य के उपादान, सृजन की अवधारणा, सृजन-विषयक मुख्य सिद्धांत, सृजन-शक्ति, काव्य का माध्यम आदि विषयों का निरूपण करता है तथा इनके अतिरिक्त प्राकृतिक दृश्य, सूर्योदय, पुष्प और मनुष्य आदि के सौंदर्य का भी सौंदर्य-मूलक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसमें निरीक्षण और प्रयोग विधि से सौंदर्यानुभूति तथा कलाकृति की सृजन-प्रक्रिया पर प्रकाश डाला जाता है। इसका दर्शन, साहित्य और मनोविज्ञान से भी निकट का संबंध है और यह अनेक दृष्टियों से समाजशास्त्र से भी प्रभावित है। यह सौंदर्यानुभूति, रचना-प्रक्रिया तथा कलाकृति के प्रति मनोविज्ञान से प्रभावग्रहण करता है अर्थात इन विषयों का

अध्ययन करते समय मनोविज्ञान के भी विषयों को ग्रहण करता है और मानवीय व्यवहारों का विवेचन करने के लिए वैज्ञानिक यंत्रों से भी सहायता लेता है। सम्प्रति इसका क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो गया है और इसमें नई-नई प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं। यह शाब्दिक संकेतों और प्रतीकों को भाषा विज्ञान के आधार पर परखने लगा है। अनुकृति, कल्पना और अभिव्यंजना सौंदर्यशास्त्र की तीन महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं जिनका विस्तृत इतिहास पाश्चात्य चिंतकों ने प्रस्तुत किया है। सौंदर्यशास्त्री अपनी जिज्ञासा की परिशान्ति के लिए ही कलाकार का अध्ययन करता है।

सौंदर्यशास्त्र कला और साहित्य का अध्ययन करने के लिए आलोचनाशास्त्र या काव्यशास्त्र से भी सामग्री ग्रहण करता है, पर इसे साहित्यशास्त्र नहीं कहा जा सकता। यह उसका सहायक शास्त्र हो सकता है। कारण यह कि दोनों ही कलाओं के विवेचन को उपकरण बनाते हैं और पृथक् होकर भी परस्पर संबद्ध हैं। आलोचक सौंदर्यशास्त्र का अध्ययन कर अपने सैद्धांतिक विवेचन को अधिक तर्कपुष्ट और संगत बनाता है। सौंदर्यशास्त्री दो प्रकार के होते हैं—आलोचक सौंदर्यशास्त्री तथा दार्शनिक सौंदर्यशास्त्री। आलोचक सौंदर्यशास्त्री कला के विविध तत्त्वों का विश्लेषण कर कला-पूर्ण और कला-हीन को पृथक् करता है और यह बताता है कि कला-निर्माण के कौन-कौन से उपादान हैं। दार्शनिक सौंदर्यशास्त्री एक कदम और आगे बढ़ कर सृष्टि के क्षणों पर विचार करता है, कला तथा सौंदर्य को परिभाषित करता है और आलोचक के अस्पष्ट तथा व्यवस्था-हीन सिद्धांतों के स्थान पर स्पष्ट, व्यवस्थित तथा तर्कसंगत विचार उपस्थित करता है। सौंदर्यशास्त्र और साहित्यलोचन का क्षेत्र आंशिक रूप से एक है, पर दोनों में भेद भी है। सौंदर्यशास्त्र जहाँ दर्शन और सिद्धांत पर विशेष बल देता है वहाँ साहित्यशास्त्र व्यवहार पक्ष के उद्घाटन में विशेष रुचि प्रकट करता है।

सौंदर्य तीन प्रकार के होते हैं—वर्णों एवं ध्वनियों का सौंदर्य, आकार-सौंदर्य तथा अभिव्यक्ति-सौंदर्य। प्रथम का ग्रहण नेत्र तथा कर्णेन्द्रिय द्वारा होता है और आकार सौंदर्य चित्रों, रेखाकृतियों तथा पदार्थों के आकार-मात्र में पाया जाता है। अभिव्यक्ति सौंदर्य को व्यंजनागत सौंदर्य कहते हैं, जो कला में पाया जाता है। इनके अतिरिक्त सौंदर्य के अन्य दो भेद हैं—सुंदर (beautiful) और उदात्त (sublime) फूल, झरना आदि छोटी वस्तुओं में सुंदरता की अनुभूति होती है।

वृंत्त पर खिले हुए पुष्प, शरद् निशा में मुस्कराते हुए चन्द्रमा तथा कामिनी के मुख को सुंदर कहते हैं, पर विस्तृत आकाश, महासागर, विस्तृत कान्तार, भयंकर विस्फोट, उत्तुंगशृंगमय पर्वतमाला की विशालता में उदात्त की अभिव्यक्ति होती है। उदात्त में असीम विस्तार एवं उन्नत भाव विद्यमान हैं अर्थात किसी वस्तु की भव्यता में उदात्त-तत्त्व निहित है।

सौंदर्यशास्त्र ललितकलाओं के दार्शनिक या सैद्धांतिक पक्ष का निरूपण करता है, व्यावहारिक पक्ष का नहीं। वह वास्तव में कला-दर्शन है। निस्संदेह सौंदर्यशास्त्र प्रकृति और शिल्प के विभिनन उपादानों में सौंदर्य की सत्ता स्वीकार करता है, किंतु वह अपना संबंध केवल ललितकलाओं तक ही सीमित रखता है। सौंदर्यशास्त्रियों ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप में स्वीकार करते हुए इसके पक्ष में अनेक तर्क दिए हैं। एक तो उनका कहना है कि प्रकृति के विभिन्न रूपों और क्रिया-कलापों का अध्ययन करना सौंदर्यशास्त्र का नहीं- भौतिक-विज्ञान का कार्य है। दूसरे, सौंदर्यशास्त्र की परिधि में केवल वे ही रूप आ सकते हैं जो मानव के द्वारा अनुभूत होकर लिपिबद्ध रूप में सुलभ हो गए हों। दूसरे शब्दों में सौंदर्यशास्त्र प्रकृति एवं बाह्यजगत् का अध्ययन सीधे रूप में और उनके प्रकृत रूप में न करके कलाओं के माध्यम से संवेदित रूप का ही अध्ययन करता है। अतः, इस दृष्टि से सौंदर्यशास्त्र केवल कलाशास्त्र ही है, और कलाओं में भी केवल ललित कलाओं से उसका संबंध है। इतना ही नहीं ललित कलाओं के भी वह केवल एक ही पक्ष—सैद्धांतिक या दार्शनिक पक्ष तक ही उसका संबंध माना जाता रहा है। (रस-सिद्धांत का पुनर्विवेचन, पृ.123)

Alexander Pope (अलेकजेण्डर पोप) (1688-1744)

अँग्रेजी आलोचक। पोप का जन्म 1688 ई. में लंदन में हुआ था। वह उत्कृष्ट कोटि का व्यंग्य कवि और आलोचक था। उसने अपनी प्रसिद्ध आलोचना कृति 'ऐसे ऑन क्रिटिसिज्म' (आलोचना-विषयक निबंध) की रचना 1709 ई. में की थी। यह ग्रंथ तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में सिद्धांत का 'अनुकरण सिद्धांत'के आधार पर सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। द्वितीय भाग में प्रतिभा का विवेचना, काव्यगत नियमों के अनुपालन का निर्देश तथा अन्वति निर्वाह पर बल देकर सभी प्रकार के अतिवादी विचारों के निवारण की बात कही गई है। तृतीय भाग में सफल आलोचक के गुण वर्णित हैं। पोप ने इस ग्रंथ की रचना पद्य में की है। उस पर क्विन्टीलियन, होरेस, बुअलो आदि आलोचकों का ऋण

है। उसके अनुसार साहित्य का मुख्य उद्देश्य नैतिक विचारों की स्थापना और प्रसार है। नव्यशास्त्रवादी सिद्धांतों का समर्थन करने वाला यह एक महत्त्वपूर्ण विवरण ग्रंथ है। पोप की अन्य रचनाएँ हैं – 'प्रीफेस टू शेक्सपियर' (शेक्सपियर की भूमिका), आर्ट ऑफ सिंकिंग (डूबने की कला) तथा एपिस्टल टू आगस्टक (आगस्टक को पत्र) उसने पाँच वर्षों में अनवरत परिश्रम के पश्चात होमर कृत 'इलियट' का अँग्रेजी में पद्यबद्ध अनुवादक भी किया था। इस अनुवाद की भूमिका में उसने अपने समीक्षा-विषयक मन्तव्य भी प्रस्तुत किए हैं। पोप ने 1712 ई.में 'द रेप ऑफ द लॉक' (केश का अपहरण) नामक व्यंग्य काव्य की रचना की। उसकी अंतिम रचना 'द एसे ऑन मैंन' एक दार्शनिक काव्य हैं, जिसमें अनेक लेखकों के विचार काव्य-शैली में प्रतिपादित किए गए हैं।

पोप ने अपने निबंध में आलोचक के गुण एवं निकृष्ट आलोचना के कारणों पर प्रकाश डाला है। वह काव्यात्मक निर्दोषत्व पर भी प्रकाश डालता है। उसकी कृति अनेक दृष्टियों से नव्यशास्त्रवादी विचारों के पत्रक के रूप में प्रतिष्ठित है। उसके अनुसार जिस प्रकार सदोष काव्य रचना को महान दोष माना जाता है, उसी प्रकार दोपयुक्त काव्य-परीक्षण भी दोप हैं। एक में हमारे धैर्य की परीक्षा होती है तो दूसरा हमें अपनी बुद्धि को भ्रम में डालता है। आलोचक के गुणों की चर्चा करते हुए वह स्वस्थ रुचि, हँसोपम वृत्ति और विद्वता के अतिरिक्त सत्य-कथन, निष्पक्षता एवं स्पष्टवादिता को परिगणित करता है। वह भावानुसार भाषा एवं प्रसंगोचित शैली के प्रयोग पर बल देता है। उसके अनुसार रचनाकार सदा औचित्य का ध्यान रखे। कटु-कर्कश शब्दों के स्थान पर श्रुति मधुर तथा लालित्य व्यंजक शब्दों का प्रयोग अधिक समीचीन होता है। पोप मानता है कि निकृष्ट आलोचक अधिक खतरनाक होता है। अतः, सत्साहित्य की सृष्टि के लिए सत्समालोचक का होना एक अनिवार्य तथ्य है। आलोचक यदि साहित्य में अपनी रुचि और इच्छा को सर्वोपरि स्थान देता है तो यह उसकी निरंकुशता का परिचायक हैं। समालोचक की प्रतिभा केवल नियमों और सिद्धांतों की परिमित परिधि में विचरण न कर सहानुभूति से भी आपूर्ण हो। साहित्यकार की कला प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण कर प्राचीन साहित्यकारों की रचना के अध्ययन के कारण प्राप्त नियमों और सिद्धांतों के आधार पर संयमित होती है। पोप एक प्रकार से निर्णयात्मक आलोचना को प्रश्रय देता है। उसका कहना था कि साहित्यकार वस्तुओं के सहज-स्वाभाविक प्राकृत रूप तथा गुणों का वर्णन करे तथा वह भाषा, भाव, अलंकारादि की दृष्टि से असाधारणत्व के मोह में न पड़े। पोप ने प्राचीन

काव्य-सिद्धांतों की तत्कालीन स्थिति में क्या उपयोगिता हो सकती है, इस पर भी विचार किया है। वह कहता है कि समीक्षक न तो किसी से घृणा करे और न किसी के प्रति पक्षपात दिखलाए। वह अपनी बात को आँख मूंद कर मानने के लिए आग्रह न करे। वह निर्भीक, निष्कपट, विद्वान तथा विनम्र हो तथा इतना निरशंक हो जिससे कि अपने मित्रों के अवगुणों एवं विरोधियों के गुणों का भी प्रदर्शन कर सके।

वह साहित्य के मूल्यांकन के लिए प्रकृति के उसकी सर्वाधिक विश्वस्त कसौटी स्वीकार करता है। वह प्रकृति का अर्थ 'मानव प्रकृति' से लेता है। मानव प्रकृति के अनुकूल होने पर ही कोई रचना उत्कृष्ट हो सकती है; अतः साहित्यकार का कर्त्तव्य है कि वह प्रकृति का निरीक्षण कर उसी के अनुकूल काव्य-सृष्टि में प्रवृत्त हो। उसने साहित्य के प्राचीन नियमों को व्यवस्थित प्रकृति का मान कर उनके अनुकरण पर बल दिया है। वह मानता है कि अप्राकृतिक अलंकरण काव्य-सौंदर्य को नष्ट कर देता है। उसने सच्ची काव्यात्मक उक्ति का आदर्श प्रस्तुत करते हुए कहा, "सच्ची का व्योक्ति वह है जिसे लोगों ने प्रांयः सोचा हो, परंतु जो कभी इस ढंग से व्यक्त नहीं की गई हो।"

Allegory (एलीगरी) रूपक कथा काव्य या अन्योक्ति रूपक

काव्य या कथा का ऐसा प्रकार जिसमें प्रतीकों के माध्यम से कोई शिक्षाप्रद कथा कही जाए। यह कथा धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक होती है। इसका उपयोग हास्य तथा व्यंग्य के लिए भी किया जाता है। इसमें प्रत्यक्ष कथा के माध्यम से नीति एवं उपदेश की बात कही जाती है। एलीगरी में एक कथा में एक अर्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थ भी निहित रहते हैं। रूपक कथा काव्य में प्रस्तुत कथा के अतिरिक्त अन्य अप्रस्तुत कथा भी अंतर्निहित होती है। जब रूपक कथा प्रबंध काव्य के माध्यम से व्यक्त होती है तो उसे रूपकात्मक कथा काव्य कहा जाता है। (एलीगेरिकल पोइट्री) अँग्रेजी में स्पेन्सर कृत 'फेयरी-क्वीन' इसी प्रकार की रचना है।

Alliteration (ऐलिट्रेशन) अनुप्रास

एक प्रकार का अलंकार जिसमें किसी ध्वनि का पुनरावर्तन हो। इसमें एक ही अक्षर या ध्वनि की बार-बार आवृत्ति होती है जिससे रचना में श्रवण सुखदता आ जाती है।

Ambiguous (ऐम्बिगुअस) संदिग्ध, वक्र या अनेकार्थक—ऐसे कथन को ऐम्बिगुअस कहते हैं जिसमें वक्रता या संदिग्धता विद्यमान रहती है। इसका प्रयोग दुरूह या अनेकार्थक रचना के लिए भी होता है।

Ambiguity (ऐम्बिगुइटी) अस्पष्टता या अनेकार्थकता

दे. New Criticism के अंतर्गत एम्पसम नामक आलोचक का परिचय।

American Criticism (अमेरिकन क्रिटिसिज्म) अमेरिकी आलोचना

अमेरिका में आलोचना का आरंभ नव्यशास्त्रीयतावादी आदर्शों के आधार पर हुआ, जिसमें नैतिकतावादी तथा उपयोगितावादी आदर्शों का भी सम्मिलन हुआ। इस पर ब्रिटिश आलोचना का भी प्रभाव दृष्टि गोचर होता है। इस समय की प्रमुख समीक्षात्मक पत्रिका (हिस्ट्री ऑफ अर्ली अमेरिकन मेगजीन) में पोप तथा स्विफ्ट के आदर्शों पर समीक्षाएँ प्रकाशित होती थीं और अमेरिकी आलोचक लॉर्डकेम्स कृत 'एलीमेण्ट्स ऑफ क्रिटिसिज्म' (1762 ई.) ह्यूब्लेयर के 'लेक्चर्स ऑन रेह्टोरिक' (1783) तथा आर्कीबाल्ड रचित 'नेचर एण्ड प्रिंसिपुल्स ऑफ टेस्ट' नामक ग्रंथों से प्रभावित थे। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अमेरिकी आलोचना में दो प्रकार की विचारधाराओं का प्रचलन हुआ। इनमें से प्रथम का उद्भव न्यूटन की वैज्ञानिक निष्पत्तियों के आधार पर हुआ तथा दूसरी में क्रांति के पश्चात राष्ट्र प्रेम, अनुकरण तथा परम्परा के प्रति विरोध का स्वर मुखरित हुआ। प्रथम वर्ग के लेखकों में फ्रैंकलिन जेसफर्सन, पेन तथा फ्रेनु हैं फैंकलिन आदि ने विज्ञान को ही साहित्य-साधना का आदर्श स्वीकार किया। 1770 ई. में जॉन ट्रम्बुले रचित 'एसे ऑन द यूज एण्ड एडवान्टेज ऑफ दि फाइन आर्टस्'। (ललित कलाओं के प्रयोग और लाभ पर निबंध) नामक ग्रंथ में यूरोपीय पाण्डित्य की प्रशंसा और उनके अनुकरण की दांसता को धिक्कारते हुए लेखकों को अपनी कृतियों में सर्वसाधारण तथा स्वाभाविक अभिव्यंजना के प्रयोग पर बल दिया गया। डब्ल्यू. सी. ब्रायन्ट ने नव्यशास्त्रवादियों का इसलिए विरोध किया कि उसमें अँग्रेजी नव्यशास्त्रीयता का कुरूप और कृत्रिम अनुकरण हुआ था। उसके अनुसार 'काव्य में विवेक से सुनियन्त्रित कल्पना और भावना का सुंदर समन्वय होना चाहिए।' पर साथ-ही-साथ उसने वर्ड्सवर्थ और कॉलरिज की प्रशंसा कर उनकी ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। 1815 ई. में 'नार्थ अमेरिकन रिव्यू' नामक पत्र के प्रकाशन से कॉलरिज की मान्यताओं तथा जर्मनी की साहित्य-धारा का

लेखकों द्वारा ही वास्तविक साहित्यिक निकष को प्राप्त करना चाहता है। वह साहित्य का अध्ययन विचारों के लिए करना चाहता है, केवल शब्दों के लिए नहीं।

वाल्ट ह्विटमैन (1819-1892 ई.)

वह विद्रोही भावना का कवि था। उसने अपने काव्य 'लीब्ज ऑफ ग्रास' (घास के पत्ते) के प्राक्कथन में अपने काव्य सिद्धांत का प्रतिपादन किया है और उसका स्वयं पालन भी किया है। उसके अनुसार अमेरिकी कवि अपने देश की आत्मा को काव्य में व्यक्त करे तथा यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य और नर-नारी का चित्रण करे। कवि को विश्वप्रेमी तथा श्रेष्ठ काव्य को छन्दालंकार के बंधन से मुक्त होना चाहिए। इस युग के अन्य आलोचकों में टॉमस वेण्टवर्थ हिगिन्स (1823-1911 ई.), ज़ॉर्ज विलियम कर्टिस 1824-1892 ई. चार्ल्स डडले वारनर तथा विलियम विण्टर (1836-1917) प्रसिद्ध हैं।

1870 ई. के पश्चात अमेरिकी साहित्य और आलोचना में नया मोड़ आया और नए लेखकों ने यथार्थवादी दृष्टि को अपनाया। अन्य लेखकों में आदर्शवादी विचार की प्रधानता थी, जिसका समर्थन स्टेडमैन, टी. एस. पेरी आदि लेखकों ने किया। इस युग में दो विरोधी विचारधाराओं में पारस्परिक प्रतिक्रिया प्रदर्शित हुई।

स्टेडमैन (1833-1908 ई.)

'सेनचुअरी' पत्र के सम्पादक थे । वे उस विचारधारा के समर्थक थे जिसमें इंगलैण्ड की सौम्यता और आदर्शवादिता की प्रशंसा की जाती थी। यह विचार-पद्धति 'जेन्टील' के नाम से प्रख्यात हुई। उनके अनुसार आलोचना केवल न्यायिक न होकर सौम्य तथा प्रशंसात्मक हो। उन्होंने 1875 ई. में विक्टोरियन पोएट्स नामक पुस्तक को प्रकाशित कराया। उनकी अन्य आलोचनात्मक रचना 'द नेयर एण्ड एलीमेन्ट्स ऑफ पोएट्री' है (1892 ई.)। उन्होंने काव्य तथा संगीत में तुरीयावस्था का सामंजस्य माना था।

मार्कट्वेन

इसके अनुसार लेखक की स्थिति यंत्रवत् होती है जो यथार्थ उपादान का प्रयोग कर रचना करता है। यह लेखन को दैवी कार्य मानता है तथा रचना की उत्कृष्टता आभ्यंतरिक साम्य तथा संगीत पर निर्भर स्वीकार करता है।

हेनरीजेम्स (1843-1916)

प्रसिद्ध उपन्यासकार और आलोचक था। इसके निबंधों का संग्रह 'फ्रेंच पोएट्स एण्ड नोवेलिस्ट्स' है, जिसमें फ्रांसीसी लेखकों की अनैतिकता की निन्दा की गई थी और उनकी प्राविधिक जिज्ञासा और साहित्यिक विवेचना की प्रशंसा।

1900 ई. में अमेरिकी समीक्षा में सौंदर्य मीमांसा को प्रश्रय मिला और यथार्थवादी तथा भौतिकवादी विचारधारा का विरोध हुआ। इस पर प्रभाववादी विचारधारा तथा फ्रेंच लेखक लमात्र और क्रोचे का प्रभाव था। जेम्स हुनेकर, जॉर्ज सेन्टाएना तथा जे. ई. स्पिनगार्न ने इस आलोचना-सिद्धांत को भास्वर वनाया और इसका चरम-विकास नई समीक्षा (न्यू क्रिटिसिज्म) के रूप में हुआ। इस आलोचना का संबंध अभिव्यंजना वाद से था। जेम्स हुनेकर ने आलोचना में अनुभूति पक्ष पर बल देकर उसका उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति माना। यह फ्रेन्च आलोचक के. रेमी दगूरमा से अधिक प्रभावित था। इसके अनुसार कला कलात्मक होनी चाहिए। 'सेन्टाएना' ने 'दसेन्स ऑफ ब्यूटी' नामक ग्रंथ में सौंदर्य तत्त्व की मीमांसा की और 'द एलीमेन्ट्स एण्ड फन्कशन ऑफ पोएट्री' में अपने काव्य-विपयक विचारों का प्रतिपादन किया। सेन्टाएना ने साहित्य की ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचना न कर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया और सौंदर्य के तीन स्तरों का निरूपण किया—आकृति, व्यंजना तथा उपादान। काव्य का विपय शब्दों द्वारा व्यक्त होता है, अतः वह गद्य से उच्चतर है, क्योंकि कविता में गद्य की अपेक्षा दार्शनिकता अधिक होती है।

क्रोचे द्वारा प्रतिपादित अभिव्यंजनावादी विचारधारा का समर्थन जे. ई. स्पिनगार्न ने किया और अमेरिकी आलोचना में इसका रूप प्रखर हुआ। उसने आलोचना को सौंदर्यानुभूति पर आधृत मान कर उसमें से नैतिकता, सामाजिकता एवं मनोवैज्ञानिकता के भावों का बहिष्कार किया। उसके अनुसार आलोचना का मुख्य लक्ष्य कलाकार के उद्देश्य को समझ कर उसकी अभिव्यंजना का अध्ययन करना है। उसने 1910 ई. में 'न्यू क्रिटिसिज्म' (नई समीक्षा) नामक पुस्तक की रचना कर क्रोचे के सिद्धांतों का विवेचन किया। उसके अनुसार कवि अपनी कला के प्रति सत्यनिष्ठ रहे और यथार्थवादी विचारों को अत्यधिक सुंदरता के साथ अभिव्यक्त करे। उसने आलोचना में कलात्मक पक्ष के अध्ययन को महत्त्व दिया है।

बीसवीं शताब्दी की आलोचना पर मानवतावादी विचारधारा का अत्यधिक प्रभाव पड़ा, जिसका रूप दूरविंग बैविट तथा एलमर मोर की आलोचनाओं में प्रकट हुआ। इस विचारधारा में रूढ़ियों का पुनर्निरीक्षण कर उसे परिष्कृत किया गया तथा आलोचना के नूतन रूप की प्रतिष्ठा हुई। इस युग की आलोचना को प्रौढ़ बनाने में 'द न्यूयार्क टाइम्स', 'द शिकागो डेलीन्यूज', 'इविनिंग पोस्ट', 'द ट्रिव्यून' 'द सेविन आर्टस' 'द डाएल' 'द बुकमैंन' आदि पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योग है। 1930 ई. के आसपास अमेरिकी आलोचना पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा जिसके प्रतिनिधि ग्रैनविल हिक्स, जेम्स टी. फैरेले, केनेथ बर्क तथा एडमण्ड विल्सन थे। फैरेले ने 'ए नोट ऑन लिट्रेरी क्रिटिसिज्म' नामक निबंध में मार्क्सवादी आलोचना की भ्रान्तियों का निराकरण किया। आगे चल कर मार्क्सवादी आलोचना-पद्धति पतन की ओर अग्रसर होने लगी और फिलिप रहव ने 1939 ई. में प्रोलिटेरियन लिट्रेचर ऐन एटौप्सी और चार्ल्स आई. गिलक्सवर्ग ने 1941 ई. में 'द डिकलाइन ऑफ लिट्रेरी मार्कसिज्म' नामक लेख की रचना में मार्क्सवादी विचारों के ह्रास के कारणों का विवेचन किया।

1915 ई. से ही अमेरिकी पत्र-पत्रिकाओं में मनोविश्लेषणवादी समीक्षा प्रकाशित होने लगी थी। फ्रेडरिक सी. प्रेसकॉट ने 'पोएटिक माइण्ड' नामक पुस्तक में स्वप्न, सर्जनात्मक कल्पना तथा चेतन, अवचेतन का विश्लेषण किया और कोनार्ड एकेन्स ने साहित्य में स्नायु व्यतिक्रम की ओर ध्यान आकृष्ट किया। अल्फ्रेड बूथ कुल्टनर ने अपनी कृति 'दी आर्टिस्ट' में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कवि और कलाकर की प्रकृति का विश्लेषण कर कलाकार को सामान्य प्रकृति और स्नायु-व्यतिक्रम पीड़ित असामान्य प्रकृति के मध्य निरंतर क्रियाशील प्राणी माना।

टी. एस. इलियट जन्म से अमेरिकी हैं। वे वर्तमान युग के श्रेष्ट कवि और आलोचक माने जाते हैं। उन्होंने साहित्य में रोमानी भावगत मूल्यों का विरोध कर प्राचीन वस्तुगत तथा तटस्थ दृष्टिकोण का समर्थन किया है। उन्होंने काव्य में निर्वैयक्तिक सृजनात्मक रूप की प्रतिष्ठा की और परम्परा एवं वैयवितक प्रतिभा पर विचार किया। वे काव्य-रचना की दृष्टि से परंपरा का विशेष महत्त्व स्वीकार कर साहित्य की अखण्ड और अविच्छन्न धारा का प्रतिपादन करते हैं। उन्होंने निर्वैयक्तिकता के सिद्धांत का निरूपण 'हैमलेट एण्ड हिज प्रोब्लेम्स' नामक निबंध में किया है। उसमें बताया गया कि "कलात्मक ढंग से किसी संवेग को अभिव्यक्त

करने के लिए हमें उसकी वस्तुमूलक प्रतिरूपता (objective correlative)" की खोज करनी पड़ती है। दूसरे शब्दों में हमें उपादानों, परिस्थितियों एवं घटनाओं के ऐसे क्रमों की गवेषणा करनी पड़ती है, जो विशिष्ट संवेग के सूत्र बन सकें: अर्थात हमें ऐसे साधनों का उपयोग करना पड़ता है कि ऐन्द्रिय अनुभूति में क्रियाशील बाह्य तथ्यों के उपस्थित होते ही हमारे संवेग भी अव्यवहित रूप में उद्‌बुद्ध हो जाएँ। (दे. T. S. elliot टी. एस. इलियट)

नई समीक्षा या न्यू क्रिटिसिज्म आज अमेरिकी आलोचना का सर्वाधिक चर्चित साहित्य-चिंतन है और इसे आलोचनात्मक विकास-शृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ीमान लिया गया है। इस वर्ग के लेखकों में जान क्रो रैंसम, ब्लैकमूर, क्लीन्थब्रुक्स एलन टेट, राबर्ट पेनबारन आदि हैं। नई समीक्षा नाम का व्यवहार जान क्रो रैंसम की कृति 'न्यूक्रिटिसिज्म' के प्रकाशित होने के पश्चात होने लगा। विद्वानों का विचार है कि 'नई समीक्षा' को प्रतिपादित प्रवर्तित करने वाले टी.एस. इलियट थे, पर कतिपय विद्वान इसका आरंभ रिचार्ड्स की पुस्तक 'मीनिंग ऑफ मीनिंग' से मानते हैं। इस वर्ग के प्रत्येक आलोचक ने काव्य की अद्वितीयता को सिद्ध करने का नया ढंग निकाला है और प्रत्येक आलोचक का अपना एक पृथक् मूलमंत्र है। रिचार्ड्स भावात्मक और निर्देशात्मक अर्थ को काव्य का अद्वितीय तत्त्व मानते हैं तो एम्पसन अनेकार्थता (एम्बिगुय्टी) को। रैंसम ने शब्द विधान और अर्थविधान को महत्त्व दिया है तो ब्रुक्स ने विरोधाभास को। वारेन के अनुसार वक्रोक्ति काव्य का मूल तत्त्व है और ब्लैकभर के अनुसार भंगिमा। ब्रुक्स का इस संबंध में मत इस प्रकार है। मेरा आग्रह है कि कविता की प्रारंभिक विवेचना कविता में रूप में करना ही उचित दृष्टिकोण है और वांछनीय भी है। हमने मानव वैज्ञानिक और सांस्कृतिक इतिहासकारों की विचारधाराओं का अध्यवसायपूर्वक विश्लेषण किया है और उनके निष्कर्षों पर अच्छी तरह मनन भी किया है। हमने यह सबक इतनी अच्छी तरह सीखा है कि मुझे प्रतीत होता है कि अब भय यह नहीं है कि हम विभिन्न ऐतिहासिक कालों की कविताओं के बीच के अंतर को विस्मृत कर देंगे, वरन् डर यह है कि कहीं हम यह न भूल जाएँ कि उनमें साम्य क्या है? इस बात की संभावना नहीं है कि उत्कृष्ट कविताओं में परस्पर विभेद करनेवाले तत्त्वों को हम भूल जाएँगे, किंतु इस बात की पूर्ण संभावना है कि उनमें परस्पर जो निकट संबंध होता है, वह हमारी दृष्टि से ओझल हो जाएगा। ये तत्त्व वे हैं जिनके कारण वे कविताएँ होती हैं और जो उनकी उत्कृष्टता एवं निकृष्टता की कसौटी भी है। समन्विति, पृ.9 (दे. New criticism नई समीक्षा)

Amplification (ऐम्प्लिफिकेशन)

विस्तारणा– एक प्रकार का अलंकार, जिसके प्रयोग के कारण विषय गरिमापूर्ण बन जाता है। यह अलंकार उदात्तशैली के निर्माण में गति प्रदान करता है। इसमें विवरण का विस्तार एवं प्राचुर्य होता है। लोंजाइनस के अनुसार इसकी परिभाषा इस प्रकार है। "विस्तारणा किसी विषय के समस्त अंगों और अंगभूत प्रसंगों के समुदाय का नाम है जिससे विषय के विस्तार द्वारा युक्ति में बल आता है।"

Analytical Drama (एनेलिटिकल ड्रामा)

विश्लेषणपरक नाटक–नाटक का एक प्रकार जिसमें चरम सीमा मंच पर ही दिखाई पड़े। पर्दा उठाने के पूर्व ही इसमें चरम सीमा की ओर ले जाने वाले तत्त्व घटित हो जाते हैं। इसमें लेखक चरम परिणति की स्थिति में पात्रों का विश्लेषण करता है।

Anti-climax (ऐण्टी-क्लाइमैक्स)

अपकर्ष–एक अलंकार जिसमें क्रमशः घटते हुए महत्त्व की शृंखला हो।

Apocalyptic literature (ऐपॉकैलिप्टिक लिटरेचर)

दैवी साहित्य–पारलौकिक सत्यों या रहस्यों का वर्णन करने वाला साहित्य दैवी साहित्य कहलाता है।

Apostrophe (ऐपॉस्ट्राफी) उत्सम्बोधन

एक प्रकार का अलंकार। इसमें निर्जीव चीजों को जीवित प्राणी या मनुष्य की भाँति संबोधित किया जाता है। जैसे– 'ऐ मृत्यु शीघ्र आओ' यह एक प्रकार का मानवीकरण ही है, पर मानवीकरण में वस्तुओं को संबोधित नहीं किया जाता। कभी-कभी जब भावावेश में अनुपस्थित व्यक्ति को भी इस प्रकार संबोधित किया जाता है कि वह विद्यमान हो तो वहाँ भी ऐपॉस्ट्राफी होती है।

Applied criticism (अप्लायड क्रिटिसिज्म) व्यावहारिक आलोचना

दे. criticism

Archetype (आर्केटाइप) ·

आद्यरूप—आधुनिक युग के मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों ने कविता की आलोचना के लिए आर्केटाइप की महत्ता स्वीकार की है। प्रसिद्ध मनोविश्लेषण शास्त्री युग के अनुसार आद्यरूप का संवंध मन के भीतर की अचेतन शक्तियों से है। ये मानस में असंख्य प्रकार के अनुभव के रूप में रहते हैं। इन अनुभवों का अभिप्राय व्यक्ति-विशेष के अनुभवों से न होकर उसके पूर्वजों के अनुभवों से है, जो मनुष्य के मस्तिष्क में विरासत के रूप में प्राप्त होते हैं और वे व्यक्ति विशेष के अनुभवों को निर्धारित करते हैं। इस प्रकार की कहानियाँ और परिस्थितियाँ जाति की स्मृति में अमिट रूप से विद्यमान रहती हैं। रोजर फ्राइ ने आद्यरूप का अर्थ साहित्यिक कृति के किसी भी तत्त्व से लिया है, जिसके भीतर पात्र, विम्व या कोई भाव हो। कवि अपनी असाधारण संवेदना द्वारा जातिगत अनुभूतियों को रूप देता है। अतः, आद्यरूप को प्राथमिक रूपरचना कहा जा सकता है जिसमें पदार्थों के किसी समूह के मौलिक तत्त्व विद्यमान रहते हैं।

Architecture (आर्किटेक्चर)— स्थापत्यकला, वास्तुकला या गृहनिर्माण कला—

दे. Art

Aristophanes (एरीसटॉफेनीज) —. युनानी कॉमदी लेखक एवं आलोचक- दे. Bignning of criticism.



Aristotle (अरिस्टोटल)
अरस्तू 384 ई.पू. से 322 ई.
यूनानी चिंतक और काव्यशास्त्री

अरस्तू का जन्म थ्रेस के एक नगर स्तेगिरा में ई. पू. 384 में हुआ था। उसका पिता निकोमैकस मकदूनियाँ के राजा फिलिप का राजवैद्य था। जबकि वह सत्रह वर्ष का था तभी पिता की मृत्यु हो गई और दर्शनशास्त्र के अध्ययन के निमित्त वह एथेन्स चला आया। वह प्लेटो की प्रसिद्ध 'अकादमी' में लगभग बीस वर्षों तक दर्शन एवं अन्य शास्त्रों का अध्ययन करता रहा। प्लेटो उसे पाठशाला का मस्तिष्क कहा करता था। विद्यालय छोड़ने के पश्चात वह भ्रमण के निमित्त निकला और इसी समय उसने टायरेंट की बहिन या भतीजी 'हर्मिया' से अपना विवाह किया। वहाँ उसे पर्याप्त मात्रा में धन प्राप्त हुआ। ई. पू. 342 ई. में फिलिप का निमंत्रण प्राप्त कर पुन: फिलिप मकदूनियाँ दरबार में पहुँचा और सिकंदर महान का शिक्षक नियुक्त हुआ। उस पद पर वह तीन वर्षों तक रहा। उसकी मृत्यु 322 ई. पू. स्तेगिरा में हुई।

अरस्तू बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति था। उसने ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों को अपनी प्रतिभा के प्रकाश से प्रोद्भासित किया है। यद्यपि उसके प्रिय विषय भौतिक विज्ञान और प्राणिविज्ञान थे तथापि वह कई विद्याओं का पंडित था। 62 वर्ष की अवस्था में उसने लगभग 400 ग्रंथों की रचना की जिनके विषय

हैं—तर्कशास्त्र, आधिभौतिकशास्त्र, मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र, साहित्यशास्त्र आदि। साहित्यशास्त्र-विषयक उसने दो प्रसिद्ध ग्रंथों 'काव्यशास्त्र' (पोरियोइतिकेस) तथा 'भाषणशास्त्र' (तेखने सरितोरिकेस)— की रचना की है।

अरस्तु ने प्लेटो की मान्यताओं से मतभेद किया है। प्लेटो गणितज्ञ था और अरस्तू प्राणिशास्त्री, अतः दोनों की प्रतिभा दो भिन्नशास्त्रों की ओर उन्मुख थी। प्लेटो ने दृश्यजगत् को आभासमात्र कहा था। उसके अनुसार विचार ही यथार्थ या सत्य है, पदार्थ नहीं। पदार्थ विचार की अपूर्ण अभिव्यक्ति है। अरस्तु कई अंशों में इस मत का विरोधी था। वह भी प्लेटो की भाँति विचार (idea) को यथार्थ मानता था; किन्तु उसकी दृष्टि में विचार और पदार्थ दोनों अलग-अलग न होकर अभिन्न हैं। उसके अनुसार विचार पदार्थ के बिना नहीं रह सकता। इस जगत् के प्रत्येक तथ्य का मूल्य होता है। वह दृष्टजगत् को आभास न मान कर उसकी सत्ता में दृढ़ विश्वास करता था। प्लेटो ने विज्ञान को उतना महत्त्व नहीं दिया था; किन्तु अरस्तु तत्त्वज्ञान से विज्ञान को नीचा नहीं समझता था। प्लेटो के अनुसार दृष्टजगत् के सभी व्यक्ति प्रत्यय (idea) की नकल हैं, असल से भेद (कुछ-न-कुछ) होने के कारण वे परस्पर भिन्न दिखाई पड़ते हैं। उसके अनुसार ऊपर प्रत्यय की नित्य दुनिया है और नीचे विशेष पदार्थों का अनित्य जगत्।

अरस्तु के मत से विचार और पदार्थ (idea and subtance) दोनों ही सत्य हैं, परस्पर अभिन्न हैं, उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

(Theory of idea) जातिप्रत्ययवाद की आलोचना

अरस्तु ने प्लेटो के 'जातिप्रत्ययंवाद' की आलोचना की। उसके अनुसार सामान्य विशेष से भिन्न नहीं है अर्थात अश्वत्व को अश्व से अलग नहीं किया जा सकता। उसके तर्क इस प्रकार हैं:

(क) वह दृश्यजगत् एवं विचारजगत् की कल्पना को व्यर्थ मानता है और जातिप्रत्यय की वस्तुगतसत्ता (objective reality) में किसी प्रकार का प्रमाण नहीं मानता।

(ख) जातिप्रत्ययों को गतिहीन एवं अपरिवर्तनशील बतलाते हुए अरस्तू ने कहा कि ये दृश्यजगत् की व्याख्या करने में असमर्थ हैं इनके द्वारा संसार के पदार्थों की उत्पत्ति संभव नहीं है। स्वयं गतिशील एवं परिर्तनशील होने के कारण

Aristotle (अरिस्टोटल)
अरस्तू 384 ई.पू. से 322 ई.
यूनानी चिंतक और काव्यशास्त्री

अरस्तू का जन्म थेस के एक नगर स्तेगिरा में ई. पू. 384 में हुआ था। उसका पिता निकोमैकस मकदूनियाँ के राजा फिलिप का राजवैद्य था। जबकि वह सत्रह वर्ष का था तभी पिता की मृत्यु हो गई और दर्शनशास्त्र के अध्ययन के निमित्त वह एथेन्स चला आया। वह प्लेटो की प्रसिद्ध 'अकादमी' में लगभग बीस वर्षों तक दर्शन एवं अन्य शास्त्रों का अध्ययन करता रहा। प्लेटो उसे पाठशाला का मस्तिष्क कहा करता था। विद्यालय छोड़ने के पश्चात वह भ्रमण के निमित्त निकला और इंसी समय उसने टायरेंट की बहिन या भतीजी 'हर्मिया' से अपना विवाह किया। वहाँ उसे पर्याप्त मात्रा में धन प्राप्त हुआ। ई. पू. 342 ई. में फिलिप का निमंत्रण प्राप्त कर पुनः फिलिप मकदूनियाँ दरबार में पहुँचा और सिकंदर महान का शिक्षक नियुक्त हुआ। उस पद पर वह तीन वर्षों तक रहा। उसकी मृत्यु 322 ई. पू. स्तेगिरा में हुई।

अरस्तू बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति था। उसने ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों को अपनी प्रतिभा के प्रकाश से प्रोद्भासित किया है। यद्यपि उसके प्रिय विषय भौतिक विज्ञान और प्राणिविज्ञान थे तथापि वह कई विद्याओं का पंडित था। 62 वर्ष की अवस्था में उसने लगभग 400 ग्रंथों की रचना की जिनके विषय

हैं—तर्कशास्त्र, आधिभौतिकशास्त्र, मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र, साहित्यशास्त्र आदि। साहित्यशास्त्र-विषयक उसने दो प्रसिद्ध ग्रंथों 'काव्यशास्त्र' (पोरियोइतिकेस) तथा 'भाषणशास्त्र' (तेखने सरितोरिकेस)— की रचना की है।

अरस्तु ने प्लेटो की मान्यताओं से मतभेद किया है। प्लेटो गणितज्ञ था और अरस्तू प्राणिशास्त्री, अतः दोनों की प्रतिभा दो भिन्नशास्त्रों की ओर उन्मुख थी। प्लेटो ने दृश्यजगत् को आभासमात्र कहा था। उसके अनुसार विचार ही यथार्थ या सत्य है, पदार्थ नहीं। पदार्थ विचार की अपूर्ण अभिव्यक्ति है। अरस्तु कई अंशों में इस मत का विरोधी था। वह भी प्लेटो की भाँति विचार (idea) को यथार्थ मानता था; किन्तु उसकी दृष्टि में विचार और पदार्थ दोनों अलग-अलग न होकर अभिन्न हैं। उसके अनुसार विचार पदार्थ के बिना नहीं रह सकता। इस जगत् के प्रत्येक तथ्य का मूल्य होता है। वह दृष्टजगत् को आभास न मान कर उसकी सत्ता में दृढ़ विश्वास करता था। प्लेटो ने विज्ञान को उतना महत्त्व नहीं दिया था; किन्तु अरस्तु तत्त्वज्ञान से विज्ञान को नीचा नहीं समझता था। प्लेटो के अनुसार दृष्टजगत् के सभी व्यक्ति प्रत्यय (idea) की नकल है, असल से भेद (कुछ-न-कुछ) होने के कारण वे परस्पर भिन्न दिखाई पड़ते हैं। उसके अनुसार ऊपर प्रत्यय की नित्य दुनिया है और नीचे विशेष पदार्थों का अनित्य जगत्।

अरस्तु के मत से विचार और पदार्थ (idea and subtance) दोनों ही सत्य हैं, परस्पर अभिन्न हैं, उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

(Theory of idea) जातिप्रत्ययवाद की आलोचना

अरस्तु ने प्लेटो के 'जातिप्रत्ययवाद' की आलोचना की। उसके अनुसार सामान्य विशेष से भिन्न नहीं है अर्थात अश्वत्व को अश्व से अलग नहीं किया जा सकता। उसके तर्क इस प्रकार हैं:

(क) वह दृश्यजगत् एवं विचारजगत् की कल्पना को व्यर्थ मानता है और जातिप्रत्यय की वस्तुगतसत्ता (objective reality) में किसी प्रकार का प्रमाण नहीं मानता।

(ख) जातिप्रत्ययों को गतिहीन एवं अपरिवर्तनशील बतलाते हुए अरस्तू ने कहा कि ये दृश्यजगत् की व्याख्या करने में असमर्थ हैं इनके द्वारा संसार के पदार्थों की उत्पत्ति संभव नहीं है। स्वयं गतिशील एवं परिर्तनशील होने के कारण

करना चाहता है या उसकी आवश्यकता का अनुभव करता है। उसकी कुछ इस प्रकार की योजना थी कि प्रथम समूह के काव्य का विवेचन करने के बाद ही दूसरे समूह (महाकाव्य और त्रासदी) पर विचार किया जाता और उस सिद्धांत को प्रथम समूह में भिन्न रूप में दिखाया जाता, किंतु इस योजना का उलटा ही रूप 'काव्यशास्त्र' में प्रस्तुत किया गया है। उसने त्रासदी पर अधिक विस्तार से विचार किया है और उसके परिणाम महाकाव्य पर घटाए हैं तथा कॉमदी का संकेत कर के छोड़ दिया है। जैसा कि कहा जाता है कि वह ग्रंथ अधूरा है; क्योंकि इसके द्वितीय भाग में कॉमदी एवं व्यंग्यकाव्य का विस्तृत विवेचन किया जाता या किया गया होगा। अरस्तू का यह वर्गीकरण उसकी वैज्ञानिक दृष्टि का परिचायक है। उसने विवेचन-सौकर्य की दृष्टि से ही काव्य का ऐसा विभाजन किया है। अरस्तू ने प्रगीत काव्य को अपने ग्रंथ में स्थान नहीं दिया जो आज के आलोचक को आश्चर्य में डालनेवाला है। इसका कारण यह भी संभव है कि उसने प्रगीत को संगीत से संबद्ध जान कर छोड़ दिया हो। उसने त्रासदी के सिद्धांत को इस प्रकार व्यापक रूप दिया है जो साहित्य का सामान्य सिद्धांत बन गया है।

अरस्तू का 'काव्यशास्त्र' प्लेटो के साहित्यशास्त्रीय विचार के तीव्र प्रतिवाद के रूप में लिखा गया था। प्लेटो के अनुसार कविता मनुष्य की भावनाओं को उभार कर उसके बौद्धिक स्तर को हीन बना देती है। वह मनुष्य के ज्ञान के अत्यंत निम्न क्षेत्र का अनुकरण करती है और वह अनुकरण भी अपने में अपूर्ण होता है, अतएव उसका प्रभाव अत्यंत घातक है। प्लेटो का शिष्य होने के कारण उसके विचारों से अरस्तू का प्रभावित होना स्वाभाविक था; किंतु जैसे-जैसे उसका विचार परिपक्व होता गया वैसे-वैसे उसे अपने गुरु के सिद्धांतों में त्रुटियाँ दिखाई पड़ने लगीं, अतः दोनों की चिंतन-सरणि भिन्न होती गई। अरस्तू की विचारधारा पर जीवशास्त्र का रंग चढ़ा था और प्लेटो पर गणित का प्रभाव था। अरस्तू वस्तु से विचार की ओर आना चाहता था और प्लेटो विचार से पदार्थ या वस्तु की ओर पहुँचा था। अरस्तू की मेधा वैज्ञानिक की थी और प्लेटो की दार्शनिक की। दोनों के दृष्टिकोण की भिन्नता सत्य के रूप के प्रश्न पर अधिक दिखाई पड़ी। गणित शास्त्र के अनुसार वस्तुजगत् तभी सत्य है जब वह विचारों का प्रतिनिधित्व करे। दार्शनिक यह मानता है कि सत्य अथवा वास्तविकता विचारजगत् में है और विचार के द्वारा ही वस्तुओं में सत्यता आती है। अतः, यह सिद्ध हुआ कि गणितज्ञ का क्षेत्र विचारों का है, वह वस्तुजगत् में पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं पा सकता। वह विचारजगत् को सत्य एवं दृश्यजगत् को उसकी छाया अनुकृति मान्रता है। ठीक

इसके विपरीत वैज्ञानिक दृश्यजगत् को सत्य मानकर इसके मार्ग से (दृश्यजगत् से) विचारजगत् तक पहुँचता है। वैज्ञानिक वस्तु की सत्यता से भावना की सत्यता मानता है; किंतु गणितज्ञ भावना की सत्यता से वस्तु की सत्यता निर्धारित करता है। प्राणिशास्त्र (जीवविज्ञान) के अनुसार वस्तु की यथार्थता ही विचार को जन्म देती है। विचारों का यह अंतर ही दोनों के काव्यादर्श में प्रतिफलित हुआ और कविता के ऊपर प्लेटो का जो आक्रमण हुआ उसका मुख्य कारण उसकी दार्शनिक मान्यताएँ थीं।

दृश्यजगत् की भावनाओं या विचारों की नकल मानने के कारण ही प्लेटो ने काव्य को अनुकृति की अनुकृति सिद्ध कर उसे मिथ्या बतलाया था, किंतु अरस्तू के समक्ष यह बात नहीं थी। उसके सम्मुख दृश्य एवं अदृश्यजगत् की सत्यता का प्रश्न ही नहीं उठा था। उसने एक वैज्ञानिक की भाँति कला एवं काव्य का विवेचन तथा विश्लेषण प्रस्तुत किया। विज्ञान की पद्धति वर्गीकरण की पद्धति होती है, अतः अरस्तू ने उसीको अपनाकर काव्य का वर्गीकरण किया। उसने यह कहीं नहीं कहा कि उसका विचार प्लेटो के सिद्धांत की चुनौती है या उसने उसका उत्तर देने के लिए अपनी पुस्तकें लिखी हैं। इसके साथ ही 'काव्यशास्त्र' में वह प्लेटो की कहीं चर्चा नहीं करता और न उसके द्वारा उठाई गई आपत्तियों का ही संकेत करता है, किंतु ग्रंथ के सम्यक् विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उसके सभी विचार और निष्कर्ष प्लेटो के सिद्धांतों के खण्डनार्थ ही प्रस्तुत किए गए हैं।

प्लेटो की दुबिधा एक दार्शनिक की दुबिधा थी और उससे भी बढ़कर एक व्यावहारिक नीतिज्ञ की। इसकी झलक स्वयं उसके इस प्रकार के कथन से दिखाई पड़ती है "कविता एवं दर्शन के बीच यह प्राचीन संघर्ष है।" प्लेटो की भाँति अरस्तू ने भी कला को प्रकृति की अनुकृति माना, यद्यपि उसका उद्देश्य कला को प्राकृतिक पदार्थों की कोरी अनुकृति मानने का नहीं था। उसने बतलाया कि कला में कुछ ऐसे तत्त्व रहते हैं जो प्रकृति में नहीं रहते। कलाकार अपने हृदय का रस एवं भावों का रंग देकर उसमें (कला में) नीवनता ला देता है। जो कुछ कला के माध्यम से व्यक्त होता है, वह प्राकृतिक पदार्थ से अवश्य ही भिन्न होता है, अतः वह (कला) हमारे लिए आकर्षण का केंद्र होती है। कला को नितांत अनुकरण न कहकर अनुकरण का एक ढंग कहा जा सकता है। चित्रकार जो चित्र खींचता है क्या उसे यथार्थ की हू-ब-हू नकल कह सकते हैं? उसमें उसकी भावनाओं एवं कल्पनाओं का योग नहीं रहता? वह उसमें अपनी भावनाओं का प्रकाश देकर

नया आलोक भर देता है। इसी प्रकार जब कवि यथार्थ की अनुकृति करता है तो उसमें अपनी कल्पना, भावना एवं अनुभूति का रस उड़ेल देता है। उसकी कृति यथार्थ से सर्वथा भिन्न और बहुलांश में उससे उत्कृष्ट कोटि की हो जाती है; क्योंकि कवि अनुभूतियों का रस देकर उसमें नई अर्थवत्ता ला देता है। अतः, कला या कविता कोरी अनुकृति नहीं है और न वह इसीलिए हेय है। अरस्तू ने 'काव्यशास्त्र' में काव्य के सौंदर्य का उद्घाटन कर उसे दार्शनिकों, नीतिज्ञों तथा राजनीतिज्ञों के पंजे से छुड़ाया। उसके काव्यालोचन का आधार विशुद्ध साहित्यिक एवं सौंदर्यमूलक है। उसने बताया कि कला का कोई रूप चाहे कविता हो या चित्र, वह सौंदर्य की वस्तु है और उसी रूप में मनुष्यों का मनः प्रसादन करती है।

अनुकरण सिद्धांत (Theory of imitation)

अनुकरण सिद्धांत पाश्चात्य काव्यालोचन एवं सौंदर्य-दर्शन की अत्यंत प्रसिद्ध विचार-सरणि है, जिसके अनेक स्वीकृत अर्थ हैं और उनमें आंशिक पार्थक्य भी दिखाई पड़ता है। ग्रीक भाषा में अनुकरण के लिए 'माइमेसिस' शब्द प्रचलित है जिसका अँग्रेजी पर्याय 'इमीटेशन' है। अनुकरण सभी कलाओं की विशेषता है जिसमें कविता भी सम्मिलित है। साहित्य में इस शब्द का पहले-पहले प्रयोग प्लेटो ने किया था और इसी के आधार को लेकर उसने कविता की अवहेलना भी की थीं। प्लेटो के अनुसार इस शब्द का अर्थ था वास्तविकता से दूर, किंतु अरस्तू ने इसका प्रयोग सर्वथा नवीन अर्थ में किया। उसने अपने गुरु के अर्थ का अंधानुकरण न कर उसे सर्वथा नवीन अर्थ से आपूर्ण किया जो अपेक्षाकृत गंभीर एवं नव चेतना से अनुप्राणित था। अरस्तू के अनुसार अनुकरण का अर्थ वास्तविकता से दूर न होकर वास्तविकता से बढ़ कर या श्रेष्ठतर था। प्लेटो का काव्य-विवेचन राजनीति, नीति एवं दर्शन-संबंधी बद्धमूल पूर्वाग्रह से आक्रांत है, अतः उसने अनुकरण का अर्थ नकल किया है। अरस्तू ने अपने विवेचन को यह कहते हुए प्रारंभ किया है कि कविता में अनुकरण की प्रक्रिया है और सभी कलाएँ अनुकरण ही हैं। "एपिक कविता, ट्रेजेडी, कॉमेडी, डिथेरैम्बिक और अधिकतर फ्ल्यूट और लायर का संगीत भी, ये सभी सर्वाधिक सामान्य दृष्टि से अनुकरण हैं, यद्यपि तीन बातों में उनमें परस्पर भेद होता है अनुकरण के विभिन्न साधनों, विभिन्न आश्रयों तथा विभिन्न रीतियों में।" उसका कथन है कि कला हमारे संसार का जो व्यक्तजगत् है या जो वस्तुजगत् है, उसका अनुकरण है। प्लेटो ने इसे वास्तविकता से दूर मान कर उसमें गंभीरता तथा सत्य का नितांत अभाव बतलाया

था पर अरस्तू ने इस सिद्धांत की व्याख्या ठोस आधार पर की। उसने कहा कि यदि हम कहें कि कविता प्रकृति की छाया या आभास है, जिसे जब तक हम प्रकृति को नहीं देख लेते तब तक आईने से क्या प्राप्त कर लेंगे? यदि कविता में प्रकृति की छाया है या वह प्रकृति की नकल है तो उसमें प्रकृति के स्वरूप या तत्त्वों से कुछ भी अधिक नहीं होना चाहिए था जो प्रकृति में नहीं है और उन्हीं के कारण कविता आकर्षण का केंद्र बनी रह कर हमारा आनन्दवर्धन करती है। मनुष्य प्रकृति को तो देख ही रहा है, यदि वही चीज हमें प्रकृति में भी दिखाई पड़ती तो वह उसकी ओर झुकता क्यों? उदाहरण के लिए हम नाटक या काव्य को ले सकते हैं; उसमें जिस प्रकार के पात्रों का चित्रण होता है, वैसे व्यक्ति संसार में कम दिखाई पड़ते हैं अर्थात जिस प्रकार की घटनाओं में नाटकीय पात्रों का जीवन घटित होता है वैसा जीवन में कम दिखाई पड़ता है। अरस्तू अपने ग्रंथ के प्रारंभ में कविता को संगीत या नृत्य की तरह कहता है न कि प्लेटो की भाँति नृत्य कला की तरह। इसका कारण यह है कि चित्रकला में अनुकरण का अर्थ मुख्यत: अनुकारिता का नकल से ही होता है; किंतु अरस्तू द्वारा नृत्य एवं संगीत की चर्चा इस तथ्य का सूचक है कि वह एक प्रकार की चेतावनी है कि कविता में अनुकरण का चाहे जो भी अर्थ हो; किंतु नकल या प्रतिलिपि का अर्थ नहीं हो सकता। यहाँ प्रश्न उठता है कि संगीत में अनुकरण का क्या महत्त्व है? यद्यपि नृत्य में भावों एवं गति या क्रिया को प्रकट किया जाता है; किंतु उसकी भाव-भंगिमा में वास्तविक चेष्टाओं या गतियों की प्रतिलिपि या कॉपी नहीं होती। अरस्तू ने इसी क्रम में तीन प्रश्नों को उठा कर उनका समाधान किया है– किसका अनुकरण (विषय), कैसे अनुकरण किया जाए (माध्यम) एवं किस विधान में उसकी अभिव्यक्ति हो (रीति)। वह अनुकरण को उद्देश्य, माध्यम एवं रीति के रूप में विभाजित कर देता है। कविता किस प्रकार के मनुष्यों का अनुकरण है या अच्छे या बुरे का जो वास्तविक जीवन में पाये जाते हैं। उसके अनुसार यह कार्य प्रकृति का अनुकरण न कर कल्पना की अनुकृति द्वारा संभव है। सिद्धांतत: कविता में ऐसे चरित्रों की अवतारणा होती है जैसा कि वे हैं या जैसी उनकी संभावना हो। कवि पहले प्रकृति या बाह्य संसार से प्रेरणा लेकर उस पर अनुभव का गाढ़ा रंग चढ़ा कर कविता में नूतन अर्थ भर देता है। तत्पश्चात कविता की कला कल्पना प्रधान प्रेरणा का अनुकरण कर–चूँकि वह यह कार्य कल्पना की शक्ति से ही करता है–भाषा के माध्यम से प्रकट होती है। इस प्रकार वह मूल वस्तु में नया भाव, नया रंग एवं नूतन विचार देकर उसे सर्वथा मौलिक रूप में प्रस्तुत करता

है। इस प्रकार कला या कविता प्रकृति का अनुकरण न होकर नूतन भावात्मक सृष्टि हो जाती है। "थोड़े-से शब्दों में अरस्तू ने कविता को मानव-जीवन का ऐसा अनुकरण माना है, जिसमें उसका केवल बाह्य प्रत्यक्ष रूप ही नहीं, वरन् तल के नीचे छिपे सूक्ष्म तत्त्व भी उभर कर सामने आते हैं।" "(डॉ. राम अवध द्विवेदी साहित्य-सिद्धांत, पृ.17)" "फलत: अनुकरण सिद्धांत की विस्तृत परिधि में मनुष्य की चेष्टाओं, भावनाओं; व्यवहार आदि का भी सन्निवेश हो जाता है और यह मानना कि उसका आधार केवल भौतिक तत्त्व तथा मानव-जीवन के प्रत्यक्ष व्यापारों में है, केवल भ्रम-मात्र होगा। अनुकरण केवल बाह्य क्रिया नहीं है और न वह जीवन की केवल यांत्रिक प्रतिलिपि-मात्र है। कवि अनुकरण द्वारा नवीन रूप में नवीन अर्थ की सृष्टि करता है तथा जो प्रत्यक्ष है उसे परोक्ष में मिला देता है। (वही, पृ.17-18)

कविता की कला एक विशेष प्रकार की कल्पना-प्रधान अन्त:प्रेरणा को रूप में तत्त्वार्थ प्रदान करती है। कला का विवेचन करते हुए अरस्तू ने अन्त:प्रेरणा के अस्तित्व को स्वीकार किया है तथा इसकी प्रकृति एवं भाषा के माध्यम से प्रकट होनेवाले कार्यों पर भी विचार किया है। इस प्रकार कल्पना के बल से कवि जब अनुकृति में नया रूप दे देता है तो वह वास्तविक पदार्थ अर्थात प्रकृति से सर्वथा भिन्न हो जाती है। फलत: अरस्तू का अनुकरण-सिद्धांत विशेष अर्थ का वाहक सिद्ध होता है।

उसके (अरस्तू के) व्याख्याताओं ने भी 'अनुकरण' शब्द की युक्तियुक्तता पर विचार किया है, अत: इस संदर्भ में उनका ज्ञान भी आवश्यक है। एट्किन्स के अनुसार अरस्तू का अनुकरण शब्द से अभिप्राय यह था कि काव्य-प्रक्रिया केवल अनुकृति न होकर (सृजनात्मक दर्शन) की क्रिया है, (An art of creative vision) जिसके द्वारा कवि जीवन के आवेष्टन से काव्य की सामग्री ग्रहण कर वास्तविकता एवं सत्य से कुछ अंश में नयापन लाने में समर्थ होता है। इस प्रकार अरस्तू के अनुसार 'अनुकरण' का अर्थ 'पुन:सृजन' से है। (Criticism in antiquity vol I page, 77-78) इस पर विचार करते हुए श्रीबूचर का कहना है कि 'कलाकृति मूलवस्तु का पुनरुप्पादन है, जैसा वह इन्द्रियों को प्रतीत होता है वैसा करती है। (डॉ. नगेन्द्र अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ. 4) बूचर के अनुसार अनुकरण का अर्थ हुआ 'सादृश्य-विधान अथवा मूल का पुनरुत्पादन', सांकेतिक उल्लेख नहीं। (Aristotle Poetry and Fine Arts, पृ.124) आगे चल

कर बूचर ने कहा "कला का संवेदन तत्त्वग्राहिणी बुद्धि के प्रति नहीं वरन् भावुकता तथा मन की मूर्त्तिविधायिनी शक्ति के प्रति होता है।" स्कॉटजेम्स ने इस शब्द (अनुकरण) पर विचार करते हुए इसे "जीवन के कल्पनात्मक पुनर्निर्माण का पर्याय माना है। उसका कहना है कि अरस्तू के 'काव्यशास्त्र' में अनुकरण से अभिप्राय है साहित्य में जीवन का वस्तुपरक अंकन जिसे जीवन का कल्पनात्मक पुनर्निर्माण कह सकते हैं। (The Making of literature, page 53) अरस्तू के आधुनिक व्याख्याता पाट्स के मत से अनुकरण का अर्थ 'आत्माभिव्यंजन से भिन्न जीवन (की अनुभूति) का पुनः सृजन है।'

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि प्रकृतिसे अरस्तू का अर्थ केवल बाह्य प्रकृति का था या अंतर एवं बाह्य दोनों का। किंतु, यहाँ प्रकृति के केवल बाह्यगोचर रूप को ही ग्रहण न कर उसमें आंतरिक सृजन की प्रक्रिया का भी समावेश है। इसके अंतर्गत अनुभूति, विचार एवं कल्पना सभी आ जाते हैं। यहाँ प्रकृति को जीवन की समग्रता में देखना चाहिए अर्थात् जीवन के बाह्य एवं अंतर दोनों पक्ष अनुकरण के विषय बन सकते हैं। इस प्रकार अनुकरण के तीन पक्ष संभव हैं—जैसा वह है, जैसा वह कहा जा सकता है और जैसा उसे होना चाहिए। उसने वस्तु के प्रत्यक्ष रूप की अपेक्षा उसके भावात्मक एवं कल्पनात्मक रूप को ही अधिक ग्राह्य माना है। चूँकि अनुकरण में कवि के आत्मतत्त्व का प्रकाशन होता है, अतः उसमें आनन्द के भी बीज वर्तमान हैं। इस प्रकार अरस्तू द्वारा प्रयुक्त 'अनुकरण' शब्द केवल नकल का ही द्योतक नहीं, अपितु उसमें पुनः सृजन, भावतत्त्व एवं कल्पनातत्त्व का समुचित एवं सर्जना तथा सर्जना के आनन्द का रसायनिक सम्मिश्रण है। (डॉ. नगेन्द्र, अरस्तू का काव्यशास्त्र, पृ. 11-12)

कला प्रकृति में नया भाव भर कर उसके स्वरूप की वृद्धि करती है और उसके उस रिक्त तत्त्व को पूर्ण कर देती है जिसका उसमें अभाव होता है। इस प्रकार अरस्तू का अनुकरण शब्द मानवीय कार्य, भावना एवं चरित्र तक सीमित है और उससे यह अर्थ द्योतित होता है कि काव्यात्मक अनुकरण मनुष्य की आंतरिक क्रिया की अनुकृति है। (Literary criticism A short History, pge 27-28) कविता मूल का (प्रकृति का) अनुकरण कर उसमें नवीन बिम्बविधान का सन्निवेश करती है। कलाकृति को प्रभावों की मूर्ति या दिवास्वप्न का चित्र कहा जा सकता है जो स्वतंत्र रूप से वास्तवजगत् के द्वारा कलाकार के मस्तिष्क में बनता है और उस वास्तविकता में मानव-जीवन एवं मानव-चरित्र के तथ्य प्रतिबिम्बित होते हैं।

अरस्तू की मान्यताएँ बड़ी सूक्ष्म हैं। उसने बतलाया कि समाज में ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जिनकी शारीरिक कुरूपताओं को देखकर हँसना असंभव हो जाए और उस व्यक्ति को अत्यंत क्षोभ हो जाए; अतः श्रेष्ठ कॉमदी में ऐसी बातों का विवरण नहीं होना चाहिए। अरस्तू का यह विवेचन प्रमाणित करता है कि कॉमदी का रूप निर्धारित करते समय उसके मन में 'व्यक्तिगत व्यंग्य' की कॉमदी का ध्यान नहीं था बल्कि उसने मनुष्य की स्थायी दुर्बलताओं एवं अपूर्णताओं पर अधिक बल दिया था। इसलिए उसने सम-सामयिक एवं प्राचीन कॉमदियों की भर्सना की थी क्योंकि उनमें व्यक्तिगत रागद्वेष एवं मनमुटाव का प्रसार होता था।

जहाँ तक वस्तुसंगठन में स्वाभाविकता एवं सामंजस्य का प्रश्न है, उसने त्रासदी की भाँति कॉमदी में भी उन नियमों को लागू किया। इसी प्रकार चरित्र-चित्रण एवं प्रभाव के संबंध में भी वह त्रासदी के ही नियमों का अनुमोदन करता है। एटकिन्स ने विरेचन-सिद्धांत (कैथार्सिल) को भी कॉमदी में घटित किया है। जिस प्रकार त्रासदी के प्रदर्शन से मन के भय एवं करुणा की भावना का परिमार्जन होता है, उसी प्रकार कॉमदी भी द्वेष, ईर्ष्या एवं क्रोध आदि भावों का परिमार्जन कर उसे उतनी ही मात्रा में मनुष्य के मन में रखती है जिससे मानव-चरित्र सफल हो सके। अरस्तू के अनुसार आनन्द केवल मनोरंजन में नहीं अपितु बौद्धिक कार्यों में भी निहित है। इसीलिए प्लेटो तथा अरस्तू दोनों ने ही 'हास्य' को 'राजनैतिक खतरा' का भाव कहा है। प्लेटो अपने 'रिपब्लिक' एवं 'लॉज' में हास्यास्पद अनुकरण को खतरनाक संक्रामक रोग कहता है। उसके अनुसार कॉमदी के रंगमंच पर केवल दासों एवं किराये पर लिए गए व्यक्तियों को प्रस्तुत करना चाहिए। अरस्तू के नवीन व्याख्याता श्री एल. जे. पॉट्स के विचार ध्यातव्य हैं जिसे उन्होंने अपने ग्रंथ कॉमेडी (पृ.46, 47) में व्यक्त किया है। यह कहा जा सकता है कि त्रासदी में जहाँ विलक्षणता, किंतु स्वाभाविकता का वर्णन होता है, वहाँ कॉमदी में असामान्य एवं अविलक्षण का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। कॉमदी के पात्रों की असामान्यता निरपेक्ष नहीं होती।

कॉमदी का इतिहास प्रस्तुत करते हुए अरस्तू ने कहा है कि त्रासदी का जन्म डाइयोनिसिया के संस्कार के रौद्रस्तोत्रों से हुआ है एवं कॉमदी की उत्पत्ति कमोई गाँव के लीडरों के फेलिक गानों से हुई है। व्यक्तिगत व्यंग्य लिखने की अपेक्षा होमर ने हास्यास्पद बातों को नाटक का रूप दिया और पहले-पहल कॉमदी की

मुख्य वातों को प्रदर्शित किया। अरस्तू के अनुसार प्राचीन एवं नवीन कॉमदियों में भाषा की कुरूपता ही मनोरंजन का कारण बनती है।

महाकाव्य– अरस्तू ने सभी काव्य-भेदों में त्रासदी का अधिक विस्तृत विवेचन किया है। महाकाव्य पर उसका विचार संक्षिप्त है, फिर भी उसके संबंध में जो कुछ भी कहा गया है उससे उसके स्वरूप पर पूर्णत: प्रकाश पड़ता है। उसने स्वयं महाकाव्य की कोई परिभाषा नहीं निर्मित की, फिर भी उसके जिन तत्त्वों का वर्णन किया है उससे उसकी परिभाषा बनाई जा सकती है। "जहाँ तक ऐसी काव्यानुकृति का प्रश्न है जिसका रूप समाख्यानात्मक हो और जिसमें एक छन्द का प्रयोग किया गया हो, यह स्पष्ट है कि उसके कथानक का निर्माण त्रासदी की तरह नाट्य सिद्धांतों के अनुसार ही होना चाहिए। उसका आधार आदि, मध्य, अवसानयुक्त एक समग्र एवं पूर्ण कार्य होना चाहिए। इस तरह अपनी अन्विति में यह काव्यरूप एक जीवंत प्राणी-सा प्रतीत होगा और अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त करेगा। संगठन के वह ऐतिहासिक रचनाओं से भिन्न होगा क्योंकि वे एक कार्य का नहीं वरन् एक कालखण्ड को और उस काल-खण्ड में एक या अनेक व्यक्तियों से संबंधित सभी घटनाओं को, हमारे सम्मुख उपस्थित करती हैं — चाहे ये घटनाएँ परस्पर संबद्ध ही क्यों न हों।" (डॉ. नगेन्द्र, काव्यशास्त्र, पृ. 61)

आगे चल कर उसने त्रासदी एवं महाकाव्य की तुलना करते हुए उसके स्वरूप पर प्रकाश डाला है। "इसके अतिरिक्त महाकाव्य के भी उतने ही प्रकार होने चाहिए और हैं जितने त्रासदी के — अर्थात् सरल, जटिल, नैतिक और करुण। गीत एवं दृश्य-विधान के अतिरिक्त दोनों के अंग भी समान ही हैं; क्योंकि इसमें भी स्थिति-विपर्यय अभिज्ञान एवं यातना के दृश्य आवश्यक होते हैं। साथ ही विचार-तत्त्व एवं पदावली भी कलात्मक होनी चाहिए।" "महाकाव्य और त्रासदी में यह समानता है कि उसमें भी उच्चतर कोटि के पात्रों की पद्यबंध अनुकृति होती है।" (काव्यशास्त्र-पृ. 61)

उपर्युक्त उद्धरणों में निम्नांकित तथ्यों पर विचार किया गया है —

क– महाकाव्य का स्वरूप समाख्यानात्मक या नैरेटिव होता है।

ख– इसमें उच्चतर कोटि के चरित्र वर्णित होते हैं।

ग– महाकाव्य काव्यानुकृति का एक प्रकार है।

घ– इसका आकार विस्तृत होता है।

ङ– इसमें एक ही छन्द प्रयुक्त होता है।

च– इसके वस्तु-संघटन में घनत्व तथा गरिमा होती है।

छ– इसका आधार मुख्यत: नाटकीय होता है; क्योंकि इसके कथानक का निर्माण त्रासदी की तरह नाट्य-सिद्धांतों के आधार पर होना चाहिए।

इस प्रकार महाकाव्य के चार मुख्य तत्त्व हुए – कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, विचार-तत्त्व, पदावली या भाषा।

कथावस्तु – अरस्तू ने महाकाव्य के तत्त्व पर विचार करते हुए त्रासदी एवं महाकाव्य के स्वाभाविक संबंध पर ध्यान रखा है। उसने उनकी रचनाशैली की भिन्नता पर सदा ध्यान रखा कि महाकाव्य की शैली वर्णनात्मक है और त्रासदी की अभिनयात्मक।

महाकाव्य की कथावस्तु नाटक के ही समान होनी चाहिए और उसे एक ही कार्य पर आधृत होना चाहिए, जो अपने में पूर्ण हो। आकार की विपुलता एवं घटनाओं की बहुलता के होते हुए भी इसमें प्रारंभ, मध्य एवं अंत का आधार होना चाहिए जिससे कार्य की अपने में पूर्णता एवं सामंजस्य दिखाई पड़े। महाकाव्यकार जीवन की असम्बद्ध घटनाओं का त्याग कर सम्बद्ध घटनाओं को ही ग्रहण करे। सफल महाकाव्य में अनेक घटनाओं का नियोजन कर कवि उसमें रोचकता लाने का प्रयास करे जिससे कथा में अनेकता में एकत्व का समावेश हो। अत:, महाकाव्य की कथावस्तु का प्रधान तत्त्व है विविधता एवं व्यापकता के साथ एकान्वितिका योग। अनेक कार्यों से युक्त महाकाव्य सफल नहीं हो सकता।

महाकाव्य की कथावस्तु का आधार जातीय दंत कथाएँ होती हैं। वह न तो शुद्ध ऐतिहासिक है और न नितांत काल्पनिक। इसका आयाम त्रासदी से अधिक विस्तृत होता है। त्रासदी की भाँति महाकाव्य की कथावस्तु दो प्रकार की होनी चाहिए – सरल और जटिल। इन दोनों में से किसी एक को ही महाकाव्य में स्थान मिलना चाहिए। इसमें त्रासदी की तरह भाग्य-परिवर्तन की घटना एवं यातना तथा दु:खानुभव की घटनाओं का वर्णन हो, किंतु गीत एवं दृश्य-विधान का समावेश न किया जाए। होमर कृत 'इलियड' एवं 'ओडसी' में ही सर्वप्रथम महाकाव्य के पूर्वोक्त तत्त्वों का समावेश किया गया था। 'इलियड' में सरल कथा एवं यातना की कहानी है, किंतु 'ओडसी' की कथा जटिल है और उसमें एक चरित्र की कहानी है।

त्रासदी एवं महाकाव्य में कई दृष्टियों से भेद भी दिखाई पड़ता है और यह भेद मुख्यतः छन्द एवं विस्तार के कारण हैं। जहाँ तक विस्तार का प्रश्न है वह महाकाव्य के विस्तृत आधारफलक के कारण मान्य है, किंतु त्रासदी में उतनी ही घटना का वर्णन होना चाहिए जिससे दर्शकों का मन न ऊबे। और उन्हें सारी कथा याद रह सके। नाटक में ऐसे दृश्य का नियोजन नहीं हो सकता या एक कार्य की कई स्थितियों का एक ही साथ वर्णन नहीं हो सकता, इसकी सीमा दर्शकों के कारण निर्धारित होती है। साथ ही रंगमंच एवं अभिनेताओं की प्रकृति को ध्यान में रखकर उस पर विचार किया जाता है। त्रासदी में अप्राकृतिक घटनाओं की योजना संभव नहीं है जबकि महाकाव्य की विस्तृत सीमा में उनके लिए भी पर्याप्त स्थान है। महाकाव्य में कुतूहल के लिए भी अधिक अवकाश है तथा कथानक के कौतूहल-वर्द्धक सभी अंगों का समावेश हो जाता है, वे हैं — स्थिति विपर्यय, अभिज्ञान, संवृत्ति और विवृत्ति। महाकाव्य में त्रासदी के वस्तु संघटन के गुण विद्यमान रहते हैं — पूर्वापरक्रम, सम्भाव्यता तथा कुतूहल। सम्भाव्यता की सीमा त्रासदी की अपेक्षा महाकाव्य में अधिक होती है; क्योंकि इसका विस्तार अधिक होता है और उन्हें रंगमंच पर प्रदर्शित करने की कठिनाई का प्रश्न नहीं उठता। महाकाव्य की वर्णनात्मक शैली बहुत-सी घटनाओं को, जो एक साथ घटित होती है, प्रस्तुत करने में समर्थ होती हैं। यदि एक ही साथ घटित होने वाली घटनाओं का संबंध कथा से हुआ तो वे महाकाव्य की सौंदर्य-वृद्धि में बहुत सहायक होती हैं। इससे महाकाव्य में भव्यता आती है एवं रुचि-वैभिन्न का प्रदर्शन होता है। घटनाओं की संक्षिप्तता एवं एकान्वित त्रासदी के लिए अत्यंत आवश्यक है। जहाँ तक छन्द का प्रश्न है महाकावय में 'हिरोइक' छन्द का प्रयोग होना चाहिए।

महाकाव्य में असंभव घटनाओं का वर्णन हो, पर यथासंभव उसको इसका मुख्य आधार नहीं बनाया जाए। अविश्वसनीए सम्भाव्यता की अपेक्षा संभाव्य असंभव का वर्णन कहीं अच्छा होता हैं। महाकाव्य के कथानक की गति में जहाँ तींव्रता न हो वहाँ विस्तृत वाक्यविन्यास या शब्द-विन्यास का समावेश होना चाहिए। इसी प्रकार यह कार्य वहाँ भी अपेक्षित होता है जहाँ चरित्र एवं विचार प्रदर्शन की गुंजाइश नहीं रहती; किंतु जहाँ चरित्र और विचार का वर्णन हो वहाँ भाषा की अलंकृति महाकाव्य की सहजता में बाधक होती है।

महाकाव्य की कथावस्तु तीन प्रकार से प्रस्तुत हो या वस्तुओं का अंकन तीन प्रकार से किया जाए। जैसी कि वे थीं; जैसी कि वे कही गईं हैं या सोची गईं हैं तथा जैसी कि उन्हें होना चाहिए। इन सारी घटनाओं का वर्णन सरल या अलंकृत शैली में या दोनों के मिश्रित रूप में होना चाहिए। महाकाव्य में राजनीति या दर्शन की तरह शुद्ध तथ्य की प्रस्तुति आवश्यक नहीं है, उसमें आवश्यक है कलात्मकता। यदि कवि किसी वस्तु या तथ्य का ठीक-ठीक वर्णन करना चाहता है, किंतु उसकी अभिव्यंजना शक्ति कमजोर है तो उसकी कला दोषपूर्ण मानी जाएगी। इस तथ्य के होते हुए भी महाकाव्यों में असंभव घटना एवं तथ्यों की चर्चा कला को दोषपूर्ण बनाती है, यदि उनसे (घटनाओं एवं तथ्यों से) महाकाव्य के उद्देश्य की सिद्धि होती हो या वे उसके कुछ भाग को भव्य बना सकने में समर्थ हों तो ऐसी बात अपवाद मानी जाएगी।

वर्णन-शैली—महाकाव्य की शैली समाख्यानात्मक होती है। कथा-वर्णन की इसकी दो शैलियाँ हैं—परोक्ष समाख्यान शैली एवं प्रत्यक्ष नाटकीय शैली। इनमें प्रथम का सामान्य रूप से एवं द्वितीय का विशेष रूप से प्रयोग होता है। जब कवि कथा का अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं वर्णन करता है तो वह पहले प्रकार की शैली होती हैं और द्वितीय प्रकार की शैली में कवि किसी पात्र को मंच पर लाकर वर्णन कराता है। अरस्तू ने प्रत्यक्ष नाटकीय शैली को महाकाव्य के लिए अधिक रोचक एवं उपयुक्त माना है।

उसने कहा है कि महाकाव्य और त्रासदी के प्रयोजन और प्रभाव समान हैं। त्रासदी का प्रयोजन होता है मनोवेगों का विरेचन और प्रभाव है उससे उत्पन्न मन की शांति। पर महाकाव्य की विरेचन प्रक्रिया त्रासदी की अपेक्षा कम सफल होती है।

पात्र— महाकाव्य में त्रासदी के समान उच्चतर कोटि के पात्रों की पद्यबद्ध अनुकृति रहती है। इसके पात्र भद्र, कुलीन, यशस्वी, वैभवशाली एवं सहजमानवीय गुणों से युक्त हों।

छन्द— महाकाव्य के छन्दः प्रयोग के संबंध में अरस्तू की धारणा है कि इसमें हेक्टामीटर या छपदांश के छन्दों का प्रयोग हो। इस छन्द के प्रयोग से महाकाव्य की विशालता एवं उसके भावों की भव्यता में विशेष सहायता मिलती है। इसमें अपरिचित शब्दावली तथा उपमा-रूपक का सुगमतापूर्वक प्रयोग हो सकता है। महाकाव्य की समाख्यानात्मकता की रक्षा के निमित्त ही अरस्तू उसके आदि से

अंत तक एक ही छन्द के प्रयोग की राय देता है जिससे कथा की अविच्छिन्न धारा अक्षुण्ण रह सके।

शैली— महाकाव्य की शैली के संबंध में अरस्तू का कहना है कि "पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह प्रसन्न हो, किंतु क्षुद्र न हो।" उसने शैली के गुण माने हैं—गरिमा एवं प्रासादिकता। गरिमा का आधार असामान्यता है। जिस शैली में असामान्य शब्दों का प्रयोग होता है उसे उदात्त या असाधारण शैली कहते हैं। महाकाव्य में शब्दों के सभी भेदों—प्रचलित, अप्रचलित, लाक्षणिक, आलंकारिक, नवनिर्मित, संकुचित या परिवर्तित का प्रयोग वांछनीय है। (दे. अरस्तू का काव्यशास्त्र, भूमिका, पृ.135)

त्रासदी— त्रासदी की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए अरस्तू ने कहा "त्रासदी किसी गंभीर स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है, जो समाख्यान रूप में न होकर कार्य-व्यापार रूप में होती है और जिसमें करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।" (काव्यशास्त्र, पृ.19) इस परिभाषा में निम्नांकित तथ्यों पर विचार किया गया है—

क— त्रासदी कार्य के अनुकरण को कहते हैं। अतः त्रासदी नाटक का एक ऐसा प्रकार है जिसमें कार्य की अनुकृति होती है। यहाँ कार्य का अभिप्राय बाह्य कार्यकलाप तथा आंतर चारित्रिक संघर्ष से है।

ख— यह कार्य गंभीर (महत्त्वपूर्ण), स्वतःपूर्ण तथा निश्चित विस्तार वाला होता है। महत्त्वपूर्ण से अभिप्राय ऐसे कार्य से है जो त्रासदी के अनुकूल होकर उसके सामूहिक प्रभाव को और भी अधिक प्रभावशाली बनाने वाला हो।

ग— यह कार्य समाख्यानात्मक या वर्णनात्मक नहीं होता, इसका प्रदर्शन या अभिनय किया जाता है। इसकी शैली संवादात्मक या नाटकीय होती है।

[illegible]— त्रासदी की भाषा अलंकृत तथा छन्द-लय, गीत आदि से युक्त होती है। चूँकि इसमें जीवन के गंभीर पक्ष का चित्रण होता है, फलतः इसकी भाषा कलात्मक और शैली भावपूर्ण होती है।

[illegible]— त्रासदी का लक्ष्य करुणा तथा त्रास उद्रेक कर मनोविकारों का विरेचन या प्रक्षालन करना होता है।

अरस्तू ने त्रासदी के छह तत्त्वों का निरूपण किया है—कथानक (Fable), चरित्र-चित्रण (Manners), पद-रचना (Diction), विचारतत्त्व (Sentiments), गीत (music) तथा दृश्यविधान (decorum)।

कथावस्तु— घटनाओं के विन्यास को कथावस्तु कहते हैं। अरस्तू ने घटना-योजना या कथावस्तु को त्रासदी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना है। इसके लिए उसने अनेक कारण दिए हैं—

1. त्रासदी व्यक्ति के जीवन और कार्य की अनुकृति है, यह मात्र व्यक्ति की अनुकृति नहीं है।
2. जीवन का अभिप्राय कार्य-व्यापार से है, अतः जीवन के अनुकरण में कार्य-व्यापार का प्रामुख्य होता है।
3. दुःख या सुख में ही काव्यगत प्रभाव का स्वरूप निहित है जो कार्यों पर आश्रित रहता है; फलतः कार्य का घटनाएँ ही त्रासदी के प्रतिपाद्य हैं।
4. कथानक या कार्य-व्यापार के साथ चरित्र स्वतः आ जाता है।
5. कथानक या कार्य-व्यापार के अभाव में त्रासदी हो ही नहीं सकती, किंतु चरित्र-चित्रण के बिना हो सकती है।
6. कथानक एवं घटनाओं के कलात्मक संघटन से जितना प्रभाव उत्पन्न होता हैं, उतना चारित्रिक व्यंजक भाषण, विचार तथा पदावली से उत्पन्न नहीं होता।
7. त्रासदी के सर्वाधिक आकर्षक तत्त्व स्थिति विपर्यय और अभिज्ञान हैं, जो कथानक के अंग होते हैं।

नवोदित लेखक जितनी शीघ्रता के साथ चरित्र-चित्रण एवं पदावली में सफलता प्राप्त करते हैं, उतनी सफलता उन्हें कथानक के सफल निर्वाह में नहीं प्राप्त होती।

इस प्रकार अरस्तू का प्रबल आग्रह कथानक के प्रति प्रदर्शित होता है। उसने कथानक के चार आधारों की चर्चा की है—दन्त कथामूलक, कल्पनामूलक, इतिहास मूलक तथा मिश्रित या अर्द्ध इतिहासमूलक। उसके अनुसार कथा वस्तु के मूल गुण हैं—एकान्विति, पूर्णता, सम्भाव्यता, सहज विकास एवं कुतूहल। उसने कथानक के दो भेद किए हैं— सरलता कथानक एवं जटिल कथानक। सरल कथानक में

कार्य एक होता है और यह अकेले ही चरम घटना की ओर अग्रसर होता है। उसकी परिणति में स्थिति-विपर्यय तथा अभिज्ञान (Discovery) की आवश्यकता नहीं पड़ती। जटिल कथानक का विकास सीधा न होकर स्थिति-विपर्यय एवं अभिज्ञान के साथ होता है। यह इकहरा न होकर दुहरा होता है और इसमें जोड़ तथा मोड़ होते हैं। त्रासदी के कथानक के संगठन के चार अंग हैं—प्रस्तावना (Prologue) उपाख्यान (Episode), उपसंहार (Exode) तथा वृन्दगान (chorus)। वृन्दगान के तीन प्रकार हैं—पूर्वगान (गायक वृन्द द्वारा प्रथम उच्चार), उत्तरगान तथा सम्मिलितगान। त्रासदी का उद्देश्य है मन: प्रक्षालन जिसका निरूपण अरस्तू ने विरेचन-सिद्धांत द्वारा किया है।

विरेचन-सिद्धांत का अरस्तू ने विशेष विवरण प्रस्तुत न कर 'काव्यशास्त्र' एवं 'राजनीति' नामक ग्रंथों में इसका संकेत किया है। 'राजनीति' में संगीत के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा गया है कि संगीत का अध्ययन अनेक उद्देश्य की सिद्धि के लिए करना चाहिए—शिक्षा के निमित्त, विरेचन या शुद्धि के लिए तथा बौद्धिक आनन्द की उपलब्धि के लिए। विरेचन के लिए अरस्तू ने कैथार्सिस शब्द का प्रयोग किया है जिसे अँग्रेजी में Purgation कहते हैं। विरेचन में 'अतिशय उत्तेजना द्वारा मनोवेगों का शमन तथा 'तज्जन्य मन:शांति' का वर्णन होता है। उसने त्रासदी के आस्वाद के तीन तत्त्व स्वीकार किए हैं—'उद्वेग के शमन से उत्पन्न मन:शांति', 'भावों के परिष्कार की अनुभूति' तथा 'कलाजन्य चमत्कार'। (काव्यशास्त्र, भूमिका, पृ.102)

चरित्र-चित्रण—कथानक के पश्चात चरित्र-चित्रण त्रासदी का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। चरित्र-चित्रण-संबंधी उसने छह आधार भूत सिद्धांतों का उल्लेख किया है—भद्रता को उसने चरित्र का मूलाधार माना है। यह भद्रता प्रत्येक वर्ग के लिए अर्थात स्त्री और दास के लिए भी आवश्यक है। त्रासदी में भद्र पात्रों का वर्णन इसलिए किया जाता है, जिससे उनकी विपत्ति हमारे मन में सहानुभूति का भाव जगा सके। यदि त्रासदी के मुख्य पात्र भद्र न हों तो उनकी विपत्ति दर्शकों के मन सहानुभूति का उदय नहीं कर सकती। चरित्र में औचित्य का होना आवश्यक। किसी पात्र के चरित्र-चित्रण में लेखक को उसकी प्रकृति, जाति या वर्गगत शिष्ट्य पर ध्यान देना चाहिए। त्रासदी के चरित्र जीवन के अनुरूप हों अर्थात त्रों का चित्रण उनके वास्तविक जीवन या तत्संबंधी परंपराओं के अनुरूप हो। के चरित्र में असंगति न होकर एकरूपता रहे। अरस्तू ने चरित्र-चित्रण में

एकरूपता के निर्बाह पर बल दिया है अर्थात प्रारंभ से अंत तक किसी पात्र में एक ही प्रकृति कार्य करती हुई दिखाई पड़े। चरित्र-चित्रण में कवि अश्वयम्भावी या सम्भाव्य को अपना लक्ष्य बनाए। अंतिम सिद्धांत के अनुसार चरित्र-चित्रण में आदर्श और यथार्थ के कलात्मक समन्वय पर विचार किया गया है। मुख्यतः चरित्र-चित्रण यथावत् हो, पर उसमें कवि भावना और कल्पना का समावेश कर ऐसा रूप प्रस्तुत करे जो मन में आकर्षण उत्पन्न कर सके।

त्रासदी का नायक—त्रासदी का नायक खल पात्र न हो; क्योंकि ख़ल पात्र के पतन से दर्शकों या पाठकों के मन में त्रास या करुणा की भावना उदित नहीं हो सकती। उसे सर्वथा निर्द्दोष तथा नितांत सज्जन भी नहीं होना चाहिए; क्योंकि इस प्रकार के व्यक्ति के पतन से न्याय-भावना के कारण करुणा और त्रास को आघात पहुँचता है। किसी सत्पात्र का समृद्धि से विपत्ति में पतन न दिखाया जाय; क्योंकि इससे न तो करुणा उद्‌बुद्ध होगी और न भय। नायक अत्यधिक विख्यात, वैभवशाली और कुलीन हो। वह सज्जन होते हुए भी मानवीय दुर्बलताओं से युक्त रहे। उसमें भूल करने की ऐसी प्रवृत्ति हो जिसके कारण उसे दुर्भाग्य का सामना करना पड़े। नायक की विपत्ति के कारणों में दैवी प्रकोप या दुर्भाग्य, चारित्रिक दुर्गुण या पाप, स्वभावदोष, अज्ञान तथा निर्णय-संबंधी भूल हैं। इन्हीं के परिणाम-स्वरूप वह विपत्तियों में पड़ता है।

विचार-तत्त्व—त्रासदी के आधारभूत तत्त्वों में तीसरा स्थान विचार-तत्त्व का है। प्रस्तुत परिस्थिति में नाटकीय पात्रों के जो भाषण-सम्भाषण होते हैं उनके द्वारा संभव और संगत विचारों के प्रतिपादन को विचार-तत्त्व कहा गया है। अरस्तू के शब्दों में "विचार वहाँ विद्यमान रहता है जहाँ किसी वस्तु का भाव या अभाव सिद्ध किया जाता है, या किसी सामान्य सत्य की व्यंजक सूक्ति का आख्यान होता है।" (काव्यशास्त्र, पृ.22) अरस्तू ने विचार-तत्त्व से व्यापक अर्थ लिया जिसकी परिधि में बुद्धितत्त्व का प्राधान्य और भाव-तत्त्व का अंतर्भाव हो जाता है। वह दो रूपों में दिखाई पड़ता है—वस्तुगत एवं आत्मगत। वस्तुगत रूप के अंतर्गत लेखक पात्रों द्वारा उनके मन्तव्य का प्रतिपादन करता है। विचार-तत्त्व में नाटककार तथा पात्रों के विचार सन्निहित रहते हैं। आत्मगत रूप के अंतर्गत लेखक स्वकीय विचारों का प्रतिपादन नाटक या उसके सभी अंगों-कथा-विधान, चरित्र-चित्रण, विचार-प्रतिपादन, भावाभिव्यक्ति, दृश्ययोजना द्वारा करता है।

भाषा या पदावली— शब्दों द्वारा अर्थों की अभिव्यक्ति को अरस्तू ने भाषा या पदावली की संज्ञा दी है, जिसे शब्दार्थ कह सकते हैं। त्रासदी के लिए उसने अलंकृत भाषा को उपयुक्त माना है। "अलंकृत भाषा से मेरा तात्पर्य उस भाषा से है जिसमें लय, सामंजस्य और गीत का समावेश हो।" त्रासदी की भाषा गरिमापूर्ण, अलंकृत, औचित्यपूर्ण तथा सहज होनी चाहिए तथा उसमें वणर्य विषय एवं भव्य उद्देश्य के अनुरूप भव्यत्ता हो।

संगीत— अरस्तू ने संगीत को त्रासदी के अलंकरण के साधनों में स्वीकार किया है। संगीत का प्रयोग स्वाभाविक होना चाहिए और वह ऊपर से थोपा हुआ प्रतीत न हो। उसे सम्पूर्ण नाटक का अंग होना चाहिए।

दृश्य विधान— रंगमंचीय व्यवस्था, पात्रों की वेशभूषा तथा मंच-शिल्पी के विविध कौशल को दृश्य-विधान के अंतर्गत रखा गया है। यह त्रासदी का सबसे गौण तत्त्व है। इसे नाटक का बाह्य साधन कहते हैं; क्योंकि यह बाह्य इन्द्रियों के आकर्षण का ही केंद्र होता है। इसका संबंध कवि से कम और मंच-शिल्प से अधिक होता है; फलत: यह काव्यकला से सम्बद्ध न होकर नाटक के आकर्षण का कारण है।

अरस्तू का योगदान— अरस्तू पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र को व्यवस्थित करनेवाला आद्याचार्य है, जिसने प्लेटो द्वारा प्रस्तुत काव्य के नैतिक मानदण्ड का खण्डन कर उसके कलागत मूल्यों की प्रतिष्ठा की तथा कविता को राजनैतिक और धार्मिक दासता से मुक्त कर उसे विशुद्ध-सौंदर्यवादी दृष्टि दी। अरस्तू ने प्लेटो के 'अनुकृति-सिद्धांत' को व्यापक आधार प्रदान किया और कविता को प्रकृति की प्रतिलिपि न मानकर उसे जीवन की पुन: सर्जना कहा। इस प्रकार का विचार कला को नवीन गरिमा प्रदान कर महिमामण्डित करनेवाला है। उसने सिद्ध किया कि कला प्रकृति की अनुकृति-मात्र न होकर उसका पूरक भी है। उसने प्लेटो के इस अभियोग का निराकरण किया जिसके अनुसार कला मानवीय संवेगों को उत्तेजित एवं दूषित कर हमारे चारित्रिक स्खलन का कारण बनती है और समाज के लिए हानिप्रद सिद्ध होती है। उसने इस मत की भ्रांति का सयुक्तिक खण्डन कर सिद्ध किया कि काव्य का प्रभाव परितोषकारी, आनन्दात्मक एवं आह्लादक होता है। उसने त्रासदी, महाकाव्य और कॉमदी का वैज्ञानिक रूप उपस्थित किया और तद्विषयक अनेक तत्त्वों का प्रतिपादन किया, जो शाश्वत एवं कालजयी हैं।

अरस्तू ने 'विरेचन-सिद्धांत' की अवतारणा कर कला-विवेचन के क्षेत्र में युगांतर उपस्थित किया, जिसके अनुसार कवि करुणा एवं भय का वर्णन कर हमारे संवेगों का शुद्धिकरण करता है। दुःखोद्रेचक दृश्यों को देख कर दर्शकों के मन में आनन्दानुभूति होती है, न कि करुणा का संचार होता हैं। वस्तुतः 'विरेचन-सिद्धांत' काव्यशास्त्र की स्थायी उपलब्धि है, जिसने करुणरस को आनन्दोपलब्धि का साधन सिद्ध किया। उसने काव्योद्देश्य के निरूपण में कलात्मकता को ही प्रमुखता दी और उसके नैतिक लक्ष्य को गौण सिद्ध किया। कला-विवेचन में अरस्तू ने शिवत्त्व को गौण कर सुंदर की परिधि विस्तृत कर दी और यूरोपीय आलोचना के इतिहास में कला के मौलिक तत्त्वों का अनुसंधान किया। उसकी महनीय उपलब्धियों को देखकर उसकी तुलना किसी भी पाश्चात्य आलोचक से नहीं की जा सकती। उसका 'काव्य-शास्त्र' सहसाधिक वर्षों तक आकर ग्रंथ के रूप में मान्य हुआ। अरस्तू के सिद्धांतों की सर्वाधिक विशेपता उनकी व्यावहारिकता है। यद्यपि उसकी स्थापनाओं की आलोचनाएँ भी हुई हैं। और उनमें दोपों का भी अनुसंधान हुआ है, तथापि 'काव्यशास्त्र' की महत्ता पर इससे आँच नहीं आती। उसकी अपनी सीमाएँ हो सकती हैं, किंतु यह भी सत्य है कि अरस्तू की कृति विश्वसमीक्षा की निधि है।

Art (आर्ट) कला

कला शब्द अँग्रेजी आर्ट (शब्द) का अनुवाद है। स्वयं आर्ट शब्द लैटिन शब्द आर्स (Ars) से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है शिल्प या विशिष्ट प्रकार की दक्षता। प्राचीन रोम के लोग कला को शिल्पों का एक समूह-मात्र मानते थे। आज हम 'कला' शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग करते हैं, वह उत्पत्ति में बहुत अर्वाचीन हैं। ग्रीक में इसके लिए तक्ने (techne) शब्द प्रचलित था। कला का संबंध मानव-संस्कृति से है। मनुष्य में सौंदर्यबोध की प्रवृत्ति प्रारंभ से ही रही है, उसीका विकसित या मूर्तरूप कला है। मनुष्य की सौंदर्याभिरुचि का प्रमाण कला है अर्थात कला मनुष्य की सौंदर्य-मूलक प्रेरणा से सम्बद्ध है। जब कलाकार या मनुष्य जीवन या जीव जीवनानु-भूतियों के विशिष्ट क्षणों को अभिव्यक्त करना चाहता है, तभी कला का जन्म होता है। अनुकृति और अभिव्यक्ति मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्तियाँ हैं। प्रकृति के सौंदर्य को देखकर उस पर मुग्ध होना और उसे कला के माध्यम से व्यक्त करना मनुष्य की सहजात प्रवृत्ति रही है। कलाकार कला के माध्यम से नए जीवन क्षणों को प्रतीकबद्ध रूप में प्रस्तुत कर मानवीय अस्तित्व को समृद्ध

करता है। कला मनुष्य की महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक प्रक्रिया का नाम है जिसके माध्यम से वह अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करता है। "कला जीवन और विश्व के उन पक्षों को अभिव्यक्ति देती है जिनका मानव जाति के लिए आवेगात्मक मूल्य है।" (संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ. 215) कला को आत्मबोध और जगद् बोध दोनों कहा जा सकता है; क्योंकि वह मनुष्य की आत्म चेतना के साथ-ही-साथ विश्वचेतना की भी वाहिका है। "एक सचेत जीवन-क्षण को प्रस्तुत करती हुई कला उस क्षण को स्वयं हमारे जीवन-स्पंदन का भाग बना देती है, और इस प्रकार हमारी सचेत अनुभूति के प्रसार या समृद्धि का कारण बन जाती है।" डॉ. देवराज के अनुसार कला आवेगात्मक अनुभूति की संभावनाओं की चेतना और उपभोग है अथवा उन क्रियाओं को समाज-ग्राह्य प्रतीकों में प्रकट करने का प्रयत्न है। (संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ. 217)

कला का जीवन और समाज से निकट का संबंध है। मानव सभ्यता का आधार सुख पाने की अभिलाषा है और कला कार्य करने की वह शैली है जिसमें सुख की अनुभूति या आनन्दोपलब्धि होती है। जब हम कला शब्द का उच्चारण करते हैं तो हमारा उद्देश्य ललित कलाओं स्थापत्य, संगीत, चित्र, नृत्य तथा काव्यकला से होता है। इन कलाओं के द्वारा मनुष्य अपनी जीवनानुभूतियों या भावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। कला व्यक्ति और समाज में एकता लाती है, इसके द्वारा मनुष्य की मानसिक शक्ति का विकास होता है। कला के माध्यम से मनुष्य अपने समय के सामाजिक जीवन को अभिव्यक्ति करता है। कला मानवीय सृष्टि है, मनुष्य का कार्य है, उसकी शक्ति है तथा मनुष्य की आत्मा की वाणी है। समाज और मनुष्य से पृथक् होकर कला की कल्पना नहीं की जा सकती। कलाकार प्रतिभा-सम्पन्न प्राणी होता है, वह सामान्य मानव से परे होकर कला-सृष्टि करता है। वस्तुतः कला में प्रवीणता प्राप्त करना एक ईश्वरीय वरदान है। कला एक प्रकार की साधना है जिससे कलाकार जीवन भर संपृक्त रहता है। कला की उन्नति और अवनति पर किसी भी देश का उत्थान-पतन निर्भर करता है। कला किसी भी जाति को ऊँचा उठाती है और मनुष्य के हृदय में रमणीयता या सौंदर्य का संचार कर उसके व्यक्तित्व का विकास करती है। कलाकार समाज का नेता या पथ-प्रदर्शक होता है। कला का एक मात्र ध्येय है सौंदर्यानुसंधान या सौंदर्यानुभूति। वह मनुष्य में सौंदर्यबोध कराती है, सौंदर्यमयी चेतना का विकास करती है।

पाश्चात्य विद्वानों ने कला के संबंध में अत्यंत सूक्ष्म विचार व्यक्त किए हैं। यहाँ कुछ परिभाषाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं। प्लेटो के अनुसार कला प्रकृति की अनुकृति है। Art is an imitation of nature. उसने अनुकृति होने के कारण काव्य या कला को तात्त्विक वस्तु नहीं माना; क्योंकि वह सत्य से दूर है। प्लेटो की भाँति अरस्तू ने भी कला को अनुकृति माना और काव्य की भाँति संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति तथा वस्तुकलाओं को भी अनुकृति कहा। रस्किन के अनुसार प्रत्येक महान कला ईश्वरीय कृति के प्रति मानव के आह्लाद की अभिव्यक्ति है–All great art is the expression of man's great delight in God's work and not his own. रस्किन ने कला को आनन्द स्वरूप स्वीकार कर प्रकृति के सम्पर्क के कारण मानव-हृदय में उद्भूत आनन्द की अभिव्यक्ति कहा। क्रोचे कला को अखण्ड अभिव्यक्ति मानता है। उसके अनुसार अभिव्यंजना ही सौंदर्य है और सौंदर्य कला का प्राण है।

उनके विचारानुसार कला का विभाजन असंभव है। कला जब मूर्त रूप में उपस्थित होती है तभी वह विभिन्न रूपों में दृष्टिगत होती है। पर, इन रूपों की भिन्नता को तात्त्विक भिन्नता न मानकर बाह्य भिन्नता कहा जा सकता है। वह मूल अभिव्यक्ति को एक मानता है।

तात्त्विक दृष्टि से कला का विभाजन नहीं किया जा सकता; क्योंकि वह एक रस और अखण्ड है। अभिव्यक्ति के बाह्यरूपों के कारण ही कला के भेद किए जा सकते हैं। यूरोपीय विचारकों ने कला के संबंध में नाना प्रकार के विचार नाना भाव के कारण, व्यक्ति किए हैं, उनमें कला के वर्गीकरण का भी प्रश्न जुड़ा हुआ है। कला के स्थूलतः दो विभाग किए गए हैं–ललित कला (fine Art) और उपयोगी कला (gross Art)। जिन कलाओं में लालित्य की मात्रा अधिक होती है अर्थात जिनसे मानव की सौंदर्यानुभूति की परितृप्ति होती है; उन्हें ललितकला कहते हैं। इसमें कल्पना का अधिक समावेश होता है। जो कला हमारे शारीरिक उपयोग की वस्तु होती है, उसे उपयोगी कला कहते हैं। उपयोगी कला में भी कल्पना का समावेश थोड़ी बहुत मात्रा में अवश्य होता है। उदाहरण के लिए बढ़ई-गिरी, लुहारी या बर्तन बनाने की कला आदि। उपयोगी कला में भाव की अभिव्यक्ति गौण होती है और ललित कला में भाव ही अभिव्यक्ति होती है। ललितकला में मानव मन को प्रसन्न करने की मात्रा वस्तुओं की शारीरिक उपयोगिता से अधिक होती है। ललितकला मनुष्य को आनन्द प्रदान करती है,

जबकि उपयोगी कला उसके जीवन के लिए उपयोगी पदार्थों को जुटाती है। उपयोगीकला का आविष्कार और विकास मनुष्य के जीवन-धारण के लिए हुआ है। इसमें उसकी शारीरिक भूख को मिटाने की शक्ति है, किंतु ललित कला मानव के मानसिक विकास का परिचय देती है, उसके द्वारा मनुष्य की मानसिक भावों की परितृप्ति होती है। ललित कला के छः प्रकार हैं—स्थापत्य कला (Architecture), मूर्त्तिकला (Sculpture), चित्रकला (Painting) नृत्यकला (Dancing) संगीत कला (Music) तथा काव्यकला (Poetry), मनुष्य अपनी स्वाभाविक सौंदर्यप्रियता के कारण ललितकला की ओर अधिक आकृष्ट होता है। ललितकलाओं के वर्गीकरण के दो आधार हैं—आँख से संबंधित कला और कान से संबद्ध कला। स्थापत्य मूर्त्ति चित्रकला का संबंध आँख से है और संगीत तथा काव्य कान से संबंध रखते हैं।

हीगेल ने मूर्त और अमूर्त आधार के कारण ललित कलाओं का दो भेद किया है। ललित कला का विभाजन माध्यम के आधार पर किया गया है और माध्यम की सूक्ष्मता अथवा स्थूलता के आधार पर उनकी श्रेष्ठता और निकृष्टता प्रतिपादित की गई है। स्थापत्य-कला के माध्यम ईंट, पत्थर, लकड़ी, धातु आदि हैं। इन उपकरणों के द्वारा स्थापत्यकला की अभिव्यक्ति होती है। ये माध्यम अत्यंत स्थूल हैं और इनके द्वारा कारीगर या कलाकार अपने मानसिक चित्र को अभिव्यक्त या प्रस्तुत करता है। इसका रूप स्थूल है और इसके माध्यम स्थूलतम है, अतः वास्तुकला को ललितकलाओं की कोट में निम्न स्थान प्राप्त है। वास्तुकलाकार अपनी कल्पना को भवन-निर्माण के द्वारा मूर्तिमन्त करता है। वास्तुकला के अनन्तर मूर्तिकला का स्थान आता है। मूर्ति के निर्माण का माध्यम भी स्थूल होता है। काष्ठ, फलक, धातुखण्ड अथवा पस्तरखण्ड का आधार ग्रहण कर छेनी और हथौड़े के द्वारा मूर्तिकार द्वारा मूर्ति निर्मित होती है। मूर्तिकार अपनी भावनाओं को मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित कर अपने भावों का संयोजन करता है। उसकी कल्पना वास्तुकार की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म होती है। वह पत्थर या धातु की मूर्तियों में जीवन का भान कराकर उनमें पूर्णत्व का भाव व्यक्त करता है। चित्रकला का आधार मूर्तिकला से भी अधिक सूक्ष्म है। उसका प्रकाशन फलक के माध्यम से होता है। चित्र को अधिक आकर्षक बनाने के लिए कलाकार कागज पर कूँची और ब्रस के सहारे रंगों को भरता है और उसमें विभिन्न भावों को भर कर उसे सजीव बनाता है। रंगों और रेखाओं के सहारे वह ठोस पदार्थों के रूप और परिवेश का अंकन करता है। वह वास्तुकार अथवा मूर्तिकार की अपेक्षा अपनी

उसे कला के लिए मानता है। गोतिए ने अपने कलात्मक विचारों में निराचार की अपेक्षा अनाचार का ही अधिक प्रचार किया है। उसका कहना था "मुझे कोई नगर उसके सुंदर भवनों के कारण प्रिय लगता है।. . . मुझे यह चिंता नहीं कि वहाँ निवासी अत्यंत पतित हैं अथवा वह नगर अपराध का स्थल है जब तक कि इन भवनों को देखते समय मेरा कोई बध नहीं करता।" कलावाद के अनुसार व्यावहारिक जीवन में काव्य के उद्भव और विकास में राजनीति, अर्थशास्त्र की आवश्यकता नहीं पड़ती और मनुष्य सौंदर्य भावना की परितुष्टि के लिए ही[1] कला की सृष्टि करता है। फलतः वह बाह्य नियमों में आबद्ध नहीं की जा सकती। कला के सौंदर्य के अपने निजी नियम होते हैं, इससे न तो वैयक्तिक और न सामाजिक-नैतिक उत्थान संभव है। इसका एक मात्र उद्देश्य आनन्द की सृष्टि है। कला तथा काव्य से प्राप्त आनन्द की समता अन्य साधनों से नहीं की जा सकती, यह आनन्द स्वतंत्र और वैशिष्ट्य है। वही कला उत्कृष्ट मानी जा सकती है जो आत्मनिर्भर होकर अपनी स्वतंत्रसत्ता के द्वारा विशेष प्रकार के आनन्द की प्रतीति कराती है। कला का अपना एक स्वतंत्र मानदण्ड होता है और उसकी सृष्टि समाज या देश के हिताहित को ध्यान में रख कर नहीं की जा सकती। कलावादी इस तथ्य के प्रति सहमत हैं कि कला का प्रयोजन उपदेश देना नहीं है। वे कलाकार को एक पृथक् जगत् का प्राणी मानते हैं जो अन्य साधारण जनों से सर्वथा भिन्न होता है। उनके अनुसार कलाकार सौंदर्य का स्रष्टा है और सदा सौंदर्य में ही निमग्न रहता है। वह भावजगत् में विचरण करते हुए अपने सौंदर्यगत आदर्श की छानबीन करता रहता है। वह जो कुछ भी देखता या अनुभव करता है, उसे ही सत्य समझता है और सौंदर्यानुभूति से प्रेरित होकर ही कला-सर्जन में प्रवृत्त होता है। उसके अनुसार जो व्यक्ति कलाकार का अनुसरण करते हुए उसके आदर्श के प्रति उन्मुख होता है वही उसके साथ सामंजस्य स्थापित कर सकता है। कलावादी के विचारानुसार कला का निकष सिर्फ कलात्मक है। उसकी सफलता इस बात में है कि वह सौंदर्य को अभिव्यक्त करने में कहाँ तक सफल हुई है और कृति का रूप या कलापक्ष किस सीमा तक इन्द्रिय ग्राह्य हो सका है। गोतिए के अनुसार "नियमतः जो वस्तु उपयोगी होती है, वह सुंदर होने से वंचित हो जाती है। यदि कोई कलाकार किसी पदार्थ को सौंदर्य की दृष्टि से नहीं देखे तो उसे कलाकार भी नहीं कहा जा सकता। सौंदर्य का महत्त्व केवल उसके आकर्षण में ही नहीं, उसके विध्वंसात्मक पक्ष में भी है। सौंदर्य से केवल रुचिकर संवेदनाओं की ही

1. पाश्चात्य काव्यशास्त्र: सिद्धांत और वाद, पृ. 179

उत्पत्ति नहीं होती, उससे विषाद, भय, ईर्ष्या आदि मनोभावनाएँ भी उत्पन्न होती हैं। वाल्टरपेटर का कहना था कि दृश्य सौंदर्य का प्रेमी ही वास्तविक कलाकार होता है और वाइल्ड के विचार से कलाकार सुंदर वस्तुओं का स्रष्टा होता है। सुंदर पदार्थों में कुरूप अर्थ को देखने वाला अनाकर्षक और भ्रष्ट रुचि का व्यक्ति होता है। पर, सुंदर वस्तुओं में सुंदर अर्थ को पानेवाला और सुंदर वस्तुओं को सौंदर्य समझने वाला श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी होता है। कलावाद में सौंदर्य को एकमात्र आदर्श मानने के कारण रूप को अधिक प्रश्रय दिया जाता है। रूप की पूर्णता कलात्मक अभिरुचि में निहित रहती है और कलाकार में कठोरश्रम की अपेक्षा है। कलावादी रूप को अधिक से अधिक ऐन्द्रिय रूप प्रदान करने में ही उसकी विशिष्टता मानते हैं। कला का प्राण रूप है और उसमें वस्तुविषय का स्थान गौण होता है। कलावादी विषय वस्तु को नगण्य मानकर शैली और शिल्प के द्वारा ही चमत्कार की सृष्टि करता है। कलावाद वैयक्तिकता, अस्पष्टता तथा अपूर्णता का तिरस्कार कर अवैयक्तिकता, स्पष्टता, वस्तुपरकता एवं यथार्थ चित्रण को अधिक प्रश्रय देता है। वह शिल्पगत तथा आध्यात्मगत सौंदर्य में तादात्म्य की स्थापना करता है तथा मानव आत्मा की अभिव्यक्ति को महान कला मानता है। कलावादी रचना-प्रक्रिया को श्रमसाध्य मानकर अलभ्य की प्राप्ति के लिए घोर परिश्रम की आवश्यकता पर बल देता है। उसका रोमानी प्रतिभा में विश्वास नहीं अर्थात वह सहजता और उन्मुक्त प्रवाह को महत्त्व नहीं देता। वह मानता है कि उत्प्रेरणा के सहारे कलात्मक रचना की सृष्टि संभव नहीं है और कला अचेतन क्रिया न होकर सचेत प्रक्रिया है। उसने रचा-प्रक्रिया को आनन्दप्रद नहीं, कष्टप्रद बना दिया है। कलावादी अपने पात्रों का जीवन जी कर उनके सुख-दुःख की समस्त अनुभूतियों का अनुभव करता है। उसके अनुसार कलाकार का जीवन दुरूह और श्रमसाध्य है, उसकी कला के मूल में उसकी स्वतंत्रय कल्पना और सौंदर्य वृत्ति निहित रहती है। कलावादी जीवन को भी एक कला मानते हैं। उनकी धारणा है कि यदि कलात्मक मूल्यों के ही आधार पर जीवन व्यतीत किया जाय तो उसमें अधिक सरसता आएगी और जीवन सुखप्रद होगा। कला के आदर्शों को अपना कर ही कोई जीवन को सफल बना सकता है।

इंगलैंड में 1860 ई. तक सौंदर्यवादी आंदोलन सक्रिय बना रहा और इसके प्रमुख नेताओं में ह्विस्लर, ऑस्कर वाइल्ड, डासन तथा वाल्टरपेटर थे। इन सबों का उद्देश्य कला की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर उसका उद्देश्य एक मात्र आनन्दोपलब्धि मानना था। इन्होंने विषयवस्तु की अपेक्षा अनुभूति और भावना

को विशेष महत्त्व प्रदान किया और तटस्थ भाव से सौंदर्य की परख करने में कला की सफलता की उद्घोषणा की। ह्विस्लर ने रस्किन की नैतिकता का खण्डन कर उन पर अनेक आक्षेप किए और सौंदर्यवादी आंदोलन को उग्र किया। रस्किन ने 'मॉडर्नपेन्टर्स' नामक ग्रंथ में कला में नैतिकता की अनिवार्यता पर बल दिया था और बतलाया था कि कला का सारभूत तत्त्व जीवन है और उसके बाह्य रूप का आनुषंगिक मूल्य है। सौंदर्यवादियों ने मुख्य रूप से प्रभाव-ग्रहण की प्रक्रिया का ही विवेचन किया है। उनका विवेच्य विषय यही है कि किस प्रकार सहृदय का संवेदनशील मन सौंदर्य के प्रभाव को ग्रहण कर उससे आनन्द और आह्लाद की अनुभूति करता है। सौंदर्यवादी वस्तु की अपेक्षा रूप को अधिक महत्त्व देता है और शिल्प विधान या निर्माण-पद्धति में विशेष कौशल प्रदर्शित करता है। वह कविता में चित्रमयता का समावेश करता है और छन्द तथा अंत्यानुप्रास के कौशल पूर्ण प्रयोग से सौंदर्य की सृष्टि करता है। आधुनिक युग का रूपवादी आंदोलन भी कलावाद का ही नवीन रूप था।

कलावादियों के विरोध में तीन प्रकार के आरोप लगाए गए हैं–

क– यह कला और जीवन का संबंध विच्छेद करता है–

ख– यह सिद्धांत एकांगी है और कला में ही जीवन के उच्चतम उत्कर्ष का अनुभव एवं प्रतिपादन करता है।

ग– इसने काव्य में रूप-तत्त्व को ही महत्त्व प्रदान किया है।

ब्रेडले ने उपर्युक्त आरोपों का उत्तर देते हुए कहा है कि ये आरोप मुख्यतः उपयोगितावादी आलोचकों द्वारा लगाए गए हैं, जो कला को किसी विशेष लक्ष्य की सिद्धि का माध्यम बनाते हैं। जीवन के किसी अंग विशेष्य के साथ कला का उद्देश्य आश्रित हो तो उसका सम्यक् मूल्यांकन नहीं हो सकता और यह कार्य कला के प्रति अन्याय करने वाला होगा। यदि कला या काव्य की रचना किसी विशेष उद्देश्य से प्रेरित होकर होती तो संसार के सभी महान कवियों एवं कलाकारों की रचनाओं में इस तथ्य की अभिव्यक्ति होती। इससे सिद्ध है कि कला का लक्ष्य उपयोगितावादी नहीं होता। विश्व साहित्य में एक ही तत्त्व की अभिव्यक्ति नहीं होती, उनमें विभिन्न तत्त्वों की विज्ञप्ति की जाती है। यदि कला को नैतिकता का वाहन मान लिया जाय तो अनेक राष्ट्रीय और रहस्यवादी कवि हीनकोटि के (कवि) सिद्ध होंगे। अतः, कला का कोई विशेष लक्ष्य सिद्ध करना उसका अवमूल्यन करना है। कला का एक मात्र प्रयोजन आनन्दोपलब्धि है और उसका

निष्कर्ष है केवल कला। उसका कहना था कि काव्य की आलोचना काव्य तत्त्वों-विषय, रूप, छन्द, लय, शब्द प्रयोग—के आधार पर होनी चाहिए। कविता अनुभवों का प्रेषण है और उसी के आधार पर उसका मूल्यांकन होना चाहिए। कला और जीवन को विशेष वस्तुसत्ता का विभिन्न रूप माना जाता है। जीवन में सत्य अधिक और कल्पना की न्यूनता होती है और कला में कल्पना का प्राधान्य होता है और सत्य की न्यूनता होती है। "जीवन और काव्य में पर्याप्त संबंध है, किंतु यह संबंध एक प्रकार का प्रच्छन्न संबंध है। इनको एक ही वस्तु का दो भिन्न रूप कहा जा सकता है: एक के पास यथार्थता (प्रचलित अर्थ में) है, किंतु कल्पना को उससे शायद ही पूर्ण परितोष मिलता है, दूसरे के पास कल्पना को परितोष देने की सामग्री है, किंतु पूर्ण यथार्थता नहीं। ये समानांतर विकसित रूप हैं, जो परस्पर मिलते कहीं नहीं। अतः, एक को हम दूसरे की सहायता से समझते हैं, और एक दृष्टि से एक ही दूसरे के कारण परवाह भी करते हैं, किंतु इसी कारण काव्य न तो जीवन है, और न वस्तुतः जीवन की प्रतिकृति ही। इनमें अंतर इसलिए नहीं है कि एक के पास अधिक द्रव्य है और दूसरे के पास अधिक पूर्ण आकृति।" "कवि क्या कहता है, यह महत्त्वपूर्ण नहीं, उसकी अभिव्यजना सुंदर होनी चाहिए। 'क्या' का विशेष काव्यात्मक मूल्य नहीं, 'कैसे' महत्त्वपूर्ण है। सामग्री, आधेय विषय, सार वस्तु से कुछ भी निर्दिष्ट नहीं होता, ऐसा कोई भी विषय नहीं है जो काव्य में प्रयुक्त न हो सके। रूप-विधान, प्रतिपादन शैली ही सब कुछ है। इतना ही नहीं, सामग्रीं महत्त्वहीन ही नहीं होती, किंतु कला का रहस्य ही यह है कि वह रूप-विधान के द्वारा सामग्री को लीण करे।"

(पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 235-236)

'कला कला के लिए है' सिद्धांत का मूल स्रोत प्रसिद्ध दार्शनिक काण्ट की विचारणा में दिखाई पड़ता है और हीगेल के दर्शन में पोषित होता है। काण्ट के अनुसार "अपनी इन्द्रियों द्वारा हम अपने 'प्रिय' अथवा 'रुचिपूर्ण' पदार्थों की पहचान करते हैं, परंतु सुंदर की खोज के लिए हमें सौंदर्यपरक निर्णय की आवश्यकता होती है। यह निर्णय एक प्रकार का आनन्द है, जो कलात्मक अनुभूतियों के रूपों को देखकर प्राप्त होता है। इन रूपों का सृजक कोई प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ही होता है, जो अपनी स्वतंत्र कल्पना तथा अलिप्रता से उत्पन्न क्रिया द्वारा इनकी व्यवस्था करता है।" काण्ट के इस वक्तव्य में कला का लक्ष्य आनन्द की उत्पत्ति करना बताया गया है और कलाकार के संबंध में यह तथ्य प्रकट किया गया है कि वह निर्लिप्त रह कर अपनी प्रतिभा से सुंदर रूपों का निर्माण करे। वह 'लक्ष्यहीन लक्ष्य' को कला का प्रयोजन मानता है।

कला की सोद्देश्यता और निरुद्देश्यता का द्वन्द्व प्राचीन है और प्लेटो से लेकर टी. एस. इलियट तक इसकी परंपरा सुरक्षित है। 'नई समीक्षा' के प्रतिपादक स्पिनगार्न भी साहित्य के सोद्देश्य या नैतिकतापूर्ण होने की भावना को दुराग्रहपूर्ण मानते हैं। इस संबंध में टी. एस. इलियट के विचार ध्यातव्य है। "साहित्य समीक्षा एक निश्चित नैतिक अथवा धार्मिक दृष्टिकोण से की गई समीक्षा द्वारा ही पूरा होनी चाहिए। साहित्य की महत्ता केवल साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर ही निर्धारित नहीं की जा सकती यद्यपि इस बात का निर्णय केवल साहित्यिक मानदण्डों के आधार पर किया जा सकता है कि कोई कृति साहित्य है कि नहीं।"

Atmosphere (ऐटमॉस्फियर) वातावरण या परिवेश

किसी रचना-कहानी, उपन्यास, नाटक अथवा महाकाव्य में वर्णित बाह्य परिस्थिति विशेष को वातावरण कहते हैं। बहुत-सी रचनाएँ अपने वातवरण की विशेषता के कारण महत्त्वपूर्ण होती हैं। यदि कहानी में वातावरण का विशेष महत्त्व प्रदर्शित किया गया तो उसे वातावरण प्रधान कहानी कहते हैं। जो रचना किसी युग या समाज से संबद्ध होती है उसमें वातावरण का अधिक महत्त्व होता है। इसके अंतर्गत देश-काल की परिस्थितियों का चित्रण किया जाता है।

■

Autobiography (ऑटोबायोग्राफी)
आत्म कथा

जीवनी की नाईं आत्मकथा भी किसी व्यक्ति विशेष का जीवनवृत्त या जीवन गाथा है, जो किसी अन्य व्यक्ति द्वारा न लिखी जाकर स्वयं संबद्ध व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है। आत्मकथा की रचना किसी बाह्य सामग्री पर आधृत न होकर स्वयं स्मृति के आधार पर होती है। इसका मुख्याधार पुराने दिनों की स्मृति है, इसके लिए लेखक डायरी, पुराने लेख या अन्य वस्तुओं से सहायता ग्रहण करता है। स्मृतिपट पर जीवन की जो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ चित्रित रहती हैं और वे विस्मृति के गर्भ में विलीन नहीं होतीं, उन्हीं का चित्रण आत्मकथा में होता है। आत्मकथा भी एक प्रकार की जीवनी ही है, जिसमें जीवनी लेखक की अपेक्षा स्वयं निजी ज्ञान से लेखक अधिक क्रियाशील होता है। इसमें तथ्यों की छानबीन की अपेक्षा अनुभव और प्रत्यक्ष ज्ञान का अधिक महत्त्व होता है। जीवनी की भाँति आत्मकथा में भी इतिहास के तत्त्व रहते हैं या प्रमुखता प्राप्त करते हैं, अतः इतिहास की भाँति इसमें भी वास्तविक तथ्यों का आकलन और संप्रेषण आवश्यक है। सफल आत्मकथा में कल्पित और अविश्वसनीय तथ्यों को स्थान नहीं मिलता, अतः लेखक के लिए आवश्यक है कि वह अपने महत्त्ववर्द्धन के लिए कपोलकल्पित बातों को स्थान न दे और न प्रसंग को महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए रोचक घटनाओं का समावेश करे।

आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के कार्यों और घटनाओं का इस प्रकार वर्णन करे जिसमें उसके व्यक्तित्व एवं युग की अभिव्यक्ति हो। चूँकि इसमें स्वयं लेखक अपना चरित-वर्णन करता है, अतः उसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध होती है। पर इसके लिए अपेक्षित है कि वह घटनाओं का विवरण पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करे। आत्मकथा में लेखक का भोगा हुआ जीवन बोलता है और इसमें स्वयं लेखक अपने जीवन को प्रकाशित करता है। वह उन तथ्यों एवं परिस्थितियों का भी चित्रण करता है कि किसी विशेष घटना में उसकी मनःस्थिति कैसी थी और उसने अपने जीवन में कितने उलट-फेरे देखे तथा कठिनाइयों का किस प्रकार सामना किया। आत्मकथा में लेखक अपने जीवन के जिस पक्ष का चित्रण करता है वह स्वयं उसके समसामयिक जीवन का बोलता हुआ इतिहास होता है। युग-विशेष की मानसिक संचरना का ज्ञान आत्मकथा के द्वारा होता है। यदि आत्मकथा लेखक अपने युग का महापुरुष हुआ तो उसके द्वारा चित्रित जीवन का ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व होता है और जीवन तथा घटनाओं के प्रति उसके दृष्टिकोण का भी बोध होता है।

आत्मकथा—लेखन के क्षेत्र में अत्यंत कठिनाइयाँ भी हैं। लेखक संकोचवश अपने जीवन की दुर्बलताओं को व्यक्त नहीं कर पाता और न अपने विषय में लिखते समय तटस्थ रहता है। अतः, तटस्थता और निष्पक्षता का होना आत्मकथा के लिए आवश्यक है, किंतु इनका निर्वाह कठिन है। आत्मकथा में अपने गुणों का अधिक विस्तार आत्मश्लाघा का द्योतक है और दोषों को छिपाना ढोंग है, अतः निष्पक्ष भाव से अपने गुण-दोषों पर सम्यंक् प्रकाश डाला जाए तो वह आत्मकथा अवश्य ही महत्त्वपूर्ण होगी, पर ऐसा करना विरल है।

आत्मकथा में लेखक का आग्रह जीवनी-निरूपण में परिलक्षित होता है। वह अपने जीवन की घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करता है जिससे कि उसके संकल्प विकल्प, उद्देश्य तथा अभिप्राय की विवृत्ति हो सके। लेखक कल्पना के सहारे जीवन के विशिष्ट तथ्यों को, जो विस्मृति के गर्भ में संचित रहते हैं, अभिव्यक्त कर उनमें एक सूत्रता स्थापित करता है और उन्हें ऐसे कलात्मक ढंग से नियोजित करता है कि उनका आकर्षण बना रहे और पाठक लेखक के साथ आत्मीयता स्थापित कर सके। आत्मकथा में तथ्यों के संयोजन में कलात्मकता का होना आवश्यक है, अन्यथा आत्मकथा कोरा इतिहास बन कर रह जाएगी। आत्मकथा साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है, जिसने विश्व साहित्य को महत्त्वपूर्ण देन दी है।

Bacon (बेकन)

ब्रिटिश सौंदर्य शास्त्री। दे. The History of Aesthetics

Ballad (बैलेड) गाथागीत या आख्यान गीत—काव्य का एक प्रकार, जिसमें छोटे-छोटे कथानक गीतों में निर्मित होते हैं। इसका उद्भव लोक-साहित्य से हुआ है। बैलेड फ्रेंच शब्द 'वैले' (Ballare) से बना है जिसका अर्थ है नृत्य करना। आरंभिक अवस्था में नृत्य के साथ-साथ जो गीत गाए जाते थे उन्हें बैलेड कहा जाता था। आगे चल कर एक विशेष प्रकार का फ्रेंच गीत बैलेड के नाम से अभिहित होने लगा। जर्मनी में लोग गीत को बैलेड का समानार्थी माना जाता था और इंगलैंड में साधारण पद्य में आबद्ध साधारण कथा को बैलेड की संज्ञा प्राप्त हुई। यह लोकगीत के अंतर्गत माना जाता है, जिसमें प्रेम, युद्ध, आखेट तथा प्रेतकथा का वर्णन होता है। परंपरागत गेय काव्य जिसमें भावपूर्ण कथानक हो बैलेड के परिवेश में आ जाता है। इसमें साहित्यिक कृत्रिमता न होकर सरलता, स्वाभाविक स्पंदन और स्वच्छता विद्यमान रहती है। इसका संबंध जनजीवन से होता है और इसमें मानव जीवन की चिरंतन भावनाएँ व्यक्त होती हैं। इसमें महाकाव्य और गीतिकाव्य दोनों के ही तत्त्व विद्यमान रहते हैं और कलात्मक परिष्कार का अभाव रहता है। बैलेड की छन्दयोजना अनगढ़ होती है तथा जाति की मानसिक स्थितियों, परंपरागत भावों और रुचियों का प्रतिनिधित्व होता है। इसकी कथा के वर्णन में प्रगीतात्मक तत्त्व निहित रहते हैं। कवि घटनाओं का वर्णन करते हुए भी गेयता का विस्मरण नहीं करता। प्रगीतात्मक गुणों के साथ कथा-वर्णन का संयोग इसकी अनिवार्य विशेषता है।

इसमें छोटे छन्द प्रयुक्त होते हैं, जो चार-चार पंक्तियों के स्टैंजा (समूह) होते हैं और इनके द्वारा ही कथा अग्रसर होती है। सम्पूर्ण कविता में कई विराम होते हैं और कुछ पंक्तियों की आवृत्ति भी होती है। प्राचीन बैलेड में सहगान (कोरस) के रूप में पुनरावृत्ति होती थी, किंतु बाद में टेक की प्रथा का समावेश हुआ और गायक द्वारा एक या एकाधिक पंक्तियों की पुनरावृत्ति होने लगी। पुनरावृत्ति से संगीतात्मकता के अतिरिक्त पाठकों या श्रोताओं के ऊपर गंभीर प्रभाव भी पड़ता था। आख्यान और आत्मपरक गीतिशैली बैलेड के दो प्रधान तत्त्व हैं। आख्यान या तो कवि द्वारा प्रस्तुत किया जाता है या किसी पात्र द्वारा। इसकी भाषा सरल होती है और विचारों में सरलता रहती है। कॉलरिजकृत 'दि राइम ऑफ दि एन्शिएन्ट मैरीनर' इसका उदाहरण है। हिंदी में 'झाँसी की रानी'।

Ballet (बैले) नृत्य नाट्य—बैले ऐसे नाटकीय प्रदर्शन को कहते हैं, जिसमें नृत्य, संगीत और मूकाभिनय द्वारा नाटकीय कार्य की प्रस्तुति होती है। इसमें

मूकाभिनय अथवा संगीत द्वारा कथा वर्णित होती है। इस प्रकार के नृत्य में राजदरबार के सामंतों के अतिरिक्त स्त्रियाँ भी भाग लेती थीं, पर कालांतर में इसका विकास रंगजीवी नर्तकों द्वारा हुआ। इसमें रंगीन बहुमूल्य वस्त्रों और जगमगाती वेशभूषा का प्रयोग होता था और मुखौटे, ऊँची एंड़ी के जूते और मलमल के लँहगे पहने जाते थे। अभिनेता अंगूठे पर ही चक्कर लगाते थे। अठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध में इसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ और नर्तक-नर्तकियों द्वारा साधारण मलमल के नृत्य परिधान प्रयोग में लाए जाने लगे। कालांतर में इसके नियमों में परिवर्तन आया और अंगसंचालन की अपेक्षा भावाभिव्यक्ति पर बल दिया जाने लगा और शास्त्रीय नैपुण्य के स्थान पर अभिनय की प्रमुंखता स्वीकार की गई और उसी के माध्यम से कथानक को प्रकट किया गया। फ्रांस में नर्तकियों ने इसमें अधिक-नगण्य हो गया। नृत्यनाट्य का प्रारंभ 17वीं शताब्दी में फ्रांस में हुआ था और इसका विकसित स्वरूप रूस में दिखाई पड़ा।

Bathos (बैथोस) – अपकर्ष

एक अलंकार जिसमें भव्य और महान् को अकस्मात् क्षुद्रता और पतन की ओर गिरते दिखाया जाय।

Baumgarten (बॉमगार्टेन)

जर्मन सौंदर्यशास्त्री– दे. The History of Aesthetics.

Beginning of criticism– आलोचना का समारम्भ

यों तो पाश्चात्य समीक्षा का सविधि सूत्रपात प्लेटो की कृतियों से होता है, पर उसके अंकुर पूर्ववर्ती ग्रीक विचारकों की रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं। प्लेटो से पूर्व होमर, हेसिऑड, पिंडार, गार्जियास तथा अरिस्टोफनिज आदि की कृतियों में पाश्चात्य आलोचना का स्फुरण हो गया था। प्लेटो ने अपने ग्रंथों में उन्हीं सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जो उसके पूर्ववर्ती साहित्य में यत्रतत्र बिखरे हुए थे। यूनानी (ग्रीक) चिंतनधारा में प्रवाहित होनेवाली विचार-सरणियाँ ही प्लेटो की उपजीव्य बनीं और उसने अपनी प्रखर मेधा द्वारा उन्हें सुव्यवस्थित और परिष्कृत किया। यूनानी चिंतकों दार्शनिकों, कवियों एवं नाटककारों ने राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, भाषणशास्त्र, काव्य, नाटक तथा इतिहास की रचना कर ऐसे अनेक तथ्य प्रस्तुत किये थे, जिनमें साहित्यालोचन-विषयक विचार भी इतस्तत: प्रत्यक्ष या

अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्त हुए थे, वही विचार-परम्पराएँ पाश्चात्य साहित्य शास्त्र के मूल उत्स हैं। इन ग्रंथों में समीक्षाशास्त्र के संकेत अवश्य प्राप्त होते हैं, पर उसका स्वतंत्र रूप दृष्टिगोचर नहीं होता। किंतु, होमर, हेसिऑड, पिंडार, गोर्जियास तथा अरिस्टोफनिज आदि लेखकों की कृतियों में काव्य के उद्देश्य तथा स्वरूप के संबंध में अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि पूर्व प्लेटो युग में काव्यशास्त्र का अस्तित्व अवश्य था, चाहे उसका स्वतंत्र नाम रहा हो या न रहा हो। अभिप्राय यह कि ग्रीक साहित्य के प्रारंभिक युग में आलोचनाशास्त्र को स्वतंत्र शास्त्र का रूप प्राप्त नहीं हुआ था, अपितु दार्शनिकों, ऐतिहासिकों (प्लूटार्क) तथा नाटक़कारों ने अपनी रचनाओं में तद्विषयक जो मत प्रकाशित किए थे, उन्हीं फुटकल विचारों में ग्रीक आलोचना का बीजारोपण हुआ था। इस प्रकार पाश्चात्य आलोचना के आद्य युग में काव्यशास्त्र के तीन स्रोत दिखाई पड़ते हैं—(क) यूनानी नाटक विशेषत: अरिस्टोफनिज का नाटक 'फ्राग्स'। (ख) यूनानी दार्शनिकों की सौंदर्य-मीमांसा (ग) तथा होमर के महाकाव्य में आलोचनाशास्त्र के संकेत।

तत्कालीन ग्रीक साहित्य का अधिकांश लुप्त हो चुका है, अत: जो कुछ भी सामग्री शेष है, उसी के आधार पर पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र के प्रारंभिक स्वरूप की मीमांसा की जा सकती है। उस समय के विचारकों ने दर्शन, भाषणशास्त्र तथा व्याकरण के अंतर्गत आलोचनाशास्त्र को स्थान दिया था, और यह स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित न हो सका था, अत: उस समय के काव्य चिंतन पर दर्शन की प्रगाढ़ छाया देखी जा सकती है। तद्युगीन विचारकों ने न केवल जीवन में अपितु अन्य क्षेत्रों में भी नैतिक दृष्टिकोण को प्रमुखता दी थी, अत: उनका काव्य विषयक मत भी नीतिप्रधान था और वे काव्य का उद्देश्य शिक्षा देना ही मानते थे। नैतिक आदर्श की प्रतिष्ठा एवं ग्रीक वासियों के हृदय में राष्ट्रप्रेम को उत्पन्न करना ही तत्कालीन चिंतकों का उद्देश्य था, फलत: उन्होंने कला की नीतिपरक व्याख्या प्रस्तुत कर आलोचना के नैतिक धरातल की स्थापना की।

होमर—डॉ. बोजांके ने अपने इतिहास ग्रंथ में (हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स) होमर के महाकाव्यों में ही पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र का स्रोत प्रदर्शित किया है। चूँकि कवियों की प्रबल इच्छा अपने काव्य-शिल्प के संबंध में विचार करने की होती है, अत: आलोचना के प्रारम्भिक युग में उनके कथनों का विशेष महत्त्व होता है। इसी दृष्टि से महाकवि होमर के कथन की महत्ता प्रतिष्ठित है। प्रो. सन्टवरी, स्कॉटजेम्स

एटकिन्स तथा क्लीन्थब्रुक एवं विम्सॉट प्रभृति विद्वानों ने भी होमर को पाश्चात्य काव्यशास्त्र के आद्याचार्य के रूप में स्वीकार किया है। अपने महाकाव्य 'ओडसी' (भाग 8 पंक्ति, 4346) के मंगलाचरण के रूप में होमर ने जो मन्तव्य प्रकट किया है उसे पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र का प्रथम काव्यशास्त्रीय सिद्धांत कहा गया है। उसने काव्य-सृष्टि को दैवी-प्रेरणा के अधीन माना है।

Bid hither [says Alcinous] the divine ministrel Demodocus for the God hath given ministrelsy to him as to none other to make man glad in what way so ever his spirit stirs him to sing. "हे डेमोडोकस, उस दिव्य प्रतिभाशास्त्री कवि को यहाँ बुलाओ, देव ने जैसी काव्यशक्ति उसे दी है, वैसी दूसरे को नहीं दी—जिस रीति से भी उसकी आत्मा उसे गाने के लिए प्रेरित करती है, वह उसी रीति से मनुष्यों का मन: प्रसादन कर सकता है।" (डॉ. नगेन्द्र कृत विचार और अनुभूति, पृ.7 से उद्धृत) इस उद्धरण के अनुसार काव्य का उद्रेक दैवी प्रेरणा से होता है। कविता आनन्द या मन:प्रसादन की वस्तु है, इसका प्रयोजन केवल शिक्षा देना ही नहीं है। होमर कृत 'इलियड' नामक अन्य महाकाव्य के उद्धरण को बोसांके ने (हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स, पृ. 12) ग्रीक आलोचना का प्रथम बीज या उत्स माना है। इस उद्धरण में एकिलीज की स्वर्णढाल की प्रशंसा की गई है।

"And the field grew black behind and seemed as it were a ploughing, albeit of gold, for this was the great marvel of the work." आगे चल कर कवि कहता है कि—"The earth looked dark behind the plough and like to ground that had been ploughed, although it was made of gold, that was a marvellous piece of work." "ढाल पर नए-नए जोते हुए खेत का चित्र है और यद्यपि सम्पूर्ण ढाल स्वर्ण की है और उसकी पृष्ठ भूमि पीली है फिर भी नीचे से निकली हुई मिट्टी का रंग काला दिखाई पड़ता है।" इस कथन में कला के चमत्कार द्वारा रंगों का इन्द्रजाल प्रस्तुत किया गया है, जिसमें विद्वान कला का इल्यूजन (भ्रम) मानने का संकेत करते हैं। ढाल ऐसी निपुणता से निर्मित थी कि उसमें जोती हुई जमीन का भ्रम होता था। डॉ. बोसांके के अनुसार तत्कालीन कवि का कर्त्तव्यकर्म भ्रम की सृष्टि करना था और उसके साथ कारीगर के कर्म में समता भी थी। होमर का समय ई. पू. आठवीं शती है।

होमर के अतिरिक्त हिसिऑड, ज़ेनोफ़नीस तथा हेराक्लिटस की रचनाओं में भी आलोचना के संकेत अस्पष्ट रूप से प्राप्त होते हैं। इन लेखकों ने काव्य के स्वरूप, कारण एवं प्रयोजन के संबंध में सम्यक्‌रूपेण विचार किया है। ई. पू. छठी शताब्दी में पिंडार नामक नाटककार की रचनाओं में समीक्षा के तत्त्व उपलब्ध होते हैं। उसने भी काव्य-सौंदर्य एवं कलात्मक श्रम का उल्लेख किया है और काव्य कीं प्रेरणा के संबंध में भी मत व्यक्त किया हैं। उसके अनुसार प्रेरणा के द्वारा ही कवि में काव्योचित गुणों का विकास होता है। प्रेरणा से उसका अभिप्राय प्रतिभा से था तथा वह कवि की नैसर्गिक शक्ति को प्रेरणा मानता था। उसके अनुसार इस शक्ति के अभाव में अभ्यास या काव्य-रचना के नियमों को सीखने पर कोई उत्कृष्ट कोटि की रचना नहीं कर सकता। उसने कला या काव्य के संबंध में बतलाया कि अल्प शब्दों में विपुल अर्थ भरना ही उच्चकोटि की कला का गुण है। इस युग के कई विचारकों की रचनाओं में भी आलोचना के स्फुट तत्त्व उपलब्ध होते हैं। ऐसे चिंतकों में गोर्जियास, डेमोक्रिटस, डायोजेनीस तथा प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्लूटार्क के नाम उल्लेख्य हैं। इनके ग्रंथों के संबंध में एक बात विशेष रूप से ध्यातव्य है कि ये आलोचना की किसी विशिष्ट विचारधारा का विवेचना नहीं करते। प्रसिद्ध यूनानी नाटककार 'एरिस्टोफनीज' के आविर्भाव के पूर्व जितनी भी आलोचनात्मक पद्धतियाँ हैं, उनमें न तो क्रमबद्धता है और न व्यवस्था ही।

प्राचीन काव्यादर्श–तत्कालीन लेखकों एवं कवियों के स्फुट वक्तव्यों से ज्ञात होता है कि प्राचीन यूनान में कविता को दैवी प्रेरणा की देन माना जाता था। तदनुसार कवि रचना में सफल हो सकता है। हिसिऑड ने अपने ग्रंथ 'थियोजोनी' में कहा कि वह काव्य देवी की प्रेरणा से ही कविता लिखने में सफल हुआ। होमर ने इस प्रकार का विचार कई स्थलों पर व्यक्त किया है कि काव्य का ध्येय है आनन्द प्रदान करना और इसकी (आनन्द की) अनुभूति ऐन्द्रजालिक प्रयोग द्वारा होती है। किंतु, ठीक इसके विपरीत हेसिऑड का विचार था कि काव्य का उद्देश्य शिक्षा देना है या दैवी संदेश द्वारा जन-कल्याण का प्रसार करना। ये दो परस्पर विरोधी मत ही उस समय के मूल काव्यादर्श थे। इस विचारधारा के अतिरिक्त एक अन्यमत यह है कि काव्य द्वारा जीवन की उपयोगी वस्तुओं की सिद्धि होती है। मनुष्यों, पशु-पक्षियों के अतिरिक्त पाषाणों को भी मुग्ध करने की बातें तत्कालीन काव्य-गंथों में भरी पड़ी हैं। एम्फियन नामक कवि का काव्य-सौष्ठव द्वारा पत्थरों को मुग्ध कर थीब्स नगर की दीवाल के निर्माण करने की घटना बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। ऑर्फियस (संगीतज्ञ) के संबंध में भी इस प्रकार की जनश्रुति

है कि वह मधुर स्वर के द्वारा पशु-पक्षियों एवं जंगली मनुष्यों को मुग्ध कर अभिभूत कर देता था।

एलिगोरिकल या प्रतीकवादी आलोचना–ग्रीक आलोचना के प्रारम्भिक युग में दर्शन और काव्य का संघर्ष प्रारंभ हो चुका था। काव्य और दर्शन के लक्ष्य, उद्देश्य तथा तत्त्वों को लेकर उठे हुए वाद-विवाद आलोचनाशास्त्र के रोचक क्षितिज का उद्घाटन करते हैं। इसी समय आयोनिया प्रदेश के दर्शनज्ञों द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के कारण साहित्य के क्षेत्र में तहलका मच गया। उन्होंने वतलाया कि संसार ऐसे नियमों पर स्थिर है, जो अटल हैं। इसकी पुष्टि भूगर्भविशारदों एवं भौतिकशास्त्रियों द्वारा हुई। उन्होंने कहा कि विश्व का निर्माण व्यवस्थित एवं पूर्ण नियमों के आधार पर हुआ है, उसमें देवताओं का हाथ नहीं है। होमर ने बताया था कि संसार देवताओं की कृपा से निर्मित हुआ है और इसका विनाश भी उन्हीं के द्वारा होता है। उसके काव्य का आधार प्राचीन धार्मिक परंपरा एवं कथाएँ थीं, अत: तत्कालीन दर्शनज्ञों एवं विज्ञान विशारदों ने नैतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से उसके (होमर के) महाकाव्यों की व्याख्या उपस्थित कर उसकी निन्दा की और उन्हें निम्नस्तर की रचना कहा। इसका कारण था होमर का देवी-देवताओं में मानवीय गुण-दोषों का प्रदर्शन करना। जेनोफीन ने इसी कारण होमर की आलोचना की थी। इसी समय ऐसे विचारकों का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने प्रतीकवादी आलोचना की चर्चा कर होमर का पक्ष लेते हुए इस द्वन्द्व को मिटाना चाहा। उन्होंने कहा कि कवि देव-कथाओं एवं लोक-गाथाओं के रूप में आध्यात्मिक तथ्यों को सांकेतिक रूप से प्रस्तुत करता है और इसी प्रकार के संकेतों से होमरीय रचनाएँ भी विभूषित हैं। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि होमर की रचनाओं के शाब्दिक अर्थों पर ही विचार नहीं किया जाए, अपितु उनमें निहित प्रतीकों एवं संकेतों पर ही ध्यान दिया जाय। (दे. criticism in antiquity, page 13-15) होमर की रचनाओं में उपलब्ध अश्लील उद्धरणों में भी आध्यात्मिक संकेत भरे पड़े हैं। थेयोजेनीज तथा एनैकंजोरेस प्रभृति टीकाकारों एवं विचाराकों ने अपना निर्णय दिया कि जनसाधारण के ध्यान को आकृष्ट करने के लिए ही होमर ने अपनी रचनाओं में प्रतीकों का अवगुण्ठन लगा दिया है। उन्होंने देवी-देवताओं के युद्धों के संबंध में यह विचार प्रकट किया कि इनमें प्रकृति की श्रेष्ठ एवं निम्न शक्तियों के संघर्षों का प्रतीकात्मक वर्णन है। इस प्रकार ईसा पूर्व छठी शती तक प्रतीकात्मक आलोचना-शैली द्वारा आध्यात्मिक संकेतों का स्पष्टीकरण होता रहा।

प्राचीन काव्य-तत्त्व

ईसा पूर्व पाँचवीं शती में आलोचना ऐसे क्षेत्र में प्रवेश करती हुई दिखाई पड़ी जहाँ तार्किकता को त्याग कर स्पष्टता पर बल दिया गया। इस युग की

साहित्य-चर्चा में आलोचना-संबंधी कई नियमों को स्थिरता प्राप्त हुई तथा ज्ञान, कला और राजनीति के क्षेत्र में अनोखे परिवर्तन दिखाई पड़े। इस समय जीवन-संबंधी आध्यात्मिक प्रश्नों को गौण कर सामाजिक एवं राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया गया। कलाकारों का ध्यान भी इन्हीं प्रश्नों की ओर गया और वे उत्कृष्ट कोटि की कॉमदियों तथा त्रासदियों के अतिरिक्त महाकाव्य, गीतिकाव्य एवं भाषणशास्त्र के निर्माण में प्रवृत्त हुए। इस युग में कला के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के ऊपर कवियों एवं कलाकारों ने भी विचार प्रकट किए। ऐसे कलाकारों में पिंडार (कवि) तथा भाषणशास्त्री गोर्जियास हैं। पिंडार ने काव्य के ऐन्द्रजालिक प्रभाव एवं उससे होनेवाले सौंदर्यानुभव की प्रशंसा की। उसने काव्य-सर्जन में आंतिरक प्रेरणा को महत्त्व देते हुए प्रेरणा द्वारा निर्मित काव्य को ही श्रेष्ठ माना। उसके अनुसार प्रेरणा के अभाव में काव्य निर्जीव हो जाता है और आंतरिक प्रेरणा से उद्भूत काव्य ही अमरत्व प्राप्त करता है। इसके साथ ही उसने काव्यात्मक अभिव्यंजना में संक्षिप्तता को अधिक महत्त्व प्रदान किया। उसके अनुसार काव्य के अनिवार्य तत्त्व हैं—अल्प शब्दों में विपुल भावों का प्रकाशन तथा मधुमक्खी की भाँत विभिन्न फूलों से रस इकट्ठा कर काव्य को सजाना। पिंडार के समसामयिक विचारकों ने भी काव्य के अनेक पहलुओं पर विचार किया। उस समय कविता की सांकेतिक परिभाषाएँ भी प्रस्तुत की गईं और कहा गया कि "कविता मुखरित चित्र है और चित्र मूक काव्य।" गोर्जियास ने शाब्दिक प्रभाव को काव्य में अधिक महत्त्व प्रदान किया। उसका कहना है कि "कथित शब्द् में महान शक्ति है; इसके द्वारा भाव तथा दुःख का शमन होता है और आनन्द तथा आत्मविश्वास का प्रकाश काव्य तथा गद्य दोनों में ही ये गुण निहित हैं।" (डॉ. एस. पी. खत्री, आलोचना—इतिहास तथा सिद्धांत, पृ. 19)

उसने मनुष्य के जीवन में काव्य-द्वारा पड़नेवाले प्रभावों का भी गंभीर विवेचन किया एवं छन्द को काव्य का प्रमुख तत्त्व माना। उसका कहना था कि "श्रोताओं को काव्य विचित्र रूप से प्रभावित करता है; उसके द्वारा गांभीर्य, नैतिक भय तथा करुणा का सम्यक् संचार होता है।" त्रासदी की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए उसने बताया कि "दुःखांत की पद्यबद्ध रचना है जो दर्शकों को मनोनुकूल वशीभूत करके उनमें नैतिक भय तथा करुणा का प्रसार, दूसरों के भाग्य-परिवर्तन के दृश्य दिखला कर किया करती है।"

एरिस्टोफ़ेनीज में आलोचक के सभी गुण विद्यमान थे। वह प्राचीन युग की निर्णयात्मकशैली का सफल आलोचक था तथा साहित्य और जीवन के प्रति निकट का संबंध स्थापित कर वास्तविक सौंदर्यानुभूति का व्याख्याता था।

साहित्य-रचना को वह उपयोगी मानता था तथा उसके कलात्मक पक्ष की भी उपेक्षा नहीं करता था। प्राचीन ग्रीक आलोचना को व्यवस्थित करने में उसका महत्त्वपूर्ण हाथ है। एटकिंस का कहना है कि "वह न तो दार्शनिक था और न कोरा विदूषक ही, किंतु आलोचना के इतिहास में वह प्रथम निर्णयात्मक शैली के आलोचक की श्रेणी में आता है, और वह पहला आलोचक है जिसकी रचना को साहित्य की संज्ञा दी जा सकती है।" (दे. The Criticism in antiquity vol I, Page, 32)

Biography (बाइयोग्राफी) जीवनी

क़िसी व्यक्ति का क्रमबद्ध जीवन-वृत्तान्त जीवनी है। जीवनी के लिए जीवन-चरित तथा जीवन-चरित्र शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। जीवनी साहित्य की अन्य विधाओं की तरह कल्पना प्रवण न होकर वास्तविक और तथ्यपूर्ण होती है। इसमें व्यक्ति के गुण, दोष, महानताओं और क्षुद्रताओं सभी का समावेश होता है। जीवनीकार किसी व्यक्ति विशेष का चरित वर्णन करते समय उसके संबंध में अधिकाधिक ज्ञातव्य तथ्य प्रस्तुत करता है। जीवनी को व्यक्ति का इतिहास कहा गया है। डॉ. जॉनसन के विचारानुसार "जीवनीकार का लक्ष्य जीवन की उन घटनाओं और क्रियाकलापों का रंजक वर्णन करना होता है, जो व्यक्ति-विशेष की बड़ी-से-बड़ी महानता से लेकर छोटी-से-छोटी घरेलू बातों तक से संबंधित होते हैं।" जीवन में व्यक्ति के संपूर्ण जीवनवृत्त का समावेश किया जाता है, पर उसके चरित्र के किसी एक पक्ष या जीवन के किसी विशेष काल को भी आधार बना कर जीवनी का निर्माण किया जाता है। अतः, व्यक्ति-विशेष के जीवन की घटनाओं के विवरण को जीवनी कह सकते हैं, जिसमें उसका संपूर्ण अथवा जीवन के किसी अंश विशेष का क्रमबद्ध वृत्त प्रस्तुत किया जाता है। जीवनीकार संबद्ध व्यक्ति की घटनाओं का सुंदर ढंग से विवरण प्रस्तुत कर वास्तविक घटनाओं को कलात्मक ढंग से रखता है जिसमें एक सूत्रता रहती है। जीवनी में घटनाओं का गुंफन काल-क्रम से होना चाहिए। इसमें असंबद्ध घटनाओं का संकलन अवांछनीय माना जाता है। जीवनी लेखक अनेक स्रोतों से सामग्री ग्रहण कर जीवनी लिखता है। वह संबद्ध व्यक्ति पर लिखे गए ग्रंथों, समाचार पत्रों, सरकारी कागजों, व्यक्ति

के पत्र, डायरी, समकालीनों के संस्मरण, उस व्यक्ति के मित्रों तथा संबंधियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं तथा उसके निवास स्थलों का भ्रमण एवं पर्यवेक्षण कर सामग्री प्राप्त करता है।

जीवनी और इतिहास में घनिष्ठ संबंध है। जीवनी वस्तुत: एक व्यक्ति का इतिहास है, अत: इसमें अनिवार्यतः इतिहास का तत्त्व होता है। इतिहास में तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिवेश का चित्रण होता है अर्थात उसमें बाह्य घटनाओं की प्रधानता होती है, पर जीवनी में चरित्र-नायक की आंतरिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जाता है। जीवनीकार को भी इतिहास लेखक की भाँति चरितनायक के जीवन-संबंधी तथ्यों तथा तिथियों की सक्रियता के साथ खोज करनी पड़ती है और वह किंवदन्तियों, कल्पित घटनाओं तथा संदेहास्पद तथ्यों की बड़ी तटस्थता एवं सतर्कता के साथ छानबीन कर उनका ग्रहण या त्याग करता है। जीवनीकार को सदा यथार्थ तत्त्वों की खोज में प्रयत्नशील होना पड़ता है। जीवनी में साधारण घटनाओं का भी अधिक महत्त्व होता है, पर इतिहास में उन्हें गौण स्थान रहता है या उन्हें त्याग दिया जाता है। इतिहास में जहाँ देश, राष्ट्र या जाति को प्राथमिकता होती है, वहाँ जीवनी में व्यक्ति को प्रधानता दी जाती है। इतिहास में स्वयं इतिहासकार का व्यक्तित्व प्रकट नहीं होता, पर जीवनी में जीवनी लेखक पद-पद पर प्रकट होता है।

जीवनीकार का लक्ष्य व्यक्ति के जीवन की घटनाओं का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करना होता है। वह स्वकीय पूर्वाग्रहों का त्याग कर यथार्थ की पूरी तत्परता एवं तटस्थता के साथ निष्पक्ष खोज करता है। जीवनी स्वयं में साहित्य-विधा है, अत: इसमें लेखक की सृजनात्मक प्रतिभा का परिदर्शन होता है। जीवनी में केवल चरित्रनायक के जीवन की घटनाओं का ही संकलन नहीं होता, अपितु उसका शीलनिरूपण भी होता है। आज का जीवनीकार चरित्र-चित्रण पर अधिक ध्यान देता है। प्राचीन समय में महापुरुषों की जीवनियाँ उनकी मृत्यु की घटनाओं से प्रारंभ होतीं थीं, तत्पश्चात चरित्रनायक के जीवन की अन्य घटनाओं का गुंफन होता था, पर सम्प्रति यह पद्धति प्रचलित नहीं है। जीवनी में किसी व्यक्ति के जीवन की शुष्क घटनाएँ ही नहीं रहती अर्थात उसे नीरस इतिहास नहीं कहा जा सकता। इसमें लेखक के हृदय की भावुकता तथा सहृदयता भी अनुस्यूत होती है तथा उसमें जीवनीकार का व्यक्तित्व भी मुखरित होता है; फलत: उसमें

आद्यंत सरसता विद्यमान रहती है। जीवनीकार उपन्यास की भाँति घटनाओं की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और व्यक्तित्व-प्रकाशन पर बल देता है।

सफल जीवनी लिखना बड़ा कठिन कार्य है। जीवनीकार को तटस्थ भाव से कटु सत्यों एवं तथ्यों के प्रकाशन पर बल देना होता है और उसे तथ्यों के प्रति ईमानदारी प्रदर्शित करनी पड़ती है। उसे चरित्रनायक के गुणों के साथ उसके दोषों को भी प्रस्तुत करना पड़ता है। जीवनीकार सत्यान्वेषी बन कर ऐसे कलात्मक साहित्य की सृष्टि करता है जो कल्पना-रहित उपन्यास की भाँति सरस और मनोरंजक होता है। शुद्ध कलात्मक जीवनी में नैतिक उपदेश या शुष्क ज्ञान का महत्त्व न्यून होता है। षीवनीकार सामाजिक इतिहासकार, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक की भाँति चरित्रनायक के जीवन की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पीठिका प्रस्तुत कर चरित्र के व्यक्तित्व को प्राणवंत बना देता है। उसकी सफलता इस रूप में निहित है कि वह जीवननायक के अंतरंग और बहिरंग व्यक्तित्व का आँखों देखा वर्णन करे और उसे स्वाभाविक और सहज ढंग से अभिव्यक्त कर दे। यह आवश्यक नहीं कि जीवनीकार चरित्रनायक से परिचित ही हो, किंतु उसे विषय का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए जिससे कि पाठक को यह ज्ञात हो जाए कि लेखक चरित्रनायक का अंतरंग मित्र रहा हो।

Biographical Criticism (बाइयोग्राफिकल क्रिटिसिज्म) चरितमूलक आलोचना– दे. The Criticism

Boileau (ब्वालो) (1636-1711)

फ्रेंच आलोचक। वह नव्यशास्त्रवाद का अग्रदूत माना जाता है। उसका व्यक्तित्व महान था। उसने काव्य को अनुशासन के बँधनों में बाँध कर अपनी प्रखर अनुशासनप्रियता का प्रदर्शन किया था। उसने 1674 ई. में अपना प्रसिद्ध पत्र-काव्य लिखा और अपनी विख्यात रचना 'ल आर्त पोएतिक' (काव्यकला) के कारण कालजयी आलोचक बना। उसने लोंजाइनस कृत (काव्य में उदात्ततत्त्व) का फ्रेंच में अनुवाद भी किया था। उसकी आलोचनाओं में फ्रांसीसी साहित्य की समस्त विशिष्टताओं का समावेश हुआ है। प्राचीन साहित्य संबंधी मान्यताओं को युगानुरूप रूप प्रदान करने का श्रेय ब्वालो या बुअलो को है। उसने आभिजात्यवादी कला के आदर्श को चरम सीमा पर पहुँचा दिया है। वह सत्य और सुंदर में अन्योन्याश्रय संबंध की परिकल्पना करता है। जो सत्य नहीं है, वह

सुंदर भी नहीं है और जो प्रकृति में विद्यमान है, वही सुंदर हो सकता है। आभिजात्यवाद की मान्यता के अनुसार सत्य सौंदर्य की कसौटी है और सौंदर्य तत्त्व के आधान के लिए कविता का प्रकृति पर आश्रित होना आवश्यक है। बुअलो मानता था कि प्रत्येक कवि या कलाकार प्राचीन नियमों और सिद्धांतों से अनुशासित होकर रचना करे, जिससे अत्यधिक भावुकता और अत्यधिक अलंकार-प्रियता से उसका संतुलन नष्ट न हो सके।

बुअलो की 'काव्यकला' चार अध्यायों में विभक्त है जिसमें कला के सामान्य सिद्धांत, ग्रामकाव्य, एलेजी, सॉनेट, गीतिकाव्य, व्यंग्य, नाट्यकाव्य और महाकाव्य के अतिरिक्त सामान्य सिद्धांतों का प्रतिपादन कर समसामयिक लेखकों को अपनी कला की प्रतिष्ठा के प्रति आदर का भाव व्यक्त करने को कहा गया है। वह भाषा की शुद्धता का कायल था। उसके अनुसार जो कुछ भी लिखा जाए उसमें भाषा पर अच्छी तरह ध्यान दिया जाए और ऊँची-से-ऊँची उड़ान भरते हुए भी भाषा के प्रति लेखक असावधान न रहे। "सर्वत्र शुद्ध अर्थ देने वाली एकांततः निर्दोष कविता भी सदोष भाषा होने पर हमें अप्रसन्न करती है। कोई भी पाठक न तो बर्बरतापूर्ण पदावली की प्रशंसा कर सकता है और न उसे क्लिष्टता, कृत्रिमता अथवा शब्दाडंबर ही प्रिय हो सकते हैं।" काव्यकला।

"काव्यरचना विवेक के नियमों के अनुरूप होनी चाहिए।" "सौभाग्यशाली कवि वह है जो अपनी कविता में गंभीर और सरल, सुखद और कठोर दोनों का समावेश करता है।"

Bradley. A.C. (ए. सी. ब्रैडले) – (1851-1935 ई.)

अँग्रेजी आलोचक। ब्रैडले का जन्म 26 मार्च 1851 ई. में चैल्टहम में हुआ था। वह ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था। उसने 1904 ई. में 'शेक्सपीरियन् ट्रेजेडी' (शेक्सपीयर की त्रासदी) नामक अपने युग प्रवर्त्तक ग्रंथ को प्रकाशित किया जिसने उसे अमरत्व प्रदान किया। उसकी द्वितीय कृति "ऑक्सफोर्ड लेक्चर्स ऑन पोइट्री" अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जिसमें 'कला-कला के लिए है' नामक सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है।

ब्रैडले कला का उद्देश्य कला मानने वाले आलोचकों की श्रेणी में है, जिसके अंतर्गत पेटर, ह्विसलर आदि आते हैं। उसने 'काव्य काव्य के लिए हैं' नामक निबंध में कलावादी सिद्धांत के समर्थन में गंभीर विचार प्रकट किया है। उसके

अनुसार कला का मूल्यांकन केवल सौंदर्य के ही निष्कर्ष पर होना चाहिए और वह नीति के नियंत्रण से अछूती रहे। कला का अपना स्वतंत्र , पूर्ण और निरपेक्ष जगत् होता है। वह कविता को कविता के आधार पर परखने पर बल देता है और काव्य की विवेचना काव्य तत्त्वों—विषय, रूप, छन्द, लय शब्द-प्रयोग के आधार पर करना आवश्यक मानता है। उसके अनुसार कविता अनुभवों का प्रेषण है और उसी के आधार पर उसका मूल्यांकन होना चाहिए। "अरस्तु इस अनुभव के संबंध में 'काव्य काव्य के लिए' सूत्र क्या कहता है? जहाँ तक मैं समझता हूँ उसमें निम्न बातें व्यक्त होती हैं: एक तो यह कि यह अनुभव स्वयं अपना साध्य है, वह अपने ही कारण ग्राह्य है, उसका अंतरंग मूल्य है। दूसरे यह कि इसका काव्य-मूल्य अंतरंग गुण ही है। संस्कृति अथवा धर्म का साधन होने के नाते काव्य का वहिरंग मूल्य भी हो सकता है, उससे शिक्षा मिलती है, वासनाओं का संस्कार होता है, किसी श्रेयस्कर प्रयोजन को प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि उससे कवि को यश, अर्थ या निर्विकार अन्तःकरण की उपलब्धि होती है। इन सबका महत्त्व है: इन कारणों से भी काव्य की प्रतिष्ठा होने दीजिए। किंतु, यह बहिरंग मूल्य काव्य-मूल्य नहीं है, और न यह प्रत्यक्षतः उसका निर्धारण ही कर सकता है। काव्य-मूल्य तो परितोपकारी कल्पनात्मक अनुभव है और इसका मूल्यांकन पूर्णतः आभ्यंतरिक ही हो सकता है। इन दो बातों के अतिरिक्त यह सूत्र एक तीसरी बात भी कहता है, यद्यपि वह आवश्यक नहीं। काव्य-सृजन की प्रक्रिया में कवि द्वारा अथवा अनुभव की प्रक्रिया में पाठक द्वारा बहिरंग मूल्यों की ओर ध्यान देने से काव्य-मूल्य के क्षय की आशंका रहती है। बहिरंग मूल्य काव्य को अपने वातावरण से दूर हटाकर काव्य की प्रकृति में ही परिवर्तन लाने की ओर उन्मुख होते हैं। काव्य की प्रकृति वस्तु जगत् (जैसा कि इस पदोच्चय से हम सामान्यतः समझते हैं) का अंश रूप या उसकी प्रतिकृति होना नहीं है, वह तो अपने आप में एक निरपेक्ष, सम्पूर्ण एवं स्वायत्त जगत् होता है। इस जगत् पर प्रभुत्व पाने के लिए इसमें प्रवेश करना, इसके नियमों का पालन करना, और उन विश्वासों, लक्ष्य प्रयोजनों एवं विशिष्ट स्थितियों की सम्प्रति उपेक्षा करना आवश्यक है, जिनसे वस्तुजगत् में हम बँधे रहते हैं।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 233-234) उसके अनुसार "कविता उन अनुभवों-ध्वनियों, बिम्बों, विचारों, भावों का तारतम्य है जिनसे होकर हमें उस समय तक गुजरना पड़ता है जबकि कविता को हम अधिक-से-अधिक काव्योचित रूप में पढ़ते हैं।" (वही, पृ.233)

कलावादी मत-विषयक भ्रांतियों का निराकरण करते हुए ब्रैडले ने कहा, कि 'कलाकला के लिए' का अभिप्राय यह नहीं कि कला अपने में साध्य है, अपितु इसका आशय यह है कि कला मानव-जीवन का सम्पूर्ण अथवा सर्वोच्च साध्य है। वह कविता को एक प्रकार का मानव-हित ही स्वीकार करता है और "इस प्रकार के हित अंतरंग मूल्य का निर्धारण दूसरे का प्रत्यक्ष निर्देश करके नहीं करना चाहिए।" ब्रैडले इस आक्षेप को स्वीकार नहीं करता कि यह मत काव्य को जीवन से विच्छिन्न कर देता है। वह मानता है कि जीवन और काव्य में एक प्रकार का प्रच्छन्न संबंध है। ये समानांतर विकसित रूप हैं जो परस्पर मिलते नहीं। किंतु इसी कारण काव्य न तो जीवन है और न वस्तुतः जीवन की प्रतिकृति ही। "अतः, इसमें संदेह नहीं कि काव्य में काव्य-मूल्य होने का एक प्रमुख कारण यह है कि वह अपने ढंग से हमें कोई ऐसी वस्तु प्रदान करता है, जो दूसरे रूप में हमें प्रकृति अथवा जीवन में प्राप्त होती है, किंतु फिर भी काव्य-मूल्य की कसौटी यही होगी: क्या काव्य हमारी कल्पना को परितोष देता है?" वह इस विचार का खंडन करता है कि यह सूत्र काव्य को अर्थहीन कर देता है।

Burlesque (बरलेस्क) विद्रूप, परिहास

एक ऐसी साहित्यिक रीति, जिसमें किसी घटना, व्यक्ति या साहित्यिक कृति की मखौल उड़ाई जाए। इसमें संयम और नियंत्रण के अभाव में हास्य और व्यंग्य की प्रवृत्ति प्रकाशित होती है। रचयिता किसी महनीय विषय का हास्यास्पद निरूपण करता है अथवा किसी तुच्छ विषय को व्यर्थ का महत्त्व प्रदान कर उसका गंभीर वर्णन करता है। अँग्रेजी में चॉसरकृत 'टोपास की कथा' इसका सुंदर उदारहण है।

Caricature (कैरिकेचर) विद्रूपचित्र

जब चित्रकला, नाटक अथवा साहित्य में किसी के स्वभावगत या चारित्रिक वैशिष्ट्य का विकृत चित्रण किया जाए तो उसे कैरिकेचर कहते हैं। इसका उद्देश्य हँसाना है। इसमें तथ्य को बहुत बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत किया जाता है।

Cartoon (कार्टून) व्यंग्य चित्र

सम्प्रति इसका प्रयोग सामाजिक अथवा राजनीतिक विषयों से संबद्ध व्यंग्यात्मक चित्रों के लिए किया जाता है। ऐसे चित्र समाचार पत्रों में आए दिन अधिक दिखाई पड़ते हैं। इनमें समसामयिक विषयों या दैनिक जीवन में घटनेवाली घटनाओं का व्यंग्य चित्र खींचा जाता है। कार्टून का शाब्दिक अर्थ किसी चित्र की प्रारंभिक रूपरेखा है, पर आज कल इसका व्यवहार व्यंग्य चित्र के रूप में होता है।

Catastrophe (कैटास्ट्रॉफी) निर्वहण – नाटक का एक तत्त्व। (दे. The Drama या नाटक)

■

Catharsis (कैथार्सिस) विरेचन

अरस्तू ने त्रासदी का विवेचन करते हुए उसकी परिभाषा के अंतर्गत कैथार्सिस का उल्लेख किया है। उनके अनुसार "अरस्तु त्रासदी किसी गंभीर, स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है .... जिसमें करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारों का उचित विरेचन किया जाता है।" (काव्यशास्त्र, पृ.19) उसने राजनीति नामक ग्रंथ में भी संगीत के प्रभाव का वर्णन करते हुए विरेचन की चर्चा की है। "किंतु, दूसरों का संगीत सुनने के समय (अर्थात संगीत-सभाओं में या रंगमंच पर)" हम कार्य (उत्साह) और आवेग को अभिव्यक्त करने वाले रागों का भी आनन्द ले सकते हैं; क्योंकि करुणा और त्रास अथवा आवेश कुछ व्यक्तियों में बड़े प्रबल होते हैं, और उनका न्यूनाधिक प्रभाव तो प्रायः सभी पर रहता है। कुछ व्यक्ति 'हाल' की दशा में आ जाते हैं, किंतु हम देखते हैं कि धार्मिक रागों के प्रभाव से—ऐसे रागों के प्रभाव से, जो रहस्यात्मक आवेश को उद्बुद्ध करते हैं—वे शांत हो जाते हैं, मानो उनके आवेश का शमन और विरेचन हो गया हो। करुणा और त्रास से आविष्ट व्यक्ति- प्रत्येक भावुक व्यक्ति इस प्रकार का अनुभव करता है, और दूसरे भी अपनी-अपनी संवेदन-शक्ति के अनुसार प्रायः सभी इस विधि से एक प्रकार की शुद्धि का अनुभव करते हैं, उनकी आत्मा विशद और प्रसन्न हो जाती है। इस प्रकार विरेचक-राग मानव-समाज को निर्दोष आनन्द प्रदान करते हैं। (राजनीति भाग, 8 अध्याय 7, डॉ. नगेन्द्र कृत अरस्तू का काव्यशास्त्र, भूमिका, पृ. 86)

विरेचन शब्द चिकित्साशास्त्र से संबद्ध है जिसका अभिप्राय रेचक औषधि द्वारा शारीरिक विकारों या उदर-विकार की शुद्धि है। अरस्तू ने अपने समय में या उससे पूर्व प्रचलित इस शब्द को ग्रहण कर, जो चिकित्साशास्त्र में प्रचलित था, लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त किया। उनके व्याख्याताओं ने इसके तीन अर्थ किए थे जो धर्मपरक, नीतिपरक तथा कलापरक। धर्मपरक अर्थ के अनुसार विरेचन बाह्य उत्तेजना तथा उसके शमन द्वारा आत्मिक शुद्धि और शांति का द्योतक है। नीतिपरक अर्थ में यह विचार किया गया कि यह विकारों की उत्तेजना से उत्पन्न अंतर्वृत्तियों का शमन एवं मानसिक शांति तथा परिशुद्धि है। कलापरक अर्थ में बताया गया कि विरेचन का अभिप्राय कलात्मक परिष्कार से है। त्रासदी मानसिक संतुलन स्थापित कर पाठकों या दर्शकों का कलात्मक परिष्कार करती है।

विद्वानों ने अरस्तू के विचारों का भी अनुसंधान कर उसके विरेचन-संबंधी अभिप्राय को जानने का प्रयास किया है। अरस्तू ने त्रासदी का प्रयोजन मन के सामंजस्य एवं तज्जन्य विशदता को माना है। उसके मतानुसार त्रासदी के आस्वाद के तीन तत्त्व हैं— उद्वेग के शमन से उत्पन्न मनः शांति, भावों के परिष्कार की अनुभूति तथा कलाजन्य चमत्कार। (डॉ. नगेन्द्र) "इसका अभिप्राय यह हुआ कि त्रासदी का आनन्द या तो मन:शांति की सुखद स्थिति मात्र है, या फिर वह कला के आनन्द से (जो प्रर्याप्त मात्रा में बौद्धिक होता है) एकात्म है।" (वही, डॉ. नगेन्द्र) अरस्तू ने विरेचन-सिद्धांत के द्वारा त्रासदी के आस्वाद की समस्या का अपने ढंग से समाधान उपस्थित किया है। विरेचन द्वारा मन सर्वथा विशुद्ध हो जाता है और मानसिक उत्तेजना उपशमित हो जाती है। मन:स्थिति के कटु विकारों से मुक्त हो जाने पर मन विशद हो जाता है। त्रासदी के देखने से दर्शक के हृदय में भय और करुणा के संचार द्वारा हृदय का परिमार्जन या परिष्करण होता है।

Chapter (चैप्टर) अध्याय, परिच्छेद—उपन्यास अथवा विचार प्रधान अन्य साहित्य-रूप के विभिन्न विभागों का नाम चैप्टर है।

Character (कैरेक्टर) पात्र या चरित्र—नाटक, उपन्यास, कहानी या काव्य के पात्रों को कैरेक्टर कहते हैं। इसका प्रयोग व्यक्ति के चरित्र के लिए भी होता है।

Characterization (कैरेक्टराइजेशन) चरित्रचित्रण

जब किसी रचना-उपन्यास, नाटक, कहानी, महाकाव्य आदि—में पात्रों का 'चारित्रिक निरूपण हो तो उसे कैरेक्टराइजेशन कहते हैं। प्राचीन समय में कथा

या कथानक को रचना का मूलतत्त्व माना जाता था, पर यह आधुनिक युग' में पात्रों के शीलनिरूपण पर अधिक बल दिया जाता है। लेखक विभिन्न परिस्थितियों में पात्रों को डाल कर उनकी मनःस्थिति का चित्रण करता है और इस कार्य में वह जितना अधिक कौशल दिखलाता है उतनी ही उसकी सफलता सिद्ध होती है। चरित्र-चित्रण तीन प्रकार से संभव है—स्वयं लेखक किसी चरित्र के बारे में क्या कहता है, अन्य पात्र उसके विषय में क्या कहते हैं और वह पात्र अपने विषय में क्या कहता है। चरित्र का विकास वार्तालाप या कथोपकथन द्वारा होता है। लेखक प्रत्यक्ष रूप से विशेषताओं के द्वारा और परोक्ष रूप से कार्यकलापों के द्वारा चरित्रिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। परोक्ष चित्रण को अधिक कलात्मक माना गया है और प्रत्यक्ष चित्रण में स्पष्टता तथा तीव्रता दिखाई पड़ती है।

Chronicle Play (क्रॉनिकल प्ले) इतिवृत्त नाटक

आख्यानात्मक नाटक को इतिवृत्त नाटक कहते हैं। इसमें लेखक किसी शासक विशेष का गुणानुवाद करता है, इतिहास का इससे कोई संबंध नहीं रहता; इसमें घटनाएँ शृंखलाबद्ध नहीं होतीं। नाटककार का उद्देश्य राष्ट्रीय भावना का आख्यान करना होता है।

Cicero (सिसरो) ई. पू. 106-43

प्रसिद्ध रोमी भाषण शास्त्री तथा रीतिशास्त्री। सिसरो रोमी समीक्षा का पुरस्कर्ता माना जाता है, लैटिन गद्य-शैली को सँवारने में उसका महत्त्वपूर्ण योग है। लैटिन वाक्य-विन्यास को नियमन करने, उसके शब्द-भंडार की वृद्धि करने, उसे सँवारने और साहित्यिक अभिव्यक्ति के योग्य बनाने में उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और भाषा की नमनीयता को बढ़ाकर उसे सर्वाधिक सम्पन्न भाषा बनाया। उसने वक्तृत्वकला-संबंधी तीन ग्रंथों की रचना की है—दे ओरातोरे (Deoratore) (वक्ता का चरित्र), ब्रूटस (Brutus) (सुप्रसिद्ध वक्ताओं की विशेषताएँ) तथा The orator। 'दे ओरातोरे' में सिसरो के वक्तृत्वकला संबंधी संवाद हैं जिसमें अरस्तू तथा इसी क्रैतीस प्रभृति प्राचीन लेखकों की रचनाओं को आधार बनाकर भाषणशास्त्र का विवेचन किया गया है। 'ब्रूटस' की रचना रेखाचित्र के रूप में की गई है। यह भी संवादात्मक रचना है जिसमें यूनान और रोम के विख्यात भाषणकर्ताओं के रेखाचित्र प्रस्तुत किए गए हैं। 'दे ओरेटर' में

किया, जिनमें ग्रीक और रोम की क्लासिक कही जानेवाली रचनाओं के गुण विद्यमान थे। क्लासिसिज्म में बाह्य रूपों के प्रति आकर्षण होता है, जो बाह्य आकार-प्रकार, गठन, सुंदर समंजस योजना, अनुपात, तथा संतुलन की गरिमा से मण्डित रहता है। परंपरा के प्रति वह जागरूक रहता है और मानव जाति की समस्याओं का अध्ययन करता है। उसमें नैतिकता, संयम, परम्परानिष्ठा, अनुभूति, चारुता और शांति पाई जाती है। उसका रूप चरम सौंदर्य से युक्त रहता है और उसमें प्रशांत आकर्षण विद्यमान रहता है। क्लासिकल रचनाओं में सर्वोच्च आदर्शों का रूपायन, सौंदर्य के साथ-साथ पूर्णता एवं अनुपात के शाश्वत मान का निर्वाह किया जाता है।

टी. एस. इलियट ने पूर्ण विकसित सभ्यता की देन को क्लासिक रचना माना है, जिसमें पूर्ण विकसित सभ्यता का चिंतन और मनन की प्रतिच्छाया रचनाकार के मानस में दीख पड़ती हो। यह रचना संबद्ध भाषा की पूर्ण विकसित सम्भावनाओं से युक्त तथा जाति की आत्मा का पूर्ण प्रतिनिधि करने वाली हो एवं उसमें सार्वभौम कृति बनने के गुण विद्यमान रहे। इसमें मानव जाति की गहन दार्शनिक समस्याओं एवं मान्यताओं पर विचार किया जाता हो। श्लेगल (1772-1829 ई.) के अनुसार क्लासिक का अर्थ है 'असीमता से जुड़े हुए भावों और संवेगों को सीमा में बँधे रूप में अभिव्यक्ति देने का प्रयास'। स्वच्छन्दतावादियों के अनुसार क्लासिकल कलाकार विभिन्न सभ्यताओं की देन होते हैं और उन सभ्यताओं की आध्यात्मिक दृष्टिभंगी उनकी रचनाओं में अत्यंत गहराई तक पहुँच गई है। क्लासिकल रचनाओं में संचरना की एकता और सामंजस्य का प्राधान्य रहता है। इसमें भाषा और अभिव्यक्ति में कृत्रिमता रहती है और रूपविधान तथा आकृति पर अधिक ध्यान दिया जाता है। कलानैपुण्य, छन्दविधान तथा व्याकरणादि के नियम इसमें प्रधान रहते हैं और अभ्यास को काव्यरचना की सफलता का कारण माना जाता है। उसमें कल्पना की उड़ान रहती है, पर उस पर एक प्रकार का संयम और नियंत्रण रहता है वह शांति में ही संतोष का अनुभव करता है और अनुरूपता में सौंदर्य का अस्तित्व स्वीकार करता है। क्लासिजिज्म के अनुसार मनुष्य असाधारण भाव से स्थित शील तथा सीमा में निबद्ध प्राणी है, उसकी प्रकृति पूर्णतः अपरिवर्तनशील है। वह परम्परा और सुनियोजन के द्वारा ही कुछ अच्छा प्राप्त करना चाहता है।

पुनर्जागरण के पश्चात यूरोप में क्लासिसिज्म का प्रचार-प्रसार हुआ। इटली में मध्ययुग में भी आभिजात्यवादी परम्पराएँ प्रचलित थीं और जब साहित्य का नेतृत्व फ्रांस में आया तो वहाँ के विद्वानों ने इस मत का निरूपण और विश्लेषण किया। फ्रांस का प्रसिद्ध आलोचक ब्यालो इस विचार का अनुगामी था। इंगलैंड में सिडनी और बेन-जॉनसन ने इस मत की स्थापना की थी, पर तत्कालीन विद्वानों ने इसका विरोध किया। सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में ड्राइडन द्वारा यह मत प्रतिपादित किया गया और 18वीं शताब्दी में डॉ. जानसन ने इसे सुदृढ़ आधार प्रदान किया। जर्मनी में लेसिंग क्लासिसिज्म का प्रबल समर्थक था। इंगलैंड में क्लासिकल विचारधारा का प्रभाव सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक सृजनात्मक साहित्य पर भी पर्याप्त दिखाई पड़ा।

उस कलाकृति को क्लासिक कहा जाता है, जो स्थाई रूप से आनन्द प्रदान करने में सक्षम हो। वह सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय, गम्भीर साहित्य का द्योतक है। स्कॉटजेम्स ने क्लासिकल और रोमांटिक साहित्य में अंतर स्थापित करते हुए कहा है—"एक सदा मध्यम मार्ग की खोज में रहता है, दूसरा अति की, क्लासिक को शांति पसंद है रोमांटिक को साहसिकता आकर्षित करती है। एक परंपरा की ओर देखता है, दूसरे में नूतनता की चाहना होती है। एक के पक्ष में वे सब गुण और दोष आ सकते हैं जिनका संबंध चुस्ती, दुरूस्ती, औचित्य, संतुलन, संयम, गतानुगतिकता, अनुशासन, शांति, अनुभव के साथ है। दूसरे पक्ष में उन गुणों और दोषों का समावेश है जो आवेश, शक्ति, आकुलता, आध्यात्मिकता, कौतूहल, पक्षुब्धता, प्रगति, स्वातंत्र्य प्रायोगिकता और उत्तेजना की भावनाओं के साथ-साथ चला करते हैं।" (रोमांटिक साहित्यशास्त्र, पृ.21)

क्लासिसिज्म में काव्य तथा कला के व्यक्त सौंदर्य प्रसाधनों, सुंदर-शब्द और आकृतियों के प्रति आग्रह का भाव प्रदर्शित होता है। जब यह निर्माण-संबंधी नियमों में आवद्ध हो जाता है तब इसकी अतिवादी स्थिति प्रकट होती है। इस प्रकार क्लैसिक काव्य में काव्य के शरीरपक्ष के प्रति आग्रह का भाव दिखलाई पड़ता है और बाह्य रूप या आकृति की सूक्ष्माति सूक्ष्य पाबंदी में इसका अतिवादी रूप प्रखर हो उठता है। क्लैसिक कवि ने परिपूर्णता की कल्पना साकार मूर्ति के सौंदर्य में की है। इसमें साधारण पात्रों को ऊँचे रूप में चित्रित किया जाता है और चित्रणशैली में भी असाधारणता झलकती है। वह साधारण भाषा की अपेक्षा परिष्कृत और स्तरीय पदावली का प्रयोग करता है। क्लैसिक वर्ग का समीक्षक

वस्तु और शैली को दो पृथक् तत्त्व मान कर दोनों के अलग-अलग सौंदर्य का पोषण करता है। क्लासिसिज्म साहित्यिक पूर्णता के स्थिर और स्वत: पूर्ण आदर्श का परिचायक है। इसे यूनानी साहित्य की सौंदर्यवादी मान्यताओं की एक लम्बी शृंखला का ऐतिहासिक क्रम कहा जा सकता है जिसका स्वरूप आद्यन्त एक होते हुए भी विभिन्न युगों में युगोचित मान्यताओं के द्वारा विवेचित किया गया है।

Climax (क्लाइमैक्स) चरम सीमा, उत्कर्ष

एक प्रकार का अलंकार जिसमें पदार्थ के उत्कर्ष का क्रमश: विकास किया जाता है। नाटक या किसी कथा में भी चरम सीमा की स्थिति होती है। इस स्थिति में घटनाएँ विपरीत दिशा की ओर बढ़ती हैं। (दे. The Drama)

Closet Drama (क्लोजेट ड्रामा) पाठ्यनाटक

ऐसे नाटकों या पद्यरूपकों की संज्ञा पाठ्य नाटक है, जिनकी रचना अभिनय के लिए न होकर पढ़ने या सुनने के लिए होती है। ऐसे भी पाठ्य नाटकों का सर्जन हुआ है, जो अभिनय की दृष्टि से नहीं लिखे गए, पर उनका सफल अभिनय हुआ। साथ ही कुछ ऐसी भी नाट्य कृतियाँ हैं, जो अभिनय की दृष्टि से लिखी गई, पर रंगमंच पर वे सफल न हो सकी अर्थात उनमें अभिनय गुणों का सर्वथा अभाव पाया गया। ऐसा भी संभव है कि किसी युग विशेष में जो पाठ्य नाटक लिखे गए आगे चल कर उनका मंचीकरण हुआ। सभी देशों के नाटककारों ने ऐसे नाटकों की रचना की है, जो मुख्यत: पाठ्य थे। नाटककार अपने को रंगमंच की परिधि में न रख कर नाटक की रचना करता है, पर उसमें अभिनय गुण पूर्णत: विद्यमान रहते हैं और किंचित् परिवर्तन के साथ उन्हें रंगमंच पर सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया जा सकता है। गेटे का 'फाऊस्ट' ऐसा ही नाटक है।

Clown (क्लाउन) विदूषक–नाटक में हास्योत्पादक पात्र को क्लाउन कहते हैं।

Comedy (कॉमदी)

कॉमदी या सुखांत नाटक में जीवन की साधारण घटना का वर्णन होता है और लेखक ऐसी (कार्य) घटनाओं का अनुकरण करता है जो अभिहस्य और अपूर्ण होती हैं। इसका मुख्य लक्ष्य है मानव जीवन की त्रुटियों और आचरण के दोषों को उपहासास्पद बनाना। इसमें दर्शकों को हँसा कर उन्हें आनन्दपूर्ण शिक्षा प्रदान

की जाती है तथा निजी जीवन के दोषों और घरेलू जीवन का स्पष्टीकरण किया जाता है। कॉमदीकार मानवजीवन के साधारण अवगुणों का उपहासपूर्ण प्रदर्शन करता है। इसमें हास्य और सुधार दोनों आवश्यक माने गए हैं तथा कूटयुक्ति और प्रपंचपूर्ण कार्य-व्यापार का संपादन लोकप्रिय शैली में किया जाता है। इसके कार्य साहसपूर्ण, स्वाभाविक और यथार्थ जीवन से संबद्ध होते हैं। इसमें मनुष्यों की मूर्खता और अनौचित्य के दर्शन होते हैं। आकस्मिक नवीनता हास्य का प्राण होता है। हेनरी फील्डिंग के अनुसार कॉमदी के हास्य का आधार मनुष्य का दिखावा, गर्व तथा पाखण्ड का उपहास है। जब हम किसी व्यक्ति का बनावटी व्यवहार देखते हैं तो हमें उस पर आश्चर्य होता है, तत्पश्चात आनन्द मिलता है। पाखण्डी मनुष्य के बनावटी व्यवहार से हमें साधारणतया अधिक आश्चर्य होता है, फलत: हमारे आनन्द की मात्रा भी अधिक होती है।

इसमें लेखक जीवन की असमरूपता, असंगति तथा असंबद्धता को उपहास की दृष्टि से देख कर हास्यास्पद बना कर हास्य की सृष्टि करता है। जब कभी वह समाज में अथवा व्यक्ति के चरित्र में अनुचित गर्व, पाखण्ड, बनावट, अनौचित्य, दु:शीलता, छल, तर्कविहीनता, अशिष्टता, अज्ञान, डींग, शेखी, मिथ्याभिमान, अस्थिरता, निर्लज्जता, चापलूसी हठधर्म, अंधविश्वास, असंयम तथा असंगति देखता है तो वह कॉमदी के माध्यम से सहज रूप से छींटे कस कर हास्य की योजना करता है। इसमें हमारे मानसिक हास्य की छाया विद्यमान रहती है। कॉमदी भावनाओं को जाग्रत न कर नैतिक दृष्टि से संशोधन और परिमार्जन का कार्य संपन्न करती है।

हेनरी बर्गसाँ के अनुसार कॉमदी का हास्य मनुष्य से संबद्ध होता है और इसका प्राण समाज में निहित है। यह कृत्रिमता, असंगति और हठधर्मिता का शत्रु है। इसमें भावनाओं की जागृति की अपेक्षा मानसिक जागृति रहती है। इसके हास्य का ध्येय मनुष्य का दर्प-दमन, संशोधन तथा सुधार है। यह एक प्रकार से समाज के विरुद्ध चलने वाले से प्रतिशोध लेती है। इसका उद्देश्य क्षति न पहुँचा कर केवल ऐसे छींटे कसना है जिससे सहज ही में आनन्द आए। (नाटक की परख, पृ.206-207) कॉमदी का अंत सदा सुखद (सुखांत) होता है और इसका मूल विषय हास्य होता है, जो क्लेशकारी और अमंगलदायक नहीं होता। इसकी कथावस्तु प्राय: काल्पनिक हुआ करती है, प्रसिद्ध नहीं। इसमें त्रासदी के कथानक के सभी गुण विद्यमान रहते हैं, फलत: सम्भाव्यता, एकान्विति, कुतूहल, पूर्वापर क्रम

आदि इसमें भी होने चाहिएँ और स्थिति विपर्यय तथा अभिज्ञान का भी चमत्कार रहे। इसके पात्र खल न होकर, अभिहस्य हों और उनमें किसी प्रकार की कुरूपता तथा विकृति न हो। त्रासदी की भाँति यह भी क्लासिकल या रोमांटिक होती है।

(कॉमदी के तात्त्विक विवेचन के लिए दे. अरस्तू Aristotle)

इसके निम्नलिखित भेद होते हैं—

Comedy of Erras– इसमें किसी घटना या तथ्य को समझने में गलती के क़ारण उत्पन्न भ्रांति का वर्णन होता है या किसी व्यक्ति में वास्तविक रूप को न समझने के कारण भ्रांति का वर्णन होता है। गोल्डस्मिथ कृत 'शीस्टूप्स टू कंकर' इसका उदाहरण है।

Comedy of Manners– इसमें समाज की त्रुटियों और कुरीतियों का वर्णन किया जाता है। इसका कथानक मनोरंजक और चरित्र-चित्रण समृद्ध हुआ करता है। इसमें लेखक भाषा का मनोरंजक प्रयोग कर दर्शकों का मनोरंजन या मनःप्रसादन करता है। इसका उदाहरण शेक्सपियर कृत 'लब्स लेवर्स लॉस्ट' है।

Sentimental Comedy– इसका उद्देश्य मानव हृदय को स्पर्श कर सहानुभूति जगाना तथा हँसाना है। इसका निर्माण Restoration comedy के प्रतिक्रिया-स्वरूप हुआ था, जिसमें कठोरता और रूक्षता का वर्णन होता था।

Comedy of Character of Humours–इसमें व्यक्तियों के चरित्र पर बल दिया जाता है और चारित्रिक गुणों का उद्घाटन किया जाता है। लेखक व्यक्तियों के व्यावहारिक दोषों और आडम्बरपूर्ण आचरणों का वर्णन नहीं करता। यह अपेक्षाकृत गंभीर रचना है जिसमें व्यंग्य की प्रधानता रहती है। शेक्सपियर का 'ऐज यू लाइक इट' इसका सुंदर उदाहरण है।

Comparative Criticism (कम्परेटिव क्रिटिसिज्म) – तुलनात्मक आलोचना दे. Criticism

Communication (कम्यूनिकेशन) सम्प्रेषण–दे. I.A. Richards.

Connoisseur (कॉनॅयसर) कला पारखी–जो कलाशास्त्र के सूक्ष्मताओं का जानकार, ललितकला के तत्त्वों, शिल्प एवं सिद्धांतों से परिचित हो, उसे कलापारखी कहते हैं।

Counter Plot (कॉउण्टर प्लॉट) प्रतिकथानक– किसी रचना या नाटक की प्रासंगिक कथा को प्रतिकथानक कहते हैं।

Creative genius (क्रिएटिव जीनियस) – सर्जनात्मक प्रतिभा या कारयित्री-प्रतिभा – दे. Genius

Critic (क्रिटिक) आलोचक– दे. Criticism

Critical Essay (क्रिटिकल एस्से) – आलोचनात्मक निबंध

दे. Essay तथा Criticism

Critism (क्रिटिसिज्म) आलोचना

आलोचना या समालोचना साहित्य की उस कोटि में आती है, जिसमें उसके आधारभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जाए और उस मूलभूत सिद्धांत के आधार पर किसी साहित्यिक कृति या साहित्यकार का मूल्यांकन, परीक्षण और उसके गुण-दोष का विवेचन हो। इस प्रकार आलोचना के दो कार्य हुए साहित्य के सामान्य सिद्धांतों का निर्धारण और उसके आधार पर साहित्यिक रचनाओं का मूल्यांकन, स्पष्टीकरण एवं उनमें निहित मान्यताओं एवं कलात्मक विचारों का विश्लेषण।

समालोचना शब्द का अर्थ है सम्यक्रूप से या अच्छी तरह से देखना। यह शब्द सम् + लुच् + टाप् के योग से बना है। जो किसी साहित्यिक कृति का भलीभाँति निरीक्षण कर उसका परीक्षण, विश्लेषण और विवेचन कहे उसे समालोचना या आलोचना कहते हैं। इसके लिए समीक्षा शब्द भी प्रयुक्त होता है, पर उसका व्यवहार अब अँग्रेजी शब्द रिव्यू (Review) के लिए रूढ़ होता जा रहा है। समीक्षा के अंतर्गत पुस्तकों के गुण-दोष का विवेचन या मूल्यांकन किया जाता है। पर, आलोचना या समालोचना शब्द विस्तृत अर्थ के द्योतक हैं जो अँग्रेजी के क्रिटिसिज्म (Criticism) शब्द के समानार्थी हैं। समालोचना का कार्य है किसी कृति के गुण-दोष का निदर्शन, दोष-दर्शन, गुण-कथन, मूल्यांकन, मूल्यनिर्धारण सहानुभूति-प्रदर्शन (Appreciation) तथा सौंदर्योघाटन। साहित्य जीवन की व्याख्या है और समालोचना उस व्याख्या की व्याख्या है या वह साहित्य में निहित जीवन या जीवन-पद्धति का उद्घाटन कर उसका मूल्य-निर्धारण करती है। आलोचना में विवेकपूर्ण दृष्टि से काव्य या साहित्य के गुण-दोषों का विवेचन, व्याख्यान या स्पष्टीकरण होता है। इसमें कलाकृति का निदर्शन एवं अभिरुचि का परिष्कार होता है तथा इसका प्रयोग छिद्रान्वेषण के अतिरिक्त सौंदर्य-निरूपण तक के लिए होता है। मैथ्यू ऑर्नल्ड के अनुसार "आलोचना का प्रमुख उद्देश्य है, संसृति द्वारा ज्ञात एवं विचारित सर्वोत्कृष्ट बातों का ज्ञान करना तथा उनसे दूसरों

को इसलिए अवगत करना है कि सत्य एवं यथार्थ विचारों का स्रोत स्फुटित हो सके।"

आलोचक के गुण (Merits of a critic)

आलोचक या क्रिटिक उसे कहते हैं, जो संवेदनशील सहृदय की भाँति अथवा विषय का अधिकारी होकर किसी विषय के सौंदर्यपक्ष में अपने ध्यान को केंद्रस्थ कर उसके कलात्मक वैभव या सौंदर्य का उद्घाटन करे। इसी कार्य का नाम मूल्यनिर्धारण भी है। प्रो. आई.ए.रिचार्डस के अनुसार आलोचक का कार्य मूल्यों का निर्णायक होना है "to set up as a critic is set up as a judge of value" आलोचक कलाकार या साहित्यकार के अनुभव को, जो उनमें जन्म ले चुका है। पुनर्जीवित करता है। आलोचक को विषय का सम्यक् ज्ञान तो होना ही चाहिए, साथ ही उसे संवेदनशील हृदयवाला भी होना आवश्यक है। वह पाठक तथा साहित्य के बीच माध्यम या दुभाषिये का कार्य करता है अर्थात किसी कृति में अन्तर्निहित भावों, विचारों और उसके कलात्मक वैभव का सम्यक् विश्लेषण कर पाठकों के समक्ष रख देता है। आलोचक का कार्य किसी कृति विशेष का मूल्यांकन करनां हीं नहीं है, वरन् वह साहित्य की दिशा का निर्देश भी करता है। वह साहित्य जगत् में फैली हुई अनियमितताओं और विषमताओं की आलोचना कर उसे परिष्कृत एवं शुद्ध बनाता है। साहित्य-मीमांसक या आलोचक रचनाकार की भाँति स्वतंत्र नहीं होता, वह किसी कृति का निरीक्षण, परीक्षण एवं विवेचन कर अपना निष्पक्ष मत प्रदर्शित करता है। वह साहित्यकार द्वारा अभिव्यक्त जीवन-दर्शन को यथार्थ व्याख्या कर उसके गुण-दोषों का निर्देश करता है और उक्त साहित्यकार के वास्तविक मूल्य की प्रतिष्ठा करता है। साहित्य के स्वरूप को बोधगम्य बनांना तथा उसके मानदण्ड का निर्धारण करना और सामान्य साहित्यशास्त्रीय सिद्धांतों की अवतारणा कर उसके आधार पर साहित्य की व्याख्या करना तथा साहित्यकारों या साहित्य-समाज में फैली हुई बुराईयों को दूर कर साहित्यकारों पर नियंत्रण रखना ये सभी कार्य समालोचक के हैं।

सच्चा समालोचक व्यक्तिगत राग-द्वेष से परे होकर नीर-क्षीरविवेकी बनता है। समालोचक को मनस्वी, चिंतनशील, अध्ययनशील प्रतिभाशाली और बहुज्ञ होना चाहिए। उसे साहित्य की परम्परा से पूर्ण परिचय हो तथा उसके सभी अंगों पर साधिकार, प्रामाणिक निर्णय देने की क्षमता रहे। यद्यपि आलोचना का संबंध बुद्धि से है, अर्थात वह बुद्धि का व्यापार है, पर समालोचक सहृदय, भावुक तथा

सरस हृदयवाला होना चाहिए। सरसता के साथ सहृदयता का होना आलोचक के प्रधान गुणों में आता है। सहृदय व्यक्ति ही रचना के सौंदर्य का सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उद्‌घाटन कर सकता है।

साहित्य के गूढ़तत्त्व की व्याख्या कर उसके सौंदर्य को पाठकों के संमुख रखना तथा रचयिता का पथ-निर्देश कर साहित्य-सृजन को उचित दिशा की ओर मोड़ना और साहित्यजगत् की उच्छृंखलता को रोककर उसे समुचित मार्ग पर लगाना सच्चे समालोचक का कर्त्तव्य है। वह साहित्य के शाश्वत और सार्वभौम नियमों का निर्धारण कर साहित्यकार को यह बताए कि किस प्रकार उसकी रचना में सार्वदेशिक, सार्वकालिक और अमरत्व के गुणों का समावेश हो सकता है। निदान, साहित्यकार से भी अधिक समालोचक का महत्त्व होता है और उसके ऊपर समाज का बहुत बड़ा दायित्व रहता है। थोड़ी भी असावधानी के कारण आलोचक समाज तथा साहित्य का बुहत बड़ा अहित कर सकता है। आलोचक में सत्यप्रियता और ईमानदारी उसके प्रधान गुणों में है तथा उसे निष्पक्ष और पूर्वाग्रहरहित होना चाहिए। विचारों की गंभीरता और अभिव्यक्ति की स्वच्छता के अतिरिक्त भाषा पर उसका असाधारण अधिकार हो और वह लोकव्यवहार में कुशल रहे।

आलोचना के भेद— आलोचना के मुख्य दो भेद हैं

सैद्धांतिक आलोचना (Speculative Criticism) और व्यावहारिक आलोचना (Applied of Practical Criticism)।

सैद्धांतिक आलोचना— जिस आलोचना में साहित्य के सामान्य सिद्धांतों या मान्यताओं का विवेचन हो, उसे सैद्धांतिक आलोचना कहते हैं। इसमें साहित्य के विविध अंगों के मानदण्ड का निर्माण होता है और उसके आधार पर किसी साहित्यक कृति की समीक्षा होती है या उसका मूल्यांकन किया जाता है। इसमें पूर्वनिर्धारित नियमों के आधार पर साहित्य का विवेचन किया जाता है। इसके विवेच्य विषय हैं साहित्य या काव्य के स्वरूप का निर्धारण, उनके आदर्शरूप का स्थिरीकरण एवं गुण-दोषों का स्पष्टीकरण, साहित्य या काव्य के उद्देश्य, कविता के स्वरूप एवं उनके भेदों का विवरण प्रस्तुत कर उनका स्वरूप-निर्धारण तथा उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध, आलोचना, जीवनी आदि साहित्य के विभिन्न अंगों का तात्विक विवेचना। सैद्धांतिक आलोचना का उद्देश्य न केवल साहित्यिक मानों या प्रतिमानों का निर्धारण है, बल्कि यह सत् साहत्य के विशिष्ट मार्ग का निर्देशन

भी करती है। इसके अंतर्गत इस तथ्य का भी विवेचन होता है कि किन-किन उपादानों के समावेश से कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि में सौंदर्याधान होता है और वे कौन से तत्त्व हैं, जिनके कारण साहित्य के सभी रूपों का आदर्श स्वरूप प्रतिष्ठित हो सकता है या वे उच्च कोटि की रचनाएँ सिद्ध हो सकती हैं।

पर, सैद्धांतिक समीक्षा की एक निश्चित सीमा भी होती है। यदि यह पग-पग पर नियमों की शृंखला में साहित्यिक प्रतिभा को नियंत्रित करने का प्रयास करे तो ऐसा सिद्धांत काव्योत्कर्ष के मार्ग में बाधक सिद्ध होगा और साहित्य रूढ़िग्रस्त होकर अविकसित रह जाएगा अर्थात साहित्य के विकास की गति अवरुद्ध हो जाएगी। अतः, आलोचक को चाहिए कि वह सर्जनात्मक साहित्य या आलोच्य ग्रंथों का सम्यक् अनुशीलन कर उनके आधार पर काव्योत्कर्ष एवं सौंदर्याभिव्यक्ति के मार्गों का निर्माण करे और साहित्य का ऐसा निकष प्रस्तुत करे, जो सार्वभौम और उपादेय हो तथा उसके आधार पर सत् साहित्य का प्रणयन होता रहे। पर, युग के अनुरूप और समय के परिवेश में सैद्धांतिक आलोचना के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है; क्योंकि प्रत्येक युग में जीवन के मूल्य बदलते रहते हैं, अतः आलोचक का कर्त्तव्य है कि युगीन आवश्यकताओं के अनुसार वह काव्यादर्श का निर्माण करे।

व्यावहारिक आलोचना

इसमें साहित्य के सामान्य सिद्धांतों के आधार पर किसी कृति या विशिष्ट रचना या किसी साहित्यकार का मूलयांकन किया जाता है या उसके गुण-दोषों की व्याख्या की जाती है। व्यावहारिक आलोचना में आलोचक किसी कृति विशेष के लिए निश्चित मानदण्ड का निर्माण कर उसकी व्याख्या करता है तथा उसके सौंदर्य और उसमें निहित रचयिता के जीवनादर्शों का विवेचन कर पाठक के समक्ष उक्त कृति का महत्त्व प्रस्तुत करता है।

निर्णयात्मक आलोचना— (Judicial Criticism)

व्यावहारिक आलोचना के अन्य प्रकारों में निर्णयात्मक आलोचना तथा तुलनात्मक आलोचना आती है। निर्णयात्मक आलोचना में समीक्षा या आलोच्य पुस्तक के गुण-दोषों का विवेचन एवं उसका मूल्यनिर्धारण होता है। आलोचक न्यायाधीश की भाँति किसी कृति या कृतिकार के गुण-दोषों का विवेचन कर

साहित्य जगत् में उनके स्थान का निर्धारण करता है। व्यावहारिक आलोचना का यह रूप सर्वाधिक सुंदर माना जाता है।

तुलनात्मक आलोचना (Comparative Criticism)

इसमें दो कवियों या पुस्तकों की, जो समान कोटि की हों, परस्पर तुलना की जाती है और अंत में निर्णय दिया जाता है कि दोनों में कौन बड़ा है। तुलना जब भी होगी तो एक वर्ग के कवियों, ग्रंथों या ग्रंथकारों की या समानकोटि की रचनाओं की। तुलना करते समय आलोचक का ध्यान दो कवियों या पुस्तकों में साम्य-वैषम्य दिखाकर तथा उनके गुण-दोषों की समीक्षा कर उनमें से एक को श्रेष्ठ सिद्ध करना होता है। इस प्रकार की आलोचना से कभी-कभी साहित्य या साहित्यकार का बड़ा अहित भी होता है; क्योंकि समालोचक व्यक्तिगत रुचि के आधार पर या किसी कवि के प्रति पक्षपात दिखा कर उसकी तुलना करे तो यह कार्यनिंद्य माना जाएगा। अत:, तुलना यथासंभव निष्पक्ष एवं पूर्वाग्रह से रहित हो तभी उपयोगी होगी।

आलोचना के अन्य प्रकारों में ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय तथा प्रभावाभिव्यंजक आलोचनाएँ भी हैं। ऐतिहासिक आलोचना (Historical Criticism) में पूर्वनिर्धारित साहित्यिक मानदण्ड का सहारा न लेकर ऐतिहासिक तथ्यों को महत्त्व दिया जाता है। इसमें किसी कवि या समीक्ष्य पुस्तक की आलोचना करते समय तत्कालिन ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों को आधार बना कर उक्त रचना में इन तथ्यों का अन्वेषण किया जाता है और यह निर्णय दिया जाता है कि लेखक या कृति ने युगीन परिस्थिति या परिवेश को कहाँ तक अपनाया है और उन परिस्थितियों की छाप उस पर कहाँ तक पड़ी है।

मनोवैज्ञानिक आलोचना (Psychological Criticism)

आलोचना का यह रूप अपेक्षाकृत अधिक अर्वाचीन है। इसमें मनोविज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर आलोच्य कृति या कृतिकार की समीक्षा की जाती है। इसमें रचनाकार की अन्त: प्रवृत्तियों की छानबीन कर उसकी मन:स्थिति का विश्लेषण किया जाता है और उनके अन्त:प्रदेश में प्रविष्ट कर उसकी अंतश्चेतना का विश्लेषण किया जाता है। इस आलोचना का मुख्य उद्देश्य मन:शक्तियों की खोज करना है। आलोचना की यह शैली अत्यंत वैज्ञानिक मानी जाती है। इसमें

किसी कृति में प्रतिबिंबित या निहित कलाकार की अंतश्चेतना एवं उसकी मनःस्थिति की गवेषण कर वैज्ञानिक ढंग से निर्णय दिए जाते हैं। मनोवैज्ञानिक आलोचना इस तथ्य का पोषक है कि साहित्य या कला कवि की अवदमित अतृप्त वासनाओं की अभिव्यक्ति है, अतः कवि या कलाकार की कृति को समझने के लिए उसके अंतर्मन का विश्लेषण आवश्यक है। इस सिद्धांत के अनुसार साहित्य सामाजिक कर्म न होकर वैयक्ति व्यापार है।

प्रभावाभिव्यंजक आलोचना (Impressioristic Criticism)

आलोचना की इस पद्धति को उत्तम नहीं माना जाता, क्योंकि इसमें आलोचक की व्यक्तिगत रुचि को महत्त्व दिया जाता है। इसमें आलोचक के हृदय में आलोच्य के प्रति उत्पन्न प्रतिक्रिया का वर्णन होता है तथा किसी कृति के गुणावगुणों का सम्यक् विश्लेषण न कर उसके संबंध में आलोचक के प्रभावों की अभिव्यक्ति होती है। इसमें आलोचक कृति के कलात्मक पक्ष का उद्घाटन करते हुए उसके प्रभावों का वर्णन करता है। विद्वानों ने आलोचना के इस रूप को हेय मानकर इसकी भर्त्सना की है।

चरितमूलक आलोचना (Bioghraphical Criticism)

साहित्यकार के जीवन चरित को परिप्रेक्ष्य में रख कर इस आलोचना का विकास हुआ है। इसमें बतलाया जाता है कि कलाकार के व्यक्तित्व से कलाकृति भिन्न नहीं होती। कलाकार के व्यक्तित्व के अध्ययन से उसकी कलाकृति को समझने में सहायता मिलती है। उसके जीवन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कलाकार के व्यक्तित्व के निर्माण में किन परिस्थितियों का हाथ रहा है। प्रसिद्ध आलोचक सैंतब्यूव को जीवनचरितमूलक आलोचना-पद्धति का उन्नायक माना जाता है। उसके अनुसार साहित्यकार की कृति उसके जीवन का सार अंश है। इस पद्धति में बतलाया जाता है कि साहित्यकार के जीवन का विश्लेषण होने से उसकी कृति का भी विश्लेषण हो जाता है।

मार्क्सवादी आलोचना (Marxist Critism)

इस आलोचना का आधार मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, जिसमें वर्गसंघर्ष तथा अर्थ को प्रधानता देकर 'कलाकला के लिए है' के सिद्धांत का खंडन किया गया है। इस आलोचना में समाजवादी यथार्थवाद को अपना मूलादर्श

बनाया गया है, जिसके अनुसार साहित्य का लक्ष्य वर्गविहीन समाज की स्थापना करना है। मार्क्सवादी आलोचक के अनुसार सामाजिक व्यवस्था अपरिवर्तनीय और शाश्वत नहीं है,अत: साहित्य का कला अखण्ड और शाश्वत न होकर आर्थिक व्यवस्था पर आश्रित हैं। मार्क्सवादी आलोचना असाहित्यिक है और राजनीतिक तथा नैतिक सिद्धांतों पर आश्रित है। इसके द्वारा साहित्य का एकांगी दृष्टिकोण प्रकट होता है। (दे. Marxism) मार्क्सवादी आलोचना का दृष्टिकोण साम्प्रदायिक है और वह साहित्य को प्रचार का साधन स्वीकार करती है। इसके अनुसार साहित्य एक सामाजिक क्रिया है। यह आलोचना समाजशास्त्रीय आलोचना है जिसका लक्ष्य समाज को बदलनेवाले साहित्य की सृष्टि की ओर लेखक का ध्यान आकृष्ट करना होता है।

Critical genius (क्रिटिकल जीनियस)

भावयित्री प्रतिभा - दे. genius

Croce (क्रोचे)

इटालियन सौंदर्यशास्त्री - दे. Expressionism.

■

Cubism (क्यूबिज़म) धनवाद

चित्रकला की एक शैली धनवाद का उदय 1907 ई. में हुआ और 1925 ई. तक यह सशक्त शैली के रूप में विकसित हुआ। इसके प्रवर्तक होने का श्रेय प्रसिद्ध चित्रकार पाब्लोपिकासो (जन्म 1881 ई. का मृ. 1973 ई.) को है जिसका जन्म स्पेन में हुआ था; किन्तु वह स्थायी रूप से फ्रान्स (पेरिस) में निवास करता था। धनवाद के प्रवर्तन में पिकासो के अतिरिक्त जार्जब्राक (1882 ई.) का महत्त्वपूर्ण योग है। पिकासो और ब्राक ने 1908 ई. तक सम्मिलित रूप से कार्य किया। पिकासो के चित्रों में गतित्व और कल्पना रंजना पर बल दिया गया है तो ब्राक ने अपने चित्रों में नियंत्रण और स्थायीभाव के साथ रंग संगति तथा आकारों के अलंकरण को महत्त्व दिया है। ब्राक नीग्रो मूर्तियों को देख कर प्रभावित हुआ था। पिकासो ने 1907 ई. में अपने विख्यात चित्र (आन्वियों की स्त्रियाँ) को पूर्ण किया जिसे धनवाद का प्रथम चित्र स्वीकार किया गया। ब्राक ने अपना प्रथम धनवादी चित्र 1908 ई. में पूर्ण किया था, जिसका नाम 'विवस्त्र स्त्री' है। दोनों के चित्रों के स्वरूपों में आकार तथा घनत्व उत्पन्न करने का प्रयत्न किया गया था, अतः इस शैली का नाम धनवाद पड़ा। चित्र में घनत्व उत्पन्न करने का प्रयास विश्व विश्रुत इटालियन चित्रकार (15वीं शताब्दी) माइकेल ऐंजेलो ने भी किया था।

धनवाद के निर्माण में प्रसिद्ध फ्रेंच चित्रकार सेजान का भी बहुत बड़ा हाथ है, जिसने अपने चित्रों में भंग रेखाओं को कोणिक़ रूप देकर, उसमें धनरूप को निखार कर उसकी महत्ता प्रदर्शित की। बाद में पिकासो और ब्राक इस पद्धति की ओर

आकृष्ट हुए। सेजान की कृतियों का प्रदर्शन 1905, 1906 तथा 1907 ई. में हुआ और उनके विधान ने धनवादी चित्रकारों को चित्रांकन की ओर आकृष्ट किया। धनवाद ने भवननिर्माण कला तथा मूर्तिकला से प्रेरणा ग्रहण कर आकृतियों को क्यूब या सिलिण्डर के रूप में गढ़ना प्रारंभ किया। "रंगों में घनत्व का ध्यान रख कर इस प्रकार उपयोग होने लगा कि उनसे चित्र में पास और दूर का भाव पैदा किया जा सके। इस प्रकार एक ही चित्र में कई दृश्य दिखाने की भावना घनत्व उत्पन्न करने के लिए प्रारंभ हुई, परंतु आगे चलकर यही भावना आधुनिक कला की अन्य शैलियों का विकास करती है।" (कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ, पृ. 159)

पिकासो और ब्राक ने मूर्तिकार की भाँति वस्तुरचना का चारों तरफ से निरीक्षण कर मूल सरल आकारों में विभक्त किया और पुनः उन आकारों की रचना की। वे वस्तुओं की भिन्न दिशाओं तथा दृष्टिकोणों से दृश्य प्रभावों को एक साथ अंकित कर आकार की विशेषताओं का चित्र बनाते थे। गणितशास्त्र के सिद्धांत से भी प्रभावित होकर धनवाद ने दृश्य वास्तविकता को अस्वीकार कर रचना एवं समीकरण के सूत्रों द्वारा उसके नित्य, अखण्डित रूप का आविष्कार किया। आरंभिक दिनों में धनवाद के चित्र के विषय प्राकृतिक दृश्य थे, पर ब्राक और पिकासो ने मानवनिर्मित ज्यामीतीय प्रधान वस्तुओं को चित्रण के लिए उपयुक्त समझा और वायोलिन, वाद्ययंत्र, मेज, कुर्सी जैसी वस्तुओं का चित्रांकन किया। "वस्तु के चारों ओर के दृश्य प्रभावों को एकत्रित करने के अपने सिद्धांत के अनुसार उन्होंने व्यक्तिचित्रों में सम्मुख मुखाकृति को पक्षीय मुखाकृति के साथ चित्रित किया; इसी पद्धति में अधिक परिवर्तन करने के बाद पिकासो ने 'द्विप्रतिम मानव कृतियों' (Double image figures) के चित्र बनाए।" (आधुनिक चित्रकला का इतिहास, पृ. 171) पिकासो के अनुसार धनवाद की परिभाषा इस प्रकार है रूप से संबंधित कला; जब रूपनिर्मित हो जाती है तब वह निजी चैतन्य से जीवित होती है। धनवाद वास्तव सृष्टि का सत्याभास न होकर स्वतंत्र विचार से की गई रचनासृष्टि है। इसका प्रत्यक्ष संबंध चित्रकार की व्यक्तिगत प्रतिभा, रसिकता तथा रचना-कल्पना से होता है। धनवादी चित्र के निर्माण में चित्रकार को पूर्णतः आंतरिक प्रेरणा पर निर्भर होना पड़ता है; उस पर बाह्य दृश्य सृष्टि के रूप में बंधन नहीं होता।

1914 ई. के बाद संसार के सभी विकसित देशों में धनवादी कलाकृतियों का निर्माण होने लगा और 1925 ई. तक यह पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त हो गया। धनवादी प्रसिद्ध चित्रकारों में ज्वांगी, फर्नां लेजे, जार्ज ब्राक, पिकासो, आदि महत्त्वपूर्ण हैं। पिकासो को वैज्ञानिक धनवाद का व्याख्याता माना जाता है। उसने चित्रण, ग्राफ, पाटरी, मूर्तन आदि सभी क्षेत्रों में अद्‌भुत सफलता प्राप्त की है और वह विश्व के साम्प्रतिक चित्रकारों में मूर्धन्य माना जाता है। 1909 से 1911 ई. तक वह ब्राक के साथ विश्लेषणात्मक धनवाद का अभ्यास करता रहा और 1912 के पश्चात संश्लेषणात्मक धनवाद की ओर प्रवृत्त हुआ। उसने 1937 ई. में 'ग्वेर्निका' नामक विश्व विख्यात चित्र का निर्माण किया, जिसमें अतियथार्थवादी और धनवादी शैलियों का भावनापूर्ण उत्कर्ष दिखाई पड़ा। इस चित्र में जर्मन तानाशाही आक्रामकों की निन्दा की गई है, जिन्होंने स्पेन के एक सीमावर्ती ग्राम 'ग्वेर्निका' को ध्वंस किया था। 'ग्वेर्निका' का चित्र प्रतीकात्मक है। पिकासो अपने को शैलीविहीन चित्रकार मानता है। उसने अपनी कलाकृतियों में आधुनिक सभी कलाशैलियों को प्रयोगान्वित कर प्रभावी कलाकृतियों की सृष्टि की है। उसकी कला में असाधारण परिवर्तनशीलता है, जिसके कारण उसकी कला का वर्गीकरण संभव नहीं है। वह ध्येयवादी कलाकार है, जिसकी कला में वैविध्य होते हुए भी पूर्वनिर्धारित दृष्टिकोण को अपनाया गया है। उसका ध्येयवाद बाह्य आदर्शों पर आधृत न होकर स्वत: प्रेरित है। जार्जब्राक (1882-1963 ई.) पेरिस के पाश्ववर्ती आर्ज्वांतिल ग्राम का निवासी था। 1905 में सलों दातोम में प्रदर्शित फाव प्रदर्शनी में उसकी कला को महत्त्व मिला। उसने आवेशपूर्ण अंकन पद्धति में विशुद्ध रंगों का अनुकरण करते हुए कुछ चित्र निर्मित किए थे जिनके मुख्य विषय विवस्ता मानव आकृति, गृहांतर्गत दृश्य तथा प्राकृतिक दृश्य एवं वस्तुसमूह थे। ब्राक के चित्र आलंकारिक और अधिक वस्तुनिष्ठ हैं। उसने प्रकाश और अवकाश को साकार सौंदर्य प्रदान किया है। उसकी कला में सौंदर्य और शास्त्रीयता का सम्यक् समन्वय है।

फर्नांलेजे (1882-1955 ई.) प्रधान फ्रेंच धनवादी चित्रकार है, जिसने पिकासो और ब्राक से प्रभावित होकर 1910 ई. में घनवादी चित्रशैली को अपनाया था। उसने 1910 ई. में 'जंगल में विवस्त्र मानव' तथा 1913 ई. में 'आकारों का विरोध' नामक चित्रों का निर्माण कर प्रसिद्धि प्राप्त की थी। उसने रंग-संबंधी वैज्ञानिक सिद्धांतों के प्रति अरुचि दिखला कर आकारों के बल या शक्ति को बढ़ाने के ध्येय से रंगों का प्रयोग किया है।

घनवाद स्वयं सीमित कलाशैली न होकर भविष्यवाद, सुरीलवाद, सर्वोच्चवाद आदि वादों का जन्मदाता माना जाता है। उपर्युक्त सभी वाद इससे प्रेरित और प्रभावित हैं। आधुनिक युग के सभी कलाविधानों पर घनवाद का रचना सिद्धांत प्रेरक सूत्र रहा है। "संक्षेप में घनवाद ने कला से परंपरागत आत्मिक व प्रतीकात्मक मूल्यों को हटा दिया, वस्तु सादृश्य के बंधन से जड़ सौंदर्य को मुक्त किया एवं नये रचनाशास्त्र को जन्म देकर आगामी अवकाश-युग के अग्रदूत का कार्य किया।" (आधुनिक चित्रकला का इतिहास, पृ. 177)

Dadaism (दादाइज़्म) दादावाद

काव्य और कला की एक शैली। इस आंदोलन का समारम्भ 1916 ई. में ज्यूरिय (जर्मनी) में हुआ था, जिसका प्रवर्तन जाँ आर तथा उसके मित्रों ने किया। इसने कला-संबंधी किसी सिद्धांत का प्रस्थापन न कर जीवन, कला तथा दर्शन के प्रति अराजक दृष्टिकोण का प्रचार किया। दादावादियों की अराजक दृष्टि ने परंपरागत तथा प्रचलित सभी सिद्धांतों का अपने कार्यक्रमों द्वारा विरोध किया। इसे एक प्रकार का विनाशवादी कला-सिद्धांत कहा जा सकता है, जो प्राचीन विचारों और नीतिनियमों को नष्ट करने के अतिरिक्त कोई अन्य ध्येय लेकर नहीं चलता। प्रथम महायुद्ध के कारण मानव समाज में कटुता और निराशा का वातावरण छा गया था। यूरोपीय समाज की इसी विनाशक स्थिति ने दादावाद को जन्म दिया। युद्ध की विभीषिका को देखकर दादावादी कुछ नवयुवक बाहर आए और उन्होंने धर्म, नीति और सामाजिक मूल्यों का विघटन देखकर यह विश्वास किया कि संसार अर्थहीन है। अतः, इस विचार से प्रेरित होकर उन्होंने अभिव्यक्ति की नवीन शैली का अन्वेषण किया, जिसे दादावाद कहते हैं।

'दादा' शब्द के नामकरण में भी अनोखी कल्पना है।

जब जर्मन-फ्रेंच शब्द कोश को चाकू से खोला गया तो सर्वप्रथम 'दादा' शब्द निकला जिसका अर्थ झूलनेवाला लकड़ी का घोड़ा है। फिर क्या था इसी नाम को आधार बनाकर दादावादी आंदोलन चल पड़ा। दादावादी चित्रकारों और साहित्यिकों ने दैवयोग को बहुत महत्त्व दिया। "वे काव्य को अभिव्यक्ति या विचार-प्रदर्शन का साधन नहीं मानते, उनके लिए काव्य मनोवैज्ञानिक अवस्था की अनियत्रिंत, आंतरिक प्रक्रिया था व उसका तर्क था विवरण से कोई संबंध नहीं था। दादा कलाकारों की कोई निराली चित्रण पद्धति नहीं थी, वे घनवाद,

भविष्यवाद व वस्तु-निरपेक्ष कला को चित्रण में परिणामकारक मानते ।" (आधुनिक चित्रकला का इतिहास, पृ. 253) दादावाद का प्रचार प्रसार हौलैण्ड, फ्रांस, इटली, स्पेन, जर्मनी और अमेरिका में हुआ । 1922 ई. के आरंभ में इसके एक प्रमुख स्तंभ आद्रे ब्रेंतों ने दादा आंदोलन से अपने को पृथक कर लिया और वह अतियथार्थवादी आंदोलन में सम्मिलित हो गया । 1922 ई. में इस आंदोलन का अंत हो गया । इस आंदोलन में रूमानियन कवि ट्रिस्टानत्सारा, अलसेनियन चित्रकार हान्स आर्य, हंगेरियन चित्रकार मार्सेल यांको, जर्मन विचार ह्यूगो बॉल, अर्न्स्ट माक्स तथा फ्रेंच कलाकारों में आंद्रे ब्रेतों, आरागों, सुपोल एवं एल्वार ने प्रमुख रूप से भाग लिया था । 1917 ई. में दादावादियों ने अपने घोषणापत्र में कहा था कि दादावाद के द्वारा एक नए यथार्थ का जन्म हुआ है । इसमें जीवन में एक साथ प्रतीत होने वाली ध्वनि, रंग तथा आत्मिक अनुभूतियों की अव्यवस्था को अपरिहार्य और अपरिवर्तित रूप से स्वीकार किया गया । दादावाद में जीवन के प्रति सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण को अस्वीकार कर नीति संस्कृति तथा अंतर्मुखी वृत्ति की कपोलकल्पित असत्य घोषणाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया गया है, क्योंकि ये दुर्बल मानव के लिए बहाना है । दादावाद के विकास में तीन पत्रिकाओं ने विशेष योगदान किया जिनके नाम हैं—391, दादा तथा कबरे वोल्लेर । दादावादी चित्रकारों ने अंकन पद्धतियों से अक्षरकला की नवीन पद्धति चलाई और अक्षरों को तिरछे अंकित किया । उन्होंने बड़े अक्षरों की बीच-बीच में संयोजना कर सम्पूर्ण कलाकृति में रचनात्मक या सौंदर्यात्मक दृष्टिकोण का रूपायन किया । इसके द्वारा सिनेमा-निर्माण की कला भी विकसित हुई । 1919 ई. में त्सारा और पिकाबिया ने दादावादी कार्यक्रम को गति देने के लिए पेरिस से 'साहित्य' नामक पत्र का प्रकाशन किया था । इस पत्रिका में ब्रेंतों, आरागों और सुपोल ने अंतर्मन, स्वप्न की दुनियाँ तथा ऐंद्रजालिक अनुभूतियों को कला द्वारा अंकित किया और उसके लिए आकस्मिक घटनाओं, अचेतन क्रियाओं, विकृत प्रतिमाओं तक के प्रतीकों से सहायता ग्रहण की ।

Dance (डान्स) नृत्य–दे. Art

Dante– दाँते अलिगेरी (1265-1321 ई.)

प्रसिद्ध कवि और लैटिन आलोचक । तेरहवी शताब्दी का अंत होते-होते यूरोप की अंतर्मुख चेतना, जिस पर क्रिश्चियन धर्म की सघन छाया पड़ी हुई थी, दाँते के महाकाव्य के रूप में नवीन विकास की ओर अग्रसर हुई । उसका महाकाव्य

'डिवाइना कॉमेडिया' नवप्रभात का सूचक था, जिसे यूरोपवासियों ने आश्चर्य चकित नेत्रों से देखा। उसने 'द वलगरी एलोक्वेन्तिया', 'कोनविविओ' 'ऑन द वर्नाकूलर' तथा 'द बैक्वेट' आदि सभी रचनाओं में अपने साहित्य-चिंतन एवं आलोचना-संवंधी विचारों का निरूपण किया था। उपर्युक्त सारी कृतियाँ लैटिन या लातीनी में निर्मित हैं। दाँते ने बिना किसी धार्मिक पूर्वाग्रह के साहित्य का मूल्यांकन किया तथा अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'द वलगरी एलोक्वेन्तिया' में अपनी भाषा-संबंधी विचारणा प्रस्तुत की तथा काव्य के लिए सांस्कृतिक भाषा की उपयोगिता को महत्त्व दिया। उसने साहित्य में मुख्यत: भाषा की ओर मनुष्यों का ध्यान आकृष्ट किया और कहा चूँकि समस्त जीवधारियों में मनुष्य को ही भाषा का वरदान (दैवी) प्राप्त हुआ है, अत: उसे इस पक्ष पर अधिक ध्यान देना चाहिए। दाँते ने लोक-भावना को आदर देते हुए मातृभाषा का पक्ष लिया। उसके अनुसार बच्चा जिस भाषा में शैशवकाल से ही अपने विचार को प्रकट करता है—

उसी में उच्चकोटि का साहित्य रच सकता है। उसने तत्कालीन भाषा लैटिन की उपेक्षा की और सार्वदेशिक वर्नाक्यूलर या मातृभाषा के प्रयोग पर दृढ़ता प्रदर्शित की। लैटिन पण्डितों की भाषा थी जिसके सीखने में काफी श्रम की आवश्यकता थी। अत:, दाँते ने अनेक स्थानीय बोलियों में से किसी एक ऐसी बोली को ग्रहण करने की राय दी, जिसमें स्थानीयता या प्रांतीयता का भाव न होकर सार्वदेशिकता हो। उसने इतालवी भाषा को यह पद प्रदान किया और उसीमें अपनी रचनाएँ की। उसने बताया कि इस भाषा को परिश्रम पूर्वक इतना सबल और सशक्त बनाया जाए जिससे इसमें स्तरीय भाषा के गुणों का समावेश हो सके।

उसने प्रचलित जन भाषाओं का परीक्षण कर काव्य, भाषा, शैली तथा विषय वस्तु से संबद्ध अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए तथा मातृभाषा को ही आदर्श भाषा मान कर इतालवी में अपने महाकाव्य 'डिवाइना कॉमेडिया' की रचना की। काव्य में वर्ण्यविषयों का प्राधान्य स्वीकार कर उसने युद्ध या राष्ट्रप्रेम, प्रेम तथा नैतिक सौंदर्य की महनीयता सिद्ध की और बताया कि ये ही उच्च काव्य के प्रतिपाद्य हो सकते हैं। उसने स्वाभाविकता के कारण जनभाषा को उदात्त या श्रेष्ठतर बताया; क्योंकि इसे बिना किसी नियम के सीखा जा सकता है। वह लोक भाषा को ही साहित्यिक भाषा बनाने के विचार का समर्थक हैं। जनभाषाओं की श्रेष्ठता को स्वीकार कर दाँते ने अपनी उदार दृष्टि का परिचय दिया है। उसके

अनुसार कवि के लिए भाषा उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी की सैनिक के लिए घोड़े की महत्ता है। उसने युद्ध, प्रेम और नैतिक आदर्श को अर्थ गाम्भीर्य से युक्त होने की राय दी और बताया कि अर्थ गाम्भीर्य के साथ-ही-साथ पदविन्यास या शब्द-सौंदर्य का तादात्म्य होना चाहिए।

उसकी कृति 'द वल्गरी एलोक्वेन्तिआ (जनभाषा) मध्ययुग की अत्यंत महत्त्वपूर्ण समीक्षा पुस्तक मानी जाती है, जिसे सेन्ट्सबरी ने युगप्रवर्तक ग्रंथ के रूप में मान्यता दी है। उसने किसी भी शिक्षाकृति के लिए छः वस्तुओं की आवश्यकता पर बल दिया है — वस्तुविषय, रचयिता, रूप, उद्देश्य, शीर्षक एवं दर्शन। वह मध्ययुग की प्रतीकात्मक पद्धति से भी प्रभावित है तथा काव्य की दैवी प्रेरणा या स्फुरणा का भी समर्थक है। उसका ध्यान विचार तथा नैतिकता की युगानुरूप शैली पर केंद्रस्थ रहता है। वह प्रबंध का शिवत्व उसमें निहित विचारों में मानता है और उसके शब्दों की सजावट में सौंदर्य तत्त्व की मान्यता देता है। भाव और सुसज्जित भाषा का द्वित्वभाव ही दाँते के काव्यालोचन का मूलाधार है। वह भाव एवं भाषा के तादात्म्य को ही काव्य की मुख्य समस्या मानता है। उसने काव्य के उपकरण एवं प्रक्रिया—भाव, भाषा, रूप तथा शैली पर विचार कर मध्ययुग में अद्वितीय विचार प्रकट किया। काव्य-भाषा एवं शैली के संबंध में उसने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किया है। उसके अनुसार शैली या रचना के चार प्रकार हैं—निर्जीव या रुचि-विहीन (कूम्वड), केवल सुरुचिपूर्ण (स्लिपरी) सुरुचिपूर्ण और सुंदर (शैगी) सुरुचिपूर्ण, सुंदर और उदात्त (रम्पिल्ड)।

Demetrius डेमेट्रियस (प्रथम शताब्दी ई.)

रोमी रीतिकार। डेमेट्रियस ने नीति या शैली के ऊपर 'ऑन स्टाइल' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचनाकार अरस्तू, सिसरो तथा डायोनीसियस के रीति या शैली निरूपण को गति दी। इस ग्रंथ में उसने विभिन्न प्रकार की शैलियों का विवेचन किया है। उसने असामान्यता को उदात्त शैली का मूल तत्त्व माना है; क्योंकि प्रत्येक सामान्य वस्तु प्रभाव रहित हुआ करती है। उसने शैली की कोई परिभाषा प्रस्तुत नहीं की, किंतु उसके विवेचन से उसकी शैली-विषयक विचारणा का पता चलता है। वह अपने प्राक्भावी लेखकों की भाँति शैली को लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मानता है। उसके मन्तव्यानुसार व्यक्तितत्त्व ही शैली की आत्मा है। (Literary criticism in antiquity vol II Page, 201) उसने वस्तुविषय को शैली का मुख्य नियामक तत्त्व माना है। वह शैली के विभिन्न

प्रकारों का निरूपण कर प्रत्येक शैली के शब्द-प्रयोग, शब्द-विशेषताओं का उल्लेख कर तद्विषयक दोषों का भी विवरण प्रस्तुत करता है। उसके शैली-विवेचन पर अरस्तू का प्रभाव देखा जाता है, जिसमें उसकी निजी मान्यताएँ भी समाविष्ट हैं।

डेमेट्रियस मानता है कि प्रत्येक रचना में उसके रचयिता का चरित्र प्रतिबिंबित होता है, अत: शैली व्यक्तिगत तत्त्व से अनुस्यूत है। उसने शैली के चार भेद किए हैं—उदात्त (ऐलीवेटेड), मधुर या मसृण (एलीगेन्ट या पालिश्ड), प्रसादमय (प्लेन) और ओजस्वी (फोर्सीबल)। उदात्त शैली का मूल असामान्यता है और इसमें विशिष्ट तथा विचित्र शब्दावली के अतिरिक्त समास, अलंकार तथा काव्य रूढ़ भाषा का प्राय: प्रयोग हुआ करता है। इसमें रमणीय और असाधारण शब्द प्रयुक्त होते हैं और इसे रूपकों, समस्त शब्दों, नवनिर्मित पदों, अलंकारों तथा रमणीय प्रयोगों द्वारा सुंदर बनाया जाता है। रूपकों एवं समासों के प्रयोग में लेखक को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता पड़ती है, अन्यथा रचना हास्यास्पद हो जाएगी। डेमेट्रियस ने उदात्त रचनाओं के लिए 'पिअरिऑडिक शैली (अनेक उपवाक्यों से निर्मित वाक्य) को अधिक उपयुक्त माना है। वह उन्हीं रूपकों के प्रयोग को वांछनीय मानता है जिनसे रचना में उदात्त तत्त्व की वृद्धि हो सके। उसने मिश्र शब्दों को बार-बार मिश्र बनाने की प्रवृत्ति पर नियंत्रण रखने की राय दी है।' उसकी वर्ण-योजना प्रगाढ़ होती है जिसके आरंभ में तथा अंत में गुरुवर्णों का प्रयोग रहता है। क्योंकि; इस प्रकार प्रयुक्त गुरुवर्णों में प्राय: विस्फोट का प्रभाव होता है। इस शैली की पद-रचना में क्रमिक आरोह रहता है और रूपक, पर्यायोक्ति तथा अन्योक्ति रूपक (एलिगरी) आदि अलंकारों का सयत्न प्रयोग होता है: रूपकों से शैली में गरिमा और रमणीयता का समावेश होता है, अन्योक्ति-रूपक के प्रयोग की शैली उदात्त बनती है—क्योंकि अन्योक्ति-रूपक रात्रि और अंधकार का व्यंजक है। इसी प्रकार वक्रतामूलक अलंकार तथा समास गुणयुक्त पदावली का भी यही उपयोग है। (डॉ. नगेन्द्र भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, पृ.81)

मधुर या मसृण शैली के उपादान मधुर शब्द, मसृण-गुम्फ तथा छन्दलय की अंतर्धारा हैं। यह शोभा तथा कान्तियुक्त शैली होती है। इसके वर्ण्यविषयों के अंतर्गत विवाहोत्सव के गीत, परियों के उपवन तथा प्रेमकथाएँ आती हैं। इसमें वर्ण्यविषय में ही औज्ज्वल्य एवं कांति का समावेश होता है। उसने छन्द की व्यंजना को शैली का गुण स्वीकार किया है। मधुर शब्दों से उसका आशय ऐसे शब्दों के प्रयोग से है, जो मधुर ध्वनि वाले हों या जिनसे मधुर चित्र की व्यंजना होती हो। तीसरे प्रकार की प्रसादमयी शैली का मूलाधार सरलता और स्पष्टता है। इसमें असामान्य तत्त्वों का व्यवहार नहीं किया जाता और सरल तथा सुबोध या नित्यप्रति के प्रयोग की भाषा प्रयुक्त होती है। इसमें अलंकरण के समस्त

साधनों का निषेध किया जाता है और सामान्य शब्दावली तथा छोटे वाक्यों का विधान होता है। डेमेट्रियस ने अर्थवैमल्य को प्रसादमयी शैली का प्राण तत्त्व स्वीकार किया है।

चतुर्थ शैली ओजस्वी में सरलता या मसृणता का अभाव रहता है और कठोर ध्वनियों तथा विषम पद-योजना से ओज का संचार किया जाता है। उसमें समास का प्रयोग किया जाता है, जिससे रचना में गाढ़बन्धत्व आ सके। इस शैली में उल्बण पदावली प्रयुक्त होती है और सार तथा सुकुमारोक्ति अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। सुकुमारोक्ति अलंकार के प्रयोग से रचना गंभीर एवं गरिमामयी बन जाती है।

डेमेट्रियस के इस विभाजन की आलोचना भी हुई है और इसे निरंकुश और अस्वाभाविक कहा गया है; क्योंकि प्रयोग में ऐसा नहीं देखा जाता और शैली के इन प्रकारों का मिश्रण भी हो जाता है और कभी-कभी तो एकही रचना में ये शैलियाँ एक ही साथ विद्यमान रहती हैं। उसने स्वयं स्वीकार किया है कि होमर, प्लेटो, तथा हिरोदोतस की रचनाओं में औदात्य, लालित्य तथा ओजस्विता का मिश्रित रूप दिखाई पड़ता है।

Determinism (डिटर्मिनिज्म) निर्धारणवाद या नियतिवाद

दर्शन की एक अवरणा जिसके अनुसार प्रत्येक कार्य चाहे मानसिक या भौतिक हो उसके घटित होने का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। इस सिद्धांत के अनुसार कारण के अभाव में कार्य या व्यापार की उत्पत्ति नहीं हो सकती और संसार का प्रत्येक कार्य अपरिवर्तनीय नियमों से नियन्त्रित है। अतः, किसी पदार्थ के परिज्ञान के लिए उसके हेतुओं का ज्ञान आवश्यक है। प्रत्येक कार्य कुछ पूर्वनिर्धारित कारणों से संचालित होता है और जहाँ ये कारण होते हैं, वहाँ उनके कार्य का होना अवश्यंभावी है। अतः, निर्धारण या नियतिवाद किसी वस्तु को जानने के लिए उसके कारणों के परीक्षण पर बल देता है। इसका प्रतिपक्षी सिद्धांत 'स्वतंत्र इच्छा शक्ति Theory of free will का सिद्धांत' है जो यह मान कर चलता है कि सभी घटनाएँ कारणनिरपेक्ष हैं और मानवेच्छा स्वतंत्र और स्वाधीन है। स्वतंत्र-इच्छावादी इस विचार का पोषक है कि मनुष्य अपने युग तथा जीवन की परिस्थितियों से परे हैं, वह उनमें आबद्ध नहीं होता। पर, नियतिवादी के अनुसार मनुष्य परिस्थितियों का अनुचर है और जिसे स्वतंत्र-विचारवादी कहता है कि मनुष्य स्वतंत्र विचार से कार्य सम्पन्न करता है उसके पीछे भी कोई-न-कोई

कारण अवश्य लगा हुआ है। नियतिवादी का विचार है कि व्यक्ति के सभी कार्य उसके युग एवं परिस्थिति से नियंत्रित हैं और वह उनका वशवर्ती होकर ही कार्य करता है। उभय विरोधी विचारधाराओं में कौन-सा मतवाद अधिक प्रामाणिक है, कहा नहीं जा सकता, पर इसे जीवन की एक शाश्वत समस्या कहा जा सकता है। नियतिवाद को विद्वानों ने जीवन की मूलभूत समस्या के समाधान का एक प्रयास कहा है, फलतः साहित्य पर इसका प्रभाव दिखाई पड़ता है। प्रकृतवादी तथा यथार्थवादी साहित्य में नियतिवाद का रूप परिदर्शित होता है। यथार्थवादी साहित्य में जीवन का वास्तविक पक्ष उद्घाटित या व्यंजित होता है और व्यक्ति का यथातथ्य रूप या चरित्र चित्रित होता है। इसमें लेखक व्यक्ति की चारित्रिक दुर्बलताओं का चित्रण करते हुए उसके चरित्रगत दौर्बल्य के लिए उसे दोषी न मान कर उन परिस्थितियों को दोषी ठहराता है, जिसमें कि उसका सम्बर्द्धन और पालन हुआ है। मनोविज्ञान भी व्यक्ति के व्यक्तित्व-निर्माण में उसके वातावरण का महत्त्वपूर्ण योग स्वीकार करता है। अतः, साहित्य-सृष्टि में भी व्यक्ति के आवेष्टन का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है।

Descriptive Essay (डेसक्रिप्टिव एसे) वर्णनात्मक निबंध—दे. Essay

Dialectical Materialism (डाएलेक्टिकल मैटेरियलिज्म) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—दे. Marxism

Dialogue (डायलॉग) संवाद या कथोपकथन—दे. Drama तथा Novel

Didactic Play (डिडैक्टिक प्ले) शिक्षाप्रद या नीतिपरक नाटक

ऐसे नाटक में उपदेश या प्रचारात्मक तत्त्वों की प्रधानता होती है और कलात्मक तत्त्वों का अभाव रहता है। साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर ऐसे नाटकों का प्रणयन हुआ है। पर अनेक ऐसे नाटक भी लिखे गए हैं जिनमें कला और प्रचार का पूर्ण समन्वय हुआ है। ऐसे नाटकों में लेखक किसी विचारधारा का प्रचार करने के लिए दर्शक के मन में उसके प्रति आकर्षण का भाव उत्पन्न करना चाहता है या उस विचारधारा से उन्हें प्रभावित करना चाहता है। नाटक का कथानक धार्मिक, सामाजिक या राजनीतिक विचारधारा की उपयोगिता या औचित्य प्रमाणिक करने के लिए नियोजित किया जाता है। इसका अंत सुखात्मक होता है और सत्यपात्र सुखी जीवन व्यतीत करते हैं तथा दुष्पात्र

दण्डित होते हैं। इसमें काव्यकला नगण्य होती है; मंच-कौशल का आधिक्य रहता है तथा संगीत की प्रधानता होती है।

Dionysius (डायोनीसियस) (30 ईसापूर्व)

यूनानी रीतिशास्त्री। डायोनीसियस ग्रीक भाषा का सुप्रसिद्ध रीतिशास्त्री था, जिसने शैली के विभिन्न तत्त्वों का निरूपण किया। उसके ग्रंथ का नाम 'पदयोजना' (ऑन द अरेंजमेण्ट ऑव वर्डस्) है। उसने प्लेटो तथा सिसरो की भाँति शैली को व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कहा है और पद-रचना में व्यक्तिगत वैशिष्ट्य की महत्ता स्वीकार की है। वह भाव और विषयवस्तु को भी शैली का नियामक तत्त्व मानता है। उसने शैलीकार के लिए कलात्मकता, अध्ययन और अभ्यास की आवश्यकता पर बल दिया है तथा कलाकार के लिए शिल्प-कौशल के ज्ञान एवं अनल्पश्रम की महनीयता बतलाई है। उसके मन्तव्यानुसार "काव्याभिव्यंजना में सौंदर्य का आधार शब्दावली नहीं है वरन् शब्दगुम्फ या पद रचना ही है। सुंदर शब्दों का अभीष्ट प्रभाव तभी पड़ता है जब उनकी योजना भी सुंदर हो। यही कलात्मक पद-रचना काव्यशैली का मूल तत्त्व है।" (डॉ. नगेन्द्र, हिंदी काव्यलङ्कार सूत्र की भूमिका, पृ. 107) उसने शैली में व्यक्तितत्त्व के अतिरिक्त वस्तुतत्त्व को ही महत्त्व दिया है और बतलाया है कि शैली मुख्यतः भाव के अधीन रहती है।

उसके अनुसार शुद्धता, स्पष्टता तथा सामासिकता शैली के प्रधान तत्त्व हैं और सजीवता, उदात्तता, गरिमा, शक्ति, शोभा और औचित्य को उसका गौण तत्त्व स्वीकार करता है। उसने बताया कि शब्दों का सौंदर्य वर्णों के सौंदर्य पर निर्भर करता है। दीर्घ स्वरों में सांगीतिकता अधिक होती है और ह्रस्व स्वरों में सांगीतिक तत्त्व अल्प होते हैं। सुंदर शब्दों के विनियोग के कारण ही शैली ललित होती है। वह प्रसादयुक्तता या सुज्ञेयता को शैली के अनिवार्य गुणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता है। उसके अनुसार व्याकरणानुमोदित या तर्कानुकूल रचना ही सब कुछ नहीं है, शब्दों की कलात्मक योजना पर आश्रित शैली ही उत्तम होती है; इसीलिए उसने दुर्बोधता को हेय दृष्टि से देखा है। शब्दों के उचित विनियोग के महत्त्व को आँक कर उसने बताया था कि शब्दों की सम्यक् व्यवस्था से ही साहित्यिक अभिव्यक्ति में सौंदर्याधान होता है। व्यापक अर्थ में रचना का संबंध शब्द-योजना के अतिरिक्त वाक्यखण्डों एवं उपवाक्यों से भी होता है और शब्दबन्ध एवं वाक्यांशों की रचना में सामंजस्य, लय एवं संतुलन पर ध्यान रखना पड़ता है।

डायोनीसियस ने पूर्ववर्ती आचार्यों की भाँति शैली के तीन भेद किए हैं — कठिनोदात्त (ऑस्टीयर), मसृण या सज्जित (स्मूथ या फ्लोरिड) तथा मिश्र या समंजित (मिक्स्ड)। कठिनोदात्त शैली के मूल तत्त्व हैं — गरिमा, तीव्रता, अनगढ़ शक्ति आदि। यह शैली अनलंकृत और अनगढ़ शैली होती है। इसमें अनियमित पदरचना और कर्कश ध्वनियों से उत्पन्न कठिनता होती है और प्रभाव उत्पन्न करने वाले असाधारण शब्द प्रयुक्त होते हैं तथा कृत्रिम मसृणता और ऋजता आदि का निषेध किया जाता है।

मसृणशैली का मूल गुण सहज सुकुमारता है। इसमें न तो काव्यरूढ़ शब्दावली प्रयुक्त होती है और न प्राचीन शब्दावली को ग्रहण किया जाता है। इसकी भाषा में प्रवाह होता है और शब्दावली में संगीतमयता होती है। इसके शब्द मधुर और मसृण होते हैं और कर्कश तथा कर्णकटु शब्दों का बहिष्कार किया जाता है। इसमें मधुर और रम्य अलंकार प्रयुक्त होते हैं और साधारण शब्दों का प्रयोग साधारण अर्थ में होता है, जिनमें सरलता और अनेकरूपता होती है।

मिश्र या समंजित शैली में सरल और कठिनोदात्त शैली के गुणों का मिश्रण होता है। इसमें दोनों ही शैलियों के सर्वोत्कृष्ट गुणों का मिलन होता है। इसका प्रयोक्ता होमर माना गया है। "इसमें ऐसे साधारण शब्दों का चयन होता है जिनकी प्रवृत्ति तो अलंकृति की ओर होती है, परंतु वे प्राचीन, अप्रचलित तथा काव्यरूढ़ नहीं होते।" (डॉ. नगेन्द्र, वही)

Discussion Drama (डिस्कशन ड्रामा)

शास्त्रार्थनाटक — जिस नाटक में प्रश्नोत्तर के माध्यम से विभिन्न पात्रों के वार्तालाप में किसी सिद्धांत का खण्डन या मण्डन किया जाए, उसे शास्त्रार्थ नाटक कहते हैं। प्लेटो के समय में ही ऐसे संवादों की रचना होती थी जिनमें विरोधी मतों का विश्लेषण या व्यंग्यात्मक टिप्पणी की जाती थी।

Dithyramb (डिथिरैम्ब) रौद्र-स्तोत्र

एक प्रकार का गीत, जो प्राचीन ग्रीक में डायोनिसिस को बलि देते समय गाया जाता था। इसका गायन पचास-पचास व्यक्तियों के समूह द्वारा प्रतियोगिता में किया जाता था। इसका विवरण अरस्तू कृत 'काव्यशास्त्र' में पाया जाता है। उसने त्रासदी की उत्पत्ति रौद्रस्तोत्र से ही स्वीकार की है। इसका संगीत फ्राई जीयन शैली का होता था जो स्तोत्रात्मक, आवेगपूर्ण तथा वासना को उदीप्त करने वाला था। इसमें विभिन्न प्रकार के छन्द प्रयुक्त होते थे और स्वर अत्यंत उदात्त तथा शैली विषम हुआ करती थी।

■

Drama (ड्रामा) नाटक

पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के छः तत्त्व हैं — कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, विचार, भाषा तथा गीत। आधुनिक युग में कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल शैली और उद्देश्य नाटक के छः तत्त्व माने गए हैं।

कथावस्तु — पाश्चात्य विद्वानों ने नाटक में कथावस्तु को विशेष महत्त्व दिया है। उनके अनुसार कथा वस्तु के अभाव में तो नाटक की कल्पना नहीं की जा सकती। वे वस्तु और चरित्र में वस्तु का ही प्राधान्य स्वीकार करते हैं तथा चरित्र को व्यक्ति का निष्क्रिय गुण एवं वस्तु को उसका सक्रिय या गतिशील गुण मानते हैं। नाट्यवस्तु के द्वारा ही व्यक्ति प्रभावित होता है और वही व्यक्ति के सुख-दुःख का कारण है। अरस्तू का कहना है कि चरित्र के बिना भी नाटक हो सकता है, पर वस्तु के अभाव में उसकी कल्पना संभव नहीं है। वस्तु के अंतर्गत ऐसी घटनाएँ आती हैं जिनसे नाटक में कौतूहल की वृद्धि होती है और दर्शक को आनन्दानुभूति होती है। नाटक का कथानक न तो अधिक छोटा हो और न अधिक विशाल, अपितु वह इतना हो कि हमारी स्मृति-शक्ति में समा सके। कथानक का निर्धारण आदि, मध्य और अंत के रूप में होता है। नाटक का कथानक ऐसा हो जिसे प्रेक्षक सरलतापूर्वक समझ सकें और उसका प्रवाह एक दिशा की ओर हो तथा उसे प्रासंगिक कथाएँ उलझन में न डाल सकें। नाटक की कथा का चुनाव करते समय लेखक को देखना पड़ता है कि वह आकर्षक हो तथा उसमें रोचक प्रसंगों का ही समावेश किया जाए। लेखक किसी कथा को काट-छाँट कर उसके रोचक

और उपयोगी अंश को ही नाटक का इतिवृत्र बनाये। अच्छे कथानक में अन्विति एवं सुसम्बद्धता का होना अनिवार्य है।

कथानक को प्रभावशाली बनाने के लिए आचार्यों ने उसकी पाँच अवस्थाओं का वर्णन किया है। वे हैं — आरंभिक अवस्था या प्रस्तावना (Exposition), संघर्ष का विकास (Rising action), चरमसीमा (Climax या Crisis), संघर्ष का ह्रास (Denouncement या Falling action) तथा उपसंहार (Catastrophe)। पाश्चात्य नाटकों में संघर्ष की प्रमुखता होती है। प्रारंभिक अवस्था में मुख्यपात्र एवं उसकी समस्याओं का वर्णन होता है अर्थात इसमें दिखलाया जाता है कि मुख्य पात्र कौन-कौन से हैं और उनके समक्ष कौन-सी समस्याएँ हैं। संघर्ष का विकास उसे कहते हैं जिसमें आंतरिक और बाह्य दोनों संघर्षों का वर्णन हो। इसमें आकस्मिक ढंग से ऐसी परिस्थिति आ जाती है जिससे घटना के विकास के कारण नवीन समस्या उपस्थित हो जाती है। चरमसीमा उसे कहते हैं जब संघर्ष चरमस्थिति को पहुँच जाए। यह पात्रों के जीवन का महत्त्वपूर्ण क्षण होता है। इस स्थिति में घटनाएँ नई घटनाओं को जन्म देती हैं और चरित्र में परिवर्तन होने लगता है। संघर्ष का ह्रास कथानक की वह स्थिति है जिसमें संघर्ष शिथिल होकर संपूर्ण घटना-प्रवाह को समेट लेता है और इस स्थिति में नाटक के सारे क्रिया-कलाप समाप्ति की ओर उन्मुख होते हैं। अन्तिम अवस्था उपसंहार या परिणिति में नाटकीय पात्रों के सभी संघर्ष समाप्त हो जाते हैं और नायक को फल की प्राप्ति हो जाती है। यह फल अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। इस अवस्था में नाटक की सारी समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं और उनका समाधान हो जाता है।

कथानक की पाँच अवस्थाओं के कारण नाटक पाँच अंकों में विभक्त होते हैं और प्रत्येक अंक में एक-एक अवस्था का विधान होता है।

पाश्चात्य नाटकों में संकलनत्रय (Three unities) पर जोर दिया जाता है। संकलनत्रय का अर्थ है स्थान, काल एवं कार्य की एकता अर्थात (unity of place, unity of time and unity of action)। स्थान की एकता से अभिप्राय यह है कि नाटक में जितनी घटनाएँ प्रदर्शित की जाएँ वे एक ही स्थान की हों या उनका संबंध एक ही स्थान से हो। समय की एकता का अर्थ यह है कि नाटक में जिस घटना का प्रदर्शन हो वह उतने ही समय की हो जितना कि समय अभिनय में लगता है। कार्य की एकता का संबंध कथावस्तु की एकता से

है अर्थात नाटक का कथानक एक रस हो और उसके निर्वाह के लिए प्रासंगिक कथाओं का नियोजन न किया जाए। अरस्तू ने बताया था कि नाटक की कथावस्तु में प्रासंगिक कथा या अनावश्यक घटनाओं की बहुलता नहीं होनी चाहिए। कथानक की एकरसता आवश्यक है, अन्यथा विभिन्न दिशाओं में जाने के कारण कथावस्तु बोझिल और प्रभावहीन हो जाती है।

नाटक की कथा में तीव्रता उसका आवश्यक अंग है, इसके लिए संक्षिप्तता का होना अनिवार्य है। नाटक का कथानक ऐतिहासिक, राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन से सम्बद्ध होता है। इनके अतिरिक्त नाटक के स्रोत प्राचीन वृत्त एवं ग्रंथ तथा ऐतिहासिक प्रसंग भी होते हैं। लेखक अपने चतुर्दिक जीवन से अथवा प्राचीन वृत्त से कथानक ग्रहण कर उसमें कल्पना-शक्ति का समावेश कर मौलिकता ला देता है।

कथानक में मुख्य कथा की समानांतर एवं विरोधी घटनाओं (Parrallel and Contrast) के नियोजन से गरिमा की उत्पत्ति होती है और कथानक अधिक प्रभावशाली होता है।

चरित्र-चित्रण — नाटक में पात्रों का बहुत बड़ा स्थान है। पाश्चात्य नाटकों में चरित्र के चढ़ाव-उतार पर अधिक बल दिया जाता है। नाटक चरित्र प्रधान होते हैं। चरित्र के लिए आवश्यक है कि उसमें महत्त्वपूर्ण गुणों का स्थापन हो। औचित्य चरित्र की अनिवार्य शर्त है और उचित पात्र में उचित गुण का सन्निवेश किया जाए। जब पात्र महान उद्देश्य लेकर चलता है तभी उसका चरित्र श्रेष्ठ होता है। चरित्र का निर्माण पात्रों के कार्यों द्वारा होना चाहिए तथा उसका उत्थान और पतन सकारण हो। नाटकीय पात्र महान हों या निकृष्ट उनके व्यक्तित्व का उभरना आवश्यक है अर्थात उनका चरित्र स्पष्टतः अंकित हो। साथ ही उनके कार्यों और व्यक्तित्व में सामंजस्य का होना आवश्यक है। इसमें नायक या प्रमुख पात्र का चरित्र इतना प्रभावशाली हो कि वह नाटक के कार्य के दिशा का निर्धारण स्वयं करे। नाटक में पात्रों की विविधता का होना आवश्यक है। उसकी सारी घटनाएँ, सारे पात्र नायकोन्मुख होते हैं और नाटकीय कार्य-व्यापार के समस्त सूत्र उसी के हाथ में रहते हैं। नाटक के प्रमुख पात्र कई भी हो सकते हैं, पर नायक एक ही होता है और उसका व्यक्तित्व भव्य होता है। नाटक में नायिका भी एक ही होती है। नायक की चारित्रिक विशेषता का प्रकाशन नाटक के प्रारंभ में ही होना चाहिए।

नाटककार पात्रों का चयन करते समय ऐसे व्यक्तियों का वर्णन करे, जिनमें गुण-दोष समान हों और वे मानवोचित सफलताओं और दुर्बलताओं से युक्त हों।

यूरोप के नाटकों में पहले गौरवपूर्ण, प्रभावशाली व्यक्तित्व सम्पन्न एवं उच्चकुलोद्भव पात्रों का ही समावेश होता था, पर अब साधारण वर्ग के पात्र भी नाटक में स्थान पाने लग गए हैं।

कथोपकथन — कथोपकथन या संवाद नाटक में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यही वह साधन है जिसके माध्यम से नाटककार अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कर अपने जीवनादर्श को स्थापित करता है। कथोपकथन के तीन उद्देश्य हैं — कथावस्तु में विस्तार लाना, चरित्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालना तथा नाटक को एकरसता से बचा कर उसमें मनोरंजक तत्त्वों का समावेश करना। नाटक में संवाद का सुंदर होना तथा अभिनय के उपयुक्त होना चाहिए; क्योंकि उसकी सफलता संवादों पर ही निर्भर करती है। संवाद यथासंभव छोटे, प्रभावपूर्ण तथा पात्रानुकूल हों तथा कलात्मक एवं अभिनय योग्यता से सम्पन्न रहें। यदि उसमें साहित्यिक गुणों के होते हुए भी अभिनय की योग्यता न रहे तो वैसा कथोपकथन नाटक के लिए उपयुक्त नहीं होता। कथोपकथन की सफलता इसमें है कि अभिनेता उसे बिना व्यवधान के बोल सकें एवं दर्शक सरलतापूर्वक समझ सकें। विषय के अनुरूप संवादों में वैविध्य का होना आवश्यक है। कॉमदी के संवाद यथासंभव हास्य एवं व्यंग्य प्रधान तथा त्रासदी के संवाद गरिमापूर्ण एवं विचारप्रधान रहें। विभिन्न पात्रों के संवादों की भाषा भिन्न होनी चाहिए और उनके स्वभाव एवं परिस्थिति का स्थान रख कर उनकी भाषा का नियोजन किया जाए। व्यक्ति-भेद के अनुसार नाटकीय संवाद की भाषा में भी वैविध्य होने से वह अधिक प्रभावशाली और प्राणवन्त हो जाता है। पात्रों के संवाद उनके चरित्र के सूचक होते हैं, अतः संवाद का उद्देश्य चरित्र-निर्माण में सहयोग देना होना चाहिए।

भाषा — भाषा को अरस्तू ने नाटक का महत्त्वपूर्ण अंग मान कर उस पर अत्यंत विस्तार से विचार किया है। उसके अनुसार भाषा असाधारण एवं स्पष्ट होनी चाहिए। अभिप्राय यह कि नाटक की भाषा साधारण स्तर से ऊँची हो और उसमें कलात्मकता का समावेश किया जाय। नाटक की भाषा लाक्षणिक एवं रूपक के प्रयोग से युक्त हो, पर उसमें ध्यान रखना चाहिए कि वह कृत्रिम न होकर बोधगम्य बनी रहे। यथासंभव नाटक की भाषा सरल और सर्वजनग्राह्य हो; क्योंकि वह दर्शकों के लिए ही लिखा जाता है।

गीत — गीत नाटक के अभिन्न अंग हैं। नाटक में गीतों का नियोजन रंगमंच की दृष्टि से हो और वे कथानक के साथ सुसम्बद्ध रहें। अभिप्राय यह कि नाटक

का रचना-विधान, नाटककार की क्षमता, रंगमंच के उपकरण, अभिनय के तत्त्व आदि आते हैं।

Dropscene (ड्रापसीन) पटाक्षेप

नाटक के किसी अंक की समाप्ति के पश्चात आगे का पर्दा गिराया जाता है। पर्दे को तेजी से गिराने की रीति ही पटाक्षेप है।

Edler (एडलर) प्रसिद्ध मनोविश्लेषण शास्त्री। दे. Fruedism.

Elegy (एलेजी) शोकगीत

काव्य का एक रूप जिसमें मृत व्यक्ति के प्रति शोक प्रकट किया जाता है। शोकगीत में कृत्रिमता का अभाव रहता है, क्योंकि कृत्रिमता के कारण यह प्रभाव-हीन हो जाता है। 'एलेजी' का प्रणयन देश के महान पुरुषों के निधन अपने संबंधी या प्रिय व्यक्ति की मृत्यु, बिछोह या मानवजीवन की निस्सारता पर भी होता है। कभी-कभी चिंतन-प्रधान रचनाएँ भी 'एलेजी' के रूप में रची गई हैं। एलेजी का उद्‌भव प्राचीन ग्रीक में हुआ था और उस समय इसकी रचना एलैजियक छन्द में होती थी, जिसमें दो चरण रहते थे। इसमें पहले डैक्टलिक हैक्सामीटर और पुनः पैन्टामीटर प्रयुक्त होने लगे। प्राचीन ग्रीक में किसी भी विषय का वर्णन - युद्धगीत, प्रेम-गीत, राज़नीतिक काव्य सा मृतक व्यक्ति के प्रति शोक व्यक्त करना — एलेजी के अंतर्गत किया जाता था। पर, आधुनिक युग में अँग्रेजी में इसमें विषय की महत्ता स्वीकार की गई और छन्द का स्थान गौण रहा। जब शोक या दुःखात्मक चिंतन को ही एलेजी का विषय बनाया जाता है। अँग्रेजी में ग्रे की एलेजी अधिक विख्यात है। इसमें प्रगति की अपेक्षा भावुकता कम होती है।

Eliot T.S. (टी. एस. इलियट) (1888-1965)

अँग्रेजी कवि और आलोचक। टामस स्टर्न्स इलियट का जन्म 26 सितम्बर 1888 ई. में लुई मिसौरी में हुआ था। उसने हार्वर्ड विश्वविद्यालय से बी.ए. की उपाधि प्राप्त की और 1915 ई. में इंगलैंड में जाकर स्थायी रूप से बस गया। उसने दर्शन, संस्कृत तथा पालि का विशेष अध्ययन किया था। उसे 'वेस्टलैण्ड' नामक काव्य-ग्रंथ पर 1948 ई. में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1920 ई. में उसके

निबंधों का संग्रह दी 'सेक्रेड वुड' के नाम से प्रकाशित हुआ। उसने कविता, काव्य नाटक और आलोचना की रचना की है। उसकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएँ हैं — 'दी वेस्टलैण्ड', 'दी हॉलोमेन', 'ऐश वेडनेस डे', 'कलेक्टेड पोयम्स', 'फोर क्वार्टस'। उनके काव्य नाटक हैं — 'मर्डर इन दी कैथेड्रल', 'दी फैमिली रीयूनियन', 'दी काकटेल पार्टी', 'दी कान्फिडेंशल क्लर्क'। उनके प्रसिद्ध आलोचनात्मक ग्रंथ हैं — दी सेलेक्टेड एसेज, 'दी यूज ऑफ पोयट्री एण्ड दी यूज ऑफ क्रिटिसिज्म', 'पोयट्री एण्ड ड्रामा','ऑन पोयट्री एण्ड पोयट्स', 'ह्वाइट इज ए कलासिक' तथा 'दी सेक्रेडवुड'। उसकी मृत्यु 1965 ई. में हुई।

इलियड वर्तमान युग का श्रेष्ठ कवि एवं महान आलोचक हैं। उसने 1928 ई. में घोषित किया था कि वह राजनीतिक दृष्टि से राज-सत्तावादी, धार्मिक दृष्टि से उदारवादी ईसाई तथा साहित्यिक दृष्टि से परंपरावादी चिंतक है। उनके इन विचारों पर पर्याप्त विवाद हुआ तथा साहित्यिक मान्यता पर भी मत वैभिन्न व्यक्त हुए। इलियट का साहित्य-चिंतन फ्रांसीसी प्रतीकवादियों, रेमीडी गोर्मो तथा टी. ई. हुल्मे के विचारों से अभिभूत है। उसके ऊपर अरस्तू का भी ऋृण है। साहित्य चिंतन की दिशा में इलियट की दो प्रमुख स्थापना हैं—सर्वग्रासी वैयक्तिकता का तिरस्कार कर कला के निर्बैयक्तिक सृजनात्मक रूप की प्रतिष्ठा तथा साहित्यिक परंपरा की पूर्णता में रख कर कृति को समझने का प्रयास अर्थात निर्वैयक्तिकता एवं परंपरा निष्ठा की स्थापना। कला के क्षेत्र में उसने साहित्येतर-ज्ञान-विज्ञान के बढ़ते हुए दुष्प्रभाव को रोक कर कला के शुद्ध रूप को प्रतिष्ठित किया है। वह साहित्य में आत्माभिव्यक्ति का विरोध कर साहित्य या काव्य को व्यक्तित्व से पलायन मानता है और इतिहास तथा परम्परा को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करता है।

उनके काव्य और काव्य-चिंतन में एकरूपता के दर्शन होते हैं तथा आलोचनात्मक निबंधों में जिन मतों की स्थापना की गई है, उनका व्यावहारिक रूप काव्य में दिखाई पड़ता है। उसने स्वच्छन्दतावाद के दीर्घकालीन आधिपत्य का निषेध कर क्लासिकल मत का प्रतिपादन किया है। इलियट ने अपने अनेक निबंधों में निजी शास्त्रीय मतों का प्रतिपादन किया है। परंपरा एवं वैयक्तिक प्रतिभा (Tradition and Individual Talent) नामक निबंध में उसने सिद्ध किया है कि काव्य-रचना में परंपरा का स्थान प्रमुख है तथा कवि की प्रतिभा केवल मध्यस्थ के रूप में उसे काव्य में प्रतिफलित करने में सहायक बनती है। यह निबंध सैद्धांतिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्व रखता है। उसने शेक्सपियर कृत 'हैमलेट'

के संबंध में विचार करते हुए 'वस्तुमूलक प्रतिरूपता' (Objective Correlative) की व्याख्या की है। दाँते विषयक निबंध में वह काव्य एवं दर्शन के संबंध में विचार करता है। इसी प्रकार 'परफेक्ट क्रिटिक' (सफल समीक्षक) 'इमपरफेक्ट क्रिटिक' (असफल समीक्षक) तथा 'फंकशन ऑफ क्रिटिसिज्म' (समीक्षा के उद्देश्य) नामक निबंधों में उसने अपने क्लासिकी दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। 'ह्वाट इज ए क्लासिक' नामक बृहत् निबंध में उसकी क्लासिकी दृष्टि का विस्तृत विवेचन हुआ है। उसने क्रमबद्ध रूप से किसी समीक्षा-सिद्धांत का प्रतिपादन न कर विभिन्न निबंधों में अपनी मान्यताओं का गुंफन किया है। उसके निबंध प्राय: व्यावहारिक समीक्षा से संबद्ध है और उनमें किसी कवि लेखक एवं कृति के मूल्यांकन के क्रम में नवीन मतों का उपास्थापन किया गया है।

कला की निर्बैयक्तिकता पर विचार करते हुए उसने कहा कि कविता में कवि की व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं होती, अपितु वह केवल माध्यम का कार्य सम्पन्न करता है। वह परंपरा के जीवन्त विकास को महत्त्व देकर साहित्य के वस्तुनिष्ठ स्वरूप को प्रमुखता देता है। वह कला को निर्वैयक्तिक मानकर कवि के मस्तिष्क को काव्य की स्वतंत्र अवतारणा के लिए माध्यम मात्र मानता है। "कवि व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं करता है, वरन् वह विशिष्ट माध्यम भर होता है।" "कवि का मस्तिष्क प्लेटिनम के टुकड़े के समान होता है।" "इस बात का आग्रह किया जाना चाहिए कि कवि अतीत-बोध की उपलब्धि करे और निरंतर उसका विकास करता रहे।" "कलाकार की प्रगति निरंतर आत्म-त्याग, व्यक्तित्व का निरंतर बिहिष्कार है। तात्पर्य यह है कि कवि 'परंपरा' के विकास में योग देते समय अपने व्यक्तित्व का त्याग करता रहता है, वह अपने व्यक्तित्व को काव्य से बहिष्कृत करता रहता है। इसलिए अपने व्यक्तिगत भावों की अभिव्यक्ति कला नहीं है, वरन् उनसे पलायन कला है। कला व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, वरन् उससे पलायन है। किंतु, वास्तव में, जिनके पास व्यक्तित्व और भाव हैं, वे ही जान सकते हैं कि उनसे पलायन करने का क्या अर्थ हो सकता है।" यदि कवि अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं में ही सिमट कर उन्हीं को प्रकाशित करने का प्रयत्न करे तो उनकी कृतियों का मूल्य अल्प होगा। जब कवि परंपरागत सांस्कृतिक प्रभावों को अपने माध्यम से अभिव्यक्त करेगा तभी उसकी रागात्मक प्रवृत्तियाँ या उसके सुख-दुःख, राग-द्वेष सार्थक और सार्वभौम बन सकेंगे। इलियट आंतरिक चेष्टाओं तथा क्रियाओं के स्थान पर परंपरा को महत्त्व प्रदान करता है, जिसमें इतिहास तथा संस्कृति के मौलिक तत्त्व अभिनव रूप में सतत सन्नि विष्ट

रहते हैं। उसने बाह्य-निरूपण पर बल देकर रोमांटिक व्यक्तिवाद के विरुद्ध इस मत को स्थापित किया है। परंपरा की व्याख्या करते हुए उसने कहा-"परंतु, यदि परंपरा का दाप का, यही एक मात्र रूप है कि अपने से पहली पीढ़ी को मिलने वाली सफलताओं को देखते हुए आँखें बन्द करके अथवा कातरता से उसके तौर-तरीकों का अनुसरण किया जाए- तो निश्चय ही परंपरा का प्रतिषेध होना चाहिए।. . . . परंपरा का कहीं अधिक व्यापक महत्त्व होता है। वह विरासत में नहीं मिल सकती, अगर हम चाहें तो उसे बड़े प्रयत्न से ही उपलब्ध कर सकते हैं। सबसे पहले तो उसमें इतिहास-भावना आती है-पच्चीस वर्ष की आयु के पश्चात भी जो कवि बना रहना चाहे। उनके लिए यह प्रायः अनिवार्य है। और इतिहास-भावना में अतीत की अतीतता का ही नहीं, उसकी वर्तमानता का भी अवबोध समाविष्ट है। इतिहास-भावना लेखक को अपनी अस्थियों में केवल अपनी ही पीढ़ी को लेकर लिखने पर बाध्य नहीं करती वरन् यह भाव लेकर लिखने पर बाध्य करती है कि होमर से लेकर अब तक के समस्त यूरोपीय साहित्य और उसके अपने देश के सम्पूर्ण साहित्य का युगपत् अस्तित्व है और उससे एक युगपत् अनुक्रम निर्मित होता है। यह इतिहास भावना ही-जो काल निरपेक्ष की एवं काल-सापेक्ष की पृथक्-पृथक् तथा समन्वित भावना है-लेखक को परम्परीण बनाती है। और यही भावना लेखक को काल-प्रवाह में अपने स्थान का, अपनी सम-सामयिकता का अत्यंत तीव्र बोध कराती है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ.281-282) "परंपरा से मेरा मतलब है उन सब आदतों, अभ्यासजन्य कार्यों और रीतिरिवाजों से अत्यंत महत्त्वपूर्ण धार्मिक कार्यों से लेकर किसी नवागन्तुक को अभिनन्दन करने के स्वीकृत तरीकों तक-जो एक साथ एक स्थान में रहनेवाले एक समुदाय के व्यक्तियों के रक्त-संबंधों को व्यक्त करते हैं।"

इलियट के अनुसार निर्वैयक्तिकता की स्थिति में कला विज्ञान के निकट आ जाती है। "कवि का मन इस प्लेटिनम के टुकड़े की भाँति होता है। व्यक्ति के अनुभव को वह अंशतः अथवा पूर्णतः प्रभावित कर सकता है, परंतु कलाकार जितना सिद्धहस्त होगा उतने ही उसमें भोक्ता मानव और स्रष्टा मन परस्पर पृथक् रहेंगे, और उतनी ही सुष्ठु रीति से मन अपनी उपादान-रूप वासनाओं को आत्मसात् और रूपांतरित करेगा।" "वस्तुतः कवि का मन असंख्य भावनाओं, पदावलियों, बिम्बों के ग्रहण एवं संचयन के निमित्त एक आधान-पात्र की भाँति होता है और वे तब तक वहाँ रहते हैं जब तक वे सब घटक, जिनके संयोग से कोई नया यौगिक पदार्थ बन सकता हो, एक साथ एकत्र नहीं हो जाते।"

इलियट ने वैयक्तिक मनोभावों की उत्कृष्टता को काव्य का वैशिष्ट्य न मानकर कलात्मक प्रक्रिया की उत्कृष्टता को महत्ता दी है। "कवि के पास अभिव्यक्त करने के लिए कोई व्यक्तित्व नहीं होता, एक विशिष्ट माध्यम होता है जो केवल एक माध्यम होता है—व्यक्तित्व नहीं, जिसमें मन पर पड़े हुए प्रभाव और अनुभव एक विचित्र और अप्रत्याशित ढंग से संयुक्त होते हैं। संभव है कि व्यक्ति के लिए जो प्रभाव और अनुभव महत्त्वपूर्ण हों, वे व्यक्ति-उसके व्यक्तित्व के लिए-नगण्य हों।" "अभिव्यक्ति के लिए नये भावों की खोज करना, कविता का विलक्षणताजन्य एक दोष है। कवि का कार्य नूतन भावों की खोज करना नहीं, अपितु साधारण भावों का उपयोग करना है, और उन्हें काव्य का रूप देने में ऐसी भावनाएँ अभिव्यक्त करना है जो वास्तविक मनोभावों में बिल्कुल ही विद्यमान न हों। इस प्रकार जिन भावों की उसने अनुभूति नहीं की, वे भी उसी तरह उसके कार्य में सहायक होंगे जिनसे वह परिचित है।" (पाश्चात्य समीक्षा-दर्शन, पृ.410)

इलियट ने कहा कि कवि परंपरा के प्रभाव को सप्रयास आत्मसात् कर अपने व्यक्तित्व को समर्पित कर देता है और उसमें उसके व्यक्तित्व का भी विलयन हो जाता है। इसी क्रम में उसने 'वस्तुमूलक प्रतिरूपता' (ऑब्जेक्टिव कोरिलेटिव) के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार कला के रूप में संवेगों की अभिव्यक्ति का एक मात्र मार्ग 'वस्तुमूलक प्रतिरूपता' का सिद्धांत है। दूसरे शब्दों में वस्तुओं का समुदाय, विशिष्ट स्थिति, घटनाओं की शृंखला जो उस विशेष संवेग के सूत्र होंगे। यदि इस प्रकार के संवेदनात्मक अनुभूति परिणामी तत्त्व काव्य में दिए जाते हैं तो संवेग शीघ्र ही उद्बुद्ध हो उठते हैं।" इलियट के इस कथन से स्पष्ट होता है कि काव्य-विषय संवेगों की उद्बुद्धि का माध्यम है। कवि बिम्बों, मुहाबरों तथा प्रतीकों के माध्यम से काव्य में भावों का प्रकाशन करता है और सहृदय में उन्हीं के माध्यम से भाव उद्बुद्ध होते हैं। इनके द्वारा अमूर्त्त भाव मूर्त्त रूप में प्रकट होते हैं और इन मूर्त्त चिह्नों या प्रतीकों से पाठक के मन में उसी प्रकार की भावनाएँ उद्बुद्ध होती हैं जैसी कि कवि के मन में जाग्रत हुई थीं। इलियट काव्य की सफलता इसी रूप में मानता है कि "भावनाओं और उनके मूर्त्तविधान में पूर्ण सामंजस्य और एकरूपता हो।"

इलियट ने अभिजात या क्लासिकल काव्य का सविस्तर विवेचन अपने 'ह्वाट इज ए क्लासिक' नामक महानिबंध में किया है। उसके अनुसार अभिजात काव्य का लक्षण एक शब्द में प्रौढ़ता है। या प्रौढ़ या श्रेष्ठ कृति। "जब कोई सभ्यता

प्रौढ़ हो तभी उसमें अभिजात कृति की रचना हो सकती है और वह प्रौढ़ मस्तिष्क का ही कृतित्व हो सकता है। किसी सभ्यता तथा भाषा की महत्ता और कवि-विशेष की ग्रहण शक्ति की व्यापकता कृति को सार्वभौमता प्रदान करती है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ.269-270) कोई भी कृति तभी प्रौढ़ कही जा सकती है जब उसमें जीवन के विकसित एवं उच्चादर्शों का प्रकाशन हो। किसी भी कृति की प्रौढ़ता के स्रोत पर विचार करते हुए इलियट ने बताया कि यह कृतिकार के मस्तिष्क की प्रौढ़ता में निहित है और वह उसे उन्नत सामाजिक व्यवस्था से ग्रहण करता है। इस दृष्टि से अविकसित समाज न तो प्रौढ़ मस्तिष्क को जन्म दे सकता है और न उसमें अभिजात कृति की रचना हो सकती है।

अभिजात कृति की अन्य विशेषता वह भाषा की प्रौढ़ता मानता है। इस दृष्टि से उसने बताया कि पद्य की अपेक्षा गद्य में भाषा का प्रौढ़त्व सहज लक्षित किया जा सकता है। उसके अनुसार 'अभिजात गद्य का विकास सामान्य शैली की दिशा में होता है।' "किंतु, सामान्य शैली का युग वही होगा जब समाज व्यवस्था एवं स्थैर्य, संतुलन तथा सामंजस्य के क्षण पा गया हो।" अभिजात कृति का अन्य लक्षण व्यापक प्रभाव है। उत्कृष्ट साहित्य देश-काल की परिधि का अतिक्रमण कर सार्वभौम बन जाता है। पूर्ण अभिजात कृति में किसी जाति की समग्र प्रतिभा, भले ही सर्वथा अभिव्यक्त न हो, अंतर्हित अवश्य होगी और वह इस प्रकार की भाषा में प्रकट होगी कि उसकी समग्र प्रतिभा पूँजीभूत हो जाय। उसने अभिजात साहित्य के दो विभाग किए हैं- सापेक्ष और निरपेक्ष अभिजात साहित्य "अर्थात एक ओर ऐसा साहित्य है, जिसे अपनी भाषा की सापेक्षता में अभिजात कहा जा सकता है और दूसरी ओर ऐसा जिसे अन्य अनेक भाषाओं की सापेक्षता में अभिजात कहते हैं।"

Emotional Essay (इमोशनल एसे) भावात्मक निबंध—दे. Essay

Empiricism (एम्पिरिसिज्म) अनुभववाद

दर्शन का एक वाद विशेष, जिसके अनुसार ज्ञान का एकमात्र आधार अनुभव या प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। यह (वाद) बतलाता है कि मनुष्य का सारा ज्ञान अनुभव-प्रसूत है और हमारे समस्त ज्ञान का प्रारंभ और पर्यवसान इन्द्रियों के ही अनुभव से होता है। लॉक, बर्कले और ह्यूम इस मतवाद के समर्थक और पोषक हैं। यह सिद्धांत मूल तत्त्व की प्रकृति को न तो जड़ मानता है और न चेतन, अपितु

उसे दोनों से भिन्न स्वीकार करता है। यह मूल तत्त्व को न तो भौतिक कहता है और न मानसिक, बल्कि वह दोनों से सर्वथा भिन्न और विलक्षण है। दोनों में से किसी के प्रति इसका झुकाव न होने के कारण इसे (अनुभववाद को) ताटस्थ्यवाद भी कहते हैं। इसके अनुसार जड़ तथा चेतन दोनों ही समान रूप से सत्य हैं। अतः, दोनों में से किसी एक को दूसरे में अंतर्मुक्त नहीं किया जा सकता। जड़ की व्याख्या न तो चेतन के आधार पर संभव है और न चेतन की व्याख्या जड़ के आधार पर हो सकती है। दोनों में तात्त्विक अंतर न होकर रूप (स्ट्रक्चर) का अंतर होता है। इनका उद्‌भव एक प्रकार के तत्त्व से हुआ है जो इनसे भिन्न तथा प्राथमिक (प्राइअर) है और उस तत्त्व को परमार्थ सत्ता कहते हैं। जड़ और चेतन से भिन्न होने के कारण इसे अनुभय कहते हैं। अनुभववादी मूल तत्त्व की प्रकृति एकात्मक मानते हैं, पर उसकी संख्या को अधिकांश व्यक्तियों ने अनेक माना है। फलतः अनेक अनुभव तत्त्व परमार्थ तत्त्व या विश्व के मूलाधार हैं। अनुभव तत्त्वों के ज्ञान के संबंध में अनुभववाद कहता है कि वे अनुभव से परे न होकर अनुभवगम्य हैं, अतः अनुभववाद किसी पदार्थ को अनुभवातीत नहीं मानता। कारण यह कि मूल तत्त्व के अनुभवगम्य होने के कारण उनसे उत्पन्न पदार्थों को भी अनुभवगम्य कहा जाता है। यह विश्व के प्रत्येक पदार्थ का उद्‌गम अनुभव तत्त्व से मानता है, फलतः सारा विश्व ही अनुभवगोचर है। अनुभववाद जड़ और चेतन दोनों का उद्‌गम एक मानता है और इनके निर्णायक तत्त्व को भी एक स्वीकार करता है। यह मानता है कि सृष्टि में जो कुछ भी प्रत्यक्ष है उसे ही सत्य कहा जा सकता है और उससे परे सब कुछ असत्य है। साहित्य के क्षेत्र में मार्क्सवादी साहित्यशास्त्र को प्रत्यक्षवादी साहित्यशास्त्र कहा जाता है। चूँकि उसका आधार प्रत्यक्ष सृष्टि है, अतः वह किसी परोक्ष सत्ता को प्रामाणिक नहीं मानता।

Empson William (विलिय इम्पसन) – अँग्रेजी आलोचक। दे. New Criticism.

■

English Criticism (इंगलिश क्रिटिसिज्म)
अँग्रेजी-आलोचना

अँग्रेजी में आलोचना का सम्यगारम्भ सर फिलिप सिडनी की कृतियों से होता है। उसके पूर्व पुनर्जागरण या नवजागरण-काल से अँग्रेजी में आलोचना के बीच अंकुरित होने लगते हैं, किंतु तत्कालीन अँग्रेजी आलोचना इतालवी आलोचना से अधिक विकसित नहीं है। (दे. Italian Criticism)। सर टाम एक्त्योट कृत 'गवर्नर' नामक पुस्तक में (1530 ई.) उच्च-राजनैतिक पदों के अभिलाषी बालकों को शिक्षा देने के लिए कुछ ऐसे तथ्य सन्निविष्ट थे जिनमें समीक्षा के प्रारंभिक रूप की छटा दिखाई पड़ती है। उसमें कहा गया है कि 'छिटपुट कवियों में अच्छी बातें मिल जाती हैं। जो पूर्ण बुद्धिमान होना चाहे उसे सब प्राचीन कवियों का अध्ययन करना चाहिए' 'गवर्नर' में जिस उपदेशवाद की बात कही गई है उससे तत्कालीन सारा यूरोपीय साहित्य अनुप्राणित एवं अभिभूत था। उसी समय 'गॉसन' तथा 'प्राइन' ने कविता एवं रंगमंच पर (1535 ई. में) बड़े आक्षेप किए थे, पर समीक्षा के विकास की दृष्टि से उनका महत्त्व अल्प था। गॉसन के विचारों का इस दृष्टि से महत्त्व अवश्य है कि उससे ही प्रेरणा प्राप्त कर सिडनी ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना की थी, जो उसके आक्षेपों का निरास करने के लिए लिखे गए थे। अँग्रेजी आलोचकों ने भाषण या वाग्मिताशास्त्र पर लिखने वाले व्यक्तियों को भी अँग्रेजी आलोचना के इतिहास में स्थान दिया है। 'टामस विलसन' ने 1553 ई. में आर्ट ऑफ रेहटोरिक नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें कहा गया

कि कविता पाठाकों को उपदेश देकर प्रभावित करती है। वस्तुतः आलोचना का वास्तविक रूप रोजर एश्चम की 'स्कूलमास्टर' (1570 ई.) नामक पुस्तक में उभरा जिसमें साहित्यालोचन के कुछ तत्त्व दृष्टिगोचर हुए। सरफिलिप सिडनी के आविर्भाव के पूर्व अँग्रेजी में आलोचना का यही रूप था। सिडनी ने पूर्ववर्ती परंपरा तथा इतालवी आलोचकों के विचारों का समन्वय कर आलोचना के सिद्धांतों का निर्माण किया और उसकी कृतियों से ही इंगलैंड में साहित्य-सिद्धांत का प्रथम स्फुरण हुआ।

पुनर्जागरण काल में इंगलैंड की आलोचनात्मक उपलब्धियाँ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस युग में अँग्रेजी आलोचना में शास्त्रीयता का अधिक प्रचार हुआ और आलोचकों का ध्यान अलंकरण, रूप, शैली, पद-योजना, भाषा तथा काव्य के दार्शनिक पक्ष के प्रश्नों की ओर गया। पुनर्जागरणकाल के आलोचकों में सिडनी, बेन जॉनसन, ड्राइडन तथा एडीसन आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इटली के 'मानवतावाद' ने अँग्रेजी आलोचना को अधिक प्रभावित किया।

सिडनी–इसने 'एपोलॉजी ऑफ पोएट्री' तथा 'डिफेन्स ऑफ पोएजी' नामक दो आलोचनात्मक पुस्तकों की रचना की थी जिनका प्रकाशन उसकी मृत्यु के उपरांत 1595 ई. में हुआ। उसका जिस समय आविर्भाव हुआ, उस समय सभ्य लोगों ने कविता की उपेक्षा की और शिष्ट समाज से उसका बहिष्कार हुआ। उसने काव्य के स्वरूप और जन-जीवन पर पड़नेवाले उसके प्रभावों पर विचार किया तथा तत्कालीन मनोवृत्ति का अध्ययन कर काव्य के मानववादी और व्यापक तथ्य की व्याख्या की और उसे समादृत किया। सिडनी ने बताया कि काव्य हेय नहीं; ज्ञान की जननी है, अतः इस माता की अवहेलना करना समाज के लिए उचित नहीं है। उसने बताया कि कवि ने ही संसार को सर्वप्रथम ज्ञान का प्रकाश दिया था। होमर के ग्रंथ न केवल काव्यग्रंथ हैं, बल्कि वे प्रथम ज्ञान, धर्म और नीति-ग्रंथ हैं। उसने कविता की प्राचीनता सिद्ध करते हुए सभ्यता और संस्कृति के विकास में उसके महत्त्वपूर्ण योगदान की अभ्यर्थना की और बताया कि दार्शनिकों, नीतिज्ञों, उपदेशकों तथा इतिहासकारों ने कविता के माध्यम से ही अपने विचारों को व्यक्त किया है। उसने कविता की परिभाषा देते हुए कहा "कविता सप्राण और भावात्मक शैली में निर्मित वह कल्पना-सृष्टि है जिसके माध्यम से दार्शनिक, ऐतिहासिक या नैतिक तथ्य व्यक्त होता है।" काव्य की महत्ता इस कारण है कि वह ज्ञान के विविध साधनों को पाठकों तक पहुँचाता है। कविता का सांगीतिक तत्त्व न केवल मनुष्यों को अपितु पशु-पक्षियों को भी प्रभावित करता है। काव्य की मुख्य उद्देश्य भाव के माध्यम से ज्ञान का प्रकाश प्रकट करना है। उसने काव्य को अलौकिक

प्रेरणा की देन कहा और उसे ईश्वरीय उपहार के रूप में समादृत किया। नैतिक आदर्श, धर्म तथा शिक्षा की दृष्टि से कविता की उपयोगिता सिद्धकर उसने तत्कालीन आलोचकों स्टीफेन गॉसेन-के आक्षेपों का निराकरण किया और काव्य का उद्देश्य आनन्दपूर्ण शिक्षा देना माना। सिडनी कोरी छन्दबद्ध रचना या तुकबन्दी को कविता नहीं मानता, उसके अनुसार कल्पनात्मक नवोपलब्धि ही काव्य का निजी वैशिष्ट्य है। (दे.-Sidney, Sir Philip, सर फिलिप सिडनी) जॉनसन ने अपने ग्रंथ 'लाइफ ऑफ द पोयट्स' में लिखा है कि ड्राइडेन को ही अँग्रेजी समीक्षा का पिता माना जा सकता है; क्योंकि वही पहला लेखक था जिसने सिद्धांतों के अनुसार किसी रचना का गुण सिखाया। ड्राइडेन ने (1631-1700) ने अपनी आलोचनात्मककृति 'एसे ऑन ड्रामेटिक पोएजी' की रचना कथोप कथन की शैली में की है, जिसमें चार वक्ता हैं। स्वयं लेखक ने स्वीकार किया है कि इसके चार वक्ता विविध दृष्टिकोण के प्रतिनिधि हैं। प्रथम वक्ता है क्राइस्ट जो प्राचीन लेखकों का समर्थन करता है और दूसरा वक्ता यूजीन एलिजाबेथ युगीन नाटकों का समर्थक है। तृतीय वक्ता लेसिडियस को अँग्रेजी नाटकों की अपेक्षा फ्रांसीसी नाटक अधिक रुचिकर प्रतीत होते हैं और चतुर्थ वक्ता नियण्डर है जिसे अँग्रेजी नाटक फ्रांसीसी नाटाकों की अपेक्षा अधिक पसंद है; यही ड्राइडेन के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। ड्राइडेन के साथ अँग्रेजी में तुलनात्मक समीक्षा का समारम्भ माना जाता है। वह बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार था जिसने कविता, नाटक, व्यंग्य एवं आलोचना सभी की रचना की थी उसने सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक दोनों ही प्रकार की आलोचनाएँ लिखी हैं और रंगमंच तथा नाटक से सम्बद्ध विषयों का विवेचन किया है। उसने प्राचीन युग के कवियों तथा चॉसर, शेक्सपियर एवं मिल्टन के संबंध में महत्त्वपूर्ण निर्णय दिया है और प्राचीन के प्रति आकर्षण और निष्ठा रखते हुए भी नवीनों के प्रति भक्ति प्रदर्शित की है। वह परंपरा को मान्यता देते हुए भी युगानुरोध को उतना ही महत्त्व देता है और सच्चे अर्थ में युग-चेता आलोचक माना जाता है। उसके अनुसार साहित्य का लक्ष्य आह्लाद देना है और इसी के द्वारा वह शिक्षा भी प्रदान कर सकता है। उसने कला और नीति के चिराचरित द्वन्द्व का उत्तर देते हुए कहा कि साहित्यगत आनन्द स्वार्थहीन तथा असामान्य होता है और साहित्य या काव्य में इसका समावेश (असामान्यता एवं आनन्द का) कोरी अनुकृति के कारण नहीं होता। कवि भौतिक जगत् से पृथक् कल्पना लोक का निर्माण करता है जो दृश्य संसार से सर्वथा पृथक् और भिन्न होता है। भौतिक जगत् इन्द्रय प्रत्यक्ष पदार्थ है तो काव्य मानस प्रत्यक्ष वस्तु।

उसने बताया कि कवि की रचनात्मक प्रतिभा से वर्ण्यविषय को नया रूप या आकार प्राप्त होता है। ड्राइडेन ने कल्पना-तत्त्व के प्रति आग्रह का भाव प्रदर्शित किया है और काव्य में उदात्त चरित्रों के चित्रण की आवश्यकता पर बल दिया है। (दे. Dryden ड्राइडेन)

नव्यशास्त्रवादी सिद्धांत (Neoclassicism) – के अंतर्गत अनुकृति-सिद्धांत की नवीन व्याख्याएँ प्रस्तुत हुई और इसका प्रमुख केंद्र-विन्दु प्रकृति का अनुकरण सिद्ध हुआ। इस युग के आलोचकों में एडीसन, पोप तथा डॉ. जॉनसन उल्लेख्य महत्त्व के हैं। एडीसन (1672-1719 ई.) ने स्पेक्टेटर नामक पत्र में आलोचनात्मक विचारों का प्रचार किया था और मुख्य रूप से मिल्टन कृत 'पैराडाइज लास्ट' का मूल्यांकन किया था। किसी कलाकृति के मूल्यांकन में वह पूर्व निर्धारित नियमों के प्रयोग को अच्छा नहीं समझता और भावक को उसके मर्म में प्रवेश कर उसके उन तथ्यों तथा स्रोतों के उद्घाटन पर बल देता है जो उसके मन में आनन्दानुभव प्रदान करते हों। उसने काव्य में कल्पना के आनन्द को ही कवि की प्रभविष्णुता का रहस्य सिद्ध किया है। वह कल्पना को इन्द्रियजन्य सुखात्मक संवेदना कहता है, जिसका आरंभिक रूप इन्द्रियगोचर अनुभव है और उसका एक दूसरा रूप है जिसका संबंध स्मृति से है। आलोचकों ने एडीसन की कल्पना विषयक उद्भावनाओं को स्थूल और ऊपरी कहा है। (दे. Addison) अलेक्जेण्डर पोप ने (1688-1744 ई.) 'ऐसे ऑन क्रिटिसिज्म' नामक ग्रंथ की रचना पद्य में की है, जिसमें उसे आलोचना संबंधी विचार गुंफित हैं। 'आलोचना-विषयक-निबंध' (ऐसे ऑन क्रिटिसिज्म) की रचना (1709 ई.) होरस-कृत 'आर्स पोएटिका' के अनुकरण पर हुई है। इसके तीन भाग हैं-प्रथम भाग में 'अनुकरण-सिद्धांत' पर आधृत विचारों का प्रतिपादन किया गया है और द्वितीय में प्रतिभा का विवेचन तथा काव्यगत नियमों के अनुपालन और अन्विति-निर्वाह पर बल देकर सभी प्रकार के अतिवादी दृष्टिकोण निवारण की शिक्षा दी गई है। तृतीय भाग में सफल आलोचक के गुणों का व्याख्यान किया गया है। अपने विचारों के स्थापन में पोप ने क्विन्टीलियन, होरेस तथा बुअलो आदि आलोचकों के विचारों को ग्रहण किया है और ड्राइडेन का भी उन पर प्रभाव है। (दे. Alexander Pope)। प्राचीन काव्य-सिद्धांतों की तत्कालीन स्थिति में उपयोगिता पर भी वे विचार करते हैं और काव्यात्मक निर्दोषत्व पर दृग्पात करते हैं।

डॉ जॉनसन (1709-1784 ई.) शास्त्रवाद (Classicism) के प्रबल समर्थक तथा अपने समय के साहित्यिक नेता थे। (दे. Samual Johnson) उन्होंने 'द लाइव्ज ऑफ द पोएट्स' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की है, जो अभी भी अनद्यतन नहीं है। उनके अनुसार काव्य का लक्ष्य प्रमाता को प्रमुदित कर उसका कल्याण करना है। उन्होंने लयबद्ध कविता के छन्दों को रुचिकर माना है तथा काव्यगत संगीत में बेसुरापन और अव्यवस्था को पसंद नहीं किया। शब्दों के संघटन में उन्होंने समरूपता का समर्थन किया है और कवि-कर्म की महत्ता सामान्य तथा सार्वभौम को अभिव्यक्ति देने में स्वीकार की है। उनके अनुसार हमारे मनोभावों को प्रदीप्त करने वाले काव्य की रचना सार्थक है और सत्याश्रित काव्य ही समर्थनीय है। उन्होंने कल्पना पर आधृत कथानक और घटनाओं को काव्य के लिए निरर्थक सिद्ध किया है।

अँग्रेजी में अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में स्वच्छन्दतावादी साहित्य-सिद्धांत का आविर्भाव हो गया था। इस युग के प्रसिद्ध आलोचकों में वर्डसवर्थ, शेली, कॉलरिज तथा हैजलिट महत्त्वपूर्ण हैं। वर्डसवर्थ मूलतः (1770-1850 ई.) रोमानी काव्य-युग का प्रवर्तक कवि था वह स्वच्छन्दतावादी आलोचना का अग्रदूत भी माना जाता है। उसने 'लिरिकल वैलेड्स' की भूमिका में अपनी साहित्यिक मान्यताओं का संयोजन किया है, जिसे रोमान्टिककाव्यालोचन का घोषणा पत्र कहा जाता है। इसमें उसने स्वच्छन्दतावादी जीवन मूल्यों, नवीनअर्थों, संदर्भों और अभिव्यक्ति की प्रणालियों का अन्वेषण किया है तथा कविता के स्वरूप-निरूपण में सहजानुभूति, तीव्रभावाभिव्यक्ति के अतिरिक्त सामान्य दैनिक जीवन की भाषा के प्रयोग का समर्थन किया है। उसके अनुसार "कविता मानव मन की प्रबल वेगवती भावनाओं की सहज उच्छलन है जिसकी उत्पत्ति शांत मय क्षणों में स्मृत मनोवेगों से होती है।" काव्य के विविध उपकरणों में वह निरीक्षण-शक्ति, भाव-प्रवणता, ललित कल्पना तथा विवेक को क्रमशः महत्त्व प्रदान करता है तथा महान कलाकृति को सदा मनुष्य की अंतःसत्ता की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मानता है। (दे. William Wordsworth विलियम वर्डसवर्थ) "वर्डसवर्थ के अनुसार कवि और सामान्य मानव में एक अंतर यह भी है कि जहाँ किसी तात्कालिक बाह्य उत्तेजना के बिना कवि अपेक्षाकृत शीघ्र विचार और भावन कर सकता है, साधारण व्यक्ति की कल्पना बाह्य उत्तेजना से प्रोद्दीप्त होती है। इसके अतिरिक्त कवि के मन में जो विचार और भावनाएँ उत्पन्न

होती हैं, उन्हें रूपायित करने और मूर्त्त अभिव्यक्ति देने की उसमें अपेक्षाकृत अधिक क्षमता होती है।" (आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ.127)

कॉलरिज (1772-1834 ई.) की समीक्षा-पुस्तक "बायोग्राफिया लिटरेरिया" का रेखांकित महत्त्व है। उसमें सत्समालोचक की संवेदनशीलता के अतिरिक्त स्वस्थ विचारक की चिंतन शक्ति का समाहार था। उसने दर्शन और काव्य के अविच्छिन्न संबंध की चर्चा की है तथा कल्पनां शक्ति को दिव्य प्रेरणा एवं ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति की सहोदरा माना है। उसने कल्पना शक्ति को ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति के समान घोषित किया और बतलाया कि कल्पना ससीम जीवात्मा में असीम ब्रह्म की शाश्वत सृजन-शक्ति की आकृति है। वह कल्पना शक्ति को अलौकिक मान कर उसे समष्टि मानस का प्रतिनिधि स्वीकार करता है। "मेरे विचार में कल्पना मुख्य होती है या गौण। मुख्य कल्पना तो मेरे अनुसार समस्त मानवीय ज्ञान की जीवन्त शक्ति और प्रमुख माध्यम होती है, वह असीम में होनेवाली अनन्त सृजन प्रक्रिया की ससीम मन में आकृति होती है। गौण कल्पना को मैं कल्पना की छाया-मात्र समझता हूँ, सचेतन संकल्प-शक्ति के साथ उसका सहअस्तित्व होता है, परंतु फिर भी माध्यम का प्रकार वह वैसी ही होती है जैसी मुख्य कल्पना-अंतर होता है मात्रा का और क्रिया-विधि का। पुनः सृजन के निमित्त उसका तिरोधान, विकिरण, विघटन होता है या जहाँ यह प्रक्रिया असंभव होती है वहाँ भी आदर्शीकरण तथा एकीकरण का प्रयत्न तो होता ही है। वह मूलतः सजीव होती है-वैसे ही जैसे (वस्तुओं के रूप में) सभी वस्तु मूलतः अचल और निर्जीव होती है। इसके विपरीत ललित कल्पना की क्रीड़ा का अचलता और निर्दिष्टता के क्षेत्र के अतिरिक्त और कोई ठिकाना नहीं होता। ललित कल्पना, वास्तव में, देशकाल के अनुशासन में मुक्त स्मरण की एक रीति है और कुछ नहीं, वह इच्छा शक्ति के उस अनुभव-मूलक व्यवहार से पुष्ट और परिवर्तित होती है जिसे हम 'चयन' शब्द से व्यंजित कर सकते हैं।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 166) (दे. Coleridge कॉलरिज) शेली स्वच्छन्दतावादी युग का महान साहित्य-चिंतक और कवि हैं। (1792-1822 ई.)। उसने प्रसिद्ध निबंध 'डिफेन्स ऑफ पोयट्री' में अपने साहित्य-चिंतन का अनुशीलन किया है। कल्पना शक्ति को काव्य का प्रमुख उपादन मानते हुए शेली ने (दे. Shelley शेली) कविता को कल्पना की अभिव्यक्ति कहा, जो मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। उसके अनुसार पक्षियों के कलरव की भाँति कविता अयाचित और अनायास होती है। वह आयास-रहित स्वाभाविक काव्य-रचना का पक्षधर है। काव्य के उद्देश्य पर विचार

करते हुए उसने कहा कि "कविता प्रत्येक वस्तु को रुचिरता प्रदान करती है। जो परम सुंदर है उसके सौंदर्य की वह अभिवृद्धि करती है और जो अत्यंत कुरूप है उसमें सौंदर्य का समावेश करती है। वह भय और उल्लास, शोक एवं आह्लाद, चिरंतनता और परिवर्तनशीलता का संयोग कराती है। अपने कोमल भार से वह विरोधी तत्त्वों का भी एकान्वयन संभव कराती है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ.180)

हेजलिट (1778-1830 ई.) की समीक्षात्मक कृतियों के नाम हैं—'कैरक्टर्स ऑफ शेक्सपियर', 'लेक्चर्स ऑन द इंगलिश पोयट्स', 'द इंगलिश कॉमिक राइटर्स', 'एलिजाबीथन लिटरेचर', 'द प्लेन स्पीकर', 'द स्पिरिट ऑफ द एज'। उसे अँग्रेजी आलोचना का प्रमुख स्तम्भ होने का श्रेय है। वह कल्पना को कॉलरिज की दार्शनिक मान्यताओं से पृथक् रखते हुए काव्य को कल्पना तथा मनोवेगों की अभिव्यक्ति कहता है, जो मानव मन को तत्क्षण सुख या कष्ट प्रदान करता है। उसके अनुसार जो व्यक्ति काव्य के प्रति उपेक्षा या घृणा का भाव रखता है उसे स्वयं अपने प्रति श्रद्धा नहीं होती। काव्य को न तो निम्न स्तर के मनोरंजन का साधन माना जा सकता है और न यह विलासी तथा निष्क्रिय व्यक्तियों के लिए मन बहलाव का साधन है, अपितु यह वह साधन है जिससे अनादि काल से मानव मनोरंजन करता रहा है। मैथ्यू आर्नल्ड (1822-1888 ई.) अँग्रेजी का सशक्त आलोचक माना जाता है। (दे. Matthew Arnold मैथ्यू आर्नल्ड) उसने 'एसेज इन क्रिटिसिज्म' नामक ग्रंथ में साहित्यशास्त्र के महनीय प्रश्नों का निरूपण किया है। उसने कविता को जीवन की आलोचना कह कर काव्य और नैतिकता के प्रश्न का समाधान प्रस्तुत किया। उसे मूल्यांकन के सच्चे और वस्तुनिष्ठ प्रतिमानों में आस्था है और वह बाह्य मूल्यों तथा मनमाने प्रयोग के कारण समीक्षा को गतिहीन और निष्प्राण बनाना नहीं चाहता। फिर भी वह अपने को रोमांटिक पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं करता। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त होते-होते इंगलैंड में प्रभाववादी आलोचना की प्रतिष्ठा हुई, जिसका प्रतिनिधित्व पेटर, स्विनबर्न, आर्थर साइमन्स आदि समीक्षकों ने किया। इन्होंने अधिकांशतः प्रभावाभिव्यंजक समीक्षा की रचना की, जिनमें प्रभावों की यथावत् अभिव्यंजना हुई और इनका उद्देश्य पाठकों के हृदयों में प्रभावों का उद्दीपन मात्र हुआ। इलियट ने इसी कारण स्विनबर्न को आलोचक नहीं, प्रशंसक या गुणग्राहक कहा। पेटर सौंदर्य का मर्मी पारखी था और उसकी कसौटी मन पर पड़ने वाले प्रभावों को मानता था। पेटर (1839-93 ई.) साहित्य और कला को जीवन की अखण्ड अनुभूति की अभिव्यक्ति मानता

है। (दे. Walter Pater वाल्टर पेटर) सौंदर्य को चरम मूल्य मानने के कारण उसने साहित्य का प्रमुख लक्ष्य मनः प्रसादन स्वीकार किया और अपने सभी ग्रंथों में जीवन में सौंदर्य के गंभीर प्रभाव का व्याख्यान किया। बीसवीं शताब्दी के आलोचकों में ए. सी. ब्रैडले (1851-1935 ई.) का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने 1904 ई. में 'शेक्सपीरियन ट्रेजेडी' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की जिसमें सम्बद्ध विषय का ऐसा वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया जिससे यह रचना आलोचना की कालजयी कृति बन गई। उनके सैद्धांतिक विचारों का प्रकाशन 'ऑक्सफोर्ड लेक्चर्स ऑन पोएट्री' नामक कृति में है। उन्होंने 'कविता कविता के लए है' नामक निबंध में कलावादियों के विचारों का समर्थन किया है। आधुनिक अँग्रेजी आलोचना का विकास इंगलैंड और अमेरिका दोनों देशों में हुआ है और साहित्यिकों तथा कलाकारों की रुचियों प्रवृत्तियों तथा पद्धतियों में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं। बीसवीं शताब्दी में समाज दर्शन, दर्शन, राजनीति, मनोविज्ञान, कला-दर्शन, दर्शन या सौंदर्यशास्त्र तथा विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांति हुई है और सबों का प्रभाव साहित्यालोचन पर पड़ा है। (दे. American Criticism अमेरीकी आलोचना) इस युग के आंग्ल आलोचकों में आई. ए. रिचर्डस् तथा टी. एस. इलियट मूर्धन्य हैं; इन्होंने अपनी युगांतरकारी मान्यताओं से विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की है। क्रोचे के अभिव्यंजनावाद, अतियथार्थवाद, मार्क्सवाद, फ्रायडवाद तथा अस्तित्ववाद से भी अँग्रेजी आलोचना आक्रांत रही है और समीक्षा के संदर्भ में विविध प्रकार के प्रयोग हुए हैं। ऐतिहासिक आलोचना की भी पर्याप्त उन्नति हुई है तथा समवेत प्रयत्न के रूप में बृहत् अँग्रेजी साहित्येतिहासों की रचना हुई है। आज की अँग्रेजी आलोचना अत्यंत सशक्त प्रौढ़ और स्तरीय हो चुकी है।

अतियथार्थवाद फ्रायडवाद की मान्यताओं पर आश्रित एक विद्रोहीं साहित्यिक आंदोलन है जिसे फ्रांसीसी सौंदर्यवाद का चरम सोपान माना जाता है। इंगलैंड में इसके पोषक हर्बर्टरीड हैं। उन्होंने कविता का स्वप्न के साथ निकट का संबंध स्थापित किया है। कार्लमार्क्स का दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नाम से विख्यात है। वर्तमान युग में इसका स्वरूप अधिक परिष्कृत रूप में उपस्थित हुआ है। मार्क्स की साहित्यिक अवधारणा का आधार उनकी अर्थ-विषयक विचार धारा है जिसके अनुसार साहित्य निरपेक्ष सत्ता न होकर समाज की अर्थव्यवस्था से नियंत्रित और परिचालित होता है। कॉडवेल ने (दे. Caudwell कॉडवेल) अँग्रेजी कविता का अध्ययन मार्क्सवादी दृष्टि से उपस्थित कर 'इल्यूजन एण्ड रियलिटी' नामक

ग्रंथ की रचना की है। इस वर्ग के अन्य आलोचकों में एडमंडविल्सन, लिओनल ट्रिलिंग, हेरल्ड रोजेनबर्ग तथा फिलिप रैव उल्लेख्य हैं। इस युग में ब्लूम्सबरी स्कूल के आलोचकों की भी देन महत्त्वपूर्ण हैं। इनके मातानुसार कला को ही जीवन-मूल्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। ये कला में प्रबल आवेगों तथा महान आदर्शों की अपेक्षा स्वच्छ सुंदर जीवनमान को ही अधकि काम्य समझते हैं। ऐसे आलोचकों में रोजर फ्राइ, क्लाइवबेल, वर्जीनिया वुल्फ, ई. एम. फॉर्स्टर, लिटन स्ट्रेची अधिक प्रसिद्ध हैं। क्लाइब वेल धर्म और कला में ऐकात्म्य की स्थापना कर कला को धर्म के ही रूप में स्वीकार करते हैं। इन्होंने स्वच्छन्दतावादी साहित्य-चिंतन से विरोध प्रकट किया है, पर इनका मतभेद कलाबाद या सौंदर्यवाद से नहीं है। अँग्रेजी में नैतिकतावादी आलोचकों का भी एक दल है जो काव्य को मूलतः नैतिक मूल्यों से अभिन्न मानता है। ऐसे समीक्षकों में इरविंग बैबिट, पाल-ऐल्मरमोर, जॉर्ज ओरवेल, एफ. आर. लीविस तथा ईवोर विंटर्स हैं। लीविस ने काव्य और कला के मूल्यांकन में नीति परक अभिरुचि या दृष्टि को प्रमुखता दी है और सौंदर्यपरक दृष्टि को सतही माना है। टी. एस. इलियट और एजरा पाउण्ड जैसे आलोचकों को प्रभावित करने वाला टी. ई. हुल्म बीसवीं शती का मौलिक चिंतक था। 'रिचड्स' विश्व आलोचना के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। (दे. richards i.a. आइ. ए. रिचड्स) इनके समीक्षा-सिद्धांत को 'मूल्य-सिद्धांत' और 'सम्प्रेषण-सिद्धांत' कहते हैं। इनके काव्य-चिंतन के दो आधार हैं—मनोवैज्ञानिक पीठिका तथा काव्य का रूपात्मक विश्लेषण। इन्होंने वैज्ञानिक और रागात्मक प्रयोग नामक भाषा के दो प्रयोगों को स्वीकार किया है। टी.एस. इलियट काव्य की साधना को निर्वैयक्तिक मानते हैं, जिसके अनुसार कवि कलात्मक उद्देश्य के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण करता है। उनके अनुसार कविता व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व से पलायन है अर्थात कविता कवि के मनोवेगों का उद्‌गार न होकर कला की रचना है। उन्होंने कविता को कला की रचना मानकर मूर्त्तविधान (आब्जेक्टिव कोरिलेटिव)-सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस युग के सशक्त आलोचकों में इम्पसन का भी योग महनीय है।

Environment (एनवाइरनमेण्ट) पर्यावरण – दे. Atmosphere साहित्यकार जिस युग में उत्पन्न होता है, उसके व्यक्तित्व पर तद्‌युगीन सामाजिक समस्याओं तथा सांस्कृतिक विश्वासों का प्रभाव पड़ता है तथा उन्हीं के मेल से पर्यावरण का निर्माण होता है। साहित्यकार जन्म से जिस पर्यावरण में पलता है

उसका प्रभाव उसकी रचनाओं पर पड़ता है और उससे ही उसकी साहित्य-साधना नियंत्रित और परिचालित होती है।

Epic (एपिक) महाकाव्य– वर्णणात्मक बृहत् कथा काव्य। पाश्चात्य पण्डितों ने महाकाव्य के स्वरूप-निर्माण या परिभाषा के संबंध में अधिक विचार किया है, पर उसकी कोई सुनिश्चित परिभाषा प्रस्तुत नहीं की है। ऐसे आचार्यों में अरस्तू, एल. एबरक्रोम्बी, डब्ल्यू. पी. केर, डिक्सन तथा सी. एम. बावरा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं अरस्तू ने महाकाव्य की परिभाषा न देकर उसके तत्त्वों का ही विश्लेषण किया है। (विशेष विवरण के लिए दे. Aristotle अरस्तू) उसने होमर कृत इलियड-ओडेसी को ही अपना आदर्श मानकर महाकाव्य का तात्त्विक विश्लेषण किया था।

यूरोप में महाकाव्यों के अनेक रूप या प्रकार विकसित हुए हैं; जैसे–विकसनशील महाकाव्य, शास्त्रीय महाकाव्य, अलंकृत महाकाव्य, रोमांचक महाकाव्य या रोमांस तथा स्वच्छन्दतावादी और मनोवैज्ञानिक महाकाव्य। पाश्चात्य देशों के महाकाव्यों की कई अवस्थाएँ हैं। प्रारंभिक अवस्था या वीरयुग के महाकाव्यों में इलियड ओडेसी हैं जिनका समय ई. पूर्व. सात सौ वर्ष है। उन्हीं का अनुकरण कर वर्जिल ने ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में इनीड नामक महाकाव्य का प्रणयन किया, जिसमें अतिशय संस्कृत और नियमबद्ध रोमन सभ्यता का स्वर मुखरित हुआ है। यह अलंकृतशैली का महाकाव्य है। मध्ययुग सामंती वीरयुग का काल था, फलतः इस युग में रोमांचक महाकाव्यों का सृजन हुआ। इस युग में लोक महाकाव्य के अतिरिक्त दरबारी कवियों ने रोमांचक महाकाव्यों का भी प्रणयन किया। रेनेसां या पुनर्जागरणकाल में रोमानी प्रवृत्तियों के साथ-साथ ईसाई नैतिकता का प्राबल्य हुआ, अतः इस काल में रोमानी, शास्त्रीय और नैतिकतायुक्त शास्त्रीय तथा रूपकात्मक महाकाव्यों की रचना हुई। शनैः शनैः नैतिकता, बौद्धिकता और शास्त्रीयता सम्पन्न महाकाव्यों के प्रति प्रबल विद्रोह हुआ और परिणामस्वरूप अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में प्राचीन नैतिकता और शास्त्रीय नियमों की अवहेलना की गई तथा रोमांचक महाकाव्यों का प्रणयन प्रारंभ हुआ। इस प्रकार यूरोपीय महाकाव्यों के विकास के चार सोपान दिखाई पड़े। पहली अवस्था में वीर भावना की प्रधानता रही तो दूसरी में शास्त्रीय, नैतिक तथा धर्मभावना प्रबल हुई। तृतीय अवस्था में रोमांचक भावना का प्राधान्य हुआ और चतुर्थ युग अर्थात आधुनिक युग में स्वच्छन्दतावादी महाकाव्य रचे गए। प्रथम सोपान के कवि हैं

होमर और दूसरे के वर्जिल, दाँते और मिल्टन। तीसरे सोपान के कवियों में स्पेंसर, एरिआस्टो, टैसो आदि हैं तो चौथी के गेटे, टेनिसन, ब्राउनिंग, हार्डी और विक्टर ह्यूगो आदि।

विकसनशील महाकाव्य– विकसनशील महाकाव्य किसी एक कवि की कृति न होकर शताब्दियों में रचित अनेक व्यक्तियों की प्रतिभा और वाणी से समन्वित होता है। यह विभिन्न काल के चारणों, लेखकों और गायकों द्वारा विकसित होता है। विकसनशील महाकाव्य में लोककथा और लोकगाथा का अद्‌भुत थोड़ा रहता है और उसमें कुतूहल तथा आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली आश्चर्य जनक घटनाएँ अनुस्यूत होती हैं। इस प्रकार के महाकाव्यों का विकास वीरयुग से होता है, अत: उनमें मूल भावना वीरता की रहती है। यद्यपि उनमें प्रेम का भी चित्रण होता है, किंतु उसका प्राबल्य नहीं होता। वीरयुग के पश्चात जब सामांती युग आया तो उसमें प्रेमभावना का समावेश हुआ। विकसनशील महाकाव्यों के नायक वीर होते हैं और उनकी वैयक्तिक वीरता और शक्ति इतनी अधिक होती है कि युद्ध में उन्हें सैन्यबल की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनका मुख्य ध्येय वीरता के कार्यों द्वारा यश-सम्मान की प्राप्ति और उनकी सुरक्षा करना होता है। वे प्रतिपक्षियों के प्रति अत्यंत कठोर होते हैं और उनमें अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा शारीरिक और आत्मिक शक्ति अधिक ही नहीं होती, अतिमानवीय या अलौकिक तत्त्वों से संयुक्त होती है। वे युद्ध के पश्चात प्रेम-व्यापार के रूप में अपने मानवीय संबंधों को व्यक्त करते हैं। विकसनशील महाकाव्य युद्ध और भयंकर यात्रा जैसे साहसिक कार्यों से भरे होते हैं और इनका कथानक अलंकृत महाकाव्यों की भाँति संघटित और अन्वितियुक्त नहीं होता। इनका कथानक विस्तृत होता है, पर उसमें कसावट का अभाव रहता है। इनमें अवान्तर कथा के रूप में लोककथाओं और लोकगाथाओं का संमिश्रण होता है तथा अलौकिक तत्त्व अनुस्यूत होते हैं और कथानक रूढ़ियाँ भरी रहती हैं। नाटकीय अन्विति के अभाव में इनका कथानक बिखरा हुआ रहता है। अलंकृत महाकाव्यों की भाँति इनका उद्देश्य किसी महान दर्शन की अभिव्यक्ति नहीं होता, अपितु इनमें किसी महान युग की अविस्मरणीय और प्रख्यात घटना को कहकर या महान चरित्रों का वर्णन कर पाठकों का मन: प्रसादन करना होता है। इनमें वस्तुव्यंजना के रूप में विविध वस्तुओं और जीवन के व्यापारों का चित्रण किया जाता है; कवि जीवन के बाह्य पक्षों का अधिक उद्‌घाटन करता है और मानव मन की आंतरिक भावनाओं या जीवन के आंतरपक्ष का विवेचन नहीं करता। कवि व्यक्ति के सुख-दु:ख, राग-विराग, घृणा-द्वेष, क्रोध

आदि का सामान्य रूप उरेहता है। इनमें नृत्य, क्रीड़ा, हास्य-परिहास आदि आनन्ददायक तथ्यों का पर्याप्त चित्रण किया जाता है।

इनकी शैली अनलंकृत और सहज होती है; इनमें दूरारूढ़ कल्पना से युक्त अलंकार प्रयुक्त नहीं होते, पर सहज और प्रचलित अलंकारों—अनुप्रास, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति—का प्रयोग किया जाता है। इनका शब्द संघटन स्वाभाविक और सहज होता है, सायास और अलंकृतशैली काम में नहीं लाई जाती और चातुर्य तथा सौंदर्य का अभाव रहता है। अलंकृत महाकाव्यों की भाँति इनमें पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति नहीं रहती और न शास्त्रीय ज्ञानोपदेश के प्रति रचयिता का रुझान दिखाई पड़ता है। पर जब ये धार्मिक ग्रंथ या पुराण के रूप में मान्यता प्राप्त करते हैं तो इनमें उपर्युक्त तथ्य धीरे-धीरे आ जाते हैं। चूँकि इनका प्रचार जनता के बीच अधिक होता है, अतः इनका रूप स्थिर नहीं रह पाता और उसमें परिवर्तन (समय-समय पर) होता रहता है। सामूहिक रूप से गाये जाने के कारण इनमें मुख्यतः गेय और सुपाठ्य छन्द प्रयुक्त होते हैं और महाकाव्य की कथानक-रूढ़ियाँ समाविष्ट हो जाती हैं।

रोमांस और रोमांचक महाकाव्य– (दे. Romance)

अलंकृत महाकाव्य–यूरोप के अलंकृत महाकाव्यों के कथानक गुरुगंभीर होते हैं और उनका विषय (कथानक) धर्मग्रंथ, इतिहास-पुराण या बाइबिल से ग्रहण किया जाता है, इसमें कवि-कल्पना का भी अधिक योग रहता है। सम्पूर्ण महाकाव्य किसी महत् प्रेरणा या महान उद्देश्य से प्रेरित होकर प्रणीत होता है और कवि राष्ट्र गौरव या धार्मिक या नैतिक मूल्यों की स्थापना अथवा आध्यात्मिक तथ्यों की व्यंजना करता है। इसकी शैली प्रयत्नसाध्य और कलात्मक होती है तथा उसमें औदात्य और गरिमामय तत्त्व विद्यमान रहते हैं। इनमें कवि पुनरुक्ति दोषों से अपने को बचाकर यथासाध्य उन्हें अर्थगौरव से पूर्ण करता है अर्थात अल्प शब्दों द्वारा अधिक अर्थ और चमत्कार उत्पन्न किए जाते हैं। कवि वस्तु व्यापार-वर्णन की रूढ़ियों का पालन करते हुए प्रारंभ में प्रस्तावना, वस्तुनिर्देश तथा मंगलाचरण का वर्णन करता है। इसमें संघर्ष, द्वन्द्व-युद्ध, साहसिक और कष्ट प्रद यात्रा, सुंदर उद्यान, भव्यभवन, स्वर्ग तथा नरक के दृश्य तथा सृष्टि के रहस्यों का चित्रण किया जाता है। इसमें नायकों की वीरता वैयक्तिक भावना से अधिक सामाजिकहित की ओर उन्मुख होती है। इसमें चरित्र-चित्रण की विश्लेषणात्मक और मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनायी जाती है और अलौकिक तथा अतिमानवीय तथ्यों के समावेश में बौद्धिक संयम और आध्यात्मिक गम्भीर्य बना रहता है। कवि शास्त्रीय महाकाव्यों में

युगजीवन का समग्र और यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है और अपने युग की सामाजिक चेतना को मुखरित करता है।

स्वच्छन्दतावादी और मनोवैज्ञानिक महाकाव्य

स्वच्छन्दतावादी युग में शास्त्रीय महाकाव्यों की प्रवृत्ति के प्रति विद्रोह का स्वर प्रबल हुआ और मिल्टन आदि द्वारा प्रवर्तित शैली के प्रति प्रतिक्रिया का भाव प्रदर्शित हुआ। यह युग गीतिकाव्य के लेखन का था, फिर भी इस युग में प्रबंधकाव्यों की रचना होती रही। स्कॉट, वड्र्सवर्थ तथा कालरिज ने क्रमश: चारण गाथाओं, गीतिगाथाओं (लिरिकल बैलेड्स) तथा प्राचीन यूनानी आधार को अपना कर महाकाव्यों का प्रणयन किया। जर्मन कवि गेटे ने स्वच्छन्दतावादी भावनाओं के साथ दाँते की काव्य-शैली का मिश्रण कर 'फ़ाउस्ट' नामक नाट्य-महाकाव्य लिखा और विक्टर ह्यूगो और टेनीसन ने शास्त्रीय तथा रोमांचक महाकाव्यों की शैली के संयोग से नवीन शैली या स्वच्छन्दतावादी शैली को ग्रहण कर महाकाव्यों का लेखन किया। टेनीसन की रचना में शास्त्रीय महाकाव्य के महदुद्देश्य और प्रतीकात्मकता का भी समावेश किया गया और हार्डी ने (20वीं शती) 'द डाइनेस्ट्स' नामक महाकाव्य में पात्रों के स्वगत-कथन के रूप में कथा का वर्णन किया। इन महाकाव्यों में मन का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है, अत: इनमें मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का दिग्दर्शन कराया गया है। कवि किसी घटना के संबंध में विभिन्न व्यक्तियों की मन:स्थिति का वर्णन करता है और उसके विभिन्न प्रकार के प्रभावों का निरूपण कर मनुष्यों की मानसिक अवस्थाओं का निरूपण करता है।

महाकाव्य की नवीन मान्यताएँ

महाकाव्य काव्य की सर्वोत्तम विद्या के रूप में समाहत है। इसमें विशाल पटभूमि पर मानव-जीवन का चित्र अंकित किया जाता है। प्रसिद्ध आंग्ल आलोचक सी. एम. बावरा ने महाकाव्य के संबंध में अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रकट किया है।

"सर्व सम्मति से महाकाव्य वह कथात्मक काव्यरूप है जिसका आकार बृहद् होता है, जिसमें महत्त्वपूर्ण और गरिमायुक्त घटनाओं का वर्णन होता है और जिसमें कुछ चरित्रों की क्रियाशील जीवन-कथा, विशेषकर भयंकर कार्यों जैसे युद्ध आदि से युक्त जीवन-कथा होती है। उसके पढ़ने के बाद हमें विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त होता है; क्योंकि उसकी घटनाएँ और पात्र हमारे भीतर मनुष्य की महानता,

गौरव और उपलब्धियों के प्रति दृढ़ आस्था उत्पन्न करते हैं।" एबरक्रोम्बी की महाकाव्य -विषयक परिभाषा इस प्रकार है। "बड़े आकार के कारण कोई काव्य महाकाव्य नहीं हो जाता। जब उसकी शैली महाकाव्य की शैली होगी तभी उसे महाकाव्य माना.जा सकता है और वह शैली कवि की कल्पना, विचारधारा तथा उनकी अभिव्यक्ति से जुड़ी रहती है। उस शैली के काव्य 'महाकाव्य' हमें एक ऐसे लोक में पहुँचा देते हैं जहाँ कुछ भी महत्त्वहीन और असारगर्भित नहीं होता। महाकाव्य के भीतर एक पुष्ट, स्पष्ट और प्रतीकात्मक उद्देश्य होता है जो उसकी गति का आद्यन्त संचालन करता है।" डब्ल्यू. पी. केर की परिभाषा—"महाकाव्य में चरित्रों की कल्पना बहुत ही स्पष्ट और सम्पूर्ण रूपों में की जाती है, अत: उनकी विभिन्न मन:स्थितियों और समस्याओं के चित्रण के कारण महाकाव्य में नाना प्रकार के दृश्यों और गुणों का चित्रण संभवत: हो जाता है? इस प्रकार उसमें समग्र जीवन के कार्यकलाप जीवन-कथा का रूप धारण कर लेते हैं। महाकाव्य की सफलता कवि की कल्पना-शक्ति और उसके चरित्र-चित्रण पर निर्भर करती है। महाकाव्य मानेजाने वाले कुछ काव्यग्रंथों के कथानक में यद्यपि नाटकीय गुण नहीं होते और नवीन दृश्यों और सम्पूर्ण कार्यों की प्रधानता होते हुए भी उनका नायक महत्त्वहीन होता है, फिर भी ऐसे कथानकों में एक प्रकार की गरिमा होती है जिससे वे महाकाव्य माने जाते हैं।" वाल्तेयर का लक्षण "मान्य लक्षणों के होने या न होने से ही कोई काव्य महाकाव्य नहीं बन जाता। ऐसे काव्य-ग्रंथ ही महाकाव्य नाम के अधिकारी हैं जिनमें किसी महान् घटना का वर्णन होता है और जिन्हें समाज व्यवहारत: महाकाव्य मानने लगता है। चाहे वह घटना सरल हो या जटिल, चाहे वह इलियड की तरह एक स्थान पर घटित हो या ओडेसी की तरह उसका नायक संसार भर में भटकता फिरे, चाहे उसमें एक नायक हो या अनेक, चाहे वे अभागे हों या सौभाग्यशाली, एचिलीस की तरह भयंकर क्रोधी हों या एनियास की तरह धर्मात्मा, चाहे वे राजा हों, या सेनापति, या इनमें से कुछ भी न हों, चाहे उसके दृश्य हिन्द-महासागर के हों या नरक के जो इस धरती पर नहीं होते, इससे कुछ नहीं बनता-बिगड़ता। इनके बावजूद कोई काव्य तब तक महाकाव्य कहा जाता रहेगा जब तक आप उसके गुणों के अनुरूप उसका कुछ और नामकरण नहीं कर देते।"

पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य के संबंध में जो मत व्यक्त किए हैं, उनका सार इस प्रकार है महाकाव्य के प्रारंभ में उसका विषय कुछ पंक्तियों में प्रस्तुत कर काव्य की अधिष्ठात्री देवी की वन्दना की जाती है। प्रथम को विषय-कथन

(Proposition) और द्वितीय को आह्वान (invocation) कहते हैं। इसका कथानक इतिहास, पुराण और धर्मग्रंथों से लिया जाता है जो पर्याप्त गंभीर होता है। कथानक में कार्यान्विति अधिक होती है और वह विस्तृत होता है। उसमें दार्शनिक तत्त्व और पाण्डित्य का आधिक्य होता है और शैली कलात्मक तथा अधिक सचेष्ट होती है। इसका नायक वैयक्तिक वीरता की अपेक्षा देशभक्ति और सामाजिक कल्याण की भावना से युक्त होता है। इसके पात्रों का शीलनिरूपण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया जाता है और वे युग के चारित्रिक वैशिष्ट्य को प्रकट करते हैं। महाकाव्य महान उद्देश्य से युक्त होते हैं; उनमें अतिमानवीय तत्त्वों का संयत प्रयोग किया जाता है। वे युग-चेतना की वास्तविक अभिव्यक्ति करते हैं। इसका जातीय जीवन से घनिष्ठ संबंध होता है और जाति या राष्ट्र की सामूहिक भावनाएँ, आशा-आकांक्षाएँ, विश्वास आदि उसमें व्यक्त होते हैं। जातीय जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण महाकाव्य राष्ट्रीय गौरव के प्रतीक होते हैं। इसका नायक राष्ट्र या जाति विशेष का प्रतिनिधित्व करता है जिसकी विजय में उस राष्ट्र या जाति की विजय निहित रहती है। इसके प्रमुख पात्र महान और गरिमायुक्त होते हैं तथा कथानक किसी महान और महत्त्वशील क्रिया से निबद्ध होता है। इसमें निबद्ध जीवन खण्ड जितना ही विस्तृत और महनीय होगा तथा कवि का जीवनानुभव जितना ही अधिक समृद्ध और मानवीय होगा, महाकाव्य की सफलता उतनी ही अधिक होगी। इसके कथानक में अपूर्व विशालता और गरिमा का होना आवश्यक है। इसका नायक नैसर्गिक सरलता, अपूर्व पराक्रम, आत्मोत्सर्ग की क्षमता तथा धैर्य आदि गुणों से सम्पन्न होता है। अर्थ और ध्वनि, शब्दों के चयन तथा विशिष्ट छन्द और लय की दृष्टि से महाकाव्य की शैली गंभीर होनी चाहिए। जब कोई उदात्त चरित्र का कवि किसी महान विषय पर गरिमायुक्त रीति से काव्य-रचना करे तभी उत्कृष्ट शैली का आविर्भाव होगा। उसका उद्देश्य सौंदर्य भावना की तृप्ति, आनन्दोपलब्धि तथा जीवन का सहज और नैतिक अभ्युत्थान है।

समग्रत: महाकाव्य में निम्नांकित तत्त्वों का संगुंफन होता है—महदुद्देश्य, महत्प्रेरणा, महती काव्य-प्रतिभा के अतिरिक्त गुरुत्व और गांभीर्य का समावेश तथा महत्कार्य और युगजीवन का समग्रचित्र। इसका कथानक चमत्कारपूर्ण, आश्चर्यजनक तथा घटना-प्रवाह से युक्त होता है। घटना-प्रवाह के कारण महाकाव्य में सक्रियता का गुण उत्पन्न होता है। इसका कथानक वर्तमान जीवन से भी सम्बद्ध हो सकता है। इसका नायक महान तथा उदात्त गुणोपेत हो, जो किसी राष्ट्र, धर्म, जाति या सम्पूर्ण मानवता का प्रतिनिधित्व कर सके। इसकी शैली

उदात्त और गरिमामयी हो तथा तीव्र प्रभान्विति एवं गंभीर रस-व्यंजना से युक्त हो। अनवरुद्ध जीवनी शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता महाकाव्य के प्रधान तत्त्वों में हैं। (दे. हिंदी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ.40-121)

Epic of Art (एपिक ऑफ आर्ट) कलात्मक महाकाव्य–दे. Epic

Epic of growth (एपिक ऑफ ग्रोथ) विकासात्मक महाकाव्य दे. Epic

Epic Simile (एपिक सिमलि) एक अलंकार;—महोपमा जिस उपमा में उपमान का विस्तृत वर्णन किया जाय उसे महोपमा कहते हैं।

Epic Theatre (एपिक थिएटर) महानाटक–बीसवीं शताब्दी में नाटक के क्षेत्र में ऐसे प्रयोग हुए या एक नया आंदोलन चला, जिसमें रूप की अपेक्षा वस्तु तथा वस्तु की अपेक्षा सत्य का प्राधान्य स्वीकार किया गया। महानाटक मुख्यतः उपयोगितावादी और वर्णनात्मक होते हैं। इनमें विभिन्न शैलियों, रंगशाला के तत्त्वों (नाटक, नाट्य-प्रयोक्ता अभिनेता, दृश्य-विधायक, नर्तक, गायक, संगीत प्रयोक्ता तथा दर्शक) को इस प्रकार प्रयुक्त किया जाता है, जिससे कि वे नाटककार द्वारा प्रस्तुत किए गए सत्य की व्याख्या करने में सक्षम हो सकें। इसका क्षेत्र विस्तृत होता है, इसलिए इसे 'एपिक थिएटर' कहते हैं और इसकी विधि उपन्यास या सिनेमा से साम्य रखती है। इसमें समूहगान, स्वगत-भाषण, चलचित्र, रेडियो आदि का प्रयोग किया जाता है। महानाटक का विकास, सर्वप्रथम जर्मनी में, प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात हुआ और आज भी इसका विकास हो रहा है, जिसमें युगानुरूप स्वर प्रखर है। इस सिद्धांत का प्रसार बेअरटोल्ट ब्रेंख्ट ने विशेष रूप से किया और अरविन पिस्केटर ने इसका प्रयोग किया। इसके अनेक प्रकार हैं–रिपोर्टियल थिएटर–इसमें पत्रकारिता के माध्यम से नित्य की प्रमुख घटनाओं का प्रदर्शन होता है।

'डौक्यूमेंटरी थिएटर'–इसमें ऐतिहासिक घटना को रंगमंच पर प्रदर्शित करने के लिए तद्विषयक प्रलेख और विवरण प्रदर्शित किए जाते हैं।

'लिविंगन्यूज पेपेर'–इसके द्वारा जनता को सामाजिक उपदेश की शिक्षा दी जाती है।

'थिएटर ऑफ ऐक्शन'–इसका उद्देश्य प्रचार करना अधिक है। 'डाइलेक्टिक थिएटर'–इसमें समाज के दोषों को ढूँढ कर रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है।

यह रंगमंच को सामाजिक दोषों को बताने के लिए न्यायालय का रूप प्रदान करता है। उपदेशात्मक और राजनीतिक आदि भी महानाटक के अन्य रूप हैं।

Epigram (एपिग्राम) व्यंग्योक्ति–एपिग्राम का अर्थ शिलालेख है, पर अब यह व्यंग्यात्मक सूक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है। ऐसी लघु और सुष्ठु रचना को एपिग्राम कहते हैं, जिसमें नवीन, रम्य तथा व्यंग्यपूर्ण विचार भरे रहें। इसमें अल्प शब्दों में अधिक भाव भरे रहते हैं और वक्तव्य व्यंग्यपूर्ण होता है।

Epistle (एपिसल) काव्यपत्र– जब काव्य की रचना पत्र के रूप में हो तो उसे काव्य-पत्र कहते हैं। काव्य-पत्र किसी व्यक्ति को उद्दिष्ट कर किसी विषय का प्रतिपादन करने के लिए लिखे जाते हैं। इसका स्वरूप भाषण का-सा होता है और इसमें कलात्मकता होती है। इसकी रचना गद्य या पद्य किसी में हो सकती है। प्राचीन रोमन कवि होरेस ने 'काव्य-कला' नामक ग्रंथ की रचना पत्र में की है।

Epitome (इपिटामि) सार– रचना विशेष का संक्षिप्त रूप इपिटामि कहलाता है। इसमें रचना को संक्षिप्त कर उसका मूल भाव प्रस्तुत किया जाता है।

Epistotary Fiction (एपिस्टोलरी फिक्शन) पत्रात्मक उपन्यास– उपन्यास की रचना जब पत्रों के रूप में होती है तो उसे पत्रात्मक उपन्यास कहते हैं। इसमें उपन्यास के सभी पात्र व्यक्तिगत रूप से पत्र की रचना करते हैं और उनके पत्रों से ही कथावस्तु का विकास होता है एवं पात्रों के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। जब घटनाएँ घटित होती हैं तो उपन्यास के प्रमुख पात्र पत्र लिखते हैं या कई युगलों में पत्रों का आदान प्रदान होता है। दे. Novel

Escapism (एस्केपिज्म) पलायनवाद–ऐसी रचना को पलायनवाद कहते हैं, जिसमें समाज के संघर्ष-संकुल जीवन से विमुख होकर कवि कल्पना लोक में विचरण करने लगता है। कलाकार संसार की तिक्तता, कटुता और कोलाहल से अपने को दूर कर या अपनी विफलता कामना से हताश होकर अमंगल के भय से नवीन काल्पनिक जगत् का निर्माण करता है तो वैसी स्थिति में उसे पलायनवादी कहा जाता है।

Essay (एसे) निबंध– निबंध शब्द संस्कृत का है, जिसका अर्थ है ऐसी विधा, जिसमें विचार बाँधा या गूँथा जाय। इसमें निश्चित रूप से किसी विषय पर विचारों की शृंखला बाँधी जाती है। संस्कृत में प्रायः ऐसे ग्रंथों को निबंध की

संज्ञा दी जाती थी, जिनका संबंध टीका, भाष्य, दर्शन या राजनीतिक ग्रंथों से था और इनमें भावना की अपेक्षा विचारों को अधिक गुंफित किया जाता था। पर, हिंदी में निबंध अँग्रेजी के एस्से (Essay) का समानार्थी है। संस्कृत में निबंध शब्द इस अर्थ का वाचक था जिसमें विशेष बंध या संगठन हो, पर अँग्रेजी में एस्से का अर्थ प्रयत्न या Attempt है। यूरोप में निबंध का जन्म दाता फ्रांसीसी लेखक मोतेन (समय 1571 ई.) माना जाता है। उसने अपनी रचनाओं को Essai (एस्साइ) कहा था। अँग्रेजी का एस्से शब्द फ्रेंच Essai (एसाइ) से निर्मित है जिसका अर्थ प्रयास है (attempt, trial, content), पर अब यह शब्द विशिष्ट गद्य रचना के लिए प्रयुक्त होने लगा है। निबंध में किसी विषय का प्रतिपादन होता है; यह गद्य की ऐसी साहित्यिक विधा के लिए रूढ़ हो गया है जिसे बार-बार पढ़कर आनन्द प्राप्त किया जाए। दर्शन, धर्म, राजनीति, विज्ञान तथा साहित्य किसी भी विषय से संबद्ध विचारों के गुंफन को निबंध कहा जाता है। अँग्रेजी में निबंध की सर्वप्रथम परिभाषा डॉ. जॉनसन ने दी थी। "A loose sally of the mind, an irregular, indigested Piece, not a regular and orderly performance" अर्थात निबंध मानसिक जगत् की ऐसी विचारतरंग है जो असंगठित, अपूर्ण और अव्यवस्थित हो। पर, आगे चलकर लोगों ने इस परिभाषा को अमान्य सिद्ध कर दिया और इसमें क्रमशः बुद्धितत्त्व का समावेश होता गया और असंबद्धता को निबंध का दोष माना जाने लगा। मोतेन की परिभाषा में व्यक्तित्व के प्रकाशन पर बल दिया गया था। जॉनसन के समय तक निबंध का सम्यक् विकास नहीं हुआ था और न उसकी कोई निश्चित रूपरेखा ही निर्मित हुई थी। उसकी परिभाषा संकुचित है और उसमें आज की तरह वैविध्य का अभाव है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में निबंध की परिभाषा इस प्रकार दी गई है। "सीमित आकार का एक ऐसा लेख जो किसी एक विषय-विशेष अथवा उसकी किसी शाखा-प्रशाखा पर लिखा गया हो जिससे प्रारंभ में परिष्कारहीनता का आभास मिलता था और जो अनियमित अपरिपक्व खण्ड माना जाता था, किंतु जिससे अब न्यूनाधिक विस्तृत शैली में लिखी हुई, किंतु आकार में लघु रचना का बोध होता है।" "A composition of moderate length or any particular subject or branch of subject, originally imply want of finish, 'can irregular, indigested piece', but now said of a composition more or less alaborate in style though limited in range."

निबंध की विशेषताएँ :

(क) निबंध में किसी विषय का प्रतिपादन होता है या उस पर विचार किया जाता है, जिस पर लेखक के स्वतंत्र विचार की छाया रहती है।

(ख) निबंध के विषय की कोई सीमा नहीं है, वह अनन्त है तथा विश्व की किसी भी वस्तु या तथ्य को उसका विषय बनाया जा सकता है। संसार की जितनी वस्तुएँ, भाव एवं क्रियाएँ हैं, उन पर निबंध लिखा जा सकता है। वह गंभीर-से-गंभीर और हल्का-से-हल्का हो सकता है।

(ग) निबंध सर्जनात्मक साहित्य रूप है जिसमें भावना की प्रधानता होनी चाहिए, बुद्धि की नहीं। इसमें लेखक अपने स्वतंत्र विचारों को सहज रूप से व्यक्त करता है।

(घ) निबंध में लेखक का निजीपन झलकता है अर्थात उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का आशय यह है कि निबंध में लेखक के निजी अनुभव और उसके स्वभाव की अभिव्यक्ति हो। यदि लेखक हँसोड़ हो तो निबंध में हास्य और व्यंग्य की प्रधानता रहे, पर गंभीर स्वभाव होने पर निबंध में गंभीरता व्यक्त होनी चाहिए।

(ङ) निबंध यथासंभव आकार में लघु और संक्षिप्त हो। इसमें अनेक प्रकार के तथ्यों का संग्रह किया जाए, किसी सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं। इसकी शैली चित्रात्मक होनी चाहिए, विवरणात्मक नहीं।

(च) निर्वैयक्तिक निबंधों के विषय गंभीर भी हो सकते हैं, पर व्यक्तित्व प्रधान लेखों का विषय सामान्य या साधारण होता है।

(छ) निबंध में लेखक के दृष्टिकोण, उसकी मनः स्थिति एवं प्रतिक्रियाओं का निरूपण होना चाहिए और शैली में स्फूर्त्ति एवं चमत्कार हो। यह ऐसी कलाकृति है, जिसमें निर्माण-सौष्ठव, रोचकता, कलात्मक प्रेषणीयता एवं लेखक के व्यक्तित्व की छाप रहती है।

(ज) निबंध की भाषा सहज, सुबोध, परिष्कृत तथा लाक्षणिकता से युक्त हो और उसमें परिस्थिति तथा विषय को व्यक्त करने की अद्भुत क्षमता रहे तथा पर्याप्त चढ़ाव उतार के अतिरिक्त मनोभावों के अनुरूप परिवर्तन हो। निबंध लेखक के कलात्मक आत्मप्रकाशन का साधन है।

(झ) निबंध-लेखन का कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य होता है, भले ही वह दार्शनिक, गंभीर, साहित्यिक या वैयक्तिक हो। उसका मुख्य उद्देश्य है लेखक की सर्जनात्मक प्रवृत्ति की तुष्टि एवं क्रियात्मक इच्छा की पूर्ति। निबंध के माध्यम से लेखक अपने ज्ञान तथा अनुभव को भी प्रेषणीय बनाता है और इस प्रकार पाठकों का मनः प्रसादन करता है। गंभीर विषयों पर लिखित निबंधों में लेखक का चिंतन झलकता है और उसके अध्ययन तथा पठन की विवृत्ति होती है, पर उसमें भी उसके दृष्टिकोण का महत्त्व होता है। वैयक्तिक निबंधों का प्रधान आकर्षण उसके व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है। लेखक अपने व्यक्तित्व के रोचक पक्ष का प्रकाशन कर पाठक और अपने बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित करता है। निबंध का उद्देश्य साहित्य के सामान्य उद्देश्य से भिन्न नहीं है।

निबंध के भेद–निबंध को पाँच भागों में विभक्त किया जाता है–
(1) वर्णनात्मक (Descriptive), (2) विवरणात्मक (Narrative), (3) विचारात्मक (Reflective), (4) भावात्मक (Emotional) तथा (5) व्यक्तित्व प्रधान (Personal essay)

(1) वर्णनात्मक निबंधों में कल्पना का प्राधान्य होता है तथा उसमें वर्णन स्थूल हुआ करते हैं और भाषा में सरलता एवं अर्थवत्ता होती है। इसके अंतर्गत अधिकतर देश स्थान या किसी भौगोलिक स्थान का वर्णन होता है और वह वर्णन आँखों देखा हुआ-सा होता है। इसमें किसी विषय का सजीव चित्र उपस्थित किया जाता है।

(2) विवरणात्मक निबंध–इस कोटि के निबंधों में विशेष विषय का वर्णन किया जाता है। इन्हें कथात्मक अथवा आख्यानात्मक भी कहा जाता है। विवरणात्मक निबंधों का संबंध मुख्य रूप से समय या काल से होता है; इनमें वस्तु या विषय को गतिशील रूप से देखा जाता है। विवरणात्मक निबंधों में किसी विषय का इस प्रकार निरूपण होता है जिससे कि पाठकों के मन पर चलचित्र की भाँति उसका रूप अंकित हो जाय।

(3) विचारात्मक निबंधों में किसी विचार का प्रतिपादन किया जाता है और इनमें बौद्धिकता की प्रधानता होती है। चूँकि इनमें मस्तिष्क की प्रधानता रहती है, अतः तर्क का सहारा लेकर विचार प्रकट किये जाते हैं। इन निबंधों के विषय गंभीर एवं प्रयोजनीय होत्ते हैं। इसको अधिक सरल

बनाने के लिए व्यास (विस्तृत) और समास (संक्षिप्त)दोनों ही शैलियों का प्रयोग होता है। विचारात्मक निबंधों में जहाँ हृदय और मस्तिष्क अर्थात भावना और बुद्धि दोनों का समान योग होता है, वे शुद्ध साहित्यिक निबंध कहे जाते हैं। इनमें विषय की अनेकरूपता होती है।

(4) **भावात्मक निबंध**–इस प्रकार के निबंध में भावावेश या आत्मप्रलाप की प्रधानता होती है। ये निबंध गद्यगीत के अधिक निकट हैं। भावात्मक निबंध कवित्वपूर्ण शैली में लिखे जाते हैं और इनमें भावों तथा रसों की अभिव्यक्ति होती है।

(5) **व्यक्तित्व प्रधान निबंध**–निबंध का वास्तविक रूप या इसका चरम विकास वैयक्तिक निबंधों में देखा जाता है। अँग्रेजी में तो निबंध शब्द मुख्यत: परसनल एस्से के लिए ही रूढ़ हो गया है। इस प्रकार के निबंधों में लेखक को आत्म प्रकाशन की विशेष सुविधा होती है और वह संसार के किसी भी विषय को लेकर उस पर अपने व्यक्तित्व का रंग चढ़ाकर उसका वर्णन करता है। इसमें लेखक की वैयक्तिक अनुभूतियों, आशा आकांक्षाओं और रागात्मक प्रतिक्रियाओं का निबंधन होता है। इसे साहित्य का ललित रूप विधान कहते हैं, जिसके माध्यम से लेखक सहृदयों के हृदय में रम्य उक्तियों द्वारा सरसता का संचार करता है। इसमें विषय का स्वयं महत्त्व नहीं होता लेखक के निजी अनुभव एवं विचारों की महत्ता होती है। वैयक्तिक या ललित निबंध में लेखक का स्वाभाविक और निश्छल व्यक्तित्व प्रकाशित होता है; वह अपने आकर्षक व्यक्तित्व के कारण पाठक का ध्यान सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

इसमें लेखक उन्मुक्त रूप से अपने विचारों तथा भावों का प्रकाशित करता है। व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का अर्थ है लेखक की कृति में उसकी रुचियों, इच्छाओं, आशाओं और कल्पनाओं का मूर्तन। व्यक्तिगत निबंधों में निबंधकार की दृष्टि आत्मपरक होती है, वह वैज्ञानिक या वस्तुनिष्ठ निबंधों की भाँति वर्ण्यविषय का यथा तथ्य वर्णन न कर किसी वस्तु के दर्शन या मनन से उद्भूत भावतरंगों की व्यंजना करता है। उसमें भावतरंगें निश्चित क्रम से नहीं आतीं, अपितु उनमें एक प्रकार की कलात्मक बिशृंखलता होती है। लेखक जीवन के महत् विषयों से लेकर तुच्छ-से-तुच्छ विषयों एवं प्रसंगों को निबंध का विषय

बनाता है। इसमें लेखक की मनोदशा प्रधान होती है, वर्ण्यविषय का महत्त्व गौण होता है; फलतः ललित निबंध के विषय का सीमानिर्धारण नहीं होता। इसमें लेखक उन्मुक्त रूप से अपने विचारों तथा भावों का प्रकाशन करता है। वैयक्तिक निबंधों में विषय का प्रस्तुतीकरण आंतरिक तथा स्वाभाविक होता है। लेखक मनमौजी होकर क्रमहीन ढंग से विषय का प्रतिपादन करता चला जाता है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से उनमें कोई क्रम दिखाई नहीं पड़ता, पर अप्रत्यक्ष रूप से लेखक के विचारों और भावों में क्रमबद्धता होती है और वे परस्पर बँधे रहते हैं। इस प्रकार के निबंध की रचना लेखक निस्संग या निर्लिप्त होकर बिना किसी आग्रह के करता है, जिसमें पग-पग पर उसकी प्रतिभा एवं मनस्विता के दर्शन होते हैं।

आलोचनात्मक निबंध (Critical Essay) इसके अंतर्गत साहित्यिक आलोचना आती है। दे. Criticism

Essayist (एस्सेयिष्ट) निबंधकार–दे. Essay निबंध-लेखक को निबंधकार कहते हैं।

Eulogy (इयुलोजी) प्रशस्ति–किसी व्यक्ति की प्रशंसा में की गई रचना प्रशस्ति कहलाती है। इसमें कवि व्यक्ति विशेष के गुणों पर रीझ कर उसकी प्रशस्ति करता है।

■

Existentiatism (एग्जिस्टेन्शियलिज्म) अस्तित्ववाद

अस्तित्ववाद आधुनिक युग का एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक सिद्धांत है, जिसने साहित्य-चिंतन को भी प्रभावित किया है। इसमें मानव व्यक्तित्व का महत्त्व स्वीकार कर उसकी स्वतंत्रता पर बल दिया गया है। इस चिंतन पद्धति ने मानव मूल्यों की नवीन अर्थवत्ता स्थापित की है तथा यह निर्णय दिया है कि मानव प्रयत्न से ही अपने व्यक्तित्व को पूर्ण बना सकता है। मानव-जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का निदान प्रस्तुत करने के कारण अस्तित्ववाद 'व्यावहारिक दर्शन' के नाम से अभिहित किया जाता है। यह आंदोलन फ्रांस में अधिक सफल हुआ और वहाँ से इसका प्रचार सारे यूरोप में हुआ। अस्तित्ववाद का अधिक प्रचार प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात प्रसिद्ध फ्रांसीसी विचारक और लेखक ज्यां पॉल सार्त्र द्वारा हुआ। इस दर्शन के प्रर्वत्तकों में सोरेन किर्केगार्द (1813-1855 ई.), फ्रेडरिक नीत्से (1844-1900 ई.), कार्ल जास्पर्स, (ज. 1883 ई.) ग्रेबियल मार्सेल (जन्म 1899 ई.), मार्टिन हाइडेगर (जन्म 1889 ई.) तथा ज्यां पॉल सार्त्र (जन्म 1905) हैं। इनके अतिरिक्त काफका और अलवेतर काम् का भी इस विचारधारा के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

अस्तित्ववाद का उन्नायक डेनमार्क का प्रसिद्ध दार्शनिक सोरेन किर्केगार्द माना जाता है। उसने हीगेल के प्रत्ययवाद का खण्डन कर मानव अस्तित्व का गहराई से विचार किया। उसका कहना था कि मानव का व्यक्तित्व ब्रह्म की अभिव्यक्ति

न होकर अपने कार्यों को स्वतंत्र रूप से सम्पन्न करने वाला है। किर्केगार्द मानव व्यक्तित्व की स्वतंत्रता का समर्थक है जो (व्यक्ति) अपने कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी है। अस्तित्ववादी दो प्रकार के हैं–आस्तिक और नास्तिक। प्रथम वर्ग में जैस्पर्स एवं गेब्रील मार्सल हैं और दोनों ही कैथलिक हैं। दूसरे वर्ग में हाइडेगर तथा सार्त्र आते हैं। दोनों वर्गों के विचारक इसमें एकमत हैं कि अस्तित्व सार से पूर्ववर्ती है। सार्त्र ने नास्तिक मत को अधिक संगत माना है। उसका कहना है–"नास्तिक अस्तित्ववाद जिसका प्रतिनिधित्व मैं करता हूँ, अधिक संगत संबद्ध है। इसके अनुसार यदि ईश्वर की सत्ता नहीं है, तो कम-से-कम एक सत्ता अवश्य ऐसी है जिसमें अस्तित्व सार से पूर्ववर्ती है। यह सत्ता ऐसी है कि किसी अवधारणा द्वारा उसकी परिभाषा की जा सके उसके पहले ही उसका अस्तित्व होता है और वह सत्ता है मानव, हाइडेगर के शब्दों में मानवीय सत्य। यहाँ यह कहने का क्या अभिप्राय है कि अस्तित्व सार से पूर्ववर्ती है? इसका अर्थ यह है कि सर्वप्रथम मनुष्य का अस्तित्व होता है, उसका आगमन होता है, मंच पर अवतरण होता है और इसके बाद ही वह अपनी परिभाषा करता है। अस्तित्ववादी मनुष्य के जिस स्वरूप का अवधारण करता है यदि वह परिभाषा में नहीं बँध सकता तो इसका कारण यह है कि पहले-पहले वह कुछ भी नहीं होता। बाद में ही वह कुछ होता है और जो कुछ वह होगा वह स्वयं अपना ही बताया हुआ होगा। अतएव मानवीय स्वभाव की सत्ता नहीं होती; क्योंकि उसकी अवधारणा करने वाला ईश्वर ही नहीं होता। मनुष्य अपने स्वरूप का जो भावन करता है वह वही नहीं होता बल्कि अस्तित्व की ओर इस प्रगति के पश्चात वह केवल वही होता है जो बनने के वह इच्छा करता है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र सिद्धांत और वाद, पृ. 364-365)

अस्तित्ववाद जीवन की समग्रता के समक्ष समस्त परिस्थितियों को जानने का प्रयत्न करता है। वह मानव जीवन की सार्थकता का अन्वेषण करता है; क्योंकि सफल जीवन के लिए सार्थकता एक अनिवार्य शर्त है। अस्तित्ववाद यह मानता है कि जीवन की सारी सम्भावनाएँ किसी पूर्व नियोजित साँचे में ढली नहीं रहती; क्योंकि मानव-प्रकृति भी पूर्व नियोजित नहीं है और उसका निर्माण एवं विकास होता रहता है। यह जीवन की संकुलता के मध्य व्यक्ति की स्वातंत्र्य चेतना और आंतरिक गरिमा को पुनः अर्जित करने की सम्भावना को आधार मानता है। इसकी उत्पत्ति मानव व्यक्तित्व के नैराश्य से हुई है। युद्ध के हानिकारक और विध्वंसात्मक प्रभाव के कारण मनुष्य में भय व्याप्त है तथा यान्त्रिक सभ्यता के

निरंतर प्रसार ने भी मानव को भयभीत कर दिया है। मानव के सारे कार्य यंत्रों द्वारा सम्पन्न होते हैं फलतः मानव व्यक्तित्व के श्रम का अवमूल्यन हो गया है। इस पीड़ादायक स्थिति ने जीवन को निराश बना दिया है और मानव अपने व्यक्तित्व के अस्तित्व को विस्मृत कर चुका है। मानव निराशा से व्यथित होकर समाज के विरुद्ध अपना असंतोष व्यक्त करता है।

अस्तित्वाद मानव व्यक्तित्व को महत्त्वपूर्ण स्थान-प्रदान करता है। वह परमतत्त्व, ब्रह्म, ईश्वर को उतना महत्त्वपूर्ण प्रत्यय नहीं मानता जितना कि व्यक्तित्व प्रत्यय को महत्त्व देता है। उसका विश्वास है कि मानव व्यक्तित्व का विकास प्रकृति के क्रम-विकास के माध्यम से हुआ है। "मानव व्यक्तित्व का आविर्भाव होने के उपरांत वह अपने प्रयत्न द्वारा जीवन-यात्रा में आगे बढ़ता है, किंतु वह जीवन में कर्त्तव्य निभाते समय इस बात पर अवश्य ध्यान रखता है कि उसकी स्वतंत्रता नष्ट न होने पावे।" (समकालीन दर्शन, पृ.211) अस्तित्ववाद के अनुसार मानव व्यक्तित्व समाज से अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह कोई आवश्यक नहीं कि मानव-व्यक्तित्व सामाजिक नियमों का पालन ही करे। व्यक्ति उस स्थिति में सामाजिक नियमों की अवहेलना भी कर सकता है जबकि वे व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक होते हैं। अस्तित्ववाद व्यक्ति के महत्त्व को स्वीकार कर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की शिक्षा देता है। वह आत्मनिष्ठ अनुभवों को महत्त्व प्रदान कर बताता है कि व्यक्ति इन अनुभवों के ही आधार पर जीता है।

अस्तित्ववादियों का कहना है कि मानव जगत् में अस्तित्व पहले आता है, सार बाद में। पहले मनुष्य का अस्तित्व होता है, तत्पश्चात वह निर्णय करता है कि उसे किस आदर्श की प्राप्ति करनी है। इस प्रकार का विशेषाधिकार केवल मनुष्य को है, वनस्पति या पशुओं को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। अस्तित्ववादियों के अनुसार व्यक्ति के अस्तित्व पर उसके वातावरण और परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। फिर भी वे इसे नगण्य मानते हैं। वे आदर्श को पूर्व निर्धारित नहीं मानते, मनुष्य अपने लिए उसका स्वयं निर्माण करता है। मानव-जीवन को किसी व्यवस्था या पद्धति में आबद्ध नहीं किया जा सकता। अस्तित्ववादियों ने सामान्यतः स्वीकार किया है कि अस्तित्व का अर्थ संसार में मानवी शक्ति की सत्ता है। सार्त्र का कहना है कि सर्वमान्य संसार की व्याख्या करना कठिन है। मनुष्य की व्यक्तिगत सत्ता होती है, फलतः चेतना के व्यक्तिगत केंद्र होते हैं।"प्रत्येक कवि अपने आप एक संसार रचने की योजना बनाता है जिसे वह अपना अर्थ, संयोजन

और प्रयोजन प्रदान करता है। किंतु, विज्ञान अनेक व्यक्तियों के सामूहिक अनुभव के जनजगत् की एक समस्या है।"

ईश्वर के साथ मनुष्य के संबंध में अस्तित्ववादियों ने अनेक प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं उनमें कुछ घोर ईश्वरवादी और कुछ घोर अनीश्वरवादी भी हैं। वे ईश्वर के संबंध में या उसके स्वरूप पर नये ढंग से विचार करने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। उनके अनुसार अनन्त की ओर अतिक्रमण की क्रिया मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। ईश्वर के अस्तित्व में आस्था न रखनेवाले अस्तित्ववादियों में नीत्से, हैडेगर एवं सार्त्र हैं। नीत्से ने तो यहाँ तक कह दिया कि ईश्वर मर गया है। हैडेगर और सार्त्र का कथन है कि ईश्वर में विश्वास करना यक्ष, राक्षस, किन्नर, गंधर्व आदि अप्राकृतिक तत्त्वों की सत्ता में विश्वास करना है। ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने के लिए प्रबल प्रमाण का अभाव है। नीत्से मानता है कि क्रिश्चियन ईश्वर के साथ क्रिश्चियन नैतिकता भी अपना आधार खो चुकी है। जब ईश्वर का ही अस्तित्व नहीं तो उसके द्वारा निर्मित नियमों का क्या मूल्य है? फलतः निरीश्वरवादी अस्तित्ववादियों ने मनुष्य को पूर्णतः स्वतंत्र मान लिया है। नैतिक आचरण के लिए मनुष्य स्वयं उत्तरदायी है और ईश्वर से हीन संसार में मनुष्य स्वयं नैतिक मूल्यों का चयन एवं उन्नयन करता है।

अस्तित्ववाद मृत्यु, दुःख संघर्ष और गलती को मानव जीवन की अनिवार्य सीमा मानता है। मनुष्य मृत्यु को जब तक भूला रहता है या उससे दूर भागने का प्रयत्न करता है तब तक वह उसे अस्तित्वमय संसार में केवल संयोगात्मक तथ्य के रूप में ज्ञात होती है। वह हमारे जीवन का अविभाज्य अंग नहीं बनती। "मौत है, किंतु यह मेरे लिए सारे दृश्यजगत् के एक अवयव के रूप में ही है, जिसमें मेरा समग्र जीवन ही अभिव्यक्ति पा रहा है।" मृत्यु के द्वारा वैयक्तिक अस्तित्व की संभावनाएँ भले ही बुझ जाएँ, वे समाप्त नहीं हो सकतीं। मृत्यु को हम अपने जीवन की दुर्घटना न कह कर एक ऐसी संभावना कह सकते हैं जिसे मनुष्य अनिवार्यतः व्यक्तिगत रूप से भोगता है। "और सच तो यह है कि यह एक ऐसी सर्वातिशायिनी संभावना है कि दूसरी संभावनाएँ इसी के कारण सामयिक संभावनाएँ बनाती हैं। सारी संभावनाओं का अन्त अगर मृत्यु में होना ही है, तो हमारे सामने सिर्फ दो ही विकल्प रहते हैं: मंजूरी और भुलावा। बहुत कम इन विकल्पों के प्रति सज्ञान होते हैं; अधिकतर तो हम रोजमर्रा की जिंदगी के भुलावों में ही भूले रहते हैं। पर मौत की मंजूरी का मतलब तो यह नहीं है कि हम जगत्

को ही मंजूर न करें और उसकी कार्यवाही में कोई भाग न लें—इसका यथार्थ आशय यह है कि हम जागतिक वस्तुओं से धोखा न खाएँ, हम अपने कर्म और कार्यों में ही भूले भटके न रहें-बल्कि उन्हें उतनी ही मान्यता दें जिसके लायक वे हैं यानी विशेष कुछ नहीं।" (माध्यम वर्ष 2, अंक 10, 1966 पृ. 37) इस प्रकार के विचार हैडेगर के हैं। अस्तित्ववादी मानता है कि दर्शन कला या साहित्य की रचना मृत्यु के भय को निरंतर जागरूक बनाने वाले हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो मानव अपने अस्तित्व के प्रति सजग नहीं रह सकता। इसके लिए उन्होंने साहित्यकार को कुछ सुझाव दिए हैं अर्थात साहित्यकार मनुष्य को मृत्यु का सतत् बोध कराने के लिए समाज से व्यक्ति को पृथक् कर उसमें व्यक्ति होने का बोध जगाए, श्रेणी होने का नहीं।

अस्तित्ववाद ने मूल्य की समस्या को सबसे अधिक उभार कर रखा है। इसने प्राचीन मूल्यों तथा उनकी दार्शनिक दृष्टि का विरोध कर मूल्यों के शोध की एक नई दृष्टि दी। इस दृष्टि को आत्मकेन्द्रित दृष्टि कहते हैं। प्रत्येक मूल्य को व्यक्ति की निजी खोज एवं उसकी उपलब्धि कहा जा सकता है। इस व्यवस्था को घोर व्यभिचारी व्यवस्था कह सकते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि मानव-मात्र के लिए किसी भी एक मूल्य की चर्चा नहीं की जा सकती। मनुष्यों के मूल्यों में जो समानता दिखाई पड़ती है, उसका कारण व्यवस्था न होकर, एक संयोग है। व्यक्ति को इस संसार में एकाकी आकर अपनी मूल्य-व्यवस्था निर्मित करनी होती है। मूल्य की इसी में सार्थकता है कि वह जीवन को दिशा और गति प्रदान करे।

अस्तित्ववादी दर्शन को आत्म केंद्रित या आत्मपाती कहा गया है। यह बाह्य जगत् की अपेक्षा मानव के आंतरिक अस्तित्व के प्रति अधिक रुचि प्रदर्शित करता है। "किंतु, जिस अस्तित्व में उसकी रुचि है वह मनुष्य का काल-क्षणों में प्रवाहित एवं विकसित होने वाला अस्तित्व है, न कि उसकी अपरिवर्तित शाश्वत आत्मा।" इस दर्शन में मनुष्य के प्रेम, भय, चिन्ता आदि विकारों का गंभीर अनुशीलन किया गया है और आत्मा के सार सत्तात्मक रूप का निषेध कर उसके प्रवाही, निरंतर परिवर्तित एवं अंतर्जीवन पर विचार हुआ है। इसे इसके आलोचकों ने पूर्ण निराशा और अकर्मण्यता का दर्शन कहा है। यह अभाव, निषेध और अस्वीकृत का दर्शन है।

इसकी नींव घोर व्यक्तिवादी है। यह आत्मोन्मुखी, आत्मभोगी, अराजकतावादी तथा असामाजिक दर्शन है जिसने अस्तित्व का सारा दायित्व

मानव-व्यक्ति पर छोड़ दिया है। इस दर्शन का आधारभूत तत्त्व मनुष्य का 'अस्तित्व' है और यह मनुष्य सर्वोपरि तथा 'चरमसत्ता' है। इसमें माना गया है कि मनुष्य अपनी रुचि के चुनाव तथा अपने निर्णयों में पूर्ण स्वतंत्र है। अस्तित्ववाद मनुष्य का अभिप्राय स्वातंत्र्य से लेता है। यह मनुष्य को किसी अन्य सत्ता या सामाजिक संस्था के समक्ष अपने किसी कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं मानता। मनुष्य का सारा उत्तरदायित्व उसी पर है। इसने असामाजिकता के अतिरिक्त आत्मोन्मुखता को भी प्रश्रय दिया है, फलत: अनेक प्रकार की ह्रासशील परिणतियों को ग्रहण करने के कारण अस्तित्ववाद प्रतिक्रियावादी दर्शन बन गया है। इसने क्षणवादी विचारधारा की वकालत की है और कार्य-कारण संबंध का तिरस्कार कर वैज्ञानिक सत्यों की अवहेलना की है।

अस्तित्ववादी विचारक

सोरेन कीर्केगार्द— यह अस्तित्ववादी विचारधारा का जनक है। इसने 'यह या वह'

(Eitheror) 'दार्शनिक विचार खण्ड' (1844 ई.) (Philosophical Fragments) तथा 'अन्तिम अवैज्ञानिक पुनश्च' (Concluding unscientific Post script) नामक प्रमुख ग्रंथों का प्रणयन किया है। इसकी रचनाओं के दो लक्ष्य थे — हीगेलीय समष्टिवादिता का खण्डन या विरोध तथा ईसाई धर्म की पुनर्व्याख्या। इसके मतानुसार सत्य का अधिष्ठान आत्मनिष्ठता है। और सत्य का अनुभव आत्म के भीतर होता है। हीगेल ने व्यक्ति को कोई महत्त्व प्रदान नहीं किया था। किर्केगार्द ने व्यक्तिगत सत्ता को महत्त्व प्रदान कर बतलाया कि संसार में ब्रह्म या ईश्वर नहीं है। व्यक्ति स्वयं अपने जीवन की दिशा के संबंध में निर्णय करता है। इसने धर्म दर्शन तथा नीतिशास्त्र के परम्परागत रूप को आत्म प्रपंचना का परिचायक माना है। यह नैतिक आचार को वैयक्तिक मान कर यह निर्णय देता है कि प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह पूर्णत्व की ओर उन्मुख हो।

कार्ल यास्पर्श— यास्पर्श के दार्शनिक चिन्तन में अस्तित्ववादी दर्शन की समग्र विकास पूर्ण योजना परिलक्षित होती है। उसने दर्शन का अध्ययन विज्ञान के माध्यम से किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि विज्ञान ने व्यक्ति के अस्तित्व को वास्तविक रूप से प्रस्तुत करने में सफलता नहीं प्राप्त की है। वह तत्त्व मीमांसा

को दर्शन का मुख्य विषय मानता है। दर्शन का उद्देश्य सत् की खोज करना है। उसके अनुसार विज्ञान से सांसारिक वस्तुओं का ज्ञान होता है और दर्शन के द्वारा मनुष्य की सत्ता और संसार की समष्टि की अनुभूति होती है। दर्शन में ज्ञाता तथा ज्ञेय समवेत होकर एक हो जाते हैं। वह सत् के सम्पूर्ण विस्तार का ज्ञान अनुभूति द्वारा प्राप्त करता है। वह मनुष्य को सब कुछ मानता है। यदि उसे बोध हो जाए तो परम सत् का भी बोध हो जाएगा।

ज्यां पॉल सार्त्र— यह प्रसिद्ध फ्रांसीसी विचारक और प्रतिभाशाली साहित्यकार है जिसे अस्तित्ववाद का प्रतिष्ठापक कहा जा सकता है। इसका जन्म 21 जून 1905 ई. में पेरिस में हुआ था। इसने अपने नाटकों और उपन्यासों के माध्यम से अपनी अस्तित्ववादी मान्यताओं को अभिव्यक्त किया है। 'ह्वाट इज लिटरेचर' (साहित्य क्या है) नामक ग्रंथ में इसके कलात्मक चिंतन अनुस्यूत हैं और (ह्यूमेनिज्म एण्ड इक्जिस्टैंशियलिज्म) (अस्तित्ववाद और मानवतावाद), बींइग एण्ड नथिंगनेस (सत्ता और शून्यता) तथा इक्जिस्टैंशियलिज्म (अस्तित्ववाद) नामक ग्रंथों में इसके दार्शनिक विचार गुंफित है। इसके निबंधों के तीन खण्ड 'सिचुएशंस' के नाम से प्रकाशित हैं। सार्त्र ने अस्तित्व, चेतना एवं संकल्पशक्ति के सिद्धांत को 'नाशिया', 'रेप्रीव' तथा 'रोड्स टु फ्रीडम' नामक उपन्यासों में व्यक्त किया है। इसके नाटकों में 'क्राइमपैशनल', 'दि फ्लाइज'तथा 'इन कैमेरा' प्रसिद्ध हैं। सार्त्र के दार्शनिक चिंतन में स्वतंत्रता का महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसमें कहा गया है कि स्वतंत्रता ही मानव अस्तित्व का अपना स्वरूप है। इसने मनुष्य के अस्तित्व को उसकी सार सत्ता का पूर्ववर्ती माना है। इसके अनुसार प्रतिबिम्ब (इमेज) एक प्रकार की चेतना है और मानव व्यक्तित्व को अपनी कल्पना के द्वारा ही स्वतंत्रता की अनुभूति होती है। यह मानता है कि मनुष्य का कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है, वह अपने भविष्य का स्वयं निर्माण करता है। सार्त्र घोर व्यक्तिवादी विचारक है। इसके अनुसार प्रतिक्षण चेतना और अस्तित्व का जन्म होता है और चेतना नित्य परिवर्तनशील होती है। यह चेतना तथा वस्तुनिष्ठ जगत् में अनिवार्य संबंध की कल्पना करता है। चेतना तथा जगत् में उसी स्थिति में सम्पर्क स्थापित होता है जब जगत चेतना का विषय बनता है। यह मानता है कि नकारात्मक तत्त्व मानव व्यक्तित्व के भीतर तथा बाहर दोनों ओर है और दोनों में निरंतर प्रतिक्रिया होती रहती है। सार्त्र के चिंतन के निर्माण में दो ध्रुवीय अनुभूतियों का योग रहा है— 'प्रतिरोध में स्वतंत्रता का बोध तथा अस्तित्व की स्पष्ट और अपरिहार्य निरर्थकता।' वह सचेतना को नास्तिभाव का पर्याय मानता है।

"मनुष्य अपने आप को जो बनाता है उसके अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं है। यह अस्तित्ववाद का प्रथम सिद्धांत है। इसे ही विषयिगतत्व कहा जाता है। जब हमारे विरुद्ध आक्षेप लगाए जाते हैं तो हमें उसी नाम से अभिहित किया जाता है। यदि इससे हमारा यह अर्थ नहीं कि मनुष्य का गौरव एक पत्थर का या मेज से अधिक है, तो फिर और क्या हो सकता है? हमारा अभिप्राय यह है कि मनुष्य सर्व प्रथम सत्ताशील होता है, कि सबसे पहले मनुष्य ही वह प्राणी है जो अपने आपको भविष्य की ओर अग्रसर करता है और जो भविष्य में अपने विद्यमान होने की कल्पना से सचेत है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र सिद्धांत और वाद, पृष्ठ 365) "इसके विपरीत, अस्तित्ववादी के लिए यह बात बड़ी निराशाजनक है कि ईश्वर विद्यमान नहीं, क्योंकि विचारों के स्वर्ग में मूल्य ढूँढ़ने की सारी संभावना उसके साथ ही तिरोहित हो जाती है। प्रागनुभव ईश्वर फिर नहीं हो सकता; क्योंकि उसे सोचने के लिए असीम और पूर्ण चेतना ही नहीं है। यह कहीं भी लिखा नहीं है कि ईश्वर विद्यमान है, या हमें ईमानदार होना ही चाहिए या हमें झूठ बिल्कुल नहीं बोलना चाहिए; क्योंकि तथ्य तो यह है कि हम उस स्तर पर हैं जहाँ केवल मनुष्य ही हैं। दोस्ताएवस्की ने कहा है 'यदि ईश्वर विद्यमान नहीं तो, तो सब कुछ सम्भव होगा।' यही अस्तित्ववाद का अर्थबिन्दु है। सचमुच यदि ईश्वर नहीं है तो सबकुछ किया जा सकता है और तब मनुष्य एकाकी हो जाता है; क्योंकि अपने भीतर या बाहर उसे कुछ भी ऐसी चीज नहीं मिलती जिसका वह आश्रय ले। वह अपने लिए बहाने बनाना आरम्भ नहीं कर सकता।"

(वही, पृ. 369 - 370)

"चूँकि मनुष्य अपनी सभी स्थितियों के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है, इसलिए अस्तित्व का मुख्य अर्थ है स्वतंत्रता। अर्थात मनुष्य मृत्यु-पर्यंत अपने को, जो वह हो सकता है, बनाने का प्रयत्न करता है। यह एक मृत विश्व है — अतीत का विश्व, परम्पराओं, मिथ्या धारणाओं से लदा हुआ विश्व 'जिवन और स्वतंत्रता का अर्थ है,' 'जो कुछ है या था' से पूर्ण अलगाव-नए का आह्वान। मनुष्य का यह प्रयत्न, यह क्षेपण ही, उसके कर्म और गति का कारण है। मनुष्य की इस संसार में उपस्थिति 'होना' एक रूप-मात्र नहीं है, बल्कि कर्म, वरण और अपनी संभावना के अनुसार अपने को बनाने का प्रयत्न है।" (आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृ. 96)

साहित्य और स्वतंत्रता को सार्त्र ने अन्योन्याश्रित माना है। साहित्य एक सामाजिक वस्तु है, अपनी स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति मात्र नहीं। अतः, लेखक में पाठकों की चेतना अनिवार्य रूप से रहती है। साहित्य साहित्य-सृजेता की स्वतंत्रता की पाठक की स्वतंत्रता के प्रति अपील है, ताकि पाठक पुनः एक सृजन कर सके। मनुष्य यथार्थ या सत्य का उद्घाटक है। लेखक पाठक से कभी भी यह आशा नहीं कर सकता कि यह स्वतंत्रता को विनष्ट करनेवाले अत्याचारियों के प्रति अपनी सहानुभूति दे। प्रत्येक ऐतिहासिक स्थिति में लेखक की क्रियाशक्ति, सृजन और विनाश की शक्ति की परीक्षा होती है और उसे पाठक के सामने यही उद्घाटित करने का कर्त्तव्य निभाना चाहिए। सार्त्र के मत से , "साहित्य एक क्रांतिपूर्ण जाति की आत्मिकता (सब्जेक्टिविटी) है।" (आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद, पृ. 99 है) सार्त्र के अनुसार गद्य कविता की अपेक्षा श्रेष्ठ है। गद्य चिह्नों का साम्राज्य है। (एम्पायर ऑफ साइन्स) और कविता चित्रकला, शिल्पकला तथा संगीत की श्रेणी में आती है। कविता तथा संगीत की सत्ता विचारों के संसार में न होकर वस्तुओं, विषयों ध्वनियों, बिम्बों तथा रंगों के संसार में है। अतः, अस्तित्ववाद कविता आदि के विश्व से पृथक् हो जाता है; क्योंकि इसका अस्तित्व केवल विचार के रूप में है। कलाकार अपने विचारों को गद्य की किसी विधा के ही माध्यम से व्यक्त कर सकता है। सार्त्र ने अपने उपन्यासों, नाटकों तथा कहानियों के माध्यम से एकाकीपन, पीड़ा, निराशा तथा मनुष्य के लिए अपने निर्माण की आवश्यकताओं के तत्त्वों की अभिव्यक्ति की है। कौन सी कृति सुंदर हो सकती है, इस प्रश्न पर विचार करते हुए सार्त्र का कहना है, "कोई कृति तब तक सुंदर नहीं होती जब तक वह किसी रूप में लेखक से पलायन (ऐस्केप) नहीं करती। तात्पर्य यह कि यदि बिना किसी योजना के कोई लेखक चित्रण करता है, यदि उसके पात्र उसके नियंत्रण से पलायन करके उस पर सवार हो जाते हैं, और यदि उसकी लेखनी से निस्सृत शब्दों में अपना कोई स्वातंत्र्य रहता है तो उसकी कृति उत्कृष्ट कही जा सकती है।" (साहित्य क्या है, पृ.154 पाश्चात्य समीक्षा दर्शन पृ. 469) सार्त्र की मृत्यु 1980 ई. में हुई।

काफ्का–(1883-1924 ई.) फ्रेंज काफ्का का जन्म प्राग में एक यहूदी परिवार में हुआ था। वह विश्वविख्यात अस्तित्ववादी चिंतक और साहित्यकार था। उसके तीन उपन्यास 'द ट्रायल' (न्यायालय की सुनवाई) 'द कैसल' (महल) और 'अमेरिका' उसकी मृत्यु के पश्चात प्रकाशित हुए इनके अतिरिक्त उसकी डायरी दो खण्डों में प्रकाशित हुई है तथा अनेक कहानियों का संग्रह भी प्रकाशित हुआ

है। काफ्का के जीवन में निराशा का साम्राज्य छाया हुआ था, जिसे उसने साहित्य में मूर्त्तिमान किया है। उसके साहित्य में आत्मपूर्णता, बौद्धिकता, शंका, व्यंग्य एवं युगबोध की विशिष्टता झलकती है। वह स्वतंत्रता एवं अधिकार का पोषक था और दासता को भयंकर अपराध मानता था।

अलवेयर कामू–(1913-1960 ई.) वह अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त फ्रांसीसी चिंतक और लेखक माना जाता है। उसने अनेक नाटकों, उपन्यासों एवं निबंधों की रचना की है। उसने 'द स्ट्रेंजर', 'द मिथ ऑफ सिसीफस' 'द प्लेग', नामक उपन्यासों की रचना की है और 'द रिबेल' नामक निबंध ग्रंथ लिखा है। कामू के अनुसार मानव जाति का एक आवश्यक आयाम है। 1957 ई. में उसे नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

अस्तित्ववाद पर आक्षेप–अस्तित्ववादी विचारधारा ने साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया है। व्यक्तिगत मानवीय स्वतंत्रता की अति होने के कारण अस्तित्ववाद से अनुप्राणित साहित्य में जीवन की व्यर्थता, भयंकर यौनवृत्ति का विश्लेषण, नैतिक अवमूल्यन, निराशा और पलायनवादी भावों का अधिक चित्रण हुआ है। इसने पूर्व बोध और परंपरागत मानों का निषेध किया है। अस्तित्ववादी कलाकार जीवन और मानव-प्रकृति को हीनतम पाशविक रूप में चित्रित करने के कारण आलोचना के शिकार हुए हैं। मतवाद के रूप में तो इसने आत्मगत विवेक पर बल दिया है, पर उत्तरदायित्व के अभाव में उच्छृंखलता की सृष्टि की है। इसका काल्पनिक मानवतावाद व्यक्तिवाद ही है। इसमें विच्छृंखलता, अलगाव, एकांतिकता, असामाजिकता, सामाजिक संदर्भों से पृथक् कर मानव को देखने की प्रवृत्ति, विवेकहीनता, दायित्व हीनता तथा असंगति को जीवन की सार्थकता स्वीकार किया गया है। इसमें मानव निर्जीव यंत्र हो गया है। अस्तित्ववादी साहित्यकार मानव का अधिकांशत: कुरूप, बीभत्स और भयानक चित्र अंकित करते हैं। इसमें एक ओर मानवतावाद का आख्यान है और दूसरी ओर उपन्यासों और नाटकों में बर्बर, कायर, नपुंसक और अधम पात्रों की सृष्टि की गई है, जिससे इसका मानववाद उलझ गया है। इस दर्शन के असामाजिक सिद्धांतों तथा इससे प्रभावित लेखकों द्वारा चित्रित कुरूप और कुत्सित चित्रणों के प्रति आलोचकों ने विरोध का भाव प्रदर्शित किया है। पर वस्तु स्थिति को देखने से ज्ञात होता है कि अस्तित्ववाद की अधिकांश आलोचना भ्रांत, पक्षपातपूर्ण, पूर्वाग्रहों से प्रेरित और रोषपूर्ण विचारों की उत्तरदायित्वहीन अभिव्यक्ति से प्रेरित है। "अस्तित्ववाद में कर्म को अस्तित्व

का सर्वश्रेष्ठ तत्त्व माना गया है जिसके द्वारा जीवन की समस्त व्यर्थवादिता एवं अर्थशून्यता को उद्देश्य, आदर्श प्रयोजन एवं अर्थों से महिमा मण्डित किया जा सकता है।" (आलोचना, अस्तित्ववाद नामक निबंध, ले. मनोहर वर्मा) साहित्य की अपेक्षा इसका चिंतन पक्ष अधिक प्रौढ़ है।

Exposition (एक्सपोजीशन) , प्रारंभ, प्रस्तावना–
दे. Drama **Expressionism (croce) (एक्सप्रेसनिज्म)**
अभिव्यंजनावाद

इटली के प्रसिद्ध कलाचिंतक और दार्शनिक बेनेदितो क्रोचे अभिव्यंजनावाद नामक कलाचिंतन के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनके सौंदर्यशास्त्री विचार का प्रचार और प्रसार विश्व स्तर पर हो गया है। उनका जन्म 25.2.1866 ई. में इटली में हुआ था और मृत्यु 1952 ई. में हुई। वे 1920 से 1921 ई. तक वहाँ शिक्षा मंत्री भी थे। उन्होंने आलोचना विषयक एक पत्रिका का सम्पादन भी किया था। क्रोचे बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न विद्वान थे जिन्होंने इतिहास-दर्शन, सौंदर्यशास्त्र, दर्शन, मार्क्सवादी अर्थ-व्यवस्था, अध्यात्म एवं साहित्य आदि अनेक विषयों पर ग्रंथों की रचना की है। उनके पिता पादरी थे। 1883 ई. के भयंकर भूकम्प में जब उनके परिवार के अधिकांश सदस्यों की मृत्यु हो चुकी थी तब वे भी भयंकर रूप से घायल हो चुके थे और अनेक वर्षों तक विस्तर पर पड़े रहे और रोम में अपने चाचा के साथ रहने लगे। 1886 ई. में वे पुनः नेपुल्प लौट आए और इतिहास के गम्भीर अध्ययन में प्रवृत्त हुआ। 1903 ई. में उन्होंने 'ला क्रिटिका' नामक पत्रिका का संपादन किया था। उनका जगत् विख्यात 'एस्थेटिक्स' या 'सौंदर्यशास्त्र' नामक ग्रंथ 1902 ई. में प्रकाशित हुआ था जिसका अँग्रेजी अनुवाद 1909 ई. में तैयार हुआ। 1902 से 1952 ई. के अंतराल में क्रोचे ने अपने विचारों में पर्याप्त संशोधन और परिष्करण किया और चार काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना की। उनके विचारों के विकास की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं जो परस्पर स्वतंत्र और पृथक् हैं। प्रथम सिद्धांत में सहजानुभूति को अभिव्यक्ति माना गया है और द्वितीय अवस्था गीतात्मक सहजानुभूति (लिरिकल इण्ट्यूशन) की है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन 1908 तक उनकी व्यावहारिक आलोचनाओं में होता रहा। उनके तीसरे सिद्धांत को जागतिक सहजानुभूति (कॉजमिक इण्ट्यूशन) कहते हैं जिसका प्रतिबिंबन शेक्सपियर, गेटे तथा एरिआस्टो के ऊपर लिखित आलोचनाओं में हुआ है और इसका प्रकाशन 1918 ई. तक हुआ है। चतुर्थ

सिद्धांत का प्रतिपादन 1936 ई. तक हुआ था जिसमें काव्य से साहित्य को पृथक् स्वीकार किया गया। (दे. आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव पृ. 147) क्रोचे ने 'एसेंस और एस्थेटिक्स' तथा 'इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में लिखित 'एस्थेटिक' नामक निबंध में अपने विचारों का परिबर्द्धित रूप प्रस्तुत किया था।

दार्शनिक चिंतन की दृष्टि से क्रोचे हीगेल के प्रत्ययवाद से प्रभावित थे। उन्होंने प्रत्ययवाद का समर्थन कर भौतिकवाद की युक्तियों को त्रुटकयुक्त सिद्ध कर दिया तथा विज्ञान के क्षेत्र को दर्शनशास्त्र की अपेक्षा संकीर्ण बताया था और कहा था कि मानव-जीवन पर प्रत्ययवाद का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। उन्होंने मानव जीवन के प्रत्येक पहलू पर अपने प्रत्ययवाद का प्रयोग किया था और दार्शनिक सिद्धांत के निरूपण में तार्किक ज्ञान एवं अन्त: प्रज्ञा या सहजानुभूति को समान महत्त्व दिया था। क्रोचे के मतानुसार दर्शन विज्ञानों का विज्ञान है। उन्होंने प्रत्ययवाद के अतिरिक्त अनुभववाद को भी महत्त्व दिया था; क्योंकि इसमें समग्र विश्व के आधारभूत तत्त्वों की व्याख्या करने का प्रयत्न किया जाता है। वे आध्यात्मिक सत्ता को रचनात्मक और क्रियाशील मानते हैं जो इस जगत् प्रपंच के विभिन्न पहलुओं के माध्यम से व्यक्त होती है। उनके मतानुसार मानव-इतिहास के विकास को आध्यात्मिक सत्ता की अभिव्यक्ति कहा जाता है। परमतत्त्व अनुभवातीत न होकर इसी विश्व में अंतर्निहित है और आध्यात्मिक सत्ता प्रकृति तथा मानव इतिहास के माध्यम से प्रकट होती है। वे ऐतिहासिक अध्ययन का लक्ष्य आध्यात्मिक दृष्टि से मानव जीवन की व्याख्या करना मानते हैं। इतिहास मानव जीवन की जीवित एवं आध्यात्मिक घटनाओं का विवरण है।

क्रोचे प्रसिद्ध इतालवी चिंतक 'विको' से प्रभाव ग्रहण कर मार्क्सवाद का परित्याग कर चुके थे। "वह प्राचीन साहित्यक विधाओं के अध्ययन से इस तथ्य को ग्रहण कर सका कि प्रकृति मानव की आंतरिक शक्ति के उत्पादन के रूप में कला में मान्यता न प्रदान करके, वह सर्वतोभावेन सर्वत्र इसके विरोध पर तत्पर हुआ और यथार्थ से भिन्न भाव जगत् की पृष्ठभूमि पर इस विशिष्टता की खोज करने लगा।"

क्रोचे के अनुसार अभिव्यंजनावाद की मूलभूत धारणाएँ इस प्रकार हैं—उन्होंने मानसिक व्यापारों की दो कोटियाँ स्वीकार की हैं—विचारात्मक और व्यवहारात्मक। विचारात्मक ज्ञान के भी दो रूप हैं—सहजानुभूति या स्वयंप्रकाशज्ञान तथा तर्कमूलक ज्ञान। इनमें कला का संबंध सहजानुभूति से है। व्यावहारिक क्रिया के

भी दो रूप हैं—उपयोगी या आर्थिक और नैतिक। व्यावहारिक क्रिया मनुष्य की इच्छा शक्ति पर निर्भर रहती है। क्रोचे ने मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को अस्वीकृत कर दिया था; क्योंकि उसने स्थूल भौतिक जगत् को ही सर्वस्व स्वीकार कर मानसिक क्रियाओं की नगण्यता सिद्ध की थी। पर मन और उसके व्यापार को उन्होंने एकमात्र महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना था। मूलत: आत्मवादी दार्शनिक होने के कारण उनके दर्शन में आदर्शवादी विचारों का चरमोत्कर्ष दिखाई पड़ता है। आलोचकों ने क्रोचे को काव्य-समीक्षक की कोटि में परिगणित नहीं किया है; क्योंकि उनके द्वारा प्रवर्तित अभिव्यंजनावाद का संबंध सभी कलाओं से है। उनके सौंदर्य-दर्शन का केंद्रीय तत्त्व स्वयं प्रकाश्य या इण्ट्यूशन है, पर उनके पूर्ववर्ती दार्शनिकों द्वारा इसे मान्यता नहीं प्रदान की जा सकी थी। क्रोचे को अपने सौंदर्यशास्त्रीय सिद्धांत का मूलतत्त्व फ्रांसेस्को द सांक्तिस से प्राप्त हुआ था। जिसके अनुसार "कला विचार और प्रज्ञा की वस्तु नहीं है, न वह कौशल का ही उपाद्य है, किंतु वह विशुद्ध एवं सहज कल्पनात्मक रूप है।" क्रोचे ने इसी धारणा का चरम विशदीकरण किया है। उन्होंने अपना निश्चित मत व्यक्त किया था कि सहजानुभूत ज्ञान के लिए बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती, उसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। उन्होंने इस तथ्य का प्रतिवाद किया कि बुद्धि के बिना स्वयं प्रकाश्य संभव नहीं है। उनके विचार से बौद्धिक तत्त्व भी स्वयं प्रकाश्य में मिल कर उसी का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार क्रोचे का सहजानुभूत ज्ञान बौद्धिक ज्ञान से पृथक् होता है। "उनका कथन इस प्रकार है—"सहजानुभूत ज्ञान को हमने इस प्रकार भौतिक तत्त्वों तथा परवर्ती एवं बाह्य संकलनों से मुक्त किया है। यह आवश्यक है कि हम इसकी व्याख्या करें, इसकी सीमाओं को निर्दिष्ट करें और एक अन्य प्रकार के आक्रमण और भ्रांति से इसकी रक्षा करें। निचले छोर पर एक ओर संवेदन है, अरूप वस्तु, जिसे आत्मा कभी भी सरल वस्तु की तरह अनुभूत नहीं कर सकती। यह अनुभूति रूप के साथ, केवल रूप में होती है, किंतु जहाँ सीमा की धारणा का प्रश्न है, वह स्पष्ट है। वस्तु अपनी अमूर्त्तता में यंत्रन्यास है, निष्क्रिय है, आत्मा उसे स्वीकृति देती है, किंतु उसे उत्पन्न नहीं करती। इसके बिना कोई भी मानवीय ज्ञान अथवा क्रिया सम्भव नहीं, किंतु वस्तु मात्र पशुता उत्पन्न करती है—वह जो मनुष्य में पाशविक और आवेगपूर्ण है। वह उस आध्यात्मिक अधिराज्य का निर्माण नहीं करती जो मानवता है। — वस्तु जब रूप वेष्टित, रूपविजित होती है, तब वह मूर्त्त रूप को उत्पन्न करती है। एक सहजानुभूति और दूसरी सहजानुभूति में क्या अंतर है—यह वस्तु से, आधेय से प्रकट होता है;

रूप स्थिर सनातन है: वह आत्मिक क्रिया है। इसके विपरीत वस्तु परिवर्तनशील है। वस्तु के बिना आत्मिक क्रिया अपनी अमूर्त्तता त्यागमूर्त और वास्तविक क्रिया नहीं हो सकती। वस्तु ही उसके विशिष्ट आधेय, उसकी विशिष्ट सहजानुभूति को प्रकट करती है। (पाश्चात्य काव्यशास्त्र; सिद्धांत और वाद, पृ.199-200)

क्रोचे कलात्मक अभिव्यक्ति को अखण्ड मानते हैं और सभी शैलियों, विधाओं तथा परम्पराओं आदि के भेद को असिद्ध कर देते हैं। उनके अनुसार कला समीक्षा स्वतंत्र और आत्मनिष्ठ है। वे अभिव्यंजना के भेद को स्वीकार करते हैं और उसकी सफलता में मात्रा-भेद स्वीकार कर सकते हैं, पर रूप को कोटियों, विधाओं और शैलियों में वर्गीकृत करना उनके लिए अवांछनीय है। वे कला के साथ उपयोगिता और सदाचार का संबंध स्थापित नहीं करते अर्थात अभिव्यंजना या कला का एक ही प्रयोजन सिद्ध करते हैं मन में सहज ज्ञान या अभिव्यंजना को आलोकित करना। प्रकारांतर से वे 'कला कला के लिए' सिद्धांत के समर्थक हैं; कलात्मक सौंदर्य या अभिव्यंजना के साथ सदाचार, नीति आदि को संबद्ध नहीं करते; क्योंकि इनका संबंध बाह्य प्रकाशन से है। उनके अनुसार कलात्मक अभिव्यंजना से जो आनन्दानुभूति होती है उसका मूल्य नैतिकता या उपयोगिता के निकष पर नहीं निर्धारित किया जा सकता। वे कथन के सौंदर्य या अभिव्यक्ति सौंदर्य में ही सौंदर्यानुभूति को निहित मानते हैं। उनके विचारानुसार प्रत्येक वास्तविक सहजप्रज्ञा या मूर्तीकरण अभिव्यंजना भी है तथा प्रातिम अथवा अभिव्यंजनागत ज्ञान को उन्होंने सौंदर्य के साथ तद्रूप कर दिया है। उन्होंने कलात्मक तथ्य को रूप या केवल रूप में माना है। उनके मतानुसार सौंदर्य की परिभाषा केवल अभिव्यंजना या सफल अभिव्यंजना में ही निहित है। जब अभिव्यंजना सफल नहीं हो सकती तो उसे अभिव्यंजना कहा ही नहीं जा सकता। वे सहजानुभूति (सहजप्रज्ञा) या अभिव्यंजना को ही कला मानते हैं और रूप तथा सौंदर्य को भी अभिव्यंजना की संज्ञा प्रदान करते हैं। वे अभिव्यंजना से भिन्न कला का कोई रूप स्वीकार नहीं करते और अभिव्यंजना को अंतरंग या मनोमय मानते हैं। कला के लक्ष्य की पूर्ति अंतरंग अभिव्यंजना में ही हो जाती है, उसे कला का स्वरूप ग्रहण करने के लिए वस्तु रूप में प्रकट होने की आवश्यकता नहीं पड़ती। शब्दों के माध्यम से जब अभिव्यंजना प्रकट होती है तो उसकी व्यावहारिक प्रक्रिया प्रारंभ होती है उसके लिए कवि को बाध्य नहीं होना पड़ता। वे उसी को सुंदर मानते हैं जिसमें अभिव्यंजना द्वारा संवेदनाओं का सफलतापूर्वक रूपायन हुआ हो। रूप जितना ही अधिक सुन्दर और सुस्पष्ट होकर अभिव्यंजित

होता है, वह उतना ही अधिक सुंदर होता है। उन्होंने अभिव्यंजना की असफलता को कुरूपता कहा है। सामान्य रूप से सुंदर पदार्थ ही सफल अभिव्यंजना द्वारा सुंदर हो जाता है। क्रोचे की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है सौंदर्य और कला की कल्पना को अन्य तत्त्वों से पृथक् कर देना। वे सौंदर्य तत्त्व और सौंदर्यानुभूति को बाह्य जगत् का पदार्थ न मानकर मन की ही क्रिया मानते हैं; क्योंकि मन के बाहर उनकी कोई सत्ता नहीं है। सौंदर्य कोई वस्तुगत तथ्य न होकर, मन की ही क्रिया है। जब हम कहते हैं कि अमुक पदार्थ सुंदर है तो इसका अर्थ यह नहीं कि सौंदर्य बाह्य वस्तु में सन्निहित है, वस्तुतः बाह्य सौंदर्य में हमारे अंतर का ही सौंदर्य-बोध प्रकाशित होता है। जब तक आंतरिक सौंदर्य का प्रस्फुटन नहीं होता तब तक कोई भी बाह्य वस्तु सुंदर नहीं हो सकती। "अस्तु कल्पना के द्वारा हमारे मानस पर किसी बाह्य वस्तु को देख कर जो सुसंस्कृतरूप प्रतिभासित हो उठता है वही सुंदर कहा जाता है। बाह्य जगत् में स्वतः कोई सौंदर्य निहित नहीं।" (पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिंदी पर उसका प्रभाव, पृ.60) क्रोचे के अनुसार कल्पना कोई स्वतंत्र और सम्पूर्ण तथ्य नहीं है, अनुभव में ही उसका स्रोत छिपा रहता है। वे मानते हैं कि अभिव्यंजना की क्रिया के पूर्व अभिव्यंजना की शैली का अस्तित्व नहीं रहता और न काव्य की कोई पूर्वनिर्मित शैली होती है या उसकी संरचना का कोई सिद्धांत होता है। भाषा द्वारा की गई अभिव्यक्ति को दुहराया नहीं जाता और आदर्श भाषा की खोज करना गतिशीलता का अवरोक है। वे मानते हैं कि काव्य के सभी रूप गीतात्मक होते हैं और उनके एक ही मनःस्थिति की अभिव्यक्ति होती है। काव्य में मुख्यतः संवेगों की अभिव्यक्ति बिम्ब रूप में अपना अस्तित्व बना कर रहती है। कोई वस्तु अभिव्यंजना के स्तर तक आकर यदि वह क्षुद्र हो तो अपनी क्षुद्रता को नष्ट कर प्रातिभज्ञान मात्र हो जाती है। "वस्तु और रूप का संबंध काव्यशास्त्र का सर्वाधिक विवादपूर्ण विषय है।... जिनका यह मत है कि काव्य केवल वस्तु है और जो काव्य को वस्तु और रूप का योग मानते हैं, हमारे विचार से वे सभी गलत हैं। काव्य-क्रिया में अभिव्यंजनात्मक क्रिया 'वस्तु' के साथ जोड़ी नहीं जाती हैं, वरन् वस्तु को उसके द्वारा रूप में बदल दिया जाता है। अभिव्यंजना में संवेदनाएँ इस प्रकार पुनः व्यक्त होती हैं, जिस प्रकार 'फिल्टर' में से छन कर पानी, वही होता हुआ भी, अपने पूर्वरूप से भिन्न रूप में प्रकट होता है।"

कवि अंतर्मन की प्रेरणा से अभिव्यंजना करता है और अभिव्यंजना मुक्त प्रेरणा होती है। अभिव्यंजनावाद में भावना के महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जाता;

उसमें स्वीकार किया जाता है कि अभिव्यक्ति के पूर्व उसका वास्तविक रूप निर्मित नहीं होता। उसमें अभिव्यक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य तत्त्व की सत्ता स्वीकार्य नहीं होती। अभिव्यंजनावाद में अभिव्यंजना के अतिरिक्त कला का कोई रूप नहीं होता। अभिव्यंजना मूल रूप से आध्यात्मिक क्रिया है और कलाकृति उसका मूर्त्त भौतिक रूप। अभिव्यंजना का आधार कल्पना है और असफल अभिव्यंजना को कला नहीं कहा जा सकता। क्रोचे ने अभिव्यंजना को एक स्वतंत्र इकाई का रूप दिया है, उसे वर्गों में विभाजित नहीं किया जा सकता उसमें अलंकार और अलंकार्य में भेद नहीं माना जाता। क्रोचे ने अनुवाद को व्यर्थ माना है; क्योंकि अनुवादक की सहजानुभूति कवि की सहजानुभूति नहीं हो सकती। अभिव्यंजना केवल एक अविभाज्य रूप है। क्रोचे कलावादी चिंतक हैं और सहजानुभूति कल्पनाश्रित होती है।

क्रोचे के अभिव्यंजनावाद पर अनेक प्रकार के आक्षेप किए गए हैं। जे. ई. स्पिंगार्न जो पहले क्रोचे का समर्थक था बाद में उसका आलोचक बन गया और उसने उसके इस कथन का प्रतिवाद किया कि "कला अभिव्यंना है और सभी अभिव्यंजनाएँ कला हैं।" वस्तुतः स्पिंगार्न ने अभिव्यंजना का वह अर्थ नहीं लिया जिस अर्थ में उसका प्रयोग क्रोचे ने किया था। स्कॉटजेम्स ने क्रोचे के विषय में निम्नलिखित आपत्तियाँ उठाई हैं–

उसके अनुसार धारणाओं तथा विचारों का सहजज्ञान में मिश्रण नहीं होता और वह सभी प्रकार के बौद्धिक तत्त्वों से रहित होता है। पर मनोवैज्ञानिकों ने कहा है कि इस प्रकार का सहज ज्ञान अकाल्पनिक है। उसका अस्तित्व चेतना के ही एक रूप में संभव हो सकता है। वह काव्य का कवि की अध्यात्मिक प्रक्रिया का प्रतिफलन मानता है जिससे उसका संबंध श्रोताओं तथा पाठकों से स्थापित नहीं हो पाता। इस पर अन्य आक्षेप यह है कि वह काव्य-व्यापार का निरूपण करते समय जीवन और जगत् के साथ संबंध स्थापित नहीं करता। इसका उत्तर देते हुए क्रोचे कहते हैं कि जीवन और काव्य-विषयक अनुभूतियाँ दो और पृथक् नहीं होतीं और जीवनानुभूतियाँ ही काव्यानुभूति का रूप ग्रहण कर लेती हैं। अतः, क्रोचे के अनुसार जीवन और काव्य का घनिष्ठ संबंध प्रदर्शित नहीं होता, यह कहना ठीक नहीं है। स्कॉट जेम्स के अनुसार जो कला सिद्धांत संवेदनीयता की उपेक्षा करता है वह अपूर्ण हैं; क्योंकि उसकी प्रतिष्ठा केवल दार्शनिकों द्वारा ही संभव है। "संभ्रम इसलिए उत्पन्न होता है कि क्रोचे कला से एक आशय लेता है जो

अन्य लोग नहीं लेते। उसकी दृष्टि में कला एक ऐसी वस्तु है जो कलाकार के मनस् में पहले से ही वर्तमान है कलाकार ने अभी न तो कलम ली है, न तूलिका न छेनी और इन साधनों के प्रयोग के बिना ही वह अपने आप में पूर्ण है। जब अन्य लोग कृति अथवा अभिव्यक्ति की बात करते हैं तो वे किसी मूर्त्त माध्यम के द्वारा प्रकट कृति अथवा अभिव्यक्ति की धारणा बाँधते हैं, क्रोचे की दृष्टि में मूर्त्त माध्यम का वस्तुत: कला से कोई संबंध नहीं। अन्य लोग जिसे 'कलाकृति' अथवा 'सुंदर वस्तु' कहते हैं, वह तो एक मूर्त्त उद्दीपन है जो दर्शक के अन्दर एक सुन्दर सहजानुभूति जाग्रत करता है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र सिद्धांत और वाद, पृ.210)

Euphemism (इयूफिमिज्म) प्रयोक्ति

एक अलंकार जिसमें कठोर या दु:खद शब्द के बदले कोमल शब्द का प्रयोग हो। जैसे मृत्यु के लिए 'अंतिम साँस लेना'

Fable–(फेबिल) नीति कथा

ऐसी कथा जिसमें अमानुष प्राणी अथवा निर्जीव पदार्थ मनुष्य की भाँति व्यवहार करते हैं। इसमें पशु-पक्षियों की भी कथा होती है जो मनुष्य की भाँति अपनी बातें कहते हैं। ऐसी कहानियों में नीति और शिक्षा की बातें रहती हैं और अप्राकृतिक तथा अमानुषिक कृत्यों का वर्णन किया जाता है। इसमें पशु, देवता, निर्जीव पदार्थ मानीवय आचरण करते हुए नीति का मार्ग दिखाते हैं। ऐसी कथाओं के वातावरण कुछ तो साधारण जन-जीवन से ग्रहण किए जाते हैं और कुछ काल्पनिक होते हैं। इनकी प्रवृत्ति यथार्थवादी तथा व्यंग्यात्मक होती है। इनके कई रूप होते हैं-पौराणिक, कोई मूर्खतापूर्ण कथा (असंगत और असंभव तथ्यों से पूर्ण), काल्पनिक कथा। ये कथाएँ अधिकांशत: जन्तु-जगत् से ली जाती हैं।

Fabliau (फाब्लिओ) यथार्थगाथा

ऐसी कथा का प्रचलन फ्रांस में बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में हुआ था जिसमें चार सौ पंक्तियों के पद्य में छोटी कथा कही जाती थी। इसमें कुलीन या आभिजात्य वंश के नायकों और नायिकाओं की कथा कही जाती थी जो शृंगार और वीर रस प्रधान काव्य रहा करते थे। इसकी नायिकाएँ स्पप्नलोक की होती थीं और उनका संबंध साधारण समाज और यथार्थजीवन से नहीं के बराबर था। कभी-कभी इन कथाओं में विनोद का स्वर प्रखर रहता था और ये अश्लील होती थीं। कवि जीवन के अभिहस्य पक्ष का व्यंग्यात्मक चित्र उरेहता था और यथासंभव जनसाधारण की भाषा का प्रयोग करता था।

Fairytale (फेयरीटेल) परीकथा

इसका प्रचलन साधारण लोक कथाओं, नानी-दादी की कहानियों या निजंधरी कथाओं तथा सहस्त्ररजनी चरित्र प्रभृति पूर्वीय कथाओं के आधार पर तीन देशों—फ्रांस, जर्मनी और डेनमार्क में हुआ। इसमें विचित्र घटनाओं को भौतिक स्तर पर उतारा जाता है और आध्यात्मिक स्तर पर स्नेह, सदाचार, न्याय और प्रेम आदि की व्यवस्था की जाती है। ऐसी कथाओं में राजकुमार सुंदर पक्षी बन कर अपनी प्रिया के पास जाकर मनोहर गीत सुनता है।

Falling Action (फालिंग ऐक्शन) निगति—नाटक के कथानक का एक तत्त्व-दे. Drama

Farce (फार्स) प्रहसन

प्रहसन कॉमदी का ही एक रूप है (दे. कॉमदी), जिसका उद्देश्य अतिशय हास्य उत्पन्न करना है। इसे कॉमदी का निम्न रूप भी कह सकते हैं। प्रहसन में मनोरंजक घटनाओं का प्राधान्य होता है, इसमें चरित्र-चित्रण पर बल नहीं दिया जाता। लेखक मनोरंजक घटनाओं का समावेश कर प्रेक्षकों को हँसाता है। इसमें हास्योत्पादन के अत्यंत सामान्य और भद्दे साधन प्रयुक्त होते हैं और संयोग, आकस्मिक घटनाओं तथा अतिशयोक्तिपूर्ण तथ्यों की भरमार रहती है। इसमें लेखक अभिहस्य चरित्रों, स्थितियों तथा कथोपकथनों का अत्यंत मनोयोग के साथ वर्णन करता है। प्रहसन में समाज के निम्न वर्ग के व्यक्ति प्रस्तुत किए जाते हैं और सामाजिक दोषों का पर्दाफाश किया जाता है। इसका उद्देश्य सुधार है। इसमें व्यक्ति को व्यक्ति के रूप में ग्रहण न कर किसी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रहसन की सफलता केवल हास्य की प्रस्तुति में है। प्रहसन चार प्रकार के होते हैं— परिस्थिति प्रधान, चरित्र प्रधान, कथोपकथन प्रधान और विदूषक प्रधान। परिस्थिति प्रधान प्रहसन में ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया जाता है जिनकी असंगति हास्य का कारण बनती है। चरित्र प्रधान प्रहसन मानवीय भावों के आधार पर निर्मित होते हैं। इनमें चरित्रगत क्रोध, अहंकार, लोभ, लालसा, मोह, पाखण्ड, द्वेष, घृणा आदि को आधार बना कर संबद्ध पात्र की खिल्ली उड़ाई जाती है। कथोपकथन-प्रधान प्रहसनों में कथोपकथन द्वारा हास्य प्रस्तुत होता है। इसमें व्यंग्य,

श्लेष-कथन तथा उपहास-युक्त वचनों की प्रधानता होती है। विदूषक प्रधान प्रहसन में विदूषक द्वारा हास्य की सृष्टि की जाती है। वह कथोपकथन या हास्योत्पादक वेशभूषा द्वारा दर्शकों को हँसाता है। प्रहसन में मनुष्य की दुर्बलताओं की आलोचना कर उनका सुधार किया जाता है; लेखक व्यक्ति और समाज की दुर्बलताओं को प्रदर्शित कर उन पर छींटे कसता है।

Fatalism (फेटलिज्म) भाग्यवाद–दर्शनशास्त्र का एक ऐसा सिद्धांत जिसके अनुसार सभी घटनाएँ अपरिहार्य या अवश्य भावी होती हैं। इनका पूर्वघटित घटनाओं से कोई संबंध नहीं होता, पर ये निश्चित रूप से घटेंगी ही या घटकर रहेंगी। इसमें कारण और कार्य के पारस्परिक संबंध का निषेध कर नियति या अदृश्य को घटनाओं के कारणों का परिणाम मान लिया जाता है अर्थात भाग्यवाद कारण और कार्य के अनिवार्य संबंध को स्वीकार नहीं करता और मानता है कि किसी भी घटना के घटित होने से भाग्य या अदृश्य का हाथ होता है। यह स्वीकार करता है कि जीवन में घटित घटनाएँ नियति के द्वारा पूर्व निर्धारित होती हैं; उनको रोका नहीं जा सकता। साहित्य में त्रासदी या करुणा प्रधान कृतियों में भाग्यवाद या दैव का खेल देखा जाता है। वहाँ नायक के पतन या दुर्भाग्य में उसके कृत कर्मों से अधिक निर्यात का योग दिखाया जाता है। नायक अपने किए गए कर्मों के कारण नहीं अपितु दुर्भाग्य के कारण पतन की ओर अग्रसर होता है। भाग्यवाद यह मानता है कि घटनाओं के घटित होने में मनुष्य का कुछ भी हाथ नहीं रहता, सभी घटनाएँ नियति के नियंत्रण में परिचालित होती हैं।

Figure of Speech (फिगर ऑफ स्पीच) अलंकार

कथन को सुंदर या आकर्षक बनाने के उपकरण को अलंकार कहते हैं। इसमें किसी विशेष लक्ष्य की पूर्ति के निमित्त शब्द के सामान्य प्रचलित प्रयोग के स्थान पर असाधारण प्रयोग किया जाता है।

Fine Art (फाइन आर्ट) ललितकला (दे. Art)

Folk-drama (फोकड्रामा) लोकनाट्य

नाटक का ऐसा रूप जो जनसाधारण के मनोरंजनार्थ रचा जाय और यह नागर मंच से भिन्न स्तर का हो। यह लोक के मनोरंजन का अकृत्रिम माध्यम है जिसमें पात्र स्वाभाविक और लोक जीवन या किसी प्रवृत्ति विशेष का प्रतिनिधित्व करते

हैं। इसका कथानक गतिमान और आडंबरहीन होता है और रंगमंच शास्त्रीय नियमों से विजड़ित नहीं होता। लोक नाट्य में कथा का विकृत रूप प्रदर्शित होता है; इसका अभिनय समूहगत किया जाता है। नौटंकी, रामलीला आदि इसी प्रकार के नाटक हैं। कहा जाता है कि परिष्कृत रुचि के नाटक का विकास लोकनाट्य से ही हुआ है।

Folk-song (फोक-सांग) लोकगीत

जन जीवन में मुखरित होने वाले गीत को लोक गीत कहते हैं, जिनमें साहित्यिक गीतों की भाँति आडंबर और कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते, अपितु सर्वत्र सहज और मार्मिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है। लोकगीत में कलात्मक सौष्ठव के अतिरिक्त गीतकाव्य या प्रगीत के सभी तत्त्व विद्यमान होते हैं। इसका संबंध सार्वजनिक जीवन से अधिक होता है, वैयक्तिक जीवन से कम। अधिकांश लोकगीत नाटकीय चमत्कार से युक्त होते हैं और उनमें वर्णनात्मकता अधिक होती है; क्योंकि उनकी रचना किसी कथा के आधार पर होती है। इनमें उन्मुक्त ग्राम्य-जीवन का प्रकृत रूप प्रतिबिंबित होता है और ये जीवन के अधिक निकट होते हैं। इनके द्वारा काव्य को प्रेरणा प्राप्त होती है; ये साहित्य की भूमि को उर्वर बनाते हैं। इनमें काव्य की जीवंत विशेषताओं का समावेश होता है और जनता की भाषा तथा भाव को वाणी मिलती है। सहज, प्रकृत और मार्मिक सौंदर्य के कारण लोक गीतों में श्रोताओं को अभिभूत करने की अधिक क्षमता होती है।

लोकगीत दो प्रकार के होते हैं—अज्ञात और ज्ञात। अज्ञात लोकगीत मौखिक परंपरा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवहभान होते हैं और इनके रचयिता का पता नहीं चलता तथा रचनाकाल अज्ञात होता है। पर ज्ञात लोकगीत का रचयिता युग विशेष का होता है और उसमें एकरूपता होती है। अज्ञात लोकगीतों का रूप एक-सा नहीं रहता। इनमें मुख्यत: प्रेम, विवाह, युद्ध, मृत्यु, जन्मोत्सव, विविध ऋतुएँ, फसल आदि का वर्णन किया जाता है। सांस्कृतिक पर्व एवं विविध प्रकार के उत्सवों का भी लोकगीतों में वर्णन होता है। आधुनिक युग में लोकगीतों की महनीयता स्वीकार की गई है, फलत: इनका संग्रह प्रारंभ हो गया है और इन पर बड़ी तेजी के साथ शोधकार्य हो रहे हैं। हिंदी में लोकगीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो गए हैं और उन पर दर्जनों शोध प्रबंध लिखे गए हैं जैसे भोजपुरी लोकगीत, मैथली लोकगीत, अवधी लोकगीत आदि।

Folk-tale (फोकटेल) लोककथा, लोककहानी

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप से प्रचलित कहानी को लोककथा कहते हैं। यह कहानी जनजीवन में अधिक लोकप्रिय होती है। इसके अंतर्गत अनेक प्रकार की कहानियाँ आती हैं—पौराणिक, लौकिक आदि। देवता या संसार की उत्पत्ति से संबद्ध कथा अथवा किसी कल्पित संसार में घटित होने वाली कथा पौराणिक कथा की श्रेणी में आती है। लौकिक कहानी में भाषा, विचार और भावों में सरलता और स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। फ्रायड ने लोक कथा को प्राचीन या आदिम मानव की अवदमित इच्छाओं का प्रकाशन कहा है। इसके माध्यम से प्राचीन मानव की दबी हुई भावनाओं की निर्बाध अभिव्यक्ति होती है।

लोककथाओं के उदय या निर्माण की स्थितियाँ अज्ञात हैं, उनका निर्देश नहीं किया जा सकता। इसका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं है। जिसकी सीमा में किसी विशेष प्रकार की कहानी को रखा जाए, फिर भी लोक-प्रचलित और परंपरागत किसी भी कथा को लोक कथा कहा जा सकता है।

Formalism (फॉर्मलिज्म) रूपवाद

रूस में प्रचलित आलोचना की एक प्रवृत्ति जिसका प्रचलन 1920 ई. में हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार साहित्य में उसका बाह्य रूप ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस आंदोलन ने रूस के अतिरिक्त पोलैण्ड तथा चेकोस्लोवाकिया के साहित्य तथा आलोचनाशास्त्र को दस वर्षों तक प्रभावित किया। इसने कला में शिल्प को विशेष महत्त्व दिया और बतलाया कि रूप या आकार किसी विशेषता का नाम है। इसमें अनुभूत उद्देश्य या किसी वस्तु के तत्त्वों को संयोजित किया जाता है। जब कवि या लेखक किसी विषय को स्पष्ट करना चाहता है तो वह किसी रूप को किसी विषय पर लाद देता है। रूसी साहित्यकार श्लोव्स्की ने 'आपोयाज' (साहित्यिक भाषा अध्ययन समाज) नामक साहित्यिक केंद्र की स्थापना 1917 ई. में की थी। यह केंद्र पैत्रोग्राड नामक नगर में स्थापित हुआ था।

यह आंदोलन समाजवादी तथा प्रतीकवादी समीक्षा सिद्धांतों के विरुद्ध प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न हुआ था। इसके अनुसार कला शैली है, कला कौशल है और कला ही कारीगरी है। कौशल को कला की प्रणाली ही नहीं उसका उद्देश्य भी कहा गया। इसने साहित्यिक इतिहास को एक प्रकार के सौंदर्यात्मक भाषाशास्त्र की अभिधा प्रदान की थी। इसमें समीक्षा को कलाकृतियों के रचना-कौशल का

बाह्य अध्ययन कहा गया है। इस सिद्धांत ने पढ़े-लिखे व्यक्ति को शब्दों का कारीगर कहा। साहित्य का उद्देश्य आनन्द मानकर रूपवाद ने साहित्यकार को शिल्पविधि तथा भाषा की शक्तियों की ओर आकृष्ट किया; क्योंकि इन्हीं के द्वारा साहित्यिक आनन्द की सिद्धि संभव है। 1927 ई. तक यह सिद्धांत चलता रहा किंतु आगे चलकर रूसी शासन ने सामांतवादी विचारधारा का पोषक मानकर इसे संदेह की दृष्टि से देखा, फलतः इसकी साहित्यिक मान्यताएँ छिन्न-भिन्न हो गईं।

■

French Criticism (फ्रेंच क्रिटिसिज्म)

फ्रांसीसी आलोचना

फ्रांस में आलोचना का उदय पुनर्जागरणकाल से ही हो जाता है। 16वीं शताब्दी के मध्य में सात कवियों ने एक विचार-गोष्ठी का निर्माण किया था, जिसमें फ्रांसीसी साहित्य में आलोचनाशास्त्र के उन्नयन पर बल दिया गया और उसे प्राचीन ग्रीक तथा लैटिन-साहित्य के समकक्ष ले जाने का प्रयास किया गया। ऐसे कवियों में 'पिएख द रोजाख' तथा 'जोखे दुबिले' मुख्य थे। दुबिले ने एक घोषणापत्र (देफॉस) 1549 ई. प्रकाशित किया था, जिसमें गोष्ठी के नए सिद्धांतों का समर्थन किया गया था। उसमें तत्कालीन काव्य-पद्धति की आलोचना कर बताया गया कि उसकी भाषा अति-सामान्य है और विषय-विवेचन अगंभीर तथा कलात्मकता शून्य है। घोषणापत्र में कतिपय मध्यकालीन लेखकों की कृत्रिम भाषा की हँसी उड़ाई गई थी और कवियों को बोलचाल की सामान्य भाषा के प्रयोग से रोका गया था। दुबिले प्राचीन ग्रीक तथा लैटिन भाषा को अपना कर उनके साहित्यिक गुणों से अपनी भाषा को सँवारना चाहता था। पर, उसके विचारों का विरोध भी कम नहीं हुआ। इस युग के आलोचकों ने भाषणशास्त्र और छन्दशास्त्र पर विचार प्रारंभ किया जो 'होरेस' से प्रभावित था। मध्यकालीन धार्मिक प्रभावों से साहित्य को मुक्तकर तत्कालीन आलोचक उसमें औदात्त्य और सौंदर्यमूलक मानदण्डों की अवतारणा करना चाहते थे। उस समय उनके समक्ष साहित्य-विषयक पाँच प्रश्न विद्यमान थे जिनका निराकरण वे प्राचीन ग्रीक और लैटिन साहित्य के

आधार पर करना चाहते थे। वे पाँच प्रश्न थे काव्य की संरक्षा, काव्य की प्रकृति तथा मुख्य उपादानों का अन्वेषण, विविध साहित्य रूपों के उद्देश्य, माध्यम और विषय भेद पर दृष्टिनिलेप, काव्य-भाषा की उपयुक्तता पर विचार तथा प्राचीन आलोचकों के मतों की व्याख्या। उस समय के आलोचकों पर 'होरेस', 'अरस्तू' 'बीदो' तथा 'मितर्नों' का प्रभाव था। सोलहवीं शताब्दी की आलोचना ने भावी पीढ़ी को प्रोत्साहित किया और सत्रहवीं शताब्दी में आलोचना में अधिक प्रौढ़ता आई। इस युग में फ्रांसीसी आलोचना के क्षेत्र में विविध साहित्य-सिद्धांतों का उदय हुआ और 'सत्याभास' तथा 'विश्वसनीयता' के अतिरिक्त 'युग संगति' की भावना को विचार-विमर्श का विषय बनाया गया। नव्यशास्त्रवादी युग में मैलहर्ब (1555-1628 ई.) प्रमुख विचारक माना जाता था। उसने आलोचना में बौद्धिकता का समावेश कर कल्पना तथा भावुकता का बहिष्कार किया तथा औचित्य, सुरुचि, उपयुक्त शब्द-चयन तथा शैली-संबंधी तत्त्वों पर विचार कर इनके स्वरूप का निर्धारण किया। 'रेग्नियर' तथा 'वागीलास' भी इस युग के प्रसिद्ध साहित्य-चिंतक थे। प्रथम ने व्यंग्य पर विचार कर समीक्षा में अलंकारशास्त्र तथा नीतिशास्त्र का समावेश किया तो दूसरे ने व्याकरणिक नियमों तथा शब्द-ज्ञान को आलोचना में स्थान दिया। इस युग में संकलनत्रय का सिद्धांत फ्रांसीसी आलोचकों के विवाद का विषय बना। एक वर्ग के विचारकों ने इसके महत्त्वपूर्ण का प्रतिपादन किया तो दूसरे वर्ग के लेखकों ने 'सत्याभास' के लिए इसे घातक सिद्ध करते हुए इसका बहिष्कार किया। लेखकों ने त्रासदी के सैद्धांतिक स्वरूप का विवेचन किया और 'कार्नेल' तथा 'मोलियर' के नाटकों का प्रमुख प्रयोजन दर्शकों की आनन्द प्रदान करना माना गया। सत्रहवीं शताब्दी का श्रेष्ठ आलोचक 'बुअलो' (1636-1711 ई.) माना जाता है। उसने 1674 ई. में 'काव्यकला' नामक सुप्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की और लोंजाइनस के 'काव्य में उदात्ततत्त्व' का अनुवाद भी किया। उसकी महत्ता साहित्य-विषयक प्राचीन मान्यताओं को युगानुरूप स्वरूप प्रदान करने में है।

18वीं शताब्दी में फ्रांसीसी आलोचना पुनः प्राचीनों और नवीनों के विवाद से प्रारंभ हुई। श्रीमती दासिए ने 1711 ई. में 'इलियट' का अनुवाद प्रकाशित किया और उसकी भूमिका में इस तथ्य पर प्रकाश डाला कि कोई भी अनुवाद मूल ग्रंथ के लय, गीत एवं सामंजस्य को उसी सफलता के साथ प्रस्तुत नहीं कर सकता। 'इलियट' के अन्य अनुवादक लामोते ने यह विचार व्यक्त किया कि हमें पुराने लोगों की उच्चता का आदर करते हुए उनसे या तो उनकी समानता करनी चाहिए

या उनसे बढ़ जाना चाहिए। इस युग के आलोचकों में वाल्तेयर, बुबास, दिदरो आदि मुख्य हैं।

वाल्तेयर–(1694-1778 ई.) वाल्तेयर साहित्यिक प्रतिभा तथा सर्जनात्मक शक्ति से सम्पन्न ऐसा चिंतक था, जिसने 18वीं शताब्दी के काव्य-चिंतन को प्रभावित किया था। वह नव्य शास्त्रवादी लेखक था, जिसने 18वीं शताब्दी के बुद्धिवाद का प्रतिवाद किया। उसने विकास के चक्रवादी सिद्धांत का समर्थन कर नवीनता का प्रतिपादन किया। उसकी रुचि अँग्रेजी साहित्य के अध्ययन से अधिक परिष्कृत हो चुकी थी। उसका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी था। वह परिवर्तन का पक्षधर, सर्वातिशायी सिद्धांतों का विरोधी और पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा दुरूहता का समर्थक था। उसने अभिरुचि की विश्वजनीनता का समर्थन किया और उसके मूल में सुंदर में असुंदर तथा असुंदर में सुंदर की गवेषणा को स्वीकार किया। वाल्तेयर ने गद्य और पद्य दोनों के लेखन में स्पष्टता को प्रमुख विशेषता के रूप में स्वीकार किया था।

दुबास–(1679-1742 ई.) दुबास फ्रांस का प्रसिद्ध आलोचक था, जिसने काव्य का प्रमुख उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति माना। वह देश, काल, जलवायु तथा परिस्थिति को काव्य-सृष्टि का सहायक और प्रेरक मानता है।

डेनिस दिदरो (1713-1784) इसकी आलोचना में न केवल नवीन सिद्धांतों को अपनाया गया है अपितु इसने स्वच्छंदतावादी युग की मान्यताओं का भी पूर्वाभास किया है। उसके अधिक निबंध 'ला फूलेज द ग्रिम' में प्रकाशित हुए थे उनका लेखन तद्युगीन साहित्य के सर्वेक्षण की दृष्टि से किया गया था। उसने विविध साहित्य-रूप और विषयों को अपनी आलोचना का विषय बनाया था, फलतः उसके विचारों में परस्पर विरोधी कथन भी समाविष्ट हुए हैं। इसी विरोधाभास के कारण उसकी आलोचना असंगत और उलझी हुई दीख पड़ती है। उसके अनुसार किसी कृति का मूल्य-निर्धारण इस प्रकार की रचनाओं के लिए निरूपित आलोचना-सिद्धांत के आधार पर न होकर लेखक की योजना तथा उसकी सौंदर्य-विषयक सामान्य विचारणा के आधार पर हो।

इसी युग में फ्रांस में 'लाग्लोब' तथा 'द कंजरवात्योर लितरेयर' नामक पत्रों का प्रकाशन हुआ और विक्टर ह्यूगो तथा साँबौव ने अपनी रचनाओं द्वारा दूषित सिद्धांतों का खण्ड न कर साहित्य-सर्जन को प्रोत्साहित किया। साँबौव (1804-1836 ई.) विश्व के महान आलोचकों में माना जाता है। उसने 'ला ग्लोब' में फ्रांसीसी तथा अन्य साहित्य पर समालोचनात्मक निबंधों की रचना की। इसकी

प्रसिद्ध कृतियों में 'पोरत्रेत-लितरेयर' तथा 'पोरत्रेत कौन्तमपोरेएर' हैं। उसने बताया कि किसी पुस्तक की समीक्षा करते समय पूर्वनिर्धारित सिद्धांतों के दृष्टिकोण की अपेक्षा उसमें निहित गुणों को महत्त्व देना चाहिए और उन्हीं के आधार पर उनका मूल्यांकन करना चाहिए। "साँबौव की यह विशेषता थी कि वे इस प्रकार की आलोचना के दुष्परिणामों से बचे रहे। इन्होंने न तो समालोचना के स्थान पर केवल जीवनी से ही संतोष किया और न अपनी दृष्टि बाह्य तत्त्वों तक ही सीमित रखी। इसके अतिरिक्त प्रचलित रूढ़ियों के स्थान पर इन्होंने नई रूढ़ियाँ स्थापित कीं। इन्होंने लेखक को वातावरण तथा परिस्थितियों का प्रतिरूप मान कर उसकी कृतियों का अध्ययन किया, साँबौव की साहित्यिक रुचि अति परिष्कृत थी जिसके कारण इनकी आलोचना में असहिष्णुता का पुट लेश मात्र भी नहीं मिलता है।" (पाश्चात्य निबंधकला, पृ. 228)

गौतिए–(1811-72 ई.) गौतिए ने 'ल ग्रोतेस्क' में अपने साहित्यिक निबंधों को संकलित किया है। वह 'कला कला है के लिए है' इस सिद्धांत का समर्थन करता है। उसकी आलोचना की दो विशिष्टताएँ हैं–तीव्र सौंदर्यानुभूति तथा समृद्ध और आलंकारिक शैली। अपनी सौंदर्यात्मक वृत्ति के कारण ही उसने आलोच्य कृतियों में दोषान्वेषण नहीं किया है। उसके मतानुसार कलाकार राजनीति तथा नीति-विषयक प्रभावों से मुक्त होकर केवल सौंदर्य की ही अभिव्यक्ति करे। वह उन व्यक्तियों को कला का अधिकारी मानता है जो भावना-प्रवण हैं। वह सौंदर्य की भाँति कला को भी सामान्य व्यक्तियों की वस्तु नहीं मानता।

'जूल जेने' (1804-74 ई.) तथा 'पौल द साँ विक्तौर' (1827-1882 ई.) उस युग के अल्प प्रसिद्ध आलोचकों में थे। प्रथम ने नाट्यकला संबंधी आलोचनाएँ लिखी तो द्वितीय ने 'ओम द दियो' नामक ग्रंथ में अपने साहित्यिक मतों का निरूपण किया। इसी युग में तेन ने 'अँगरेजी साहित्य का इतिहास' लिखा जिसमें कलाकार और उसकी प्रकृति का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

विलेमेन–(1790-1870 ई.) यह शास्त्रीय आलोचना का प्रमुख आलोचक था इसने बताया कि सामाजिक और साहित्यिक इतिहास में गहरा संबंध होता है। इसके अनुसार आलोचना का उद्देश्य साहित्य का विश्लेषण करना है जो लेखक पर पड़े हुए सामाजिक वातावरण के प्रभाव का उद्घाटन करती है। उसके समीक्षा-संबंधी तीन ग्रंथ हैं–'तैब्लो दिला लितरेयर', 'ओ मोएं ए तैब्लो दिला लितरेयर', तथा 'ओ ततिएं सीएकिल'। 'निसा' नामक लेखक स्वच्छंदतावाद का

कट्टर विरोधी तथा लैटिन लेखकों का प्रशंसक था। यू. जी. गेरूजे ने 'फ्रांसीसी साहित्य का इतिहास' लिखा जो अपने में एक महत्त्वपूर्ण रचना है।

फ्रांस में 1820 से लेकर 1850 ई. तक स्वच्छंदतावादी आलोचना का प्रणयन हुआ। इस युग में भावप्रवणता और अनुभूति की तीव्रता को काव्य का प्रधान तत्त्व मानकर उसकी मीमांसा हुई। स्वच्छंदतावाद में हृदय की अभिलाषा, भावुकता तथा क्रांतिकारी विचारों का भी समावेश हुआ। इस युग के आलोचकों में जोबर्ट, स्टेंढल, ह्यूगो आदि मुख्य हैं। 1850 से 1875 ई. के मध्य आलोचना में यथार्थवाद का आधिपत्य रहा और स्वच्छंदतावाद के विरुद्ध बौद्धिक प्रतिक्रिया प्रारंभ हुई। नवीन भौतिक विज्ञान तथा आगस्टक कान्ट की दार्शनिक मान्यताओं ने भी इस आंदोलन को अनुप्राणित किया।

सैन्तव्यव–(1804-1869 ई.) फ्रांस का युग प्रवर्तक आलोचक माना जाता है। उसकी आलोचना के विकास के तीन चरण हैं–उग्र स्वच्छंदतावाद (1824-1831), प्रभाववाद (1831-1848) तथा निर्णयात्मक। 1849-1869। उसका महान् ग्रंथ 'पोट्रेट्स' या 'व्यक्तिचित्र' है जो नौ भागों में प्रकाशित हुआ है। उसने आलोचना को वैज्ञानिक युग की निष्पत्तियों से अनुप्राणित कराया। वह मानवतावादी की अपेक्षा प्रकृतिवादी के रूप में अधिक विख्यात रहा है।

फ्लावेयर (1821-1880 ई.) — यह प्रसिद्ध यथार्थवादी उपन्यासकार है, जिसने 'मादाम बाबरी' नामक उपन्यास की रचना की है। फ्लावेयर के अनुसार साहित्य जीवन के घात-प्रतिपाघ का प्रतिफलन न होकर जीवन के प्रति ऐकांतिक प्रतिशोध है। वह कला को सर्वतंत्र स्वतंत्र मानता है और सौंदर्य का अपरिमेय ढाँचा किसी भी पीठिका पर खड़ा करने की घोषणा करता है।

जोला (1840-1902)–प्रकृतिवादी आंदोलन का चरमोत्कर्ष जोला के उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है। उसने उपन्यासों में जीवन का प्रकृत रूप चित्रित कर साहित्य में प्रकृतिवाद का समारम्भ किया। उसके कला-विषयक विचारों का आकलन 'लारोमान एक्सपेरीमेन्ताल' तथा 'रोमानसिय नैच्यूरलिस्ट' नामक निबंधों में प्राप्त होता है। उसने स्वच्छंदतावादी विचारधारा का विरोध कर 'प्रकृतिवाद' की स्थापना की है।

प्रतीकवादी सिद्धांत–प्रतीकवादी विचारधारा का प्रभाव सर्वप्रथम काव्य क्षेत्र में दृष्टिगोचर हुआ, तत्पश्चात उपन्यास कला भी इससे प्रभावित हुई। प्रकृतवाद

और यथार्थवाद में स्वच्छंदतावाद की प्रतिक्रिया दिखाई पड़ी थी, किंतु प्रतीकवाद में पुनः स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हुईं। "इसमें भावुकता का उसी सीमा तक प्रयोग हुआ जिस सीमा तक जनता उसे ग्रहण करना चाहती थी। पूर्व स्वच्छंदतावादी आंदोलन के प्रभाव उत्पन्न करने वाले स्वरूपों को उसी रूप में प्रश्रय नहीं मिला। इस काल के सूक्ष्म और अस्पष्ट परिवेशों से अनुभूति को नई दिशा मिली। व्यंजना (Suggestion) के प्रयोगों से आनन्द की अनन्त संभावनाओं का प्लावन-द्वार ही मुक्त हो उठा। ... प्रतीकवाद में नये मूल्यों की अभिलाषा तरंगापित हो उठी, जो कुछ हद तक अस्पष्ट होने के बावजूद प्रज्ञा एवं ध्वनि के आकर्षक सामंजस्य को प्रस्तुत कर सकी। ... इस प्रकार इस आंदोलन में स्वच्छंदतावाद की आशाओं को अधिक पूर्ण अभिव्यक्ति मिली।" (आलोचना के बदलते मान और हिंदी साहित्य, पृ. 235) (दे. Symbolism प्रतीक वाद) प्रतीकवादी चिंताधारा की अभिव्यक्ति जिन फेंच कवियों में हुई उनमें बोदलेयर, मलार्मे, वर्लेन, पॉलबालेरी तथा रेंवो मुख्य हैं।

चार्ल्स बोद्लेयर (1821-1867 ई.) — यह 'कला कला के लिए है' नामक सिद्धांत का समर्थक है तथा कल्पना को विशेष महत्त्व प्रदान कर उसे अनुभूति के नवीन पथों का अन्वेषक मानता है। इसके अनुसार कवि काव्य के माध्य से दुःख को सुख में परिवर्तित करने में सक्षम हो सकता है और इस प्रक्रिया में उसकी मानसिक कल्पना मूर्त्त हो जाती है। पॉल वार्लेन ने प्रतीकवादी कविताओं में सांगीतिक तत्त्व के समावेश पर बल दिया और शब्दों के चयन में संगीतात्मकता को प्रश्रय दिया। स्टीफेन मलार्भे को प्रतीकवादियों का काव्यगुरु कहा जाता है। वे कविता को मन की शक्तियों को नियोजित करने का साधन मानते थे और उसे शिल्पगत दार्शनिक प्रयास स्वीकार करते थे। उनके अनुसार "कविता मानवीय भाषा के आदिम और अनिवार्य लय के माध्यम से अस्तित्व के आयामों के रहस्यमय स्वरूप का प्रकाशन है, कविता हमें उद्बुद्ध करती है तथा हमें आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करती है।" (आधुनिक पाचात्य काव्य और समीक्षा) के उपादान, पृ. 83)

अतियथार्थवाद आधुनिक युग का एक प्रसिद्ध आंदोलन है, जिसने काव्य और कला को प्रभावित किया है। इसका उदय स्वच्छंदतावाद की पतनोन्मुखी शाखा के रूप में हुआ है। स्वच्छंदतावाद की शैली आदर्शात्मक होती है और अतियथार्थवाद की मनोवैज्ञानिक। (दे. Surrealism अति यथार्थवाद) इसकी

जन्मभूमि फ्रांस है; किंतु इसका प्रभाव अन्य देशों में भी पड़ा। यह काव्य-चिंतन अंतश्चेतना के मनोमय व्यापार पर आधृत था, जिसमें फ्रायड और उसके अनुयायियों के निष्कर्ष समाहत है।

दादाइज्म या दादावाद इस सिद्धांत का जनक है। बीसवीं शती के प्रारंभ से ही फ्रांसीसी आलोचना पर अनेक चितकों एवं चिंतन धाराओं का प्रभाव पड़ा। प्रथम महायुद्ध के पश्चात नवीन समस्याएँ उत्पन्न हुईं और परंपरागत विचारों के प्रति असंतोष और विद्रोह का भाव व्यक्त हुआ। फ्रायड, वर्गसां तथा इब्सन के विचारों से आलोचना प्रभावित हुई और साहित्य में नई प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं। 1914 ई. के पश्चात प्रतीकवाद का ह्रास होने पर प्रकृतिवाद का पुनर्जन्म हुआ और 1919 ई. में 'दादाइज्म' का काव्यक्षेत्र में प्रवेश हुआ, जिसका प्रवर्तक त्रिस्तों तिजारा था। आन्द्रेब्रतों ने इसका विरोध कर अतियथार्थवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया।

आधुनिक युग के आलोचकों में आन्द्रेजींद का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जाँ कोकतो प्रसिद्ध कवि, उपन्यासकार, नाटककार तथा आलोचक हैं। 1940 ई. में दर्शन के क्षेत्र में अस्तित्ववादी विचारधारा प्रवाहित हुई और इसका प्रभाव साहित्यालोचन पर भी पड़ा। यह नियतिवाद और आदर्शवाद की प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न हुआ है। फ्रांस में इस सिद्धांत का प्रवर्त्तक ज्यांपॉल सार्म है जिसने अपने उपन्यासों के माध्यम से इस मत का प्रसार किया हैं। उसने अपनी अस्तित्ववादी विचारणा को कट्टर नास्तिकता तथा मानववाद की संज्ञा प्रदान की है। (दे. Existentialism, अस्तित्ववाद) इस विचारधारा के अन्य समर्थकों में अलबेख कामू है (जन्म 1913 ई. 1960 ई.) इसके विचार का प्रभाव फ्रांस के नवयुवकों पर अधिक है। यह सार्त्र का सहयोगी था; किंतु उसके साम्यवादी दल से संबद्ध होने के कारण यह अलग हो गया। सार्त्र का 'वाटइज लिटरेचर' एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें उसके साहित्य-विषयक विचार गुंफित हैं। अस्तित्ववादी विचारधारा ने फ्रांस के आलोचना-साहित्य को समृद्ध किया है, जिसका प्रभाव विश्वव्यापी है।

Frued-फ्रायड

दे. Fruedism

Fruedism and Psychoanalysis (फ्रायडिज्म एण्ड साइको एनालसिस) फ्रायडवाद और मनोविश्लेषण

मनोविश्लेषण और फ्रायडवाद आधुनिक मनोविज्ञान का युगान्तकारी सिद्धांत है, जिसने साहित्य के सभी रूपों को अनुप्राणित किया है। साहित्यालोचन भी

मनोविश्लेषण से अत्यधिक प्रभावित हुआ है और पाश्चात्य आलोचकों का एक वर्ग इसे साहित्य-सिद्धांत के लिए अत्यंत उपयोगी स्वीकार करता है। सिग्मण्ड फ्रायड आधुनिक मनोविज्ञान का मौलिक चिंतक और मनोविश्लेषण का आविष्कारक है। उसने अचेतन मन को अपने ध्ययन का विषय बना कर महत्त्वपूर्ण और युगप्रवर्तक निष्कर्ष उपस्थापित किया है। उसका जन्म 6 मई 1856 ई. में मोराबिया (आस्ट्रिया) के एक नगर में हुआ था। वह यहूदी परिवार का था, फलतः अन्य यूरोपीय यहूदी परिवारों की भाँति उसे जीवन में विषमताओं और संघर्षों का सामना करना पड़ा। उसने विएना में चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया और शरीर विज्ञान के विशेषज्ञ प्रो. अर्नेस्ट ब्रुक, जो वहीं अध्यापक थे, से इस विषय की शिक्षा प्राप्त की। उसने वहाँ सम्मोहन 'हिप्नॉटिज्म' का प्रशिक्षण प्राप्त किया और वहाँ से लौटने पर रोगियों के ऊपर इसका प्रयोग प्रारंभ किया; किंतु उसे इसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई; फलतः उसने अपनी स्वतंत्र पद्धति विकसित की जो मनोविश्लेषण के नाम से विख्यात हुई। 1938 ई. में जब हिटलर ने विएना पर अधिकार कर लिया तो अन्य यहूदियों की भाँति उसे भी वहाँ से भागना पड़ा, अतः उसने लंदन में शरण ली और वहीं 1929 ई. में उसकी मृत्यु हुई। फ्रायड के अन्य दो सहयोगियों में युंग और एडलर थे जो आगे चल कर उससे अलग हो गए, पर मनोविश्लेषण शास्त्र के उन्नयन में उनका भी महत्त्वपूर्ण योग है। उसने रोगियों के अचेतन मन की प्रक्रियाओं पर विचार कर यह निष्कर्ष उपस्थित किया कि स्वप्न, भूलें, हास-परिहास, कला और धर्म मनुष्य की अवदमित आकांक्षाओं के ही परिष्कृत रूप हैं। इसकी स्थापना यह है कि मनुष्य की प्रत्येक मानसिक घटना का बाह्य घटना की भाँति कार्य-कारण-संबंध होता है और प्रत्येक मानसिक व्यापार कार्य-कारण-भाव से प्रेरित होता है, जिसके कारण की खोज की जा सकती है। इस प्रकार कार्य-कारण का नियत संबंध फ्रायडीय विचारों का मूलाधार सिद्ध होता है। उसके मनोविश्लेषण का दूसरा आधार अचेतन मन की परिकल्पना है, जिसके अनुसार मन के तीन स्तर हैं—चेतन (कॉन्शस), अचेतन (अनकॉन्शस) एवं उपचेतन (सबकॉन्शन)। मनुष्य के चेतन मन में सम्मान, नियम-पालन तथा सन्नियमन की प्रवृत्ति का बाहुल्य होता है और अचेतन मन चेतन मन से सर्वथा भिन्न है जिसके विषय सर्वथा भिन्न और चेतन के विषय के विरुद्ध होते हैं। उसमें नियम-हीनता, वैविध्य और असामाजित तत्त्वों की बहुलता रहती है। उदाहरण के लिए यदि अचेतन अगाध जल राशि है तो चेतन उसके ऊपर उठनेवाली ऊर्मिमाला । (दे. मनोविश्लेषण और साहित्यालोचन, पुरोवाक्, ड.) व्यक्ति सचेत होकर जो कुछ

करता है, उसका संबंध चेतन से है और जिन मानसिक क्रियाओं का बोध नहीं होता, उनका संबंध अचेतन से होता है और मन का अधिकतर भाग अचेतन है। अचेतन मन की प्रक्रिया का बोध व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से नहीं होता। "फिर भी अचेतन मन इतना गत्यात्मक है कि इसके द्वारा व्यक्ति के कार्य तथा व्यवहार प्रभावित रहते हैं और उसे यह ज्ञात नहीं होता कि उसके कौन-से कार्य अचेतन मन से प्रभावित हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई व्यक्ति किसी का नाम भूल जाता है तो उसका यह भूलना अचेतन मन की क्रिया का परिचायक है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति का भूलना भी उद्देश्यपूर्ण होता है। जो बातें हमारे लिए दुखदायी हैं और जिनसे हमारे अहम् को कष्ट मिलता है उनका हम दमन करते हैं और उन्हें अचेतन मन में स्थान देते हैं। फिर भी ये अनुभव अज्ञात रूप से हमारे व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इसीलिए मनोविश्लेषण के सिद्धांत के अनुसार यह कहा जाता है कि व्यक्ति के अधिकतर कार्य तथा व्यवहार अचेतन मन से प्रेरित होते हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्ति का अभिप्रेरण पर्याप्त मात्रा में अचेतन से संबंधित होता है।" (दे. मनोविज्ञान की ऐतिहासिक रूपरेखा, पृ.436)

चेतन की भाँति अचेतन भी गतिशील होता है। सामाजिक वर्जनाओं के कारण जब मनुष्य की वासनाएँ या आकांक्षाएँ अपूर्ण होती हैं तो वे दमित होकर अचेतन मन में प्रवेश कर जाती हैं। अचेतन मन की सबसे प्रबल विशेषता यौन भावना या सेक्स इंस्टिन्क्ट की है। अर्द्धचेतन मन माध्यवर्तिनी अवस्था को कहते हैं और चेतन मन की अवदमित इच्छाएँ अर्द्धचेतन से ही होकर अचेतन में पहुँचती हैं। अवचेतन मन में पड़ी हुई दमित इच्छाएँ बार-बार चेतन मन में आने के लिए उद्यत होती रहती हैं, पर सामाजिक प्रतिबंधों और नैतिक मान्यताओं की रोक लगने के कारण वे ऐसा करने में अक्षम हो जाती हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रतिबंधक या प्रतिहारी (सेंसर) अचेतन मन की भावनाओं को प्रवेश करने से रोकने में अक्षम हो जाता है और दमित इच्छाएँ चेतन मन में प्रवेश कर जाती हैं तो उन्हें परिष्कृत रूप में ग्रहण करने का प्रयत्न करता है। अचेतन मन की ये भावनाएँ जब चेतन मन में पहुँचती हैं तो उनके परिष्कृत स्वरूप को उदात्तीकरण या सब्लिमेशन कहा जाता है। प्रतिबंधक के द्वारा जब दमित इच्छाएँ अभिव्यक्ति का मार्ग नहीं प्राप्त करती तो स्थिर होकर मनोग्रंथि का रूप ग्रहण कर लेती हैं यही मनोग्रंथि मानसिक रोगों का मूल कारण बन जाती है। जाग्रतावस्था में मनुष्य की अचेतन वृत्तियाँ चेतन स्तर पर आने से रुक जाती हैं, पर सुषुप्तावस्था में ये अपने को स्वप्न के माध्यम से छद्मवेश में व्यक्त करती हैं। ऐसी स्थिति में उन्माद, अधीरता तथा

मनस्ताप सदृश अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। फ्रायड के अनुसार यदि दमित इच्छाओं की परितुष्टि के अवसर प्राप्त हो जाएँ और मनोग्रंथियों के कारणों को स्पष्ट कर दिया जाय तो आधुनिक युग की अनेक स्नायु दौर्बल्य संबधी बीमारियाँ दूर हो जा सकती हैं। मन के अचेतन तथा चेतन स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए दो भाग वाले ऐसे मकान को उदाहरण स्वरूप रखा गया है जिसके ऊपर और नीचे दो अंश हैं। "ऊपर के मकान में रहनेवाले लोग सभ्य हैं और सामाजिक नियमों का पालन करते हैं। मकान के निचले हिस्से के रहने वाले लोग असभ्य हैं तथा उनका जीवन असामाजिक है। कभी-कभी निचले भाग में रहनेवाले असभ्य लोग मकान के ऊपर के भाग में जाने की कोशिश करते हैं। उनका प्रयास इसीलिए ऐसा होता है कि ऊपर के लोगों के साथ रहने पर उन्हें सभ्य समझा जाएगा और उनकी दमित इच्छाओं की पूर्ति होगी। लेकिन ऊपर के भाग में रहने वाले लोग यह बात नापसंद करते हैं और इसी लिए उनलोगों ने एक चौकीदार की नियुक्ति कर दी है जो नीचे वाले लोगों को ऊपर वाले भाग में जाने से रोकता है। यहाँ मूल रूप से यह बताया गया है कि मकान के नीचे वाले भाग से तात्पर्य अचेतन मन से है और ऊपर के भाग से तात्पर्य चेतन मन से है। अचेतन मन की इच्छाएँ जब चेतन मन में आने की कोशिश करती हैं तब उनको रोकने के लिए जिस प्रक्रिया का उल्लेख फ्रायड ने किया है उसका नाम 'सेंसर' है। सेंसर वह प्रक्रिया है जो अवांछनीय तथा असामाजिक इच्छाओं को अचेतन मन में आने से रोकती है। ये अवांछनीय तथा असामाजिक इच्छाएँ तभी चेतन मन में आ पाती हैं जबकि इनका परिशोध हो जाता है। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि सेंसर की मानसिक प्रक्रिया दमित इच्छाओं को चेतन मन में बिलकुल नहीं आने देती और न किसी रूप से उन दमित इच्छाओं का परिशोध ही हो पाता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति मानसिक रोगी बन जाता है और उसके मन में ग्रंथि पड़ जाती है।" (मनोविज्ञान की ऐतिहासिकं रूपरेखा, पृ.437)

फ्रायड ने अन्य प्रकार से भी मन का विभाजन तीन भागों में किया है—इदम् (इड), अहं (इगो) और अत्यहम् (सुपर-इगो)। इदम् सहज-प्रवृत्तियों का भण्डार और लिविडो या कामशक्ति का कोश है। यह अचेतन होता है। इसमें मनुष्य की वंशानुक्रम से प्राप्त या आनुवंशिक विशिष्टताएँ सन्निहित होती हैं। ये प्रवृत्तियाँ मुख्यत: दो प्रकार की हैं-जीवन प्रवृत्ति और मृत्यु प्रवृत्ति। इड में किसी प्रकार की व्यवस्था या संघटन का अभाव होता है और यह यथार्थ से पूर्णत: उदासीन होकर केवल सुख की इच्छा का परिचालन करता है। अहम् इदम् का परिष्कृत रूप है

और बाह्य संसार तथा इदम् के बीच मध्यस्थ का कार्य सम्पादित करता है। यह संसार की परिस्थितियों के अनुरूप निणय करता है कि उसकी सहज प्रवृत्तिंयों की परितुष्टि कब और किस प्रकार होगी। इसका कार्य सहज प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करना भी है। जिन सहज प्रवृत्तियों की संतुष्टि नहीं होती उनका यह दमन करता है और दमित वासनाएँ इड का अंश बन जाती हैं। अत्यहम् विवेक को कहते हैं जो अचेतन होता है। इसका कार्य है-मनुष्य के व्यापारों, विचारों का समर्थन, खण्डन, मण्डन तथा निन्दा या प्रशंसा करना। फ्रायड के अनुसार लिबिडो या कामशक्ति मानवीय व्यक्तित्व को परिचालित करनेवाली मूलशक्ति है, जो परम अनैतिक, सशक्त और काममूलक होती है। यह बाह्य जीवन में अपनी अभिव्यक्ति के लिए सदा प्रयत्नशील और उत्सुक रहती है। इसका उद्देश्य स्वार्थमूलक होता है; यह समाज की नैतिक धारणाओं के साथ सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाती। मनुष्य का चेतन इसी की अभिव्यक्ति पर नियंत्रण रखता है। फ्रायड ने लिविडो का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थ में किया है, जिसकी परिधि में हमारे सारे आनन्द, उत्साहपूर्ण कार्य, काम-व्यापार, प्रेम, घृणा वाली मानसिक भावनाएँ समाहित हो जाती हैं।

फ्रायड का स्वप्न-सिद्धांत अनेक दृष्टियों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुसार स्वप्न मनुष्य की दमित वासनाओं की पूर्ति का साधन है, जिसके अध्ययन से मनुष्य के अचेतन स्वरूप को समझने में सहायता प्राप्त होती है। स्वप्नों की भाषा सार्थक होती है और वे अनर्गल से ज्ञात होते हुए भी वास्तव में सार्थक होते हैं। सुषुप्तावस्था में प्रतिहारी या सेंसर सक्रिय नहीं रहता, पर जाग्रतावस्था में अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होता है। अतः, प्रतिबंध के शिथिल पड़ने पर मनुष्य की दमित भावनाएँ या वासनाएँ स्वप्न के द्वारा अपनी तृप्ति का अवसर खोजती हैं। फ्रायड ने स्वप्न के दो प्रकारों से मान्यता प्रदान की है-दृश्य और प्रच्छन्न। प्रथम दृश्य इस प्रकार का होता है, जिसे हम दूसरों को सूना सकते हैं और दूसरे में उसका रूप दिखावटी होता है; वह इस दृश्य की पृष्ठभूमि में प्रच्छन्न और अप्रत्यक्ष रूप से स्थित रहता है। इसके रूप को पहचानना ही मनोविश्लेषकों का प्रधान धर्म होता है। मनुष्य में कामशक्ति शैशवावस्था से ही विद्यमान रहती है। बच्चे की कामप्रवृत्ति की तुष्टि मल-मूत्र का त्याग करने और माता के स्तन-पान करने में होती है।

एडलर का व्यष्टि मनोविज्ञान

एलफ्रेड एडलर का जन्म 17 फरवरी 1870 ई. में वियना के निकटवर्ती पेंजिंग नामक स्थान में हुआ था और उसकी मृत्यु 1937 ई. में हुई। फ्रायड के समान वह भी यहूदी परिवार का था। उसने चिकित्सा-विज्ञान का अध्ययन करने के पश्चात फ्रायड के सहयोगी के रूप में कार्यारम्भ किया; किंतु सैद्धांतिक मतभेद के कारण वह 1911 ई. में उससे पृथक हो गया। उसने अपने स्वतंत्र सम्प्रदाय की स्थापना की और 1935 ई. में संयुक्त राज्य अमेरिका में चला गया, जहाँ एबर्डीन में उसकी मृत्यु 28 मई 1937 को हुई।

उसने अपने अध्ययन के आधार पर सिद्ध किया कि प्रत्येक व्यक्ति में अधिकार-भावना उसके जीवन की केंद्रीय प्रेरणा शक्ति के रूप में होती है। वह फ्रायडीय मनोविश्लेषण का विरोधी था और लिबिडो की जगह अहंभाव या अधिकार-भावना को महत्त्व प्रदान करता था। उसके अनुसार प्रारंभ से ही व्यक्ति में अधिकार या अहंस्थापन की भावना बलवती होती है, फलतः उसे वातावरण के साथ संघर्ष करना पड़ता है और यह संघर्ष समाज, कार्य या व्यवसाय एवं प्रेम के क्षेत्र में मुख्यतः परिलक्षित होता है। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने पर उसके मन में उत्कृष्टता की मनोग्रंथि या उच्चभाव (सुपीरिआरिटी काम्पलेक्स) की उत्पत्ति होती है और असफल होने पर उसके मन में हीन-भाव या हीनता की मनोग्रंथि (इनफीरिआरिटी काम्पलेक्स) का पादुर्भाव होता है। मनुष्य जीवन-धारण से लेकर अपने प्रत्येक कार्य पर अन्यों पर आश्रित रहता है और उसे पग-पग पर अपनी हीनता की प्रतीति होती है। वह आंगिक हीनता, अनुचित व्यवहार तथा विषम परिस्थिति के कारण असहायावस्था की भावना को और भी अधिक तीव्र रूप में लक्षित करता है फलतः उसकी प्रतिक्रिया तीन प्रकार से व्यक्त हो सकती है—सफल क्षतिपूर्ति, पराजित होने के कारण कर्म से ही विमुख होने या आत्म केंद्रित होने तथा समझौता या अतिक्षतिपूर्ति के रूप में। एडलर मानता है कि हीनभाव या हीनता-ग्रंथ को बिना दूर किये जीवन में मनुष्य सफल नहीं हो सकता, अतः उसको दूर करने के लिए उसे वास्तविक स्थिति का परिज्ञान कर गलत जीवन-पद्धति का परित्याग करना पड़ता है। चिकित्सक इस कार्य में सहायक होकर हीनता-ग्रंथि के कारणों की खोज करता है और रोगी को उससे अवगत करा कर उसके मन में आशा का संचार करता है तथा उसके मनस्ताप को दूर करता है। रोगी की हीनता-ग्रंथि उन्मूलित हो जाती है और वह नए उत्साह से युक्त हो जाता है।

एडलर फ्रायड के विपरीत पूरे व्यक्तित्व की विकृति को मनस्ताप मानता है, किंतु फ्रायड के मतानुसार मनस्ताप केवल मन की विकृति का नाम है। फ्रायड यौन-भावना को जीवन की मूलशक्ति या मूल प्रेरणा मानता है, जबकि एडलर के अनुसार यह अधिकार भावना है।

युंग का विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान

कार्ल जी. युंग फ्रायड का सहयोगी और शिष्य था। इसका समय 1875 से 1961 ई. तक है। युंग का जन्म स्विटजरलैण्ड के एक पादरी के यहाँ 26 जुलाई 1975 ई. को हुआ था। उसने ज्यूरिक के एक मानसिक अस्पताल में नौ वर्षों तक मानसिक चिकित्सक का काम किया। फ्रायड के साथ उसका सम्पर्क 1907 ई. में हुआ; किंतु 1913 ई. में वह फ्रायड से पृथक् हो गया; क्योंकि उसके साथ उसका सैद्धांतिक मतभेद था। फ्रायड से अलग होकर उसने स्वतंत्र रूप से विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान (Analytical Psychology) के आधार पर ज्यूरिक में मनश्चिकित्सा-संबंधी प्रशिक्षण प्रारंभ किया, जसमें प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए अनेक देशों के मनश्चिकित्सक आते थे। उसके सिद्धांत प्रसार लंदन, अमेरिका तथा सेन्सफ्रांसिसको में हुआ और वहाँ विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान-संबंधी प्रशिक्षण की व्यवस्था हुई। युंग फ्रायड की भाँति चेतन की तुलना में अचेतन के क्षेत्र को व्यापक और महत्त्वूपर्ण मानता है, पर अचेतन के स्वरूप-निर्णय के प्रश्न पर दोनों में मतभेद है। उसके अनुसार, अचेतन में मनुष्य की केवल दमित इच्छाएँ ही नहीं रहतीं बल्कि विकास के क्रम में उपेक्षित मानसिक जीवन के पक्ष भी संचित रहते हैं। वे वैयक्तिक अनुभव और विचार जो क्रियाशील नहीं होते और काम में आने से वंचित हो जाते हैं, उनका भी संचय अचेतन में होता है। अचेतन का अस्तित्व चेतना के पूर्व होता है और उसी के आधार पर चेतना कार्य सम्पन्न करती है। अचेतन चित्त के अभाव में चेतना का स्थान संभव नहीं है। युंग का कथन है कि "प्रत्येक व्यक्ति के अचेतन चित्त में उन स्मृतियों के मूल रूप होते हैं जो उसके समाज तथा संस्कृति के आवश्यक अंग हैं। यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक व्यक्ति में पाये जानेवाले मूल रूपों का संबंध सामूहिक अचेतन से है। सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्ति मूल रूप के माध्यम से होती है। इसीलिए युंग ने लिखा है कि मूल रूपों से संबंधित विषयों का वर्णन करना असंभव है, क्योंकि उनकी चेतना मनुष्य को नहीं होती। केवल उनके आधार पर कुछ प्रतीकात्मक अर्थ ग्रहण किये जा सकते हैं। इस प्रकार मूल रूपों की व्याख्या करते समय युंग कुछ-न-कुछ

रहस्यात्मक हो जाते हैं। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि मूल रूपों से युंग का तात्पर्य किसी जाति की उन स्मृतियों से है जो उस जाति की परंपरा तथा संस्कृति के अभिन्न अंग है।" (मनोविज्ञान की ऐतिहासिक रूप रेखा, पृ.453-454) युंग के अभिमतानुसार व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं—अंतर्मुखी और बहिर्मुखी। अंतर्मुखी व्यक्तित्व अंतर्जगत् के संघर्षों से संबद्ध होने के कारण मन में उठने वाले विचारों एवं अनुभूतियों को महत्त्व देता है; किंतु बहिर्मुखी व्यक्ति के जीवन में भौतिक और बाह्य परिवेश का महत्त्व दिया जाता है और वह जीवन के बाह्य उपादानों को प्रश्रय देकर उससे उपलब्ध मूल्यों की ओर अपने को केंद्रस्थ करता है। अंतर्मुखी व्यक्ति विचारों में तल्लीन रह कर सामाजिकता से दूर होकर कल्पना को अधिक जागृत करता है। वह नीरस-सा रहता है और भावावेश में कभी नहीं आता। बहिर्मुखी व्यक्ति सामाजिक प्रवृत्ति वाला होता है; उसकी अभिरुचि सामाजिक कार्यों के प्रति अधिक होती है और उसमें कल्पना की न्यूनता रहती है; वह यदाकदा उत्साह-रहित हो जाता है। मन की चार शक्तियाँ होती हैं-विचार, भाव, अंतर्दर्शन तथा संवेदन और दोनों के प्रकारों में विभक्त होकर ये आठ प्रकार की होती हैं। चेतन स्तर बहिर्मुखी का परिचायक है और अचेतन स्तर अंतर्मुखी का। युंग के अनुसार चेतन स्तर पर व्यक्ति का जो स्वरूप दृष्टिगत नहीं होता वह अचेतन से संबद्ध होता है। उसने लिबिडो के स्वरूप का विवेचन करते हुए यौन प्रेरणा के स्थान पर जिजीविषा या जीने की इच्छा को महत्त्व दिया है और बतलाया है कि कामेच्छा का संघर्ष जिजीविषा के संघर्ष की अपेक्षा नगण्य होता है। युंग के अनुसार सभी स्वप्न वर्तमान तथा भविष्य के प्रतीकात्मक मार्गदर्शक होते हैं।

साहित्यालोचन और मनोविश्लेषण

मनोविश्लेषण ने साहित्य और साहित्यालोचन को अधिक प्रभावित किया है जिससे इसके आधार पर स्वतंत्र काव्य-चिंतन की स्थापना हुई है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कला-सृजन की प्रक्रिया मूलतः मनोवैज्ञानिक हैं; क्योंकि कला और साहित्य अवचेतन या अचेतन मन की उपज हैं। सृजन-प्रक्रिया चेतन मन का व्यापार न होकर अचेतन मन का व्यापार है, अतः कला सृजन को भी अचेतन की एक विशेष क्रिया के रूप में देखना या परखना चाहिए। फ्रायड ने कवि, लेखक या कलाकार को मानसिक रोगी माना है; क्योंकि उसकी प्रवृत्ति अंतर्मुखी होती है। उसने कवि का संबंध दिवास्वप्न के साथ स्थापित किया है। वह लिबिडो को कला का मूल उत्स स्वीकार करता है और धर्म, अर्थ, साहित्य तथा संस्कृति के

मूल में लिबिडो की प्रेरणा को अवस्थित मानता है। कला और संस्कृति का निर्माण व्यक्ति की अवदमित तथा कुंठित असामाजिक वृत्तियों के परिशोधन-स्वरूप होता है। कला कुण्ठाओं का उदात्तीकरण मात्र है और मनुष्य की समस्त सर्जनात्मक क्रियाएँ क्षतिपूर्ति मात्र हैं और कामवृत्ति ही साहित्य की मूल प्रेरणा है। कला-सृजन के द्वारा मनुष्य की दमित इच्छाओं और वासनाओं की अभिव्यक्ति से उसका मन हल्का हो जाता है और यही इन इच्छाओं की अभिव्यक्ति का सुंदर साधन भी है। काम प्रवृत्ति के उन्नयन में ही संस्कृति का वास्तविक विकास होता है। यदि इन प्रवृत्तियों की अस्वस्थ अभिव्यक्ति हो तो इससे मनुष्य ध्वंस और नाश की ओर परिचालित होता है। स्वस्थ अभिव्यक्ति का साहित्य चिरस्थायी और मानव कल्याण का हेतु होता है; अस्वस्थ दमन उसे ध्वंसात्मक व्यापारों की ओर प्रवृत्त करता है। फ्रायड यह मानता है कि दिवा स्वप्न एवं मनोदृष्टि के विचार से कलाकार तथा सामान्य व्यक्ति समान होते हैं, उनमें किसी प्रकार का अंतर नहीं रहता। कला में मनुष्य के यौन तथा आदिम आवेगों का उदात्तीकरण होता है। "सभ्यता का निर्माण, आदिम आवेगों की संतुष्टि के त्याग द्वारा, जीवन के दबाव में हुआ है। .. प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय का अंग बनकर, सामूहिक लाभ के लिए, अपने सहज आनन्दों का बार-बार त्याग करता है। इस प्रकार के उपयोग में आनेवाली सहज-प्रवृत्तियों में यौन प्रवृत्तियों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस भाँति उनका उदात्तीकरण होता है, अर्थात यौन उद्देश्यों से हटकर उनकी ऊर्जा दूसरे उद्देश्यों की ओर मुड़ जाती है, जो यौन न रहकर सामाजिक दृष्टि से मूल्यवान बन जाती है।" कलाकार अपने दिवा स्वप्नों को, जो लज्जाजनक और असामाजिक होते हैं, अभिव्यक्त कह गौरवमय बना देता है जिसका अन्य लोग बड़े चाव के साथ आनन्द लेते हैं। फ्रायड का कथन है कि "कलाकार यह कैसे सम्पन्न करता है यह उसका अंतर्तम रहस्य है। काव्य-कला का मूल सत्त्व उस विधि में सन्निहित है जिसके द्वारा हमारे विकर्षण-भाव पर विजय प्राप्त की जाती है। उसका संबंध निश्चय ही व्यक्ति और अन्यान्य के बीच में उठाए गए व्यवधानों से है। इस विधि में प्रयुक्त होनेवाली दो युक्तियों का हम अनुमान लगा सकते हैं। लेखक परिवर्तनों और छद्मवेशों के द्वारा दिवा-स्वप्न की अहंमूलक प्रवृत्ति को कोमल बना देता है और अपनी सृष्टियों को प्रस्तुत करते हुए वह विशुद्ध रूपगत अर्थात सौंदर्यगत आनन्द प्रदान करके हमें उत्कोच देता है। यह अतिरिक्त आनन्द जो मन के गहनतर स्रोतों से प्रवाहित होनेवाले अधिक गहरे आनन्द का द्वार खोलने के लिए हमें प्रदान किया जाता है। पारिभाषिक रूप में 'उत्तेजक अग्रदान'

(Incitement premium) या 'पूर्वानन्द' (Fore pleasure) कहलाता है। मेरा यह मत है कि कल्पनाशील लेखकों की कृतियों से प्राप्त होनेवाला समस्त सौंदर्य-जनित आनन्द इस पूर्वानन्द की ही जाति का होता है और साहित्य के वास्तविक आनन्द का उद्रेक मानसिक खिचाओं की उन्मुक्ति से होता है। जिस प्रक्रिया द्वारा यह सम्पन्न होता है वह मुख्यत: इसमें सन्निहित है कि लेखक एक ऐसी स्थिति में हमें पहुँचा देता है जिसमें निंदित या लज्जित हुए बिना हम अपने दिवा-स्वप्नों का आनन्द भोग सकते हैं।"

फ्रायड ने शिशु की क्रीड़ा और कविता की प्रक्रिया में पर्याप्त साम्य माना है; क्योंकि क्रीड़ारत शिशु कल्पनाप्रवण लेखक की भाँति ही आचरण करता है। शिशु अपना एक पृथक् जगत् बना कर संसार के पदार्थों को विशिष्ट रूप से नियोजित करता है, वह अपने खेल को गंभीर रूप से ग्रहणकर उसके साथ घनिष्ठ आंतरिकता की स्थापना करता है। "लेखक वही करता है जो बच्चा खेल में करता है। वह अतिकल्पना का जगत् बनाता है और उसे गंभीर भाव से ग्रहण करता है अर्थात यथार्थता से सर्वथा विश्लिष्ट करते समय वह इसे अतिशय आभरणों से भूषित करता है। भाषा ने बच्चों की क्रीड़ा और काव्य-सृष्टि के बीच के इस संबंध को अक्षुण्ण रखा है। वह कल्पनात्मक रचनाओं के उन विशिष्ट प्रकारों को, जो मूर्त्त वस्तुओं से संबद्ध होते हैं और जिनका प्रतिनिधान संभव है, अभिनयों के नाम से निर्देशित करती है और जो व्यक्ति उनका अभिनय करते हैं उन्हें अभिनेता कहा जाता है। अरस्तु, इस कल्पनात्मक काव्य-जगत् की अवास्तविकता का साहित्यिक प्रविधि पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो वास्तविक जीवन में घटित होने पर आनन्द नहीं देतीं, किंतु 'अभिनय' में उनसे आनन्द-लाभ होता है-बहुत से ऐसे भाव हैं जो मूलत: दु:ख पूर्ण हैं, किंतु कवि की रचना के दर्शक और श्रोता के लिए वे आनन्द के उद्गम हो सकते हैं।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ.329)

फ्रायड ने कला के उदात्तीकृत रूप को सभ्यता और संस्कृति के मूल्यों की प्रगतिशील उपलब्धि के रूप में मान्यता दी है। कुण्ठा के उदात्तीकरण की प्रक्रिया के सम्पादित होने पर मनुष्य की बर्बरता और एकांतिकता तिरोहित हो जाती है; उसमें सांस्कृतिक मूल्य का सन्निवेश होता है। कला से प्राप्त आनन्दानुभूति हल्के उन्माद के रूप में होती है, वह इच्छाओं की परितृप्ति से प्राप्त आनन्द की भाँति तीव्र नहीं होती। फ्रायड ने कला तथा स्वप्न की प्रक्रिया को समान माना है। जिस

प्रकार स्वप्न में मूल पदार्थ छद्म रूप में प्रकट होता है, उसी प्रकार कला में भी कलाकार की भावना परिष्कृत रूप में व्यक्त होती है। "समान रूप से दमित इच्छाओं के फलस्वरूप जिन दिवा स्वप्नों की सृष्टि होती है उसी के माध्यम से कलागत आनन्द उत्सृष्ट किया जा सकता है कलाकृति कलाकार की पाप-भावना का उद्घाटन करती है कला कलाकार की पीड़ामय निर्जनता को पापियों का एक बंधु-मण्डल निर्मित कर घनिष्ठ सामाजिकता में बदल देती है" (आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान, पृ.37)

एडलर ने हीन भाव के सिद्धांत के अनुसार काव्य-रचना की प्रक्रिया पर विचार किया है। उसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति स्वभावत: विलक्षण होता है, जिसका समारंभ उसके जीवन में शैशवकाल से ही हो जाता है उसके मत से आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति ही जीवन गत व्यवहारों का मूल उत्स है। शारीरिक अक्षमताओं के कारण या अन्य कारणों से व्यक्ति शैशवावस्था से ही हीनता की प्रखर अनुभूति से पीड़ित रहता है और अपने समस्त कार्यकलापों को इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए अग्रसर करता है। वह अपनी दुर्बलता का बोध कर उसके निराकरण के लिए ही अपने जीवन का निर्माण करता है। वह बड़ा होने पर दुर्बलता का बोध कर दूसरों पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए अपने को उत्साहित करता है और इस प्रकार उसके आत्मस्थापन की मूल प्रवृत्ति की तुष्टि होती है। एडलर ने जीवन की तीन समस्याओं को मुख्य माना है—समाज-संबंधी, जीवनयापन या रोजगार-संबंधी और विवाह-संबंधी। वह काम को जीवन-शैली का एक अंश स्वीकार करता है। जब व्यक्ति उपर्युक्त समस्याओं में से किसी एक में भी असफल होता है तो वह जीवन से पलायन करना चाहता है और क्षतिपूर्ति का मार्ग अपनाने के कारण मानसिक दृष्टि से रुग्ण हो जाता है। उसकी रुग्णता का कारण कामवासना का दमन न होकर वैयक्तिक और सामाजिक असामंजस्य होते हैं। इसी कारण वह अपने श्रेष्ठत्व की स्थापना करने के लिए आकुल रहता है। उसके अनुसार कला और साहित्य-सृजन हीन-भावना की क्षतिपूर्ति के साधन हैं जिनके माध्यम से कलाकार को दूसरों के हृदय पर आधिपत्य जमाने में सफलता प्राप्त होती है। एडलर ने कला के अंतर्गत तादात्म्य तथा भावविनियोग की आवश्यकता को शाश्वत माना है। उसके अनुसार मनोविज्ञान, शिक्षा और उत्कृष्ट साहित्य का लक्ष्य व्यक्ति की मिथ्या अहंता का निराकरण कर मानव मन में विश्वबंधुत्व की भावना को सशक्त तथा व्यापक बनाना है।

युंग ने मानसिक ऊर्जा या साइकिक एनर्जी को समस्त विचारों की मूल प्रेरणा माना है जो फ्रायड की लिबिडो और एडलर की आत्मप्रकाशन की वृत्ति की अपेक्षा अधिक व्यापक है; उसमें इन दोनों वृत्तियों का समावेश हो जाता है। कला लेखक

या कलाकार की इच्छा की अभिव्यक्ति है। कलाकार दो प्रकार के होते हैं—अंतर्मुखी और वहिर्मुखी। वहिर्मुखी कलाकार का व्यक्तित्व कृति या काव्यवस्तु के अधीन होता है और अंतर्मुखी कलाकार "कतिपय चेतन उद्देश्यों के अनुरूप विषय-वस्तु का विवेकपूर्ण आनयन करता है।" वह कलाकृति का मूलस्रोत सामूहिक अचेतन को मानता है, जो अखिल मानवता की उपलब्धियों से युक्त है। वह मानता है कि कलाकृति सौंदर्य है और इसी में उसका लक्ष्य और पूर्णता निहित है। कवियों के सृजनशील मस्तिष्क से जिस सामूहिक अचेतन की अभिव्यक्ति होती है वह तत्कालीन परिवेश में विद्यमान रहता है। कवि काव्य के माध्यम से सामूहिक अचेतन की ही सृष्टि करता है। उसने कलाकार को मनोरोगी या स्नायविक रोगी होने के विचार का खण्डन कर उसे स्वस्थ मनोवृत्ति का सिद्ध किया। सर्जन-प्रक्रिया पर विचार करते हुए उसने कला को सामाजिक वस्तु कहा तथा अस्तित्व की प्रवृत्ति या जीवन को बनाए रखने की प्रेरणा को कला-सृजन का कारण माना। उसने कहा कि कला-सृजन के द्वारा हममें अमरत्व का सा आत्मतोष होता है और हम अपने जीवन के क्षणों को खो देना नहीं चाहते क्योंकि वे हमारे जीवन के विशिष्ट अंग होते हैं। कलाकार कला के माध्यम से अपने जीवन के क्षणों का इतिहास लिखना चाहता है और उन क्षणों की अचिर अनुभूतियों को कला द्वारा चिरस्थायी बना कर उन्हें अमरत्व प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील हो उठता है। उसके अनुसार कला का सृजन आत्मसुरक्षा (सेल्प फ्रिजरवेशन) या जीवनेच्छा (डिजायर टु लींव) के परिणाम-स्वरूप होता है।

मनोविज्ञान ने सृजनात्मक प्रक्रिया को बहुत दूर तक स्पष्ट करने का सफल प्रयास किया है, पर कला की विशिष्टता को समझने में वह हमारी बहुत अधिक सहायता नहीं करता। कलाकृतियों को ध्यान में रखकर मनोविश्लेषण-सिद्धांत के द्वारा साहित्य-विषयक किसी सामान्य मान्यता का निर्धारण नहीं किया जा सकता। विद्वानों ने इसके निष्कर्ष को एकांगी और विशेष दृष्टि से अनुप्राणित माना है। कलाकृतियों के मूल्य-निर्धारण की दृष्टि से मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का बहुत महत्त्व नहीं होता। "मनोविश्लेषण की बारीकियाँ कलात्मकता को लेकर ही किसी कृति में स्थान पाने की अधिकारिणी हो सकती हैं।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृ. 167) रोजर फ्राइ का कहना है कि फ्रायड के विचार अधम साहित्य की सृष्टि कर सकते हैं।

■

(खण्ड -2)

Futurism (फ्यूचरिज्म) भविष्यवाद

चित्रकला की आधुनिक शैली 1909 ई. में प्रसिद्ध इटालियन कवि और चित्रकार मारीनेत्ति ने तद्युगीन परंपरागत साहित्य-सिद्धांत का विरोध करते हुए भविष्यवाद नामक नवीन कलाशैली का प्रवर्तन किया था। उसके आह्वान पर इटालियन लेखकों और कलाकारों के अतिरिक्त फ्रांसीसी और अँग्रेज कलाकारों ने भी सहयोग दिया। यह आंदोलन साहित्य, संगीत और चित्रकला के क्षेत्र में चला। इसका प्रथम घोषणापत्र फ्रांसीसी पत्रिका 'ला फिगारो' में 20 फरवरी 1909 में प्रकाशित हुआ। इसका दूसरा घोषणापत्र 1910 ई. की 11 फरवरी को प्रकाशित हुआ, जिसमें इटालियन चित्रकार कारा, बोच्चि ओनी, रूस्सोलो ज्याकोमोबल्ला तथा गिनो सेवेरिनी के हस्ताक्षर थे। इसके पश्चात भविष्यवादी कला का पारिभापिक घोषणापत्र प्रकाश में आया। इस घोषणापत्र में प्रगतिहीन परंपरागत विचारों से मुक्त होकर भविष्य की ओर विकासशील होने के लिए निर्देश था। लेखकों ने आधुनिक यंत्रयुगीन जीवन के असीम गतित्व की प्रशंसा कर उसको चित्रित करने का संदेश दिया था। भविष्यवाद को गतिमान कला-सिद्धांत कहा गया था। इसके अनुसार गति का सौंदर्य एक नया सौंदर्य है जिससे दुनिया की शोभा बढ़ाई जा सकती है। वे तेज चलती हुई मोटर गाड़ी के चित्रण में अधिक सौंदर्य प्राप्त करते थे। उनका विश्वास था कि उन्होंने सर्वव्यापी और शाश्वत गति का आविष्कार कर लिया है। उनके अनुसार "सौंदर्य का निवास-स्थान संघर्ष है। — जिसमें

आक्रामक शक्ति नहीं है वह श्रेष्ठ कला कृति नहीं हो सकती।" वे वस्तु या मानव को अचल स्थिति में चित्रित करना नहीं चाहते थे। वस्तु के पीछे विद्यमान अदृश्य शक्ति के चित्रण पर बल देते थे; क्योंकि वही वस्तु को चलाती है। भागती हुई मोटरों, दौड़ती रेलों, बजते बाजे और कौंधती हुई बिजली के चित्रण में उन्होंने अधिक उत्साह दिखाया और गति तथा स्वर के सभी साधनों को वर्ण और रेखाओं के द्वारा रूपायित किया। चूँकि समतल पर गति का चित्रण संभव न था, अतः उन्हें इस कार्य में वांछित सफलता प्राप्त नहीं हुई। एक ही रेखा को बार-बार चित्रित करने के कारण उन्हें असफलता मिली और रेखा को गति प्राप्त नहीं हुई। गति की दिशा को व्यक्त करने के उद्देश्य से उन्होंने तिरछी, आड़ी, काँपती, घूमती, गोल, खूँटी के समान रेखाएँ निर्मित कीं। उनके लिए जलता-बुझता बिजली का बल्व तथा दुःखी मानव दोनों समान थे। उन्होंने 'भिन्न मानसिक अवस्थाओं के 'समयावच्छेदी दर्शन' को कलाभिव्यक्ति माना। भविष्यवादी चित्रकारों ने बताया कि गतित्व का निर्माण दो प्रकार से संभव है- रेखाओं की स्वाभाविक शक्ति से आकारों में निरपेक्ष गतित्व लाकर सचेत दिखाई देने तथा गतिमान पदार्थों के चित्रण से जैसे दौड़ते हुए घोड़े के चित्रांकन में।

भविष्यवाद के प्रमुख सिद्धांत को समयावच्छेद (Simultaneity) कहा जाता था। इसके अनुसार भिन्न समय के दृश्य प्रभावों को एक साथ चित्रित करना चाहिए। इसके द्वारा उन्होंने ऐसे विषयों का चित्रण किया जिनका चित्रण पहले संभव न था। भविष्यवादियों की चित्रण-पद्धति में धनवाद के आकार-विश्लेषण तथा नवप्रभाववाद के रंगविश्लेषण का संयुक्त प्रयोग हुआ था। विभिन्न चित्रकारों की शैलियों में भी भिन्नताएँ प्रदर्शित होती थीं कारा ने आकारों में ठोसपन दिखाया तो बोच्चिओनी की कला में बौद्धिक प्रदर्शन का आधिक्य दिखाई पड़ा। सेवेरिनी की कला आलंकारित्व से युक्त थी। भविष्यवादियों की अंकन-पद्धति उनके इस सिद्धांत से प्रभावित थी—"प्रत्येक वस्तु गतिमान है, सब परिवर्तनशील अवस्था में हैं-जिसको कोई रोक नहीं है। नेत्रपटलीय प्रतिमा के दृष्टि सातत्य के नियम के कारण गतिमान वस्तुओं की नेत्रपटल पर निर्मित प्रतिमाएँ अगणित बढ़ती जाती हैं व एक दूसरे में गूँथी जाने से अवकाश में चंचल लहरों के समान व अवकाश को काटती हुई प्रतीत होती हैं। अतः, दौड़ने वाले घोड़े की चार टाँगें नहीं होतीं बल्कि बीस होती हैं एवं उनकी गति आकार में त्रिभुजीय होती है।" (आधुनिक चित्रकला का इतिहास, पृ.233) "हमारे दृष्टि सामर्थ्य से हम एक्स-किरणों के समान पदार्थों के आर-पार देख सकते हैं, अतः हमारे लिए सभी वस्तुएँ पारदर्शक हैं।

गति की वजह से वस्तुएँ हिलती हैं, आगे-पीछे होती हैं एवं एक दूसरे पर आ जाती हैं। रंग व प्रकाश से युक्त इन संवेदनाओं को चंचल रूपों में चित्रित करना होगा जिसके लिए विभाजनवाद व पूरकत्व के सिद्धांत उपयुक्त हैं।" (वही)। 1912 ई. में यूरोप की सभी राजधानियों में भविष्यवादियों की चल प्रदर्शनी हुई थी। जहाँ तक साहित्य का प्रश्न है, इस आंदोलन ने व्याकरणिक अनुशासन को भंग करने में अपना महत्त्व स्वीकर किया है। इसमें परंपरागत काव्यभाषा और वर्ण्य-विषय की अवहेलना कर नागरिक जीवन और यांत्रिक सभ्यता के उपादानों और उद्देश्यों का वर्णन किया गया है। इसके अनुयायियों का कहना था कि वे ज्योत्स्ना को साहित्य से निर्वासित कर देंगे। इस आंदोलन ने कला और साहित्य के क्षेत्र में अराजकता की स्थिति उत्पन्न कर दी और 1919 ई. तक इसका एक मात्र प्रवर्तक मारीनेत्रि ही इसका अनुगामी बना रहा। तत्कालीन शासन (मुसोलिनी) ने भी इसे प्रोत्साहित नहीं किया और यह आंदोलन 1919 ई. तक नि:शेष हो गया।

युंबर्टो बोच्चिओनी कालाब्रिया में 1885 ई. में उत्पन्न हुआ था। उसकी मृत्यु प्रथम विश्व महायुद्ध में हुई थी। उसने ज्याकोमो बल्ला से चित्रकला की शिक्षा प्राप्त की थी। उसके चित्रों में परंपरागत इटालियन कला की निर्दोष चित्रण-पद्धति अंकित हुई है। उसका दृष्टिकोण मानवतावादी था।

लुइगी रुस्सोलो का जन्म 1885 ई. में हुआ था। वह चित्रकार और संगीतकार था। उसके एक प्रसिद्ध चित्र का शीर्षक संगीत है। रुस्सोलो के चित्रों में तलों और रेखाओं का पारस्परिक अंतरावर्तन अंकित हुआ है।

कार्लो कारा का जन्म 1881 ई. में हुआ था। उसके चित्रों में पर्याप्त आकर्षण देखा जाता है। भविष्यवादी कला के घोषणापत्र को तैयार करने में उसका बहुत बड़ा योग था। उसने चित्रों में ज्यामितीय आकारों से गतित्व का परिणाम दिखा कर अपना कौशल प्रदर्शित किया है।

गिनो सेवेरीनी का जन्म 1883 ई. में हुआ था। उसने चित्रकला पर कुछ ग्रंथों की भी रचना की थी। उसकी चित्रकला में भविष्यवाद के गतित्व के साथ घनवाद के स्थायित्व के भी दर्शन होते हैं। प्रारंभ में उसने भविष्यवादी शैली का अत्यंत निष्ठा के साथ पालन किया; किंतु बाद में वह वस्तु के नैसर्गिक रूप की ओर आकृष्ट होकर शास्त्रयुद्ध शैली का अनुगामी बना। अँग्रेज भविष्यवादी चित्रकार

(1889-1946 ई.) नेविन्सन ने 1912 ई. में लंदन में अपने चित्रों की प्रदर्शिनी कर इस शैली के चित्रों का अंकन किया था। उसके चित्रों में मनुष्य के ऊपर मशीन के घातक प्रभाव का अंकन हुआ हैं। भविष्यवाद के प्रवतर्तक फिलिप्पो टोम्मासो मारिनेत्रि का जन्म 1876 ई. में इजिप्त में हुआ था। उसने फ्रांस के सोर्बोन विश्वविद्यालय में प्रतीकवादी कला और नाविकला का अध्ययन किया था। 1905 ई. में मिलान में उसने 'पोएशिया' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया था।

Genius (जीनियस) प्रतिभा

काव्य-रचना, कला-सर्जन या साहित्य-सृष्टि की स्वत: स्फुरित शक्ति को जीनियस कहते हैं। इसे विद्वानों ने ईश्वरीय देन कहा है, जो लेखक या कलाकार में जन्मजात होता है। इसके दो प्रकार हैं—Creative genius (सर्जनात्मक प्रतिभा) एवं Critical genius (भावात्मक प्रतिभा) सर्जनात्मक प्रतिभा कवि, कथाकार या नाटककार में होती है जिसके कारण वह कला-सृष्टि में प्रवृत्त होता है। भावात्मक प्रतिभा आलोचक में होती है, जिसके कारण वह सर्जनात्मक साहित्य या कला का मूल्यांकन करता हैं। साहित्य में प्रतिभा का अत्यधिक महत्त्व हैं।

German Criticism (जर्मन क्रिटिसिज्म) जर्मन आलोचना

जर्मन आलोचना का सूत्रपात 9वीं शताब्दी से हो गया था। तत्कालीन लेखक 'ओतफ्रिड' (800-870 ई.) ने अपने ग्रंथ में आलोचना को विद्वेष-मूलक बतलाया है। उसका कहना था कि भविष्य में मेरे ग्रंथ की आलोचना या तो द्वेष के कारण होगी या निम्नकोटि के व्यक्ति इसकी निन्दा करेंगे। पुनर्जागरणकाल भी जर्मन आलोचना के लिए अधिक प्रगतिसूचक नहीं था। इतालवी लेखक 'मारिन' के विचारों का प्रभाव जर्मन आलोचना पर पड़ा और उसे चिंतन की नूतन दिशा प्राप्त हुई। 'मार्तिन् ओपित्ज' (1597-1639 ई.) ने प्राचीनता के अनुकरण पर विशेष बल दिया और प्राचीन काव्य-शैली का बहिष्कार कर 'फ्रांसीसी अलेक्जेण्ड्राइन' का समर्थन किया। 'ओहान क्रिस्टोफ गाटशेड' (1700-1760 ई.) ने फ्रांसीसी नव्यशास्त्रवाद से प्रभावित होकर उसका सुव्यवस्थित रूप प्रस्तुत किया है। इस युग की आलोचना पर प्रसिद्ध दार्शनिक 'लाइबनित्ज' का प्रभाव था। अलेक्जेण्डर बॉमगार्टन ने (1714-1762) में कलादर्शन या सौंदर्यशास्त्र के लिए ऐस्थेटिक्स

शब्द का प्रयोग कर 'ऐस्थेटिका' नामक ग्रंथ को 'ऐन्द्रिय अवबोध का सजातीय विज्ञान' माना है। वह आधुनिक सौंदर्य दर्शन का जन्मदाता माना जाता है। अब तक दार्शनिक ऐसे शास्त्र की कल्पना नहीं कर सके थे, यद्यपि कि वे इस शब्द से परिचित अवश्य थे। 'लाइबनिज' से प्रभावित होकर बामगार्टन ने सौंदर्य ललितकला तथा काव्य का संबंध ऐन्द्रिय ज्ञान से स्थापित कर सौंदर्यशास्त्र जैसे शास्त्र की आवश्यकता पर बल दिया है। उसके अनुसार सौंदर्य की पूर्णतम अभिव्यक्ति प्रकृति में होती है, अत: कलाकार का परम कर्त्तव्य उसी का अनुकरण करना है। स्वच्छन्दतावादी युग के पूर्व 'विन्किलमन' (1716-1761 ई.), लेसिंग (1729-1781 ई.) की स्थापनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। लेसिंग को क्लैसिकल पद्धति का महान प्रवक्ता कहा जाता है। ग्रीक की तत्कालीन खुदाई से निकली हुई मूर्त्तियों का (लोकून) अध्ययन कर 'विन्किलमन' ने काव्य और चित्रकला के अंतर को स्पष्ट किया है और बताया है कि प्रत्येक कला अपने युग, संस्कृति तथा आत्मा की अभिव्यक्ति होती है। उसने आदर्श सौंदर्य को पूर्ण सौंदर्य मान कर उसीको अभिव्यक्ति प्रदान करने को कला का सर्वोच्च लक्ष्य स्वीकर किया। क्योंकि; विना अभिव्यक्ति के सौंदर्य का कोई महत्त्व नहीं होता। जर्मन आलोचकों में 'लेसिंग' आज भी महत्त्व पूर्ण स्थान का अधिकारी है। (दे. Lessing, लेसिंग) उसने नाट्यकला पर अधिक लिखा और त्रासदी, विरेचन, संकलनत्रय तथा करुणा और भय की विशद व्याख्या की। उसने चित्र को मूक कविता और कविता को मुखर चित्र कहा है। उसकी प्रसिद्ध कृति 'ला ओकून' 1766 ई. में प्रकाशित हुई, जिसमें चित्रकला, मूर्तिकला और कविता की मौलिक विशिष्टताओं का उद्घाटन किया गया था। उसने सौंदर्य का अर्थ 'मनुष्य-सौंदर्य' से लिया और सुंदर की तरह असुंदर या कुत्सित की भी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की। उसके अनुसार प्रत्येक प्रतिभाशाली कलाकार अपने मार्ग का स्वयं निर्माण करने में समर्थ है। वह कलाकार को बंधनमुक्त मानकर उसकी किसी प्रकार की परतंत्रता को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं था। उसके मतानुसार कवि, चित्रकार तथा मूर्तिकार सभी शाश्वत और सार्वजनिक सत्य की अभिव्यक्ति करते हैं।

इसके पश्चात महान जर्मन कवि गेटे का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे प्रसिद्ध आलोचक सेण्टब्यूव ने सभी कालों का सर्वोत्तम आलोचक कहा है। प्रारंभ में उसकी कृतियों पर 'हर्डर' का प्रभाव परिलक्षित होता है, पर आगे चल कर उसकी आलोचना में स्वच्छन्दतावाद तथा परंपरावाद का अद्भुत संश्लेषण प्रदर्शित हुआ।

(दे. Goethe, गेटे) वह काव्य को आत्माभिव्यक्ति स्वीकर कर विषयगत तथा विषयिगत विवाद को निरर्थक मानता है। गेटे कला की पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थक था। उसने कहा कि कलाकार सदा अंतर्जगत् की प्रेरणा से कार्य करे। उसने कविता को आत्मभिव्यक्ति कहा, जिसमें कवि को वैयक्तिक संतुष्टि प्राप्त होती है। उसके अनुसार कलाशक्ति निरंकुश और जन्मजात है; कविता वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। सौंदर्य जीवन की आकस्मिक घटना है, यही अनन्त प्रेरणा का स्रोत बन जाता है। उसके अनुसार प्रेम से ही सौंदर्य की रचना होती है।

जर्मनी में स्वच्छन्दतावादी आलोचना 'क्लॉप स्टाक' से आरंभ हुई, जिसका समर्थन श्लेगेल बन्धुओं, 'नोवालिस' तथा 'टीक' ने किया। फ्रेडरिक श्लेगल (1772-1829 ई.) स्वच्छन्दतावादी चिन्तन का एक सशक्त हस्ताक्षर माना जाता है। उसने परंपरा-दर्शवाद तथा आधुनिकता के विवाद को आरंभ किया और कला, साहित्य, उपन्यास, व्यंग्य और निजंधरी कथाओं पर निबंधों की रचना की। उसके अनुसार स्वच्छन्दतावादी काव्य विश्व-जनीन प्रगतिवादी काव्य है। शेलिंग की स्थापनाएँ भी इस युग में कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उसने जर्मनी में रोमाण्टिक आंदोलन को अपनी विचारधारा से प्रभावित किया है और स्वयं भी काण्ट तथा फिक्टे के विचारों से अनुप्राणित हुआ है। उसने प्रकृति तथा आत्मा को एक ही परमसत्ता का दो रूप माना है तथा ससीम में असीम की झाँकी पाने को सौंदर्य कहा है। कला में सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है और सौंदर्य मनुष्य को अनन्त की ओर उन्मुख करता है। सौंदर्य के अभाव में कला का अस्तित्व नहीं रह सकता। वह कलात्मक अनुभूति को दर्शन की अपेक्षा श्रेष्ठ मानता है।

जर्मन आलोचना काण्ट, हीगेल और शोपेनहावर की सौंदर्य-शास्त्रीय विचारणा से अधिक प्रभावित हुई। काण्ट (1704-1804 ई.) महान दार्शनिक और कलाशास्त्री था। उसने 'सौंदर्य-मीमांसा' या 'क्रिटिक ऑफ-जजमेन्ट' नामक युगप्रवर्त्तक ग्रंथ की रचना की है जिसमें सौंदर्य, कला तथा अभिरुचि आदि विषयों पर गंभीर विचार अनुचिंतित है। उसके अनुसार सुंदर की अनुभूति सार्वभौम होती है, वैयक्तिक नहीं, अतः सुंदर वस्तु सबके लिए सुंदर होती है। (दे. Kant कान्ट) सौंदर्यानुभूति तथा तज्जन्य आनन्द को दूसरों तक संक्रान्त किया जा सकता है और कवि तथा अन्य कलाकार अपने उल्लास को दूसरों तक पहुँचाते हैं। इससे यह

सिद्ध होता है कि सौंदर्यानुभूति के लिए सुंदर पदार्थ का देश-काल में वर्तमान होना आवश्यक नहीं है। सुंदर पदार्थ निष्प्रयोजन होता है अर्थात सुंदर वस्तु इसलिए सुंदर नहीं है कि उससे किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। काण्ट ने अभिव्यक्ति के आधार पर ही कला का वर्गीकरण किया और काव्य को उसका श्रेष्ठ रूप माना; क्योंकि उसमें अभिव्यक्ति की सबसे अधिक शक्ति है।

हीगेल (1730-1831)

पाशचात्य सौंदर्य-शास्त्रियों में हीगेल के विचार बहुत ही पूर्ण और व्यवस्थित हैं। उसकी सबसे बड़ी विशेषता है कला का उपयुक्त वर्गीकरण। उसने कला-दर्शन के ऊपर 'फिलॉसफी ऑफ़ फाइन आर्टस' (ललित कलाओं का दर्शन) नामक पुस्तक का प्रणयन किया था। उसके अनुसार यह विश्व पूर्ण प्रत्यय की अभिव्यक्ति है। प्रकृति और कला में इसी पूर्ण प्रत्यय की सौंदर्य के रूप में अभिव्यक्ति होती है और उसका श्रेष्ठ रूप कला में दिखाई पड़ता है। प्रकृति के विस्तृत एवं भव्य सौंदर्य को कला सूक्ष्म उपादानों में बाँध कर उसे अधिक चमत्कारपूर्ण बना देती है और कला के माध्यम से प्रत्ययतत्त्व अधिक स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त होता है। उसने ललितकला को कई भागों-वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला और काव्यकला में विभाजित किया है तथा आधार की मूर्त्तता एवं अमूर्त्तता के अनुसार इनकी श्रेष्ठता निर्धारित की है। जिस कला का आधार जितना ही मूर्त्त होगा वह उतनी ही निकृष्ट कोटि की होगी।

शॉपेनहावर (1788-1860 ई.)

वह निराशावादी दार्शनिक था। उसने जीवन में वेदना का महत्त्व स्वीकार कर उसे जीवन की इच्छा (Will to live) कहा है। उसके अनुसार जीवन में निराशा और पीड़ा का राज्य बना रहता है। जीवन और मृत्यु के सनातन संघर्ष में मृत्यु की विजय होती है और जीवन को पराजित होना पड़ता है। मानव के इस चिरन्तन दुःख से छुटकारा पाने के दो ही उपाय हैं—आध्यात्मिक चिंतन तथा कला की उपासना। इनकी आराधना कर मनुष्य जीवन की महावेदना को भुला सकता है। कला मनुष्य को इस दुःखमय संसार से उठाकर ऐसे लोक में ले जाती है जहाँ कल्पना और भावना का प्राधान्य रहता है। शॉपेनहावर सभी कलाओं में संगीत को अधिक सशक्त मानता है; क्योंकि उसमें ऐसी शक्ति है जिससे मनुष्य अपनी वेदना को विस्मृत कर मोहक भावलोक में पहुँच जाता है। प्रत्येक कला अपनी

चरमावस्था में संगीत हो जाती है। प्रत्येक प्रतिभाशाली कालाकार में ऐसी क्षमता होती है, जिससे वह सांसारिक स्वार्थों से मनुष्य को ऊपर उठा दे।

शिलर (1759-1805)

शिलर जर्मनी का महान विचारक और कवि था। उसकी सौंदर्य-चेतना पर काण्ट का प्रभाव था। वह कला के अनुकृति-सिद्धांत को स्वीकार कर कल्पना-शक्ति द्वारा अनुकृति से भी वही आनन्द प्राप्त करने की बात कहता है, जो आनन्द उसे प्रकृति में मिलता है। शिलर के अनुसार कला का उद्देश्य केवल आनन्दोपलब्धि है। उसका कहना है कि सुन्दर पदार्थ आनन्द का कारण होता है, यदि उसमें उपयोगिता के तत्त्व न भी रहें तो कोई बात नहीं;आनन्द का रहना आवश्यक है। शिलर काण्ट की भाँति सौंदर्यानुभूति को सार्वभौम मानता है और यह स्वीकार करता है कि कला का उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति या मन: प्रसादन है। सौंदर्य अनुभव का विषय है; उसकी अनुभूति चेतना या मन की दशा है। सौंदर्यानुभूति से उत्पन्न आनन्द को ही सार्वभौम होने का श्रेय है; क्योंकि बौद्धिक तथा इन्द्रिय-विषयक सुखों को दूसरों तक स्थानांतरित नहीं किया जा सकता।

शेलिंग (1775-1854)

इसने जर्मनी में रोमाण्टिक आंदोलन को अपनी विचारधारा से प्रभावित किया था और स्वयं भी काण्ट तथा फिक्टे से अनुप्राणित था। इसने प्रकृति तथा आत्मा को एक ही परम सत्ता का दो रूप माना है तथा ससीम में असीम क़ी झाँकी पाने को सौंदर्य कहा है। कला में सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है और सौंदर्य मनुष्य को अनन्त की ओर उन्मुख करता है। सौंदर्याभाव में कला का अस्तित्व नहीं रह सकता। शिलर कलात्मक अनुभूति को दर्शन की अपेक्षा श्रेष्ठ मानता है।

1880 से 1900 ई. तक जर्मन आलोचना फ्रांसीसी प्रभाव से आक्रान्त रहीं, फलत: वहाँ प्रकृतवाद की ध्वनि सुनाई पड़ी और उस पर इब्बसन का भी प्रभाव पड़ा। 1910 से 1925 ई. तक की अवधि आलोचना के चरम-विकास की है। इस कालावधि में स्वच्छन्दतावाद का पुनर्नवीकरण हुआ। अभिव्यंजनावाद तथा मनोविज्ञान के प्रभाव से आलोचना में प्रौढ़ता आई और विचार-प्रधान साहित्य की रचना होती रही। अभिव्यंजनावादी पराकाष्ठा के समय नव्यशास्त्रवादियों ने विश्वबन्धुत्व वाद का संवर्धन किया। नात्सी शासनकाल में जातीय भावना पर बल देने के कारण विवेक का अभाव आलोचना में भी दिखाई पड़ा और नवीन

पारिभाषिक शब्दों की सृष्टि हुई। हिटलर के पतन के पश्चात साहित्यिक चेतना पर भी गहरा धक्का लगा।

Goethe (गेटे या गोथे) (1749-1832 ई.)

गेटे जर्मनी का मूर्धन्य कवि, नाटककार, उपन्यासकार और आलोचक हैं। उसका 'फाउस्ट' नामक काव्यनाटक विश्व साहित्य की अमर विभूति के रूप में प्रतिष्ठित है। उसने 'वरथर की करुण कहानी' नामक उपन्यास की रचना की है जो जर्मन साहित्य की महान कृतियों में परिगणित होता है। वह प्रसिद्ध कवि होते हुए भी आलोचनात्मक अन्तर्दृष्टि से सम्पन्न था। प्रसिद्ध फ्रेंच आलोचक सेण्ट बाव ने उसे 'सभी युगों का महानतम समीक्षक' कह कर सम्मानित किया था और अँग्रेजी कवि बायरन के अनुसार वह 'यूरोप के कवियों और बुद्धिजीवियों का शिरोमणि' था। उसके आलोचनात्मक विचार 'गेटेज लिटरेरी एसेज' (गेटे के साहित्यिक निबंध) नामक ग्रंथ में संगृहीत हैं। गेटे शास्त्रवाद का समर्थक था और स्वच्छन्दतावाद की मोहकता से अपने को दूर रखना चाहता था। पर, वह दोनों में समन्वय स्थापित करना चाहता था। उसके अनुसार यदि शास्त्रवादी नवीन के प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्ण विचार रखें और स्वच्छन्तावादी वास्तविक जीवन से विषय चुनें तो दोनों में समन्वय स्थापित किया जा सकता है। उसकी आलोचना में शास्त्रवाद एवं स्वच्छन्दतावाद का अद्‌भुत संश्लेषण हुआ है। स्वच्छन्दतावाद की अपेक्षा वह शास्त्रवादी (क्लैसिकल) रचनाओं को अधिक स्वस्थ मानता है। एकरमैन के साथ बातचीत करते हुए उसने स्वच्छन्दतावाद को शारीरिक रोग की संज्ञा दी है। "स्वच्छन्द रचना एक प्रकार का शारीरिक रोग है; जिन अंगों में आवश्यकता नहीं वहाँ रस की प्रचुरता हो जाती है, और जहाँ आवश्यकता है, वहाँ से रस खींच लिया जाता है। विषय तो अच्छा था, लेकिन जन दृश्यों की मुझे अपेक्षा थी, वे वहाँ नहीं थे; और जिन दृश्यों को मैं नहीं चाहता था वे बड़ी तत्परता और अनुराग-पूर्वक उपस्थित हो गए थे। इसे मैं शारीरिक रोग अथवा हमारे अभिनव सिद्धांतों के अनुसार, स्वच्छन्द कहता हूँ।" गेटे के अनुसार शास्त्रवाद वाह्यरूप का विशिष्ट तत्त्व है। इस पर सौंदर्य का वाह्यरूप संतुलन, क्रम, व्यवस्था तारतम्य तथा संयम के साथ आधृत है। शास्त्रवाद परंपरा का अनुगामी होता है तो स्वच्छन्दतावाद अभिनवता की ओर उन्मुख।

गेटे कला और साहित्य में वाह्यबंधनों को मुक्ति का आग्रही एवं व्यक्ति को प्रतिष्ठापित करना चाहता है। वह व्यक्ति का विकास विश्वमानव के रूप में करने

का आकांक्षी है और अभिव्यंजना में निहित व्यक्तित्व को ही कला का सर्वस्व स्वीकारता है। वह शैली में आत्माभिव्यक्ति को प्रधानता देता है अर्थात लेखक की शैली उसके अन्तर चिंतन का बाह्य अभिव्यक्ति करण है। वह काव्य का स्रोत बाह्य विश्व में निहित मानता है। उसके अनुसार काव्य आत्मा की अभिव्यक्ति है और काव्य-विषयक विषयगत एवं विषयिगत विवाद का अनर्गल है। उसके अनुसार स्थितियों की सजीव अनुभूति और उनकी अभिव्यंजना की शक्ति कवि का निर्माण करती है। विश्व-साहित्य के सिद्धांत पर विचार करते हुए उसका कहना है, "यदि किसी साहित्य को अपने में ही बन्द कर दिया जाए, किसी अन्य साहित्य के सम्पर्क, योग और रुचियों के प्रभाव से उसमें ताजगी न लाई जाय तो निश्चय ही वह अपनी प्राण-शक्ति खो बैठेगा। दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर जो आश्चर्यजनक वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं; उन्हें देख कर कौन प्रकृतिवादी आह्लादित नहीं होता? आचारों विचारों के क्षेत्र में दर्पण का क्या अर्थ होता है इसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति ने अपने आप में किया है, और एक बार उसकी चेतना उद्बुद्ध हो जाए तो वह समझ लेगा कि उसकी शिक्षा का कितना श्रेय इसको है।" (पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परंपरा, पृ. 132) वह व्यक्तित्व को कला एवं कविता का सर्वस्व मानता है। उसके अनुसार कलाकार सदा अपने अंतर्जगत् से प्रेरणा ग्रहण कर कार्य करे, इस प्रकार वह अपने व्यक्तिगत वैशिष्ट्य को प्राप्त कर सकेगा। उसके कुछ उद्‌गार इस प्रकार हैं—"मेरी कृतियाँ महान आत्म स्वीकृति के अंश हैं।""मेरी सम्पूर्ण कविता-कृतियाँ अवसर सापेक्ष कृतियाँ हैं।" "वास्तविक रचनात्मक शक्ति अचेतन में होती है।" "कलाकार जन्मजात होता है।" "कविता प्रेरणा है, प्रतिभा है।" उपर्युक्त उद्धरण इस तथ्य के प्रमाण हैं कि गेटे के मतानुसार कविता वैयक्तिक अनुभव की अभिव्यक्ति है और कला-शक्ति निरंकुश एवं जन्मजात होती है। काव्य-रचना को वह शुद्ध अचेतन-प्रक्रिया मानता है, पर आत्मनिष्ठता का निरंतर विरोध करता है। उसका कहना था कि महान साहित्यकार के व्यक्तित्व में आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दोनों दृष्टिकोणों का समन्वय होता है। वह मन और प्रकृति, विषय और विषयी दोनों का ऐक्य स्वीकार करता है। प्रकृति के अन्तरतम में प्रवेश करने में साहित्यकार अपने अन्तरतम की ही अभिव्यक्ति करता है, उसी प्रकार अपने मन की प्रवृत्तियों का अनुसरण करने में वह प्रकृति की वस्तुओं का तत्त्व ग्रहण करता है। "(समीक्षा लोक, पृ.383) वह मानता है कि कला और प्रकृति के नियम समानांतर होते हैं, अतः साहित्यकार प्रकृति से उसकी निर्माण क्रिया सीखे। वह कलाकृति को स्वयं में पूर्ण मानता है।" सूक्ष्म (या ललित) कलाओं

में, उनके द्वारा उत्पन्न होनेवाले अच्छे या बुरे प्रभावों का विचार किए बिना, सुंदरता उत्पन्न होती है, वह सुंदरता केवल सुंदरता के लिए उत्पन्न होती है। कलाकृति के प्रभाव का कोई भी विचार कला का ध्यान रचना के बाहर की ओर ले जाता है और इस प्रकार वह कालाकार के अवधान को क्षति पहुँचता है।

गेटे कवि का काम प्रतीक-विधान करना मानता है। कवि विशिष्ट का इस प्रकार वर्णन करे कि उसको पढ़ने पर सामान्य की भावना जाग्रत हो जाय। उसके अनुसार सर्वाधिक सुंदर प्रतीक विधान वह है जिसकी अनेक व्याख्याएँ हो सकें।

कविता की विषय-वस्तु का वर्णन करते हुए वह कहता है कि जीवन की विविधता और संसार की विशालता को देखकर काव्य के विषय का अभाव नहीं हो सकता। काव्य-रचना की प्रेरणा तथा सामग्री दोनों ही यथार्थ से उपलब्ध हो। कवि की वाणी का अवलम्ब प्राप्त कर विशेष का साधारणीकरण और काव्यात्मक परिणति हो जाती है। कविता की प्रेरणा वास्तविक जीवन से प्राप्त होनी चाहिए। सामान्य विषय के किसी मनोरंजक पक्ष के उद्‌घाटन में ही कला की सार्थकता है।

गेटे कविता को शिक्षात्मक मानता है, किंतु वह प्रच्छन्न रूप से हो। वह पाठक का ध्यान संवेद्य मूल्यवान् विचार की ओर आकृष्ट भर करे, परंतु उससे शिक्षा पाठक स्वयं ही ग्रहण करे जैसे जीवन से करता है। उपदेशात्मक काव्य का महत्त्व इस रूप में है कि वह सदा लोकहृदय का स्पर्श करता है। गेटे की रचनाओं में मानवीय आत्मा का विकास अंकित करने का प्रयत्न हुआ है, उसने कविता का मानववादी रूप अपनी कृतियों में व्यक्त किया है। उसके अनुसार जीवन को उदात्त ढंग से व्यतीत करने में जीवन की सार्थकता है।

Graveyard Poetry (ग्रेवयार्ड पोयट्री) श्मशान काव्य

श्मशान काव्य में जीवन की क्षणभंगुरता एवं निस्सारता का वर्णन श्मशान की पीठिका पर किया जाता है। ऐसी कविता के अध्ययन से भय, करुणा और विरक्ति का उद्रेक होता है।

Greek criticism (गीक क्रिटिसिज्म) यूनानी आलोचना

पाश्चात्य समीक्षा का सूत्रपात अन्य शास्त्रों की भाँति ग्रीक या यूनान में ही हुआ था। प्लेटो, अरस्तू और लोंजाइनस यूनानी आलोचना के महान स्तम्भ हैं, ज़िनकी स्थापनाएँ शाश्वत समीक्षा के तत्त्वों से आपूर्ण हैं और उनके यश की

धवलिमा समय की गति से मन्द नहीं पड़ने पायी है। ग्रीक साहित्यशास्त्र चिंतन की प्रौढ़ता का द्योतक है; उस पर दर्शन, नीति तथा सौंदर्य-मीमांसा की प्रगाढ़ छाया है।

यों तो ग्रीक आलोचना का वास्तविक स्फुरण अरस्तू के ग्रंथों से होता है, पर उसके सूत्र प्लेटो से भी पूर्व होमर की कृतियों में उपलब्ध होते हैं। प्लेटो से पूर्व वहाँ रचनात्मक साहित्य की पर्याप्त सृष्टि हुई थी और तद्युगीन नाटककारों, कवियों, भाषणशास्त्रियों, दार्शनिकों तथा ऐतिहासिकों की कृतियों में आलोचना-सिद्धांत की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्थापना हुई थी। इन ग्रंथों में काव्य के उद्देश्य, रचना-पद्धति एवं जन्म के संबंध में अनेक प्रकार के मन्तव्य प्रस्तुत किए गए हैं, पर ग्रीक-साहित्य का अधिकांश विस्मृति के गर्भ में विलीन होकर नष्ट हो चुका है। सम्प्रति जो कुछ भी साहित्य अवशेष है, उसके आधार पर ग्रीक साहित्यशास्त्र की रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है। इन कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन यूनान में समीक्षाशास्त्र का स्वतंत्र रूप से विकास नहीं हुआ था, अपितु वह आनुषंगिक प्रयत्न के रूप में लिपिबद्ध था। कहने का अभिप्राय यह कि प्लेटो से पूर्व आलोचना शास्त्र स्वतंत्र विधा के रूप में मान्य न होकर दर्शन, भाषणशास्त्र और व्याकरण के अंग के रूप में गृहीत था।

महाकवि होमर के महाकाव्यों 'इलियड' और 'ओडेसी' तथा प्रसिद्ध साहित्यकार हिसियॉड की रचनाओं में आलोचना के स्फुट संदर्भ प्राप्त होते हैं, जिनमें तत्कालीन जीवन पद्धति की मान्यताएँ निहित हैं। (दे. Beginning of criticism आलोचना का समारम्भ) तत्कालीन ग्रीक या यूनान एक आदर्श प्रजातांत्रिक राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ था और वहाँ के निवासी अपने देश को श्रेष्ठ तथा समृद्ध बनाने और समाज को उच्च स्तर पर अधिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील थे। अतः, उन्होंने साहित्य, राजनीति, दर्शन और भाषाणशास्त्र का अध्ययन सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से किया। उस समय भाषणशास्त्र और दर्शन के ऊपर अनेक ग्रंथों का प्रणयन हो चुका था और लेखकों ने इसी संदर्भ में साहित्यिक प्रश्नों को टिप्पणी या परिशिष्ट के रूप में रखा था। काव्य-विषयक विचारों में लेखकों ने भाषणशास्त्र और दर्शन के शब्दों तथा सिद्धांतों का ही प्रयोग किया था। प्राचीन ग्रीक आलोचना-सिद्धांत के परिज्ञान के लिए होमर (ई. पू. 8वीं शताब्दी), हिसियॉड, (थियोजोनी नामक ग्रंथ), पिंडार (518-438 ई. पू.), गौर्जियास तथा स्टोफेनीज (450-385 ई. पू.) की कृतियाँ अधिक उपादेय हैं। इतिहासकार

प्लू. टार्क, तत्त्वेत्ता डायोजेनीस, के वक्तव्य भी आलोचना के आदि रूप को स्पष्ट करने में अधिक सहायक हैं, पर आलोचना का सैद्धांतिक अनुसंधान प्रसिद्ध कॉमदी लेखक एरिस्टोफेनीज की ही रचनाओं (आखरनियन्स, क्लाउड्स, येस्मोफोरियागोरस तथा फ्राग्स में प्राप्त होता है। होमर ने काव्य को दैवी प्रेरणा का प्रतिफलन कहा है और काव्य का ध्येय आनन्द प्रदान करना माना है, जो ऐन्द्रजालिक प्रयोग द्वारा प्रसारित होता है। हिसियॉड भी अपनी कृति 'थियोजोनी' की प्रस्तावना में स्वीकार करता है कि उसे देवी की प्रेरणा से ही काव्य-रचना में सफलता प्राप्त हुई है। पर, वह होमर की भाँति आनन्द को काव्य का ध्येय न मानकर शिक्षा-दान या मार्मिक संदेश द्वारा जनकल्याण स्वीकार करता है। एरिस्टोफेनीज को निर्णयात्मक आलोचना-प्रणाली का जन्मदाता माना जाता है। 'फ्राग्स' (मेढ़क) नामक कॉमदी में उसकी आलोचनात्मक दृष्टि प्रतिबिंबित हुई है। उसके अनुसार शिक्षा-दान ही कवियों का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। वह भाषा, भाव तथा छन्दों की सरलता और स्वाभाविकता को कला का आदर्श रूप मानता है।

ग्रीक-आलोचना का गंभीर विवेचन प्लेटो (ई. पू. चौथी शताब्दी) और अरस्तू की कृतियों में हुआ है। प्लेटो के आलोचना-संबंधी विचार 'गोर्जियास', 'आयोन', 'सिम्पोजियम', 'फीड्रस', 'रिपब्लिक' तथा 'लॉज' नामक ग्रंथों में संवादों के रूप में अनुस्यूत हैं। वह पाश्चात्य जगत् का महान दार्शनिक और चिंतक है। उसने कला और साहित्य के विवेचन में नैतिक सिद्धांत को प्रश्रय देकर काव्य-कला का खण्डन किया। उसके अनुसार काव्य या कला मिथ्या या अवास्तविक है; क्योंकि वह अनुकरणमूलक होती है। उससे अनैतिकता को बढ़ावा मिलता है और वह मिथ्या का प्रचार करती है। मनुष्य आदर्श नागरिक के रूप में सत्य का अन्वेषण तथा नैतिक आदर्श का अनुकरण करे। चूँकि कला दोनों ही दृष्टियों से पथ-भ्रष्ट करने वाली है, अतः उसका बहिष्कार करना चाहिए। कला को चारित्रिक अधः पतन का कारण मान कर प्लेटो ने उसकी निन्दा की और कवियों को यूनान के आदर्श राज्य से बहिष्कृत करने का निर्णय दिया। उसने अपने दृष्टिकोण से काव्य, नाटक (कॉमदी तथा त्रासदी) भाषणशास्त्र तथा गद्य के प्रयोग पर विचार किया और गीत, महाकाव्य तथा नाटक के रूप में पहले-पहल काव्य का वर्गीकरण किया। (दे. Plato प्लेटो) प्लेटो ने कला या साहित्य-संबंधी किसी स्वतंत्र ग्रंथ का प्रणयन नहीं किया था, बल्कि अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'गणतंत्र' (Republic) के तीसरे और दसवें अध्याय में इस संबंध में स्वकीय मन्तव्य उपस्थापित किये थे। उसके कला-विवेचन पर

उसकी दार्शनिक एवं नैतिक मान्यताओं का प्रत्यक्ष प्रभाव है। वह आदर्शवादी विचारक था, अत: उसने उसी दृष्टि से कला की समस्याओं पर विचार किया। उसके अनुसार कला दृश्य जगत् की वस्तुओं और व्यापारों की अनुकृति है। दृश्यजगत् तात्त्विक जगत् की छाया है और काव्य भौतिक पदार्थों की छाया; अत: वह अनुकरण का भी अनुकरण होने के कारण सत्य से दूर है। वह अपूर्ण विचार की अपूर्ण अनुकृति है, छाया की छाया है और वास्तविकता से तिगुनी दूर है। कला या काव्य में भावना की प्रधानता होती है। कलाकार भावुक प्राणी होता है, अत: उसके व्यक्तित्व में निरंकुशता और अनैतिकता निहित रहती है। कविता और कला द्वारा न तो ज्ञान का विकास होता है और न इससे जनता के नैतिक आचरण को उचित संरक्षण प्राप्त होता है। यद्यपि प्लेटो ने कला का अवमूल्यन किया तथापि उसकी सौंदर्यात्मक रुचि पर संदेह नहीं किया जा सकता। उसके संवाद स्वयं में उच्च कोटि की साहित्य-सृष्टि के उदाहरण हैं और उनमें संवाद के सर्वोत्तम तत्त्वों का समावेश हुआ है। वह कला की ओर हृदय से आकृष्ट था। उसका कहना था कि उसे कला के साथ न्याय करने में अत्यंत प्रसन्नता होती, यदि कोई उसे बौद्धिकतापूर्ण सिद्ध कर देता। उसके नैतिक दृष्टिकोण ने कला के प्रति अन्य-मनस्कता प्रदर्शित की थीं और उसकी तत्त्व-मीमांसा ने उसे आदर्श गणतंत्र में स्थान देने से रोक दिया था। कला-सर्जन के संबंध में उसने जो विचार प्रकट किए थे, वे इतने सत्य थे कि कोई भी विचारक उसे दोषमुक्त नहीं कर सकता था। ऐसे विचारों के पीछे कला की अनुकरण-मूलकता और उसके उद्देश्य, कला-प्रेमियों की सुखवादी मनोवृत्ति एवं उसका अन्य लोगों पर पड़ने वाला बुरा प्रभाव आदि हैं। प्लेटो का कला-संबंधी सिद्धांत कठोर सौख्यवाद कहा जाता है। इसका कारण यह है कि वह कला के प्रदर्शन एवं उपयोग के लिए कठिन नियमों को लागू करता है। जब तक अनुकरण मूलक कला प्रातिभासिक विश्व की आंशिक प्रतिकृति है, तब तक इसका उद्देश्य ज्ञान का प्रत्यक्ष बोध न होकर अंतर्वेग एवं संवेदन को उठाना है, तब तक वह पूर्णत: असंगत है। अतएव वह मस्तिष्क को दृढ़ न बनाकर दूषित कर दे सकती है। कानून के रूप में वह सभी कलाओं को आनन्द के साधन के रूप में स्वीकार करता है। आदर्श गणतंत्र में स्थान पाने के लिए कला का प्रदर्शन कठोरता पूर्वक संयत कर दिया जाय, उसे नियमों में आबद्ध कर दिया जाय और उसका व्यवहार केवल ऐन्द्रिय भावों की तृप्ति के लिए न कर मनुष्यों के चरित्रों को सुधारने के लिए किया जाय। प्लेटो ने दार्शनिक

तथा नैतिक धारणाओं के आधार पर कला की निन्दा की थी और उसके विशुद्ध रचनात्मक पक्ष की अवहेलना की। (दे. Plato प्लेटो या प्लातोन)

प्लेटो के पश्चात अरस्तू ने सर्वप्रथम काव्यशास्त्र का व्यवस्थित अध्ययन कर उसे स्वतंत्र शास्त्र का रूप दिया और उसकी अनेक भ्रान्तियों का निराकरण किया। अरस्तू ने प्लेटो के नैतिक मानदण्ड के स्थान पर साहित्य के कलात्मक पक्ष का उद्घाटन कर उसे मानव की महत्त्वपूर्ण सृष्टि के रूप में प्रतिष्ठित किया। उसने प्लेटो के सारे आरोपों का खण्डन कर साहित्य की सर्वभौम महत्ता स्थापित की और आनन्ददायी तत्त्व को प्रमुखतादेकर उसके नैतिक आदर्श को गौण बना दिया। अरस्तू का 'काव्यशास्त्र' (Poetics) पाश्चात्य आलोचना शास्त्र का आकार ग्रंथ है, जिसमें सर्वप्रथम साहित्यशास्त्रीय विषयों का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत किया गया है। उसने पूर्ववर्ती आलोचकों के सिद्धांतों का परिष्कार कर ऐसे तत्त्वों का विश्लेषण किया जिनमें न केवल साहित्यशास्त्र के स्थायी एवं सार्वभौम मानों की प्रस्तुति हुई, अपितु आलोचना का क्षेत्र व्यापक, प्रशस्त और स्पष्ट भी हुआ। उसने बताया कि कविता दो प्रकार से प्रारंभ होती है-वीरकाव्य एवं व्यंग्य काव्य के रूप में। वीरकाव्य (Heroic Poetry) या महाकाव्य द्वारा त्रासदी (Tragedy) का विकास होता है और व्यंग्य काव्य (Stiric Poetry) से कॉमदी या सुखांत नाटक का। इसीलिए वे सिद्धांत जो महाकाव्य के लिए मान्य हैं, त्रासदी पर भी घटित होते हैं और व्यंग्यकाव्य के सिद्धांत को कॉमदी पर लागू किया जा सकता है। उसने त्रासदी पर अधिक विस्तार से विचार किया है और उसके परिणाम महाकाव्य पर घटाए हैं तथा कॉमदी का संकेत कर ही छोड़ दिया है। उसने त्रासदी के सिद्धांत को ऐसा व्यापक रूप दिया है जो साहित्य का सामान्य सिद्धांत बन गया है। अरस्तू का 'काव्यशास्त्र' प्लेटो की साहित्यिक मान्यता के तीव्र प्रतिवाद के रूप में लिखा गया था। उसने यह कहीं नहीं कहा कि उसका विचार प्लेटो के सिद्धांत को चुनौती देना है या उसने उसको उत्तर देने के लिए अपनी पुस्तकें लिखी हैं। इसके साथ ही वह 'काव्यशास्त्र' में प्लेटो की कहीं चर्चा भी नहीं करता और न उसके द्वारा उठाई गई आपत्तियों का ही संकेत करता है, किंतु ग्रंथ के सम्यक् विश्लेषण से ज्ञात होता है कि उसके सभी विचार और निष्कर्ष प्लेटो के सिद्धांतों के खण्डनार्थ ही प्रस्तुत किए गए हैं। प्लेटो की भाँति अरस्तू ने भी कला (दे. अरस्तू Aristotle) को प्रकृति की अनुकृति माना, यद्यपि उसका उद्देश्य कला को प्राकृतिक पदार्थों की कोरी अनुकृति मानने का नहीं था। उसने बतलाया कि कला में कुछ ऐसे तत्त्व निहित हैं जो प्रकृति में नहीं रहते। कलाकार अपने हृदय का

रस एवं भावों का रंग देकर उसमें नावीन्य ला देता है। जो कुछ कला के माध्यम से व्यक्त होता है, वह प्राकृतिक पदार्थ से अवश्य भिन्न होता है, अत: वह (कला) हमारे लिए आकर्षण का केन्द्र होती है। कला को नितांत अनुकरण न कह कर अनुकरण का एक ढंग कहा जा सकता है। जब कवि यथार्थ की अनुकृति करता है तो उसमें अपनी कल्पना, भावना एवं अनुभूति का रस उड़ेल देता है। उसकी कृति यथार्थ से सर्वथा भिन्न और बहुलांश में उससे उत्कृष्ट कोटि की हो जाती है क्योंकि कवि अनुभूतियों का रस देकर उसमें नई अर्थवत्ता भर देता है। अत:, कला या कविता कोरी अनुकृति नहीं है और न इसीलिए वह हेय है। अरस्तू ने 'काव्यशास्त्र' में काव्य के सौंदर्य का उद्घाटन कर उसे दार्शनिकों, नीतिज्ञों तथा राजनीतिज्ञों के पंजे से छुड़ाया। उसके काव्यालोचन का आधार विशुद्ध साहित्यक और सौंदर्यमूलक है। उसने बताया कि कला का कोई रूप चाहे वह कविता हो या चित्र, सौंदर्य की वस्तु है, और वह उसी रूप में मनुष्यों का मन: प्रसादन करती है।

लोंजाइनस पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र के इतिहास में प्रथम स्वच्छन्दतावादी आलोचक के रूप में विख्यात है। वह पहला व्यक्ति है जिसने काव्य के नैतिक आधार एवं कवि प्रतिभा को महत्त्व दिया है। उच्चकोटि का काव्य उदात्त मस्तिष्क में ही संभव है और उदात्त चरित्र ही भव्यकाव्य की सृष्टि कर सकता है, आदि विचार कवि के चारित्रिक महत्त्व को बताने वाले हैं। लोंजाइनस ने 'काव्य में उदात्त तत्त्व' नामक ग्रंथ की रचना कर कवि-प्रतिभा की अभ्यर्थना की है और काव्य-सृष्टि में आंतरिक प्रेरणा को महत्त्व प्रदान किया है। उसने काव्य के आध्यात्मिक धरातल की पुष्टि की है एवं शैली के विभिन्न तत्त्वों को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर काव्य के सार्वकालिक सिद्धांत की उद्भावना की है। वह काव्य की अमरता का पोपक था और कवियों को पूर्ववर्ती महान रचनाकारों के काव्यादर्शों को अपनाने की नि:संकोच सलाह देता था। उसकी मान्यता थी कि महान काव्य का उद्देश्य हमारी आत्मा को उच्च बनाना एवं पाठकों को नैसर्गिक आनन्द की उपलब्धि करा कर उनके व्यक्तित्व को ऊँचा उठाना है। उसने काव्य को अलौकिक उपकरण मानकर उसे ईश्वरीय प्रेरणा से उपलब्ध होने वाली वस्तु कहा है। इसके अनुसार काव्य नैतिकता से भी महत्तर है। (दे. Longionus लोंजाइनस) प्लेटो का 'गणराज्य' अरस्तू का 'काव्यशास्त्र' तथा लोंजाइनस कृत 'काव्य में उदात्त तत्त्व' प्राचीन ग्रीक आलोचना की तीन महत्त्व पूर्ण उपलब्धि या सिद्धि हैं, जिनसे पाश्चात्य

जगत् में सर्वप्रथम साहित्य की गंभीर चिंतन-सरणि विकसित हुई जो किसी भी राष्ट्र के लिए गर्व की बात है।

प्राचीन ग्रीक आलोचना की सीमाएँ भी थीं। उसमें तत्कालीन साहित्य-रूपों का ही विश्लेषण किया गया है और वह भी त्रासदी तक परिसीमित है और अन्य रूपों का विवेचन आनुषगिक है। इसके लिए आलोचकों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता; क्योंकि उस समय तक उनके साहित्य का उतना ही विकास हो सका था। उन्होंने आलोचना की तुलनात्मक पद्धति का सहारा नहीं लिया और न इस प्रणाली को विकसित किया। इस क्षेत्र में उनकी कोई देन इसलिए नहीं है; क्योंकि उन्हें अन्य साहित्य का ज्ञान नहीं था। साहित्यालोचन के उषः काल में उन्होंने काव्य और कला विषयक शाश्वत और सार्वकालिक प्रश्नों को उठा कर उनका समाधान किया, जिसे उनकी परिपक्व मेधा की अप्रतिम देन कहा जा सकता है। उन्होंने काव्य के स्वरूप, उसके प्रयोजन, उसकी शैली तथा उसके वर्गीकरण के संबंध में सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि प्रदर्शित की और काव्य कौशल के आंतरिक तत्त्वों का विशद और वैज्ञानिक विश्लेषण किया। उन्होंने ऐसे प्रश्न उठाये हैं जिनका समुचित समाधान आज भी नहीं हो सका है। काव्य के अतिरिक्त ग्रीक आलोचकों ने भाषणशास्त्र का भी गंभीर विवेचन कर उसकी समस्त विशेषताओं का उद्घाटन किया है।

प्लेटो तथा अरस्तू के समसामयिक आचार्य आइसाक्रेटीज ने (ई. पू. 392) भाषणशास्त्र को व्यापक आधार प्रदान किया। उसने दार्शनिक पद्धति का अवलंबन कर इस शास्त्र की सीमित शैली को दूर किया। उसका कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, पर उसके पत्र प्राप्त होते हैं जिनमें आलोचनात्मक भाषण पद्धति को अपनाया गया है। उसके अनुसार भाषण-कला की सफलता केवल शास्त्रार्थ द्वारा प्रतिद्वन्द्वी को पराजित करने में ही नहीं है; उसका उद्देश्य नागरिकों को सभ्य तथा सुसंस्कृत बनाना है। वह अन्य कलाओं की भाँति भाषणकला के लिए भी अभ्यास की आवश्यकता पर बल देता है और तद्विषक कुछ नियमों का निर्धारण कर उनके अनुपालन पर जोर देता है। कला की भाँति भाषण कला का भी उद्देश्य लोकोत्तर आनन्द प्रदान करना है। उसने भाषण को चार भागों में विभक्त करने को कहा था—प्रस्तावना, विषय, तर्क तथा उपसंहार। उसके अनुसार भाषण कला में बिविधता में एकता उत्पन्न करने की शक्ति है।

अरस्तू के शिष्य थियोफ्रैस्टस का भी भाषण-कला और गद्य-शैली के निर्माण में महत्त्वपूर्ण योग है। उसने अरस्तू की वैज्ञानिक पद्धति को और भी अधिक

विकसित किया तथा विषय के संतुलन पर विशेष बल देकर शब्द-चयन, वाक्य विन्यास तथा अलंकारों के प्रयोग में अपने गुरु के ही सिद्धांतों और नियमों को अंगीकार कर उनकी महत्ता स्थापित की। उसने बताया कि शैली में संतुलन के साथ-ही-साथ ध्वन्यात्मकता का समावेश उसके सौंदर्य को द्विगुणित करने में सहायक बनता है। विषय के संतुलित प्रतिपादन में शैली में अनावश्यक विस्तार का भार नहीं रहता और न वह बोझिल और विशृंखल होती है। उसने काव्य-भाषा के तीन भेद किए हैं—उदात्त तथा अलंकृत, प्रसादमय (सरल) तथा मिश्र और रचना को भी तीन भागों में विभक्त किया है—कठिनोदात्त (ऑस्टीयर), मसृण या सज्जित (स्मूथ या फ्लोरिड) तथा मिश्र या समंजित (मिक्स्ड)।

ईस्वी की प्रथम शताब्दी में 'डायोनीसियस' तथा 'डेमेट्रियस' नामक दो प्रख्यात रीतिशास्त्रियों का प्रादुर्भाव हुआ। डायोनीसियस (30 ई. पू.) ने शैली तत्त्व का विश्लेषण कर उसे (शैली को) व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति माना और उसके तीन प्रमुख तत्त्वों का विवेचन किया—शुद्धता, स्पष्टता तथा समासगुण—तथा औचित्य को काव्य का श्रेष्ठ गुण स्वीकार किया। इसकी पुस्तक का नाम 'पद-रचना' या 'रीति' है। उसने शैलीकार के लिए कलात्मकता, अध्ययन तथा अभ्यास के हेतु आग्रह प्रकट किया और शैली को भाव के अधीन स्वीकार किया। उसके अनुसार सौंदर्य की उपलब्धि तथा आकर्षण ही शैलीकार के प्रधान लक्ष्य हैं। डेमेट्रियस ने 'ऑन स्टाइल' नामक (शैली) महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना प्रथम शताब्दी में की, जिसमें विभिन्न प्रकार की शैलियों का विवेचन है। उसने प्रत्येक शैली के गुण-दोषों का सम्यक् अनुशीलन प्रस्तुत किया है और शैली के चार प्रकार किए हैं—उदात्त (एलीवेटेड), मधुर या मसृण (एलीगेन्ट), प्रदासमय (प्लेन) तथा ओजस्वी (फोर्सीबल)। (दे. Dionysius तथा Demetrius)

■

Gross Art (ग्रॉस आर्ट)
उपयोगीकला

दे. Art

Hegel (हीगल)

जर्मन दार्शनिक एवं कला-चिंतक-दे. History of Aesthetics.

Hero (हीरो) नायक

महाकाव्य, नाटक, उपन्यास या कहानी के प्रधान पात्र को हीरो कहते हैं। काव्य या कृति की सारी घटनाएँ इसी के व्यक्तित्व के चारों ओर घूमती हैं और अन्य पात्र इसके चरित्र को ग़ति देते हैं।

Heroic Poetry (हीरोइक पोयट्री) वीर काव्य

महाकाव्य या एपिक का एक प्रकार। प्राचीन साहित्य में महाकाव्य एक विशेष छन्द में लिखे जाते थे जिसे वीर छन्द कहा जाता था। आगे चल कर इसका प्रयोग काव्य तथा छन्द दोनों के लिए होने लगा। वीरकाव्य कथात्मक कविता में लिखा जाता है जो आकार में विशाल हुआ करता है और उसमें चरित्रों, घटनाओं, कथा-व्यापारों या परिस्थितियों की संख्या अधिक या अपार हुआ करती है। इसमें प्रधान नायक की भाँति उसके सहकर्मी भी उसके समान ही वीर और पराक्रमी होते हैं। इसमें कोई व्यक्ति महत्त्व या पराक्रम का कार्य करता था जैसे— दानव

का वध। इसमें अति-मानवीय पात्र-देवता, भूत, प्रेत या अलौकिक पात्र भी भाग लेते थे।

Heroine (हीरोइन) नायिका

काव्य के प्रधान स्त्री पात्र को हीरोइन कहते हैं। यह हीरो की प्रेमिका या पत्नी होती है। काव्य या कथा-साहित्य में इसी के कारण संघर्ष होता है; क्योंकि प्रतिनायक (नायक का प्रतिपक्षी) भी इसे प्राप्त करना चाहता है।

Historical Criticism (हिस्टॉरिकल क्रिटिसिज्म) ऐतिहासिक आलोचना

दे. **Criticism**

Heroic Drama (हिरोइक ड्रामा) वीर नाटक

पुनर्जागरण युग में इंगलैंड में लिखी जाने वाली त्रासदी का एक रूप या प्रकार। ड्राइडेन के समय में इस प्रकार के नाटकों की रचना अधिक हुआ करती थी। इसकी रचना तुकांत छन्दों में हुआ करती थी और शैली अलंकृत तथा आडम्बरपूर्ण होती थी। वीर नाटकों का विषय प्रेमाख्यान होता था। इनमें या तो प्रेम गाथाओं का वर्णन होता था या साहसिक घटनाओं को स्थान दिया जाता था। इनकी प्रासंगिक कथाएँ अश्लील और असंगत हुआ करती थीं। वीर नाटक में नायक के कार्यों का अतिरंजनापूर्ण वर्णन होता था। ये नाटक गंभीर होते थे, पर इनका अंत सुखमय होता था।

Horace होरेस (65 ई. पू. से 8 ई. पू. तक)

सुप्रसिद्ध लैटिन व्यंग्यकार, प्रगीतकार एवं आलोचक होरेस का आविर्भाव जुलियस सीजर द्वारा ब्रिटेन आक्रमण के दस वर्ष पूर्व हुआ था। उसके पिता ने साधारण स्थिति में भी उसे इस प्रकार की शिक्षा दिलाई, जिससे उसने अपनी प्रतिभा का विश्वास कर विश्व के महान साहित्यकारों की श्रेणी में अपने को अधिष्ठित किया। उसकी शिक्षा रोम एवं एथेन्स में हुई थी। उस पर यूनानी काव्य, संस्कृति एवं दर्शन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था, अतः उसके काव्य और काव्य-सिद्धांत पर यूनानी काव्यालोचन का ऋण है। होरेस की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं—व्यंग्यलेख (सटायर), सम्बोधगीत (ओड), प्रगीत एवं आर्सपोयतिका (काव्य कला)। 'आर्सपोयतिका' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ उसकी अन्तिम रचना है, जो

काव्यपत्र के रूप में लिखा गया है। इस ग्रंथ में काव्यकला का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया है; किंतु एक ऐसे मित्र को लक्ष्य कर काव्यालोचन-संबंधी असम्बद्ध विचार व्यक्त किए गए हैं जो काव्य-रचना में प्रवृत्त होना चाहता है। इसमें ऐसे निगूढ़ तथ्यों की व्यंजना है जिनके कारण इस ग्रंथ का रोमी साहित्यशास्त्र में अपना विशिष्ट स्थान है। 'काव्यकला' में नाटक को अधिक गौरव प्रदान किया गया है तथा उत्कृष्ट कोटि की काव्य-रचना से संबद्ध मत व्यक्त किए गए हैं। उसने बताया है कि कविता का विषय सरल एवं संगत हो तथा कवि अनावश्यक रूप से पूर्णता प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा से दूर रहे। उसने बालकवियों के लिए अनेक परामर्श दिये हैं, जिनमें सामर्थ्यानुसार विषय का चयन, महान काव्यों के अध्ययन, समुचित आलोचना का श्रवण एवं काव्य-रचना के पश्चात उसका सम्यक् परिमार्जन आदि प्रमुख हैं। वह जीवन भर अविवाहित रहा फिर भी उसके काव्य में भोगवाद के तत्त्वों का समावेश हुआ।

होरेस रोमीय साहित्या-लोचन के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व है, जो रोमन सभ्यता एवं संस्कृति के स्वर्णिम युग में उत्पन्न हुआ था। यह वह युग था जब सीजर ने अपने राज्य के आंतरिक संघर्ष को मिटाकर शान्ति की स्थापना की थी। होरेस के समय में रोम के साहित्य का विकास राष्ट्रीय गौरव के अनुरूप हो रहा था तथा यूनानी आदर्शों के आधार पर प्राचीन विचार धाराओं के परिष्कार के लिए जोरदार प्रयत्न किए जा रहे थे फिर भी साहित्यिक संसार में अव्यवस्था बनी हुई थी। होरेस को यूनानी साहित्य की समृद्धि का भी परिचय था, अतः उसने समकालीन कवियों एवं काव्यों का अध्ययन कर उनकी मान्यताओं से प्रेरणा ग्रहण की। उसने यूनानी साहित्यादर्शों के ही आधार पर अपने राष्ट्रीय साहित्य का मार्ग-निर्देशन किया।

होरेस के विचारों एवं विवेचन में रोमीय व्यावहारिकता कूट-कूट कर भरी हुई थी; फलतः उसने कवि एवं काव्य-संबंधी ऐसे तथ्यों का विश्लेषण किया जिनका समाज के व्यावहारिक जीवन में अधिक महत्त्व समझा जाता है। काव्य की व्यावहारिक उपयोगिता की महत्ता को स्वीकार करते हुए उसने कहा कि कवि समाज का हितकारी या संरक्षक होता है जिसका कार्य धार्मिक एवं नैतिक है। कवि मनुष्य के विचारों का परिष्कार कर उसे सभ्य बनाता है, इसलिए प्राचीन कवि कुछ हद तक देवता तुल्य माने जाते थे। होरेस का कहना है कि वाग्देवी ही मनुष्य को मृत्यु से बचा कर, अमरता प्रदान करती है।

यूनानी आदर्श एवं नैतिक शिक्षा के प्रति आकृष्ट होने का कारण तत्कालीन उच्छृंखलता थी। उसके आविर्भावकाल में लैटिन साहित्य ह्रासोन्मुख हो रहा था तथा कवियों के समक्ष कोई उच्चादर्श नहीं था। वे सोफिस्ट विचारों के आदर्श का अनुकरण करते थे, जिनमें निम्नकोटि के विचारों का समावेश था और कला का क्षेत्र गंभीर न रह कर छिछला हो गया था। अतएव उसने समकालीन साहित्य को सुधारने के लिए यूनानी साहित्य की समृद्धि से लाभ उठाने का अभिमत प्रकट किया। "यूनानियों को, केवल यशः कामी यूनानियों को ही, काव्य देवी ने प्रत्युत्पन्नमति और संस्कृत वाणी का वरदान दिया है, मेरे मित्र! तुम ग्रीक की महान कृतियों का अध्ययन करते रहे दिन रात तुम उन्हीं में मग्न रहो।" (काव्यकला, पृ.17)

होरेस ने साहित्य के दो उद्देश्यों को ही अपनाया—नैतिक शिक्षा एवं आनन्द और अन्ततः उनदोनों उपयोगिता एवं आह्लाद का समन्वय किया। अरस्तू से प्रभावित होकर भी उसने उसके समान काव्य के स्वरूप का विशद विवेचन नहीं किया बल्कि उसका ध्यान युगोचित व्यावहारिक आवश्यकताओं की ओर गया।

काव्यकला या आर्सपोएतिका का वर्ण्यविषय

होरेस का 'काव्यकला' नामक ग्रंथ आलोचना की कृति न होकर काव्यालोचन पर रचित एक काव्य है, जिसमें 476 पंक्तियों का पत्र है। यह काव्यपत्र कैलपर्नियस पीसो तथा उसके दो पुत्रों को संबोधित कर लिखा गया है। कहा जाता है कि यह पत्र अपूर्ण था; इसका प्रकाशन कवि की जीवन-लीला की समाप्ति के पश्चात हुआ। इसका रोमन नाम है—'एपिसोला एड पोजीनिज'। क्विन्तीलियन ने वर्ण्यविषय के आधार पर इस कृति का नामकरण 'आर्सपोएतिका' या 'काव्यकला' किया था। इसमें काव्य के मूलभूत तत्त्वों का विवेचन न होकर काव्यालोचन-संबंधी व्यावहारिक तथ्यों की छानबीन की गई है। पत्र-रूप में रचित होने के कारण इसमें विषय को सरल और स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है, फिर भी विचारों की एक सूत्रता का अभाव है तथा विवेच्य विषय में अन्विति नहीं है। उक्त पुस्तक में नाटक का विस्तृत विवेचन है एवं वार्तालाप के समान कभी एक पक्ष पर एवं कभी अन्य पक्ष पर अधिक बल दिया गया है। काव्यकला के तीन प्रधान विवेच्य विषय हैं—पाएसिस (काव्य की कला), पोएमा (काव्य का रूप) एवं पोएता (काव्य का कर्ता)। 'काव्यकला' को सेन्ट्सबरी ने साधारण मेधा के व्यक्ति की कृति माना है और कॉलरिज इसे अव्यवस्थित विचार-पत्र की संज्ञा

देता है फिर भी इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। होरेस निओतॉलेमस नामक लेखक की अनुपलब्ध पुस्तक 'काव्यकला' से प्रभावित था। उसने विषय के प्रतिपादन के साथ-ही-साथ निओतॉलेमस की मान्यताओं का भी अनुकरण किया है। 'काव्यकला' का विषय इस प्रकार है—औचित्य की महत्ता, कलात्मक एकान्विति एवं सरलता तथा लेखक की शक्ति-सीमा के अनुरूप विषय का चयन।

काव्यरूप—काव्य शिल्प तथा शैली, शब्द-चयन, छन्दः योजना, त्रासदी तथा कॉमदी के विषय-प्रयोग का औचित्य, पात्रानुकूल शब्द एवं अवस्था का चित्रण, भावों के प्रति ईमानदारी, परम्परागत कथा का उपयुक्त संयोजन, चरित्रों का उचित संगठन, रंगमंच पर उग्र कार्यों का अप्रदर्शन, वृन्दगान की पात्रानुकूलता, संगीत का हल्कापन, आवश्यकता पड़ने पर दैवी हस्तक्षेप का होना, नाटकों में पाँच अंक तथा तीन पात्रों का वर्णन, छन्द-योजना में सावधानी तथा कथा का विश्वस्त होना।

कविता—प्रतिभा बनाम कला, जीवन की अनुकृति एवं मनुष्य का व्यवहार, कविकर्म का उद्देश्य नैतिक शिक्षा एवं आह्लाद का समन्वय, अर्थलोलुपता की निन्दा, लघु दोषों की स्वीकृति, सत्काव्य तथा असत्काव्य, काव्य का हेतु, प्रतिभा एवं कला, विभिन्न काव्य का भिन्न प्रकार से मूल्यांकन, पागल कवि का व्यंग्य चित्र।

उपर्युक्त विषयों की तालिका के अवलोकन से 'काव्य-कला' के विषयों की व्यापकता का पता चलता है, किंतु होरेस के विवेचन में आंतरिक श्रृंखला का अभाव है। चूँकि उक्त ग्रंथ की रचना पत्र के रूप में हुई थी, अतः विचारों की व्यापकता एवं विवेचन की गंभीरता-संबंधी उसकी सीमाएँ भी स्पष्ट हैं। 'काव्यकला' का महत्त्व उसकी सहजता एवं सरलता के कारण है।

काव्य-संबंधी विचार—होरेस के काव्य-संबंधी विचार मुख्यतः अरस्तू की मान्यताओं पर आश्रित हैं। यद्यपि उसने कविता के अनुकरण-मूलक सिद्धांत को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार नहीं किया है तथापि वह कविता की तुलना अनुकृति मूलक कला (चित्रकला) के साथ करते हुए उसकी स्वीकृति अप्रत्यक्ष रूप से कर देता है। "कुशल अनुकर्ता से मेरा अनुरोध है कि वह सच्चे प्रतिमानों के लिए जीवन और नीतिका अध्ययन करें और वहीं जीवन की सहज भाषा ग्रहण करें।" (काव्यकला, पृ.16) श्रेष्ठ कविता की उद्‌भावना के संबंध में विचार करते हुए उसने प्रतिभा और अभ्यास दोनों के समीकरण पर बल दिया है। "अच्छी कविता की उद्‌भावना प्रतिभा (प्रकृति) से होती है या कला से—यह विवादास्पद बात है। जहाँ तक मेरा अपना विचार है मैं तो बिना प्रतिभा के अध्ययन का और बिना अभ्यास

के प्रतिभा का कोई उपयोग नहीं समझता। अतः, यह सत्य है कि उन्हें एक दूसरे का सहयोग अपेक्षित होता है और वे पारस्परिक लाभ के लिए दूसरे की सहायता करते हैं।" (काव्यकला, पृ. 21)

कला का उद्देश्य वह उपयोगिता या आह्लाद या दोनों का समन्वय मानता है। सफल कवि का काम पाठक को आह्लादित करना है और शिक्षा भी देना। (काव्यकला, पृ.17) शब्द-चयन के संबंध में होरेस का कथन है कि लेखक शब्दों के त्याग तथा ग्रहण करने में स्वतंत्र है।

शब्दों का प्रचलन ही भाषा का अधीश्वर, नियामक और प्रमाण है। शब्द-चयन के संबंध में वह कवि को विवेक या औचित्य से काम लेने की सलाह देता है। कवि कृत्रिम एवं आडंबरपूर्ण शब्दों का प्रयोग न करे और कठोर एवं परुष शब्दों को मसृण बना कर उपयोग के योग्य बनाये।

छन्दः प्रयोग के संबंध में उसका कहना है कि प्रत्येक छन्द का प्रयोग विशिष्ट विषय के अनुरूप होना चाहिए। प्रत्येक काव्यरूप के लिए विषयवस्तु के अनुसार छन्दों के रूप निर्धारित किए गए हैं। जो विषय जिस छन्द के उपयुक्त हो उसका उसी छन्द में वर्णन होना चाहिए। इस प्रकार वह वर्ण्यविषय एवं छन्दः प्रयोग में अविच्छेद्य संबंध-स्थापन पर बल देता है। प्रत्येक काव्य-रूप के लिए विशिष्ट छन्द नियत होते हैं। अपने इस विचार की पुष्टि के लिए उसने बताया कि महाकाव्य एवं वीरकाव्य में षट्पदी (हेक्टामीटर) त्रासदी तथा कॉमदी में लघु-गुरु द्विमात्रिक (आयम्बस) तथा दुःखपूर्ण विषय के लिए करुणगीति या एलेजी का प्रयोग होना चाहिए। इसी प्रकार देवी-देवताओं के स्तवन में संबोध-गीति (ओड) तथा प्रेमोच्छ्वास की व्यंजना में प्रगीत या लिरिक का प्रयोग वांछनीय है। होरेस के 'वृत्त्यौचित्य' में परंपरा के प्रति प्रबल आग्रह प्रदर्शित हुआ है। उसने अपना छन्द-संबंधी मत ग्रीक साहित्य के ही आधार पर निर्धारित किया है, अतः इसका 'वृत्त्यौचित्य' आंशिक रूप से ही मान्य है। स्वयं उसने अपने काव्यों में इस नियम का निर्वाह नहीं किया है।

(Literary Propriety or Decorum) साहित्यिक औचित्य

होरेस साहित्यिक औचित्य का प्रबल समर्थक है। उसने 'काव्यकला' के प्रारंभ से अन्त तक इस तथ्य का निर्वाह किया है। उसका साहित्य-विवेचन-विषयक आधारभूत सिद्धांत औचित्य ही है। वह काव्य के विभिन्न तत्त्वों से संबद्ध

औचित्य-सिद्धांत का विवेचन करता है। 'आर्स पोएतिका' के प्रारंभ में उसने इस सिद्धांत का विश्लेषण करते हुए अननुरूप या बेमेल वस्तुओं के संयोजन को उपहासास्पद वतलाया है। होरेस का औचित्य-सिद्धांत विषय, चरित्र, घटना, अभिनय, छन्द-विधान, शब्द-चयन आदि के वर्णन में देखा जाता है। काव्य या नाटक के विषय की चर्चा करते हुए होरेस कहता है कि कवि को ऐसा विषय चुनना चाहिए जो परंपरागत हो या नवीन अर्थात या तो वह परंपरागत कथा का विधान करे अथवा नवीन उद्भावना के द्वारा कथानक की व्यवस्था करे। नवीन कल्पना करते समय उसे उसके प्रयोग की व्यवस्था पर ध्यान देना चाहिए तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही विषय का चयन करना चाहिए। कथानक में संगति एवं सामंजस्य आवश्यक है, अन्यथा नवीन कथा की योजना सफल नहीं हो सकती। परंपरागत कथानक का नियोजन करते समय उसके प्रयोग में भी मौलिकता संभव है, यदि लेखक शब्द-प्रति-शब्द का अनुकरण न कर उसे कुशल संविधान द्वारा प्रस्तुत करने की व्यवस्था करे। कथानक का वह अंश जो उसके स्पर्श से दीप्ति उत्पन्न न करता हो, उसे वह छोड़ दे और काल्पनिक कथा का उपयोग इस प्रकार करे कि उसके आरंभ, मध्य और अंत सब एक ही स्वर में मुखरित हो उठें या उनमें अन्विति हो।

परंपरागत कथानक के निर्वाह में नाटककार तभी सफल हो सकता है जब वह संबद्ध चरित्रों के स्वरूप रक्षा करने में समर्थ हो। उसके अनुसार चरित्र का चित्रण उनकी प्रकृति के अनुरूप होना चाहिए। यदि कवि नवीन कथा की उद्भावना करता है तो पात्रों के चरित्र में भी नवीनता के अनुरूप संगति हो। पात्रों के कार्य, उनके गुणावगुण, रुचि, वय एवं स्थिति के अनुकूल हों।

होरेस अभिनय-औचित्य पर भी विचार करते हुए यथार्थ अभिनय को रंगमंच पर प्रदर्शित करने की राय देता है। अभिनय ऐसा होना चाहिए जिसका दर्शक के ऊपर मनोनुकूल प्रभाव पड़े। नाटक को देखकर दर्शकों को मुखमण्डल हर्ष से पूर्ण हो जाय और न तो वह नाटक से ऊबे और न उसका मजाक उड़ाये। नाटककार को जिस प्रकार का प्रभाव दर्शक पर डालना हो वह तदनुरूप पात्रों एवं अभिनय की व्यवस्था करे। "दर्शक अपने विश्वासी नेत्रों के सम्मुख जो कुछ पाता है उसका उसके मन पर सजीव प्रभाव पड़ता है, उतना कानों से सुनी हुई बात का नहीं। तथापि तुम ऐसी घटनाएँ रंगमंच पर उपस्थित मत करो जो परोक्ष में सम्पन्न होनी चाहिए और बहुत-सी ऐसी बातें भी दर्शक के सम्मुख लाओ जिनका वर्णन

रंगमंच पर क्रमश: अभिनेता के द्वारा किया जाए—उदाहरण के लिए, यह आवश्यक नहीं कि मेदेआ अपने लड़कों की हत्या दर्शकों के सम्मुख करे अथवा क्रूर कत्रेउस मानव-मांस पकाये; प्रोकने के पक्षी बनने या कादमस के सर्प में परिणत होने की घटना भी रंगमंच पर प्रस्तुत करना उचित नहीं।" (काव्यकला, पृ.1) यदि कवि अछूते विषय को रंगमंच पर उपस्थापित करना चाहे या नवीन चरित्र का सृजन करे तो उसे ऐसा बनना होगा कि वह प्रारंभ से अंत तक एक-सा रहे अर्थात नाटक के प्रथम दृश्य में वह जैसा हो अंत तक उसके चरित्रांकन में संगति बनी रहे।

नाटक के स्वरूप पर विचार करते हुए होरेस ने कहा कि यदि किसी नाटक को लोकप्रिय बनाना हो तो उसकी योजना पाँच अंकों में होनी चाहिए। नाटक न तो इससे कम हो और न अधिक। रंगमंच पर किसी देवता की तब तक अवतारणा न की जाय जब तक कि उसकी अत्यंत आवश्यकता न हो जाय और जिसके बिना न कोई काम चल सके। किसी वृन्दगायक को मंच पर लाकर न बोलने दिया जाय और न अंक के मध्य में कोई ऐसा गीत गवाया जाय जो कार्य-व्यापार को आगे न बढ़ाता हो और न उसका कथानक के साथ संबंध हो। नाटककार सत् का उन्नयन करे और रचना द्वारा शुभ परामर्श दे। होरेस त्रासदी और कॉमदी के विषयों के परस्पर मिश्रण को अवांछनीय मानता है; क्योंकि कॉमदी की अभिव्यक्ति त्रासदी के छन्दों में असंभव है और त्रासदी की रचना बोलचाल की भाषा में नहीं हो सकती। दोनों की अपनी शैली होती है और उनका लेखन उन्हीं की शैली में उपयुक्त है।

होरेस की देन—होरेस कृत 'आर्सपोएतिका' यद्यपि छोटे पत्र के रूप में लिखित है, तथापि उसमें काव्यशास्त्र के कई शाश्वत तत्त्वों का मूल्यांकन हुआ है। उसका प्रभाव मध्ययुग तथा नव क्लासिकल युग तक यूरोपीय आलोचना पर प्रभूत मात्रा में पड़ा। वह परंपरावादी आलोचक था; फलत: उसने साहित्य का अस्तित्व केवल ग्रीक आधार पर स्थापित किया। उसने कवियों को राय दी कि वे अपनी रचनाओं को कुछ दिनों तक अप्रकाशित रहने दें और परिश्रम-पूर्वक उसका परिमार्जन करते रहें। उसके अनुसार कविता की सफलता केवल सुंदर होने में नहीं है बल्कि उसमें श्रोता को आकृष्ट करने की भी शक्ति होनी चाहिए।

उसकी दृष्टि मुख्यत: प्लेटो और अरस्तू प्रभृति आचार्यों का सार ग्रहण करने पर टिकी रही है। उसने काव्यकला में संयम, विवेकशीलता, अनुपात, संगति, विषय

की स्वाभाविकता एवं भाषा-संबंधी औचित्य का समावेश कर आलोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कड़ी उपस्थित की तथा भावों की अभिव्यंजना में काल-गति के साथ भाषा और शब्दावली में परिवर्तन का विचार प्रस्तुत कर काव्य के व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया।

Historical Drama (हिस्टोरिकल ड्रामा) ऐतिहासिक नाटक

जो नाटक इतिहास के आधार पर लिखे जाते हैं, उन्हें ऐतिहासिक नाटक कहते हैं। ये त्रासदी और कॉमदी दोनों ही प्रकार के नाटक हो सकते हैं। पर, ऐतिहासिक नाटक मुख्यतः नाटक या साहित्य होता है, इतिहास नहीं। ऐतिहासिक नाटकों में ऐतिहासिकता का होना अनिवार्य माना जाता है। इसमें नाटककार अतीत का प्रत्यक्षीकरण कर कल्पना द्वारा उसे नवीन रूप में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार ऐतिहासिक नाटक के तीन प्रमुख तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं—इतिहास, ऐतिहासिक वातावरण तथा इतिहास का नाटकीय स्वरूप घटना एवं पात्र। किसी विशेष ऐतिहासिक काल के रीति-रिवाज, सभ्यता, प्रथा, खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन, उत्सव, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक स्थिति या परिवेश को नाटक में प्रस्तुत करना ही ऐतिहासिक वातावरण है। ऐतिहासिक वातावरण ही ऐतिहासिक नाटक का स्थायी अंग है। इसमें नाटककार द्वारा परिवर्तन संभव नहीं है, यदि वह ऐसा करता है तो उसमें कालक्रम दोष आ जाएगा। ऐतिहासिक वातावरण की चित्रमय सरसता ही नाटक में ऐतिहासिक झाँकी प्रस्तुत करती है। "नाटक में वातावरण का महत्त्व जो कुछ भी है, वह ऐतिहासिकता से संबंधित है। परंतु, नाटककार की कल्पना कथानक और चरित्रों से ही क्रीड़ा कर पाती है, यद्यपि इनका भी संबंध इतिहास से है। वातावरण जिस प्रकार ऐतिहासिक नाटक में कथानक और चरित्रों की क्रीड़ा के लिए निश्चित पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार घटनाओं का भी चरित्र से एक निश्चित संबंध होता है।" (प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ. 35) नाटककार को मूल कथानक में परिवर्तन करने की भी छूट होती है, पर इसमें वह पूर्ण स्वतंत्र नहीं होता। इसके लिए आवश्यक है कि वह प्रख्यात सत्य या इतिहास की मूल शृंखला को छिन्न-भिन्न न कर दे। मूल कथानक में कल्पना का नियोजन कर यदि नाटककार उसमें आमूल परिवर्तन करना चाहे तो उसके लिए आवश्यक है कि परिवर्तन न केवल स्वाभाविक हो, अपितु वह पूर्ण संभाव्यता से युक्त रहे।

ऐतिहासिक नाटकों के स्थूल रूप से चार विभाग किए गए हैं—युद्ध ऐतिहासिक, अर्द्ध ऐतिहासिक, काल्पनिक ऐतिहासिक तथा स्वच्छन्द ऐतिहासिक नाटक। प्रथम में नाटककार मूल कथानक को प्रामाणिक इतिहास से ग्रहण करता है और इसके प्राय: सभी प्रधान पात्र इतिहास प्रसिद्ध होते हैं और उनके नामों तथा चरित्रों को भी ज्यों का त्यों ले लिया जाता है। इसमें वातावरण की अनैतिहासिकता होती ही नहीं। अर्द्धऐतिहासिक नाटक में नाटककार मूल कथा को इतिहास से लेकर कल्पना द्वारा प्रधान पात्रों की सृष्टि करता है और उनका इतिहास पर आरोप करता है। इसमें मूल कथानक से संबद्ध ख्यात व्यक्ति, गौण रूप से ही सही, नाटक के पात्र अवश्य बनते हैं। काल्पनिक ऐतिहासिक कथानक में कथा काल्पनिक होती है, पर उनके पात्रों में ऐतिहासिक चरित्रों का आरोप किया जाता है। इसमें वातावरण की ऐतिहासिकता अनिवार्य होती है। स्वच्छन्द ऐतिहासिक नाटकों में नाटक के कथानक, पात्र और चरित्र सभी काल्पनिक होते हैं सारा कार्य विशुद्ध ऐतिहासिक परिवेश में ही सम्पन्न होता है, पर पात्र ऐतिहासिक नहीं होते। नाटककार ऐतिहासिक वातावरण में पात्रों का सृजन करता है। इस प्रकार का नाटक ऐतिहासिक वातावरण प्रधान होता है और पात्र तथा घटनाएँ उससे प्रभावित होती है।

■

History of Aesthetics
(हिस्ट्री ऑफ इस्थेटिक्स)
सौंदर्यशास्त्र का इतिहास

सौंदर्यशास्त्र को प्राचीन विज्ञान माना जाय अथवा आधुनिक यह बड़ा ही विवादास्पद प्रश्न है। इसका आरंभ प्रसिद्ध जर्मन सौंदर्यशास्त्री बामगॉर्टन से माना जाय, जो अट्ठारवीं शताब्दी में हुआ था, अथवा इसके सूत्र यूनानी एवं रोमी सभ्यता के प्रारंभ में ही विद्यमान थे? यूनान में सुकरात के पूर्व भी आचार्यों द्वारा सौंदर्यशास्त्र के प्रकीर्ण विचार उपलब्ध होते हैं, अत: कहा जा सकता है कि अन्य शास्त्रों एवं ज्ञान मीमांसा की भाँति सौंदर्यशास्त्र का भी विवेचन एवं विश्लेषण प्राक् प्लेटो युग में प्रारंभ हो गया था। आधुनिक युग में इसे दर्शन का एक स्वतंत्र विभाग मान लिया गया है; किंतु प्लेटो के समय में ऐसी स्थिति नहीं थी। चतुर्थ शती के प्रारंभ से ही यूनान में आलोचना-सिद्धांतों का निर्माण पारंभ हो चुका था, जिनमें चार दर्शनज्ञों की उपपत्तियाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण थीं। इनमें प्लेटो, सॉक्रेटीज, अरस्तू तथा थियोफ्रैस्ट्स के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। प्लेटो के पूर्व सुकरात के अनुकरण-सिद्धांत में सौंदर्यशास्त्र के कुछ संकेत प्रात होते हैं, पर प्लेटो ही इस शास्त्र का जन्मदाता माना जाता है। उसे इसीलिए इस शास्त्र का जन्मदाता होने का श्रेय नहीं है कि उसके पूर्ववर्ती आचार्यों ने कला की समस्या पर विचार नहीं किया था, वरन् इसलिए भी कि उसने ही सर्वप्रथम अपनी दार्शनिक मान्यताओं के परिपार्श्व में कला-संबंधी निजी विचारों का व्याख्यान किया था। ऐतिहासिकों के

अनुसार यूनानी सौंदर्य-दर्शन के बीज पूर्व-वर्ती काव्यों चित्रों तथा मूर्त्तिकला आदि में विद्यमान हैं, तत्पश्चात सुकरात के दर्शन में इसका रूप दिखाई पड़ता है।

सोफिस्टवादी आंदोलन और सुकरात के द्वन्द्वन्याय के पश्चात कला एक दार्शनिक समस्या हो गई। सौफिस्टवादी युग के लिए सुकरात का आविर्भाव एक महत्त्वपूर्ण घटना थी जिससे सौंदर्यशास्त्रीय समस्याएँ उठीं, किंतु इसका वास्तविक रूप प्लेटो के विवेचन में ही प्रकट हुआ। प्लेटो के पूर्व यूनान में चित्रकला, नाट्यकला, स्थापत्य कला और काव्य कला की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी और सुकरात ने भी कला के अनुकरण-सिद्धांत को मान्यता दी थी तथा इसका विनियोग चित्रकला और मूर्त्तिकला में किया था। उसके अनुसार कला का अनुकरणमूलक सिद्धांत प्रकृति की नकल करने में ही निहित नहीं है और न कला की सफलता भ्रम की उत्पत्ति में है। सुन्दर कला का सृजन चुनी हुई अनुकृति में होता है। उसने कला-विवेचन में प्रतीक तत्त्वों का अन्वेषण किया था। इन्द्रियग्राह्य वस्तुओं के प्रतिच्छबि-अंकन तक ही अनुकृति का सिद्धांत परिमित नहीं है, अपितु उसका विस्तार अतीन्द्रिय वस्तुओं एवं मानसिक वृत्तियों (जैसे हास, क्रन्दन आदि) के भी अनुकरण में निहित है। वह सौंदर्य को निरपेक्ष न मानकर सापेक्ष मानता है तथा क़ला का उद्देश्य मनोरंजन सिद्ध करता है। उसका विश्वास सौख्यवादी सौंदर्यवृत्ति में था। इस प्रकार प्लेटो के पूर्व सुकरात द्वारा विवेचित अधोलिखित विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं।

(क) उसने कला के अनुकरणमूलक सिद्धांत में वृद्धि कर तथा उसे अतीन्द्रिय मानस वृत्तियों के अनुकरण में सिद्धकर, प्रतीकात्मक बना दिया। (ख) कला का उद्देश्य मनोरंजन सिद्ध कर एवं उसे चुने हुए अनुकरण करने में परिमित कर उसने सापेक्ष सौंदर्य की स्थापना की। विविध कलाओं की उन्नति होने के कारण यूनान में सौंदर्य-विषय अनुभूति जाग्रत हो चुकी थी, अत: अनिवार्यत: उस पर विचार होना प्रारंभ हुआ। उस समय तक सौंदर्यशास्त्र तत्त्व दर्शन और नीतिशास्त्र से पृथक् न हो सका था, फलत: सौंदर्य पर विचार करते समय यूनानी पण्डितों ने अपने नैतिक और दार्शनिक पक्षपातों को उससे अलग नहीं किया। वे नैतिक अच्छाई और तात्त्विकता से पृथक् सौंदर्य की कल्पना नहीं कर सकते थे और न उसके स्वतंत्र अस्तित्व की स्वीकृति प्रदान करते थे। सुंदर वही है जो शुभ और मंगलमय है और सबसे सुंदर वह है जो तात्त्विक है। उन्होंने तत्त्व पदार्थ को ही वास्तविक सौंदर्य का अधिष्ठान माना है।

प्लेटो (407-347 ई. पू.)

प्लेटो ने कला-संबंधी किसी पृथक् ग्रंथ की रचना नहीं की थी बल्कि अपने प्रसिद्ध ग्रंथों 'गणतंत्र', (तीसरे और दसवें अध्यायों में) लॉज तथा 'सिम्पोजिया' में इस संबंध में विचार किया था, अत: उसके कला-विषयक सिद्धांत उसके संवादों में बिखरे हुए देखे जाते हैं। ये संवाद क्रमागत रूप से तो नहीं, बल्कि समय-समय पर रचित हैं और इनमें विभिन्न विषयों; जैसे दर्शन, राजनीति, आचारशास्त्र तथा शिक्षा आदि पर विचार गुंफित हैं। यदा-कदा इन्हीं संवादों में साहित्यशास्त्र, कला, भाषा, तर्कशास्त्र और कविता की भी विवेचना हुई है। प्लेटो के कला विवेचन पर उसकी दार्शनिक एवं आचारशास्त्र-विषयक मान्यताओं का प्रत्यक्ष प्रभाव है। वह आदर्शवादी विचारक था, अत: उसने उसी दृष्टि से कला की समस्याओं पर विचार किया है। उसके अनुसार कला दृश्य जगत् की वस्तुओं और व्यापारों की अनुकृति है और दृश्यजगत् तात्त्विक जगत् की छाया है। काव्य भौतिक पदार्थों की छाया होने के कारण अनुकरण का भी अनुकरण एवं सत्य से दूर है। इसीलिए यह यूनानी 'गणतंत्र' के हेतु त्याज्य है। उसने बताया कि प्राकृतिक जगत् विचार जगत् की अपूर्ण छाया एवं अनुकरण है भौतिक जगत् में जो कुछ भी एकरूपता दिखलाई पड़ती है, उस पर विचार जगत् का प्रभाव है; अत: कला का संसार विवेक के भौतिक जगत् का अनुकरण है। यह अपूर्ण विचारों की अपूर्ण अनुकृति है; छाया की छाया है और वास्तविकता से तिगुनी दूर है। कलाकार अनुकरण द्वारा जो कुछ करना चाहता है वह प्रकृति द्वारा ही सिद्ध होता है। कला में केवल भावना की प्रधानता होती है और कलाकार भावप्रवण प्राणी होता है, अत: उसमें निरंकुशता और अनैतिकता का प्राधान्य रहता है। कविता और कला द्वारा न तो ज्ञान का विकास होता है और न इससे जनता के नैतिक आचरण को उचित संरक्षण पाप्त होता है। कभी-कभी रूपक काव्य की रचना कर कवि और अधिक अनर्थ कर देता है। उसके द्वारा जनता के चरित्र का परिष्कार नहीं होता और न काव्य का श्रेष्ठत्व सिद्ध होता है। कवियों की रचनाओं में कभी-कभी देवी-देवताओं के प्रति अश्रद्धा की भावना भी प्रदर्शित की जाती है जिससे जनता के हृदय में उन विभूतियों के प्रति आस्था नहीं रह जाती। इन ग्रंथों के अध्ययन से जनता के हृदय में अश्रद्धा उत्पन्न होती है और समाज का कुछ भी कल्याण नहीं होता। यद्यपि प्लेटो ने कला को गौण सिद्ध किया तथापि उसकी सौंदर्यात्मक रुचि पर संदेह नहीं प्रकट किया जा सकता। उसका कहना था कि उसे कला के साथ न्याय करने में अत्यंत प्रसन्नता होती यदि कोई उसे बौद्धिक सिद्ध कर देता। उसके नैतिक दृष्टिकोण ने कला के

प्रति अन्य मनस्कता प्रदर्शित की थी और उसके तत्त्व-ज्ञान ने उसे आदर्श गणतंत्र में स्थान देने से रोक दिया था। प्लेटो सौंदर्य के उस रूप पर विचार करता है जो शरीर में न रह कर नियम, कार्य, विज्ञान, सत्य, उत्तम एवं दैवीशक्ति में निहित रहता है। वह सौंदर्य को सापेक्ष सौंदर्य से पृथक् करके देखता है। उसके अनुसार विशुद्ध आनन्द में ही सच्चे सौंदर्य का निवास है जो (आनन्द) सुख की छाया से मुक्त रहे। वह माप एवं अनुपात तथा रंग और ध्वनि में सौंदर्य का पर्यवेक्षण करता है तथा इसकी खोज नहीं करता कि कौन-सी वस्तु सुंदर है बल्कि उस तत्त्व को महत्त्व देता है जिसके द्वारा पदार्थ सुंदर बनता है। उसके अनुसार सुंदर वह है जो उपयोगी हो। ऐसा होने पर असुंदर वस्तु भी सुंदर हो सकती है; क्योंकि उपयोगिता बुरी वस्तु को भी जन्म दें सकती है। यदि सौंदर्य उत्तम की ओर प्रवृत्त करे तो वह सहायक सिद्ध हो सकता है; किंतु ऐसी स्थिति में उत्तम वस्तु सुंदर नहीं हो सकती और न सुंदर वस्तु उत्तम हो सकती है। सुंदर वह है जो नेत्र और श्रवण को चमत्कृत कर दे। किंतु, यह तीन कारणों से प्रतीति-योग नहीं हो सकता। (क) सुंदर अध्ययन एवं नियम का कान और आँख से कोई संबंध नहीं रहता—(ख) क्योंकि खाने और सूंघने के आनन्द और काम के गंभीर आनन्द को हटाकर उन भावनाओं को सीमित करने के कारण की खोज नहीं की जा सकती। (ग) क्योंकि यदि सुंदरता का आधार दृश्य वस्तु होती तो वह कर्णगोचर नहीं हो सकती और यदि वह श्रव्य होती तो दिखाई नहीं दे सकती। सुंदरता दोनों में से किसी में भी नहीं रह सकती। अतः, सौंदर्य का प्रश्न, जिसे प्लेटो ने गंभीरतापूर्वक उठाया था, अविवेचित रह गया। प्लेटो के कला-संबंधी सिद्धांत को कठोर सौख्यवाद कहा जाता है। इसका कारण यह है कि वह कला के प्रदर्शन एवं उपयोग के लिए कठिन नियमों को लागू करता है। जब तक अनुकरण मूलक कला प्रातिभासिक विश्व की आंशिक प्रतिकृति है, जब तक इसका उद्देश्य ज्ञान का प्रत्यक्ष बोध न होकर अन्तर्वेग एवं संवेदन को उठाना है; तब तक वह पूर्णतः असंगत है। अतएव वह मस्तिष्क को दृढ़ न बना कर दूषित कर दे सकती है। कानून के रूप में वह सभी कलाओं को आनन्द के साधन-रूप में स्वीकार करता है। आदर्श गणतंत्र में स्थान पाने के लिए कला का प्रदर्शन दृढ़तापूर्वक संयत कर दिया जाय, उसे नियमों में आबद्ध कर दिया जाए और उसका व्यवहार केवल ऐन्द्रिय भावों की तृप्ति के लिए न कर मनुष्यों के चरित्र को सुधारने के लिए किया जाय। (दे. Plato)

अरस्तू–(384-322 ई. पू.)

पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्र को क्रमबद्ध रूप प्रदान करने का श्रेय अरस्तू को है। उसने काव्य या कला को राजनीति, धर्म, आचारशास्त्र के नियंत्रण से मुक्त कर उसके स्वतंत्र स्वरूप की प्रतिष्ठा की और यही उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धि है। अरस्तू ने काव्य या कला का संबंध आनन्द के साथ स्थापित कर प्लेटो के अभियोगों का मार्जन किया। प्लेटो ने कला के मानव-मन पर पड़नेवाले उत्तेजनात्मक प्रभावों का उल्लेख कर उसका तिरस्कार किया था। अरस्तू ने अनुकृति-सिद्धांत को भव्यतर भूमि प्रदान की और अनुकरण का अर्थ केवल बाह्य प्रकृति का अनुकरण न मान कर उसे मानव की अन्तः प्रकृति का भी अनुकरण सिद्ध किया। (दे. Theory of imitation, अनुकृतिवाद या अनुकरण-सिद्धांत तथा Aristotle) अरस्तू उसने अपने 'काव्यशास्त्र' (पाइटिक्स) नामक ग्रंथ में काव्य के सर्वांगीण रूप का विवेचन किया है और 'मेटाफिजिक्स' में सुंदर और शुभ में अंतर स्थापित करने का प्रयत्न किया है। उसने बताया कि नैतिक श्रेष्ठता सदा किसी व्यापार (कर्म) में निहित रहती है, पर सौंदर्य की प्राप्ति गतिहीन या निस्पन्द पदार्थों में भी हो सकती है। उसने सौंदर्य को आवश्यकता और उपयोगिता से पृथक् पदार्थ स्वीकार किया है। उसका कहना था कि वह आनन्द जो सुंदर की अनुभूति से उत्पन्न है, इच्छा या वासना से रहित होता है। उसने सुंदर पदार्थों का वर्णन करते हुए कहा कि व्यवस्था (ऑर्डर) समानुपात (Symmetry) तथा निर्दिष्टता (Definiteness) इसके सामान्य गुण हैं। सुंदर वस्तुएँ न तो अधिक बड़ी हों और न अधिक छोटी। वह 'काव्यशास्त्र' में काव्य को दर्शन से भी श्रेष्ठ सिद्ध करता है और इतिहास की अपेक्षा उसे अधिक गंभीर स्वीकार करता है। उसने अनुकरण का अर्थ पुनः सृजन से लिया है और संभावनाओं के अनुकरण पर भी बल दिया है। उसका कहना था कि प्रत्येक कला तथा शिक्षा-पद्धति उन अधूरे कार्यों की भी पूर्ति हैं जो प्रकृति से बचे रहते हैं। (पोलिटिक्स, IV (VII), 17) कला का काम है प्रकृति के असफल कार्यों की पूर्ति करना या विलुप्त अंगों का अनुकरण करना। (फिजिक्स, पृ. 26) इस प्रकार अनुकरण शब्द के अर्थ में विस्तार लाकर अरस्तू ने काव्य तथा कलाओं को सम्मानित पद प्रदान किया। चूँकि कलाकार कला के माध्यम से प्रकृति की अनुकृति करता है, अतः कला और प्रकृति में सादृश्यता का होना अनिवार्य है। कला अधूरी प्रकृति को पूर्ण करने का प्रयत्न है और 'कला प्रकृति की अनुकृति है' यह वाक्य इस अर्थ को द्योतित करता है कि वह मनुष्य की बाह्य और अन्तः प्रकृति की अनुकृति है। अरस्तू के टीकाकार

बूचर ने अनुकृति का अर्थ 'सांकेतिक उल्लेख नहीं बल्कि सादृश्य-विधान या मूल का पुनरुत्पादन' किया है। उनके अनुसार कला मूल वस्तु की प्रतिकृति ही (फोटो) नहीं करती, अपितु वह इन्द्रियों को जिस रूप में प्रतीत होती है, उसी रूप में उसे प्रस्तुत करती है। "कलात्मक सौंदर्य की अनुभूति तत्त्वग्राहिणी बुद्धि को नहीं, बल्कि भावुकता एवं मन की मूर्त्ति-विधायिनी शक्ति को होती है।" (सौंदर्यशास्त्र की पाश्चात्य परंपरा, पृ.49) अरस्तू नैतिक आग्रहों से मुक्त होकर सौंदर्य की परिभाषा नहीं करता। उसके अनुसार सौंदर्य वह शिव है जो आनन्द प्रदान करता है। उसने सौंदर्य और शिवत्व में भेद उपस्थित करते हुए बताया कि शिवत्व की उत्पत्ति मनुष्य के चरित्र से होती है और सौंदर्य जड़ पदार्थों में भी निहित रहता है। अरस्तू ने मुख्य रूप से काव्य और नाट्यकला को ही अपने विवेचन का विषय बनाया है और स्थापत्य, शिल्प तथा चित्रकलाओं की प्रसंगवश चर्चा की है। वह इन्हें संगीत और काव्य की अपेक्षा कम व्यंजक स्वीकार करता है। सौंदर्य और शिव को तद्रूप देखने के कारण अरस्तू भी ग्रीक-परंपरा से आगे बढ़कर सौंदर्य-संबंधी अवधारणाओं को कोई नई दिशा नहीं दे सका। वह कला को मानव के लिए अकल्याणकर नहीं मानता और न उसे सत्य से तिगुनी दूर कहता है। उसके अनुसार कला हमारे दूषित मनोभावों का विरेचन कर प्रकृति की अपूर्णता को पूर्ण करती है। उसने बताया कि भयानक वस्तुओं का अनुकरण भी हमारे लिए आनन्दप्रद होता है। अरस्तू ने अनुकृति-सिद्धांत को व्यापक आधार फलक पर अधिष्ठित किया जिसके अनुसार उसमें समस्त जागतिक व्यापार का समावेश हो जाता है और अपनी समस्त अभिव्यक्ति के साथ मानवजगत् उसकी अनुकृति की परिधि में आ जाता है। उसने कला को नवीन गरिमा प्रदान कर उसे प्रकृति का पूरक सिद्ध किया और विरेचन सिद्धांत का विवेचन कर काव्यास्वाद के मनोवैज्ञानिक सत्यों की ओर इंगित किया। उसने सर्वप्रथम त्रासदी के रचना-तंत्र पर विचार कर उसके आधारभूत तत्त्वों की विवेचना की-कथानक, चरित्र, पद-रचना, विचारतत्त्व, दृश्य विधान तथा गीत-और महाकाव्य, कॉमदी आदि के स्वरूप एवं रचना-शिल्प का विश्लेषण कर त्रासदी के साथ उनका साम्य-वैषम्य भी स्थापित किया। (दे. Tragedy त्रासदी)

लौंजाइनस ने (दे. Longinus)– काव्य या कला के प्रमुख तत्त्व के रूप में औदात्त्य (सबलाइम) को मान्यता दी। उसने अपने ग्रंथ 'पेरिइप्सुस' या 'काव्य में उदात्ततत्त्व' में बताया कि कवि अपनी कला के कारण महान नहीं बनता, अपितु भावना, कल्पना तथा उस शक्ति के कारण महान बनता है जो वर्ण्य विषयों को

पाठकों तक पहुँचाती है। उसका कहना है कि काव्य में ऐसी महानशक्ति होती है जो मानव को निर्बिन्ध भाव से प्रभावित करती है। उसने कला की सर्वोत्कृष्ट कसौटी और कला के पूर्ण उत्कर्ष का वर्णन करते हुए कहा कि उसका भावावेगपूर्ण चित्रण ही इसका कारण है। "जिस कौशल से वह (कवि) आवेग की अधिक से अधिक प्रबल एवं प्रभावोत्पादक परिस्थितियों का चयन और निबंधन करता है, वही उसकी (कला की) उत्कृष्टता का मूल है।" (काव्य में उदात्ततत्त्व, पृ. 61) उसका कहना है कि काव्यगत औदात्त्य का लक्ष्य भावोद्रेक है। "उदात्त भाषा का प्रभाव श्रोता के मन पर प्रत्यय के रूप में नहीं भावोद्रेक के रूप में पड़ता है।" भावोद्रेक की अनुभूति आनन्दमयी होती है। उदात्त को वह आत्मा की महानता का चित्र मानता है और उसकी अनुभूति हमें ईश्वर की महानता के समीप पहुँचा देती है। उसने काव्य में उदात्ततत्त्व का निरूपण करते हुए उदात्तभाव के साधक शैली तत्त्वों का भी सविस्तार विवेचन किया है।

मध्ययुग–में प्लोटिनस नामक (205-270 ई.) दार्शनिक ने अपने आधारभूत सिद्धांतों द्वारा 'नव्यप्लेटोवाद' की स्थापना की। वह सत्य के अनेक रूपों का स्रोत एक अखण्ड परम सत्य को स्वीकार करता है जिससे क्रमश: मस्तिष्क, आत्मा और पदार्थों की उत्पत्ति हुई है। उसने अपने दार्शनिक मन्तव्य के आधार पर ही सौंदर्यशास्त्रीय अवधारणाओं का व्याख्यान किया है। उसके तद्विषयक विचारों पर तत्त्व-मीमांसा एवं धर्म दोनों का समन्वय पाया जाता है। उसने बताया कि सौंदर्य, सामंजस्य, संतुलन आदि से परे हैं अर्थात शरीर, वस्तु या कलाकृति अपने अंगों सहित पूर्ण होने पर तब तक सुंदर नहीं हो सकते जब तक उनमें सौंदर्य की अभिव्यक्ति न हो सके। उसके अनुसार सौंदर्य इन्द्रिय का विषय न होकर प्रज्ञा का विषय है; वह अशरीरी होकर भी शरीरी पदार्थ में प्रकट होता है। सौंदर्यानुभूति तभी होती है जब सौंदर्य के साथ आत्मा का एकत्व-स्थापन हो, अत: सौंदर्यानुभूति को आनन्दातिरेक की स्थिति कहते हैं। प्लाटिनस के मतानुसार वास्तविकता के प्रतीकात्मक चित्रण को कला कहते हैं और कलाकृति भाव को भौतिक माध्यम द्वारा प्रतीकात्मक स्वरूप प्रदान करती है। उसने कला को भौतिक जगत् के पदार्थों की अनुकृति मानकर उसे कल्पनाजन्य कहा है जिसके कार्यकलाप अनुकृति से ऊपर है। इसका कारण यह है कि अनुकरण द्वारा केवल दृश्य वस्तुओं की ही प्रतिकृति प्रस्तुत हो सकती है, पर कल्पना द्वारा उन पदार्थों का भी चित्रण किया जा सकता है जो दृश्यजगत् से परे होती हैं। कला का कर्मक्षेत्र अतीन्द्रिय होता है। प्लॉटिनस ने सौंदर्यानुभूति को ब्रह्मानुभूति के समकक्ष प्रतिष्ठित कर उसे संवेगों

की अवस्था से ऊपर उठा दिया और नैतिकता के बंधन से मुक्त कर उसे प्राज्ञिक स्तर की अनुभूति मान लिया। उसने कलाकृति को सृजन माना है जिसका रूप सृजन से पूर्व स्रष्टा या कलाकार में निहित रहता है और वहीं से वह कला के रूप में रूपांतरित होता है।

सेण्ट आगस्टाइन-(353-430 ई.)

सेण्ट आगस्टाइन में मध्ययुगीन धार्मिक कट्टरता और पूर्वाग्रहों के होने पर भी कलात्मक सौंदर्य के प्रति रुचि है जो बहुत कुछ सिसरो के विचारों से मेल खाती है। वह सौंदर्य को सामंजस्य, संतुलन और अनुपात की परिधि से बाहर नहीं निकाल सका, पर समरूपता की अपेक्षा रंगों को अधिक महत्त्व प्रदान किया। उसके अनुसार रंगों की मधुरता तथा अंगों की पारस्परिक सुसंगति में सौंदर्य का रूप निहित है। किसी कलाकृति में सौंदर्य की स्थिति उसकी अन्विति में है, जो अनेकता या खण्डों में भी निहित रहती है। उसका कहना था कि यदि कुरूपता को उचित स्थान पर प्रस्तुत किया जाय तो उससे सौंदर्य आहत नहीं होता, अपितु अधिक प्रौढ़ हो सकता है। यदि चित्र में प्रकाश और छाया को उचित स्थान पर रखा जाय तो उनका समान महत्त्व हो सकता है।

टामस एक्विनास-(1125-1247 ई.)

टामस एक्विनास का कहना था कि जिसकी अवधारणा आनन्दपूर्वक हो, उसे सुंदर कहते हैं। वह पूर्णता (अखण्डता) और सामरस्य (संगति) को सौंदर्य का विशिष्ट गुण मानता है। उसके अनुसार सत्य तथा शिव में परस्पर तादात्म्य होता है और दोनों का आधार एक ही है-रूप। अतः, जब सौंदर्य की प्रशंसा की जाती है तो अप्रत्यक्ष रूप से शिव की भी प्रशंसा हो जाती है। पर, तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर दोनों में अंतर दिखाई पड़ता है। जिसकी आकांक्षा सभी करते हैं, वही शिव है और इसका एक पक्ष सोद्देश्य होता है। इसके पीछे किसी वस्तु की ओर प्रेरित करने वाली एक प्रवृत्ति देखी जाती है। फलतः शिवत्व का संबंध हमारी इच्छा, प्रवृत्ति या स्वाद के साथ होता है और इच्छा की पूर्ति होने पर इसकी अनुभूति होती है। पर, सौंदर्य का संबंध मस्तिष्क या ज्ञानात्मक विभाग के साथ होता है और वे ही वस्तुएँ सुंदर हो सकती हैं जो प्रत्यक्षीकरण की क्रिया द्वारा आनन्द प्रदान कर सकें।

नव्यशास्त्रीय युग–मध्ययुग के पश्चात यूरोप में नवजागरण की भावना का उद्योतन हुआ और धार्मिक शास्त्रीयतावादी विचारधारा के स्थान पर बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा हुई। ऐसे दार्शनिकों में बेकन, देकार्त हाब्स, लाइबनीज तथा स्पिनोजा के नाम विशेष रूप से उल्लेख हैं।

बेकन–(1561-1626 ई.)

बेकन ने मस्तिष्क को तीन भागों में विभक्त कर-स्मृति, कल्पना, तर्क या विवेक-उनका संबंध क्रमशः इतिहास, काव्यकल्पना तथा दर्शन के साथ स्थापित किया। उसने समस्त कलाओं का संबंध कल्पना के साथ स्थापित किया। वह कल्पना को मस्तिष्क की एक क्रीड़ा मानता है जो वास्तविक कर्त्तव्य का सम्पादन नहीं करती। उसके विवेचन में कला के क्रीड़ा-सिद्धांत की पूर्व झलक प्राप्त होती है। उसके अनुसार सौंदर्य अनुपात से युक्त होता है, किंतु वह अनुपात नहीं होता। वह विचित्रता से युक्त रहता है। वह सौंदर्य का सर्वोत्तम रूप उसे मानता है, जिसे चित्र द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता उसे पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। उसके सौंदर्य संबंधी निष्कर्ष इस प्रकार थे–'कोई भी भव्य सौंदर्य ऐसा नहीं है, जो अपने अनुपात में विचित्रता न रखता हो।'

देका़र्त–(1596-1650)

देकार्त दर्शन के इतिहास में बुद्धिवादी प्रवृत्ति का प्रवर्तक माना जाता है उसकी सौंदर्य-मीमांसा पर बुद्धिवादी विचारधारा का पूर्ण प्रभाव है। वह मानता था कि दर्शन की पद्धति जब गणित की पद्धति से मेल खाये तभी उसमें स्पष्टता तथा विशिष्टता का समावेश हो सकता है। उसने सौंदर्यानुभूति को भी बौद्धिक आनन्द की संज्ञा दी और उसे विभिन्न आवेगों की उत्तेजना के फलस्वरूप उत्पन्न अनुभूति बताया जो आनन्दपरक होती है। उसके अनुसार काव्य अथवा नाटक से उत्पन्न आवेग आनन्दपरक होते हैं और वे हानिप्रद नहीं होते। उसका कहना है कि किसी विषय से हमें इसलिए आनन्द का बोध होता है जब कि हमारी चेतना में इस तथ्य की प्रतीति हो जाती है कि यह हमारी श्रेष्ठ सम्पत्ति है। उसने सामान्य आनन्द को विशुद्ध बौद्धिक आनन्द से भिन्न माना और बताया कि सौंदर्यानुभव या कलात्मक ज्ञान का संबंध किसी सुंदर विषय के साथ होता है। उसने स्वीकार किया कि भाषा में इतनी शक्ति होती है जिससे कि वह वास्तविक घटनाओं के सदृश तत्क्षण विचारों तथा संवेगों को जाग्रत कर सके। वह कलात्मक आनन्द को भी मूलतः

बौद्धिक आनन्द मानता है। देकार्त ने संगीत पर भी लेखों की रचना की है। उसने साहित्यिक शैली की भव्यता तथा मधुरता की प्रशंसा की और चमत्कारयुक्त कोमलता, वाणी के सौंदर्य, कल्पना की शक्ति तथा आनन्दानुभूति को महत्त्व दिया। उसने बताया कि कवि दार्शनिक की अपेक्षा लोगों को अधिक प्रभावित करने में सक्षम होता है और जनमत में ज्ञान का अधिक प्रसार कर सकता है।

हॉब्स–(1588-1679 ई.)

हॉब्स भौतिकवादी दार्शनिक था जिसके अनुसार भूतद्रव्य तथा गति के अतिरिक्त किसी भी पदार्थ का अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार उसके अनुसार दो ही वास्तविक सत्ताएँ हैं—पदार्थ तथा गति। उसने कल्पना को मानस प्रतिमाओं की जननी कहा है। गति की उत्पत्ति संवेदना से होती है और पदार्थ बाह्य सत्ता है। कल्पना मनोवेग तथा इच्छा से युक्त रहने के कारण सोद्देश्य होती है और किसी उद्देश्य से युक्त होने के कारण वह मस्तिष्क को निष्क्रिय नहीं बनाती। कल्पना की इसी शक्ति से उपमाओं और रूपकों की सृष्टि होती है और उनकी सहायता से कवि पदार्थों को आनन्ददायक या क्षति कारक सिद्ध करने में समर्थ होता है। वह काव्य और कला में तथा कल्पना दोनों को आवश्यक मानता है, पर उनमें भी कल्पना को अधिक सशक्त होने पर बल देता है। कवि-कल्पना के वैचित्र्य से ही पाठक उस पर आकृष्ट या मोहित होता है और कवि की महानता उसकी कल्पना पर ही निर्भर करती है। पर, अन्यत्र वह 'सद्बोध' को कल्पना की अपेक्षा अधिक महत्त्व देता है। उसने सौंदर्य और शिव में संबंध स्थापित करते हुए कला के लिए नैतिकता को आवश्यक माना है।

लाइबनीज–(1646-1716 ई.)

लाइबनीज ने विज्ञान की अपेक्षा कला को कम मूल्यवान माना है। वह सौंदर्य को और कुछ नहीं, ईश्वर का प्रकाश मानता है। उसके अनुसार अनुपात, व्यवस्था तथा सामंजस्य सौंदर्य की उपाधियाँ हैं। वह ज्ञान की चार श्रेणियाँ—अस्पष्ट-ज्ञान, स्पष्ट पर उलझन युक्त ज्ञान, विशिष्ट ज्ञान तथा पर्याप्त या सहजानुभूतिमूलक ज्ञानमान कर सौंदर्यमूलक ज्ञान को द्वितीय स्तर पर स्थापित करता है। उसके अनुसार कला धर्म-प्रचार का एक साधन-मात्र है जिसका उद्देश्य सद्बृत्तियों का पाठ पढ़ाना, नैतिक उपदेशों को प्रस्तुत करना एवं लोक में धर्म को लोकप्रिय बनाना है।

स्पिनोजा–(1632-1677 ई.)

इसके दर्शन को सर्वेश्वरवादी दर्शन कहते हैं जिसके अनुसार ईश्वर में विश्व और विश्व में ईश्वर की सत्ता है। स्पिनोजा को 'ईश्वर प्रेम में पागल' की उपाधि दी गई थी। इसने देकार्त की तरह-ज्यामिति और गणित को महत्त्व दिया है। सौंदर्यशास्त्र के संबंध में इसकी कोई विशिष्ट देन नहीं है। इसने बाइबिल को ही उच्च कोटि का साहित्यिक ग्रंथ स्वीकार किया था और उसी के प्रसंग में कला विषयक अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया था।

आंग्ल अनुभववादी सौंदर्यशास्त्र–17वीं शती में हाब्स, लॉक, ह्यूम, हचेसन, एडीसन तथा बर्क ने इंगलैण्ड में ऐसे सौंदर्य-दर्शन का चिंतन किया जिसे अनुभववादी सौंदर्य-दर्शन कहते हैं।

जॉन लॉक–

अनुभववाद दर्शन की वह विचार-पद्धति है जिसके अनुसार सम्पूर्ण ज्ञान का मूल अनुभव है और किसी प्रकार का ज्ञान अनुभव से स्वतंत्र नहीं है। जॉन लॉक का प्रभाव सभी अनुभववादियों की अपेक्षा अधिक है।

वह सौंदर्य को रंगों और आकारों का ऐसा संयोजन मानता है जिसे देखकर दर्शक को सुखानुभूति हो। उसने सौंदर्य को जटिल प्रत्यय कहा; क्योंकि उसकी न तो मस्तिष्क से कोई स्वतंत्र निजी सत्ता है और न वह किसी बाह्य पदार्थ की यथावत् अनुकृति ही है। उसने सौंदर्य को कल्पना की सृष्टि कहा जो उसकी जटिलता का भी एक कारण है। उसके अनुसार सौंदर्य की अवास्तविकता के कारण दर्शकों के मन में 'सुखदभ्रम' उत्पन्न होता है। इस प्रकार सौंदर्यानुभूति को वह सुखद मान कर भी भ्रांति करार करता है। उसका ऐसा विश्वास था कि कवि की कल्पना पदार्थों को मिथ्यारंग, आभास, सादृश्य आदि प्रदान कर उनकी वस्तुस्थिति को छिपादेती है और सामान्य दर्शक उसके कारण सत्य से अपने को दूर पाता है। वह कहता है कि सौंदर्य का हमारे मस्तिष्क में कोई आधार नहीं होता, यह तो हमारी परंपराओं और जीवन-पद्धतियों की देन है। "लॉक के अनुसार कवि की कलात्मक प्रस्तुति से उत्पन्न आनन्दात्मक भ्रम ही काव्यात्मक अनुभूति है।" (साधारणीकरण: एक शास्त्रीय अध्ययन, पृ. 277)

डेविड ह्यूम–(1711-1776 ई.)

ह्यूम को संवेदनवादी चिंतक माना जाता है। उसने स्पष्ट रूप से यह विचार व्यक्त किया है कि काव्य कोई आधिदैविक वस्तु नहीं है और न किसी कवि की प्रतिभा स्वर्गिक वस्तुओं से अनुप्राणित है। वह काव्य की उच्छलधारा को मनोवैज्ञानिक मानता है। उसने कला का सर्वोच्च लक्ष्य प्रसन्नता या आनन्द स्वीकार किया है और बताया है कि कलात्मक आनन्द के आस्वादन में तीन तत्त्वों का योग है—मानव प्रकृति, संस्कार और प्रथाएँ तथा मानसिक परिवर्तन। वह कला के आस्वादन को शुद्ध भावात्मक मानता है, तर्क-बुद्धि की देन नहीं। कला का आस्वादन करते समय हानि-लाभ का भावमन में नहीं रहता और हम मुक्त भाव से उसका आस्वादन करते हैं। वह सौंदर्य को मानव स्वभाव की संवेदना या आवेग मानता है। उसके अनुसार सौंदर्य काव्य में न होकर पाठक या दर्शक की मनोवृत्ति में होता है। वह कवि की मधुर कल्पना को धरती की देन मान कर सौंदर्य की दैवी उत्पत्ति को अस्वीकार कर देता है। वह लॉक के विचारों का अनुमोदन करते हुए सौंदर्य को इन्द्रियानुभूति की वस्तु मानता है।

एडीसन–(1672-1719 ई.)

एडीसन ने 'कल्पना के सुख' नामक निबंध में एक साहित्यकार के रूप में सौंदर्यानुभुति का विवरण प्रस्तुत किया है। उसने भावोद्दीपन को कलाकृति का लक्ष्य स्वीकार कर बताया कि जो कला हमारे भावों को जितना अधिक उत्तेजित करने में समर्थ होगी वह उतनी ही अधिक प्रसन्नता प्रदान करेगी एडीसन अपने युग का समर्थ आलोचक था, अत: उसका संबंध किसी दार्शनिक सम्प्रदाय से नहीं रहा। उसने विषय के प्रतिपादन में देकार्त और लॉक दोनों से प्रभाव-ग्रहण किया था। उसने कल्पना को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान कर बताया कि कल्पना नवीन तथा मौलिक बिम्बों का ही निर्माण नहीं करती, अपितु ऐसे बिम्बों को ग्रहण भी करती है। वह कल्पनाजन्य आनन्द को दो प्रकार का मानता है—एक प्रधान और दूसरा गौण। कल्पनाजन्य प्रधान आनन्द की उत्पत्ति वस्तुओं की प्रत्यक्ष अनुभूति से होती है और गौण कल्पना जन्य आनन्द का उद्‌भव कलाकृतियों द्वारा होता है। वह नेत्रेन्द्रिय तथा श्रवणेन्द्रियों को सौंदर्यबोध की इन्द्रियाँ स्वीकार कर प्रथम को अधिक आनन्ददायक मानता है। उसके अनुसार कलाजन्य आनन्द न तो वस्तुनिष्ठ होता

है और न व्यक्तिनिष्ठ वह वस्तु व्यक्ति सापेक्ष होता है। कल्पनाजन्य आनन्द के तीन स्रोत होते हैं—महानता, नव्यता तथा सौंदर्य। महानता से व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं विस्मय की भावना उन्मुक्त होती है और उसे निर्विघ्नभाव से उनका अनुभव होता है। नव्यता के द्वारा हमारी कौतूहल वृत्ति की संतृप्ति होती है और सौंदर्य की अनुभूति सामाजिक मूल प्रवृत्ति है जो देश, समाज और जाति-सापेक्ष है और इसका मूल आधार है यौन प्रवृत्ति एडीसन यह स्वीकार करता है कि जो कलाकृति संवेगों को सम्यक् रूपेण उत्तेजित करने का प्रयास करती है, वही अधिक आह्लादक और रमणीय होती है। वह बतलाता है कि दुःखात्मक अनुभूति से भी आह्लाद की प्राप्ति होती है; क्योंकि प्रेक्षक की दृष्टि में संवेगों की कलात्मक प्रस्तुति काल्पनिक ही है। उसने कल्पनाजन्य आनन्द की अवस्था को आत्मविस्मृति की स्थिति माना है।

एडमंड बर्क–(1729 से 1997 ई.)

बर्क ने सौंदर्य के संदर्भ में टेस्ट या अभिरुचि का स्वरूप निश्चित किया है जिस पर अधिक विस्तार के साथ काण्ट ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'क्रिटिक ऑक जजमेण्ट' में गंभीरतापूर्वक विचार किया। बर्क ने लोंजाइनस की उदात्तभावना की अनुभूतिपरक व्याख्या प्रस्तुत कर उसके अपूर्ण विचार को पूर्ण बनाया। उसने सौंदर्यबोध को सामाजिक प्रवृत्ति माना और उसे भौतिक स्तर पर उपस्थित किया। उसके अनुसार सौंदर्य का संबंध विवेक और बुद्धि से नहीं है, उसकी इच्छा अपने आप में स्वतंत्र है। वह सौंदर्य का संबंध उन गुणों से स्थापित करता है जिनके कारण मनुष्य के हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है या इसी प्रकार के आवेग की उत्पत्ति होती है। उसने सौंदर्य से उत्पन्न आवेग को इच्छा से भिन्न भी कहा है; किंतु यदाकदा इच्छा आवेग या प्रेम के साथ सक्रिय भी हो जाती है। उसने बताया कि उदात्त की अनुभूति के प्रबल होने पर सौंदर्य की उत्पत्ति नहीं हो पाती। उसने सुंदर पदार्थ को साकार, रूपयुक्त तथा लघु बतलाया है और उदात्त को विशाल, निराकार तथा रूप-रहित कहा। उसके अनुसार अपनी अस्पष्टता के कारण ही कोई वस्तु उदात्त बनती है। असीम और अनन्त की भावनाएँ उदात्त हैं और स्पष्ट-भावना लघु है। आयाम का विस्तार ही उदात्त का प्रमुख कारण है और उदात्त की भावना का

संबंध हमारी आत्मरक्षा की प्रवृत्ति से है। बर्क ने काव्यानुभूति को संवेगात्मक माना है और बताया है कि काव्य तथा नाटक से संवेगों की प्रस्तुति होती है।

जर्मन प्रत्ययवाद

आधुनिक सौंदर्यशास्त्र का प्रवर्तक प्रसिद्ध जर्मन विचारक बामगार्टन (1714-62 ई.) माना जाता है। उसने सौंदर्यशास्त्र को स्वतंत्रशास्त्र का रूप देकर बताया कि इसमें सौंदर्य और कला का क्रमबद्ध विवेचन किया जाता है। प्रसिद्ध रूसी उपन्यासकार और चिन्तक टॉल्स्टाय ने बामगार्टन को सौंदर्यशास्त्र का जन्मदाता स्वीकार किया है। उसने अपनी पुस्तक 'एस्थेटिक्स' का प्रणयन 1750 ई. में किया था। उसके अनुसार तार्किक या बौद्धिक ज्ञान की वस्तु सत्य है और ऐन्द्रिय ज्ञान की वस्तु सौंदर्य है। बुद्धिक्षेत्र में जिस धर्म या तत्त्व की अभिव्यक्ति को सत्य कहते हैं, इन्द्रियानुभव के क्षेत्र में उसी की अभिव्यक्ति सौंदर्य है। पूर्णतत्त्व या ब्रह्म बुद्धि द्वारा गृहीत होने पर सत्य कहलाता है और वही जब इन्द्रियों द्वारा गृहीत होता है तो उसकी अभिधा सौंदर्य होती है। सौंदर्य का उद्देश्य अभिलाषा को जाग्रत करना और आनन्द प्रदान करना है। सौंदर्य अपने में पूर्ण होता है और उसका अनुभव परमनिरपेक्ष रूप में नहीं किया जा सकता, उसका अनुभव इन्द्रियों द्वारा होता है। बामगार्टन का कहना है कि सौंदर्य की पूर्णतम अभिव्यक्ति प्रकृति में होती है, अत: कलाकार का कर्म उसकी अनुकृति करना है। कला का सर्वोच्च लक्ष्य प्रकृति की प्रतिकृति उतारना है। "बामगार्टन का अभिप्राय यह जान पड़ता है कि इन्द्रियक बोध में एक स्वगत सामंजस्य होता है जिससे हमारे चित्त में सुख उत्पन्न होता है और जिस सुख तथा सामंजस्य को हम ज्ञान की भाषा में प्रकाशित नहीं कर सकते, उसे सौंदर्य कहा जा सकता है। जिस प्रकार स्फुट ज्ञान के प्रकाश में एक प्रकार का सामंजस्य दिखाई देता है, उसी प्रकार अस्फुट ऐन्द्रियकबोध में भी एक सामंजस्य होता है। उस सामंजस्य के बोध से हमारे हृदय में आनन्द उत्पन्न होता है। बामगार्टन का मत है कि सामंजस्य की पूर्णता (परफेक्शन) को ही सौंदर्य कहते हैं। इसीलिए सौंदर्य बाह्य न होकर आभ्यन्तरिक माना जाता है। ऐन्द्रियक वस्तु के सामंजस्य को सुंदर नहीं कहा जा सकता, किंतु ऐन्द्रियक बोध

के सामंजस्य को अवश्य कहा जा सकता है। स्फुट ज्ञानाकार में इस बोध के उत्पन्न हो जाने पर, वह सत्य-सा प्रकाशित होता है।" (सौंदर्यतत्त्व, पृ.194-195)

विंकलमैन-(1716-1761 ई.)

विंकलमैन ने सर्वप्रथम कला की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की और काव्य तथा चित्रकला के अन्तर को स्पष्ट किया। उसके अनुसार प्रत्येक प्रकार की कला अपने विशिष्ट, युग संस्कृति और आत्मा की अभिव्यक्ति है। उसने कला का उद्देश्य एक मात्र सौंदर्य को माना और बतलाया कि वह शिवत्व से स्वतंत्र है। विंकलमैन के सौंदर्य-विषयक मत प्राचीन ग्रीक कला तथा मूर्तिकला के अध्ययन के आधार पर निर्मित थे। उसने निष्प्रयोजन आनन्द को ही कला का मुख्य उद्देश्य स्वीकार किया। लेसिंग सौंदर्य से केवल जड़ सौंदर्य का ही अर्थ ग्रहण करता है और इसी दृष्टि से चित्र तथा कविता की आलोचना करता है कि उनमें जड़ सौंदर्य की कहाँ तक अभिव्यक्ति होती है। उसके अनुसार कविता में बाह्य सौंदर्य की उसी प्रकार अभिव्यक्ति नहीं होती जिस प्रकार कि वह चित्र में व्यक्त होता है। विंकलमैन अवयव-संस्थान की विचित्रता में ही सौंदर्य मानता है और बताता है कि आकार और रेखा के पारस्परिक सामंजस्य में ही सौंदर्य होता है। उसने उदात्त के संबंध में भी चंतन किया है। उसके अनुसार कला की उदात्त के संबंध में भी चिंतन किया है। उसके अनुसार कला की उदात्त शैली का लक्ष्य सौंदर्य न होकर भव्यता और शालीनता है और इसका वैशिष्ट्य भव्य, सादगी और एकता में निहित है। उदात्त शैली हमारे प्रबल संवेगों को अभिव्यक्त न कर आत्मा की सार्थक प्रशान्ति को प्रकट करती है।

लेसिंग (1729-1781 ई.)

लेसिंग प्रसिद्ध जर्मन आलोचक और कलाशास्त्री था। उसने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'लाओकन' में ललितकलाओं के दर्शन को सुदृढ़ सैद्धांतिक आधार प्रदान किया तथा काव्य और चित्रकला के संबंध को स्पष्ट कर कलाओं का सम्यक् विभाजन किया। उसने सौंदर्य का अर्थ 'मनुष्य-सौंदर्य' से लिया और सुंदर की तरह असुंदर या कुत्सित की भी स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की। चित्रकला और कविता में अन्तर स्थापित करते हुए उसने इस तथ्य का खण्डन किया कि चित्र मूक कविता है और कविता मुखर चित्र। उसके अनुसार प्रत्येक प्रतिभाशाली कलाकार अपने मार्ग का स्वयं निर्माण करने में समर्थ है। वह कलाकार को बन्धनमुक्त मानकर

उसकी किसी प्रकार की परतंत्रता को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं था। उसके अनुसार कवि, चित्रकार तथा मूर्तिकार सभी एक शाश्वत और सार्वजनिक सत्य की अभिव्यक्ति करते हैं।

काण्ट (1724-1804 ई.)

कला-चिंतन के इतिहास में काण्ट का विवेचन प्रशंस्य मौलिकता का द्योतक है और उसकी स्थापनाएँ शिखरोन्मुखी हैं। उसने 'निर्णय-मीमांसा' या 'क्रिटिक ऑफ जजमेण्ट' नामक युगप्रवर्तक ग्रंथ की रचना की है जिसमें सौंदर्य, कला तथा अभिरुचि आदि विषयों पर गंभीर विचार अनुस्यूत हैं। उसने अनुभववादी तथा बुद्धिवादी विचार सरणियों में, (जो परस्पर विरोधी विचारधाराएँ हैं) संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया है और यही उसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। उसकी इस महनीय देन पर विचार करते हुए हीगेल ने कहा था कि काण्ट ने ही सर्वप्रथम सौंदर्य की बुद्धिपूर्ण विवेचना की है। काण्ट प्रकृति जगत् और नैतिक जगत् या नैतिक प्रयत्नों के बीच घोर द्वैत उपस्थित करता है और अध्यात्म जगत् तथा जड़जगत् में किसी प्रकार के संबंध की स्थापना नहीं करता। उसका कहना है प्रकृति में यांत्रिकता या नियमशीलता के अतिरिक्त सौंदर्य भी दिखाई पड़ता है। उसके अनुसार सौंदर्यानुभूति की स्थिति में यांत्रिकता तथा स्वतंत्रता (प्रकृति जगत् और कर्त्तव्य जगत्) का सम्मेलन होता है और सुंदर पदार्थ में यांत्रिकता तथा स्वतंत्रता दोनों के लक्षण प्राप्त होते हैं। सुंदर की अनुभूति सार्वभौम होती है, वैयक्तिक नहीं, अतः सुंदर वस्तु सबके लिए सुंदर होती है। सौंदर्यानुभूति तथा तज्जन्य आनन्द को दूसरों तक संक्रांत किया जा सकता है और कवि तथा अन्य कलाकार अपने उल्लास को दूसरों तक पहुँचाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सौंदर्यानुभूति के लिए सुंदर पदार्थ का देश-काल में वर्तमान होना आवश्यक नहीं है। सुंदर पदार्थ निष्प्रयोजन होता है अर्थात सुंदर वस्तु इसलिए सुंदर नहीं है कि उससे किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। सौंदर्य के प्रति हमारी रुचि स्वार्थ-रहित या उदासीन होती है और हम सुंदर को सुंदर कहे बिना नहीं रह सकते। सौंदर्य सार्वभौम होता है। काण्ट मानता है कि सौंदर्य और उदात्तभाव हमारे अन्तःकरण में निहित हैं।

उसने अनेक स्रोतों से सौंदर्य-सिद्धांत का संचय किया था। उसकी मूल समस्या ज्ञान की समस्या थी। वह मानता है कि सौंदर्यमूलक सुख या आनन्द व्यक्तिगत होते हुए भी सार्वभौम है और सौंदर्यात्मक अनुभूति स्वच्छन्द बोध तथा

स्वच्छन्द कल्पना के आनन्द की अनुभूति है। यह अनुभूति रमणीय तथा शिव की अनुभूति से सर्वथा भिन्न, निस्पृह भाव की होती है। सुंदरता को उसने सार्वजनीन संतोष की वस्तु कहा है। उसका कहना है कि शुद्ध सौंदर्यात्मक आस्वाद संवेग तथा आकर्षण से रहित होता है और सुंदर तथा उदात्त दोनों ही आनन्द प्रदान करने के कारण तुल्यकोटिक हैं और दोनों का निर्णय मननात्मक होता है।

काण्ट ने सुंदर कला के लिए कल्पनाशक्ति, बोधशक्ति, प्राण-शक्ति और आस्वाद को आवश्यक माना है। "जहाँ तक सौंदर्य का संबंध है, विचारों (ideas) में उर्वर और मौलिक होना उतनी अनिवार्य आवश्यकता नहीं है जितनी कि यह है कि कल्पना को अपनी स्वच्छन्दता में बुद्धि की नियमानुसारिता के सामञ्जस्य में होना चाहिए। क्योंकि नियम शून्य स्वच्छन्दता में कल्पना अपने सम्पूर्ण वैभव से युक्त होती हुई भी केवल बेहूदगी की ही सृष्टि करती है; दूसरी ओर निर्णय शक्ति वह मनःशक्ति है जो इसे बुद्धि-संगत बनाती है।" "(सौंदर्य-मीमांसा, पृ.137)" रुचि, सामान्यतः निर्णय की भाँति प्रतिभा का अनुशासन (या शोधक) है। यह निष्ठुर भाव से उसके पंख कतर कर उसे सुव्यवस्थित या परिष्कृत बनाती है, किंतु साथ ही यह उसकी उड़ान का दिग्दर्शन एवं नियंत्रण करती हुई उसे निर्देशन प्रदान करती है जिससे कि वह चरमता (Finality) के वैशिष्ट्य (character) की परिरक्षा कर सके। "(वही, पृ. 137) काण्ट ने सौंदर्य के साथ उदात्त पर भी विचार किया है। वह निरपेक्षतः महान वस्तु को उदात्त मानता है।" उदात्त उस वस्तु को प्रदान की जाने वाली संज्ञा है जो निरपेक्षतः महान है। किंतु, महान होना और परिणामतः विशाल होना सर्वथा भिन्न प्रत्यय है। — उदात्त चिंतन की वह शक्ति मात्र है जो इन्द्रिय के प्रत्येक मापदण्ड का अतिक्रमण करनेवाली मनः शक्ति का साक्ष्य देती है या उसे सिद्ध करती है। "(वही, पृ. 52, 55) काण्ट ने अभिव्यक्ति के आधार पर ही कला का वर्गीकरण किया और काव्य को उसका श्रेष्ठ रूप माना; क्योंकि उसमें अभिव्यक्ति की सबसे अधिक शक्ति है।

शिलर (1759-1805 ई.)

शिलर जर्मनी का महान विचारक और कवि था। उसकी सौंदर्य-चेतना पर काण्ट का प्रभाव है। वह कला के अनुकृति-सिद्धांत को स्वीकार कर कल्पना-शक्ति द्वारा अनुकृति से भी वही आनन्द प्राप्त करने की बात कहता है, जो आनन्द उसे प्रकृति में मिलता है। शिलर के अनुसार कला का उद्देश्य केवल आनन्दोपलब्धि है। उसका कहना है कि सुंदर पदार्थ आनन्द का कारण होता है, यदि उसमें

उपयोगिता के तत्त्व न भी रहें तो कोई बात नहीं; आनन्द का रहना आवश्यक है। शिलर सौंदर्यानुभूति को सार्वभौम मानता है और यह स्वीकार करता है कि कला का उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति या मनः प्रसादन तथा सौंदर्य की सृष्टि में निहित है। सौंदर्य अनुभव का विषय है और उसकी अनुभूति चेतना या मन की दशा है, अतः वह आत्मगत और विषय-भूत दोनों है। सौंदर्यानुभूति से उत्पन्न आनन्द को ही सार्वभौम होने का श्रेय है; क्योंकि बौद्धिक तथा इन्द्रिय-विषयक सुखों को दूसरों तक स्थांतरित नहीं किया जा सकता।

शेलिंग (1775-1854)

उसने जर्मनी में रोमाण्टिक आंदोलन को अपनी विचारधारा से प्रभावित किया था और स्वयं भी काण्ट तथा फिक्टे से अनुप्राणित था। उसने प्रकृति तथा आत्मा को एक ही परमसत्ता का दो रूप माना है तथा ससीम में असीम की झाँकी पाने को सौंदर्य कहा है। कला में सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है और सौंदर्य मनुष्य को अनन्त की ओर उन्मुख करता है। सौंदर्य के अभाव में कला का अस्तित्व नहीं रह सकता। वह कलात्मक अनुभूति को दर्शन की अपेक्षा श्रेष्ठ मानता है।

हीगेल (1730-1831 ई.)

पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्रियों में हीगेल के विचार बहुत ही व्यवस्थित एवं पूर्ण हैं। उसकी सबसे बड़ी विशेषता है कला का उपयुक्त वर्गीकरण। उसने कला-दर्शन के ऊपर 'Philosophy of fine Arts' नामक (ललितकलाओं का दर्शन) पुस्तक का प्रणयन किया था। उसके अनुसार यह विश्व पूर्ण प्रत्यय (absolute idea) की अभिव्यक्ति है। प्रकृति और कला में इसी पूर्ण प्रत्यय की सौंदर्य के रूप में अभिव्यक्ति होती है और उसका श्रेष्ठ रूप कला में दिखाई पड़ता है। प्रकृति के विस्तृत एवं भव्य सौंदर्य को कला सूक्ष्म उपादानों में बाँध कर उसे अधिक चमत्कारपूर्ण बना देती है और कला के माध्यम से प्रत्ययतत्त्व अधिक स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त होता है। उसने ललित-कला को कई भागों-वास्तुकला, मूर्त्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और काव्यकला-में विभाजित किया है तथा आधार की मूर्त्तता एवं अमूर्त्तता के अनुसार इन कलाओं की श्रेष्ठता निर्धारित की है। जिस कला का आधार जितना ही अधिक मूर्त्त होगा वह उतनी ही निकृष्ट कोटि की होगी। इस प्रकार वस्तुकला आधार की मूर्त्तता के कारण निकृष्ट एवं काव्य-कला आधार की सूक्ष्मता के कारण श्रेष्ठ है। हीगेल के

कला-विभाजन का दूसरा आधार आइडिया (प्रत्यय) के विकास की अवस्था। इसके अनुसार वह कला को तीन भागों में विभक्त करता है—प्रतीकवादी, शास्त्रीय और रोमानी। अस्पष्ट मानसिक स्थिति में जो अभिव्यक्ति होती है, हीगेल उसे प्रतीकात्मकता कहता है। इस प्रकार की कला आदिम सभ्यता की देन है। प्राचीन हिन्दू कला प्रतीकात्मक कला का उदाहरण है। इस कला को आइडिया के भौतिक रूप में प्रकट होने के लिए असफल संघर्ष करना पड़ता है और इस अवस्था में आइडिया की अभिव्यक्ति बेडौल और भद्दी होती है। शास्त्रीय कला सभ्यता के द्वितीय सोपान की स्थिति का द्योतक है, जिसमें विचार, भाव एवं मानव-संबंधों की स्पष्ट रूप में अभिव्यक्ति होने लगती है। इसके उदाहरण ग्रीक वास्तुकला एवं मूर्त्तिकला हैं। रोमानी कला में आइडिया का आधार भौतिक पदार्थ न होकर बुद्धि हो जाती है। वह शास्त्रीय कला के प्रतिक्रिया-स्वरूप विकसित हुई है तथा उसमें प्राचीन आदर्शों और नियमों का विरोध एवं मानवीय आत्मा की वेगपूर्ण अभिव्यक्ति होती है तथा विचार-तत्त्व के साथ ही भाव एवं कल्पना तत्त्वों का भी सामज्जस्य होता है। शास्त्रीय कला में जहाँ वस्तुपरकता की प्रधानता होती है, वहाँ रोमानी कला आत्मनिष्ठ होती है। चित्रकला संगीतकला एवं काव्यकला रोमानीवर्ग के उदाहरण हैं। हीगेल ने कला को अभिव्यक्ति मान कर सभी आध्यात्मिक अभिव्यक्तियों में कला का महत्त्व प्रदर्शित किया है।

शॉपेनहावर (1788-1860 ई.)

वह निराशावादी, प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक था। उसने जीवन में वेदना का महत्त्व स्वीकार कर उसे जीवन की इच्छा (Will to live) कहा। उसके अनुसार जीवन में निराशा और पीड़ा का राज्य बना रहता है। जीवन और मृत्यु के सनातन संघर्ष में मृत्यु की विजय होती है और जीवन को पराजित होना पड़ता है। इस चिरंतन दुःख से छुटकारा पाने के दो ही उपाय हैं—आध्यात्मिक चिंतन तथा कला की उपासना। इनकी आराधना कर मनुष्य जीवन की महावेदना को भुला सकता है। कला मनुष्य को इस दुःखमय जगत् से उठाकर ऐसे लोक में ले जाती है, जहाँ कल्पना और भावना का प्राधान्य रहता है। शॉपेन-हावर सभी कलाओं में संगीत को अधिक सशक्त मानता है; क्योंकि उसमें ऐसी शक्ति है, जिसमें मनुष्य अपनी वेदना को विस्मृत कर मोहक भावलोक में पहुँच जाता है। इस प्रकार की क्षमता अन्य कलाओं में नहीं है। प्रत्येक कला अपनी चरमावस्था में संगीत हो जाती है। अन्य कलाएँ विचारों और भावों को व्यक्त करती हैं, किंतु संगीत विचारों की

भूमिका में स्थित इच्छा को सुशोभित करता है। मनुष्य की इच्छा की परितृप्ति कभी नहीं होती, किंतु संगीत द्वारा उसकी इच्छा थोड़े समय के लिए परिशान्त हो जाती है। अतः, वह अन्य कलाओं की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। सौंदर्यानुभूति का वर्णन करते हुए वह कहता है कि इस स्थिति में मनुष्य जीवन की वास्तविकता से ऊपर उठकर वेदना के भार से मुक्त हो जाता है। प्रत्येक प्रतिभाशाली कलाकार में ऐसी क्षमता होती है, जिससे वह सांसारिक स्वार्थों से मनुष्य को ऊपर उठा दे।

स्पेन्सर–

यह आंग्ल मनोवैज्ञानिक था। इसके अनुसार सुख ही जीवन का उद्देश्य है और जीव का स्वभाव है सुख की प्राप्ति। उसने सौंदर्यानुभूति को निरुद्देश्य माना है। शिलर की तरह स्पेंसर भी कला को एक प्रकार की क्रीड़ा मानता है। सौंदर्यानुभूति में जितनी ही अधिक इन्द्रियाँ व्याप्त होंगी, मनुष्य को उतना ही अधिक आनन्द प्राप्त होगा। उसने बताया कि जीवन की अन्य वस्तुओं का उपयोग होता है; किंतु सौंदर्यानुभूति का कोई उपयोग नहीं होता।

प्रयोगात्मक सौंदर्यशास्त्र–इसके प्रवर्तक जी.टी. फेकनर हैं। इन्होंने 1871 ई. में 'सौंदर्यात्मक प्रयोग' नामक लेख के द्वारा सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र में एक नया अध्याय प्रारंभ किया, जिसमें प्रयोगाशाला के नियमों के अनुसार पदार्थों की सुंदरता की छानबीन करने की बात कही गई थी। इस सिद्धांत के अनुसार पदार्थों की सुंदरता का मापदण्ड मनुष्य है और सौंदर्य का मापदण्ड उसकी अनुभूति एवं अनुभव पर आश्रित होता है। इसमें अधिकांश प्रयोग की विधि प्रभाव में आश्रित होती है और पात्र वस्तु के प्रभाव को व्यक्त करता है। निर्देशक उससे विभिन्न विषयों के संबंध में प्रश्न करता है कि अमुक वस्तु अच्छी है या बुरी? इसी प्रकार कई रंगों में कौन अधिक आकर्षक है? इनके उत्तर में पात्र अपनी भावनाओं को लिपिबद्ध करता है। इस प्रकार की विधि लगातार बढ़ती गई है और कई देशों में प्रयोगशालाएँ भी स्थापित हो गईं हैं तथा संगीत, चित्र और काव्य पर प्रयोगात्मक अनुसंधान हुए हैं। इस संबंध में ज्ञान के विविध क्षेत्रों से सहायता ली गई है; जैसे–भाषाविज्ञान, ध्वनिशास्त्र, शरीर विज्ञान तथा मनोविज्ञान।

आधुनिक काल–आधुनिक युग में सौंदर्यशास्त्र की चतुर्दिक उन्नति हुई और इटली, इंगलैण्ड, रूस तथा फ्रांस में इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य हुए और तद्विषयक अनेक सम्प्रदायों और वादों का प्रवर्तन हुआ।

बेनेदिती क्रोचे–(1866-1954 ई.)

इस युग के कला-चितंकों में क्रोचे एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में मान्य है। इसने (Aesthetica) 'Aesthetics' या 'सौंदर्यशास्त्र' नामक पुस्तक का प्रणयन कर इस शास्त्र को शिखरोन्मुख किया। यह ग्रंथ एक युगान्ततरकारी कृति है। क्रोचे ने अपने पूर्ववर्ती बीसो या बीको नामक दार्शनिक से प्रभाव ग्रहण कर अभिव्यंजनावाद या Expressionism (दे. Expressionism) नामक सिद्धांत का प्रतिपादन किया। बीको ने कला को कल्पनाप्रधान तथा शास्त्र को विचारप्रधान माना था। और कल्पना को विचार से भिन्न सिद्ध किया था। उसके अनुसार कला विकासोन्मुख है और तर्क सामान्योन्मुख। संवेदन, भाव और कल्पना से युक्त कला जितनी ही अधिक विशेषोन्मुख होगी, उतना ही अधिक उसका रूप निखरेगा। क्रोचे की दार्शनिक अवधारणा (दे. Croce) मानव-दर्शन के नाम से विख्यात है। उसके अनुसार सभी कलाएँ अभिव्यक्ति हैं, अतएव सभी अभिव्यक्ति कला है। उसने बताया कि विश्व की प्रत्येक वस्तु के दो तत्त्व होते हैं–द्रव्य (Matter) और रूप (Form)। संसार में जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, सब द्रव्य है और उसके द्वारा मनुष्य की आत्मा प्रकट रूप में क्रिया को प्रकाशित करती है। क्रोचे रूप को सौंदर्य का आधार मानते हैं। उनके अनुसार 'रूप ही अभिव्यंजना है।' वे सौंदर्य को मानसिक या आध्यात्मिक तत्त्व मानते हैं। उनके अनुसार सौंदर्य वस्तु में न होकर मनुष्य की सौंदर्यात्मक क्रिया में होता है। उन्होंने आत्मा की दो क्रियाएँ मानी हैं–विचारात्मक और व्यवहारात्मक। विचारात्मक क्रिया को ज्ञान कहते हैं, जिसके दो रूप हैं–सहजानुभूति (Intution) और तर्क (Concept)। विचारात्मक क्रिया के भी दो भेद हैं–आर्थिक और नैतिक। क्रोचे ने सहजानुभूति को ही अभिव्यंजना कहा है तथा उक्ति के ही सौंदर्य को सौंदर्य मान कर काव्यानुभूति को अखण्ड तथा विलक्षण स्वीकार किया है। क्रोचे की मान्यताओं के आधार पर पाश्चात्य सौंदर्य-चिंतन के अंतर्गत कलावाद का जन्म हुआ, जिसका समर्थन रोजरफ्राय, क्लाइवबेल, ए. सी. ब्रेडले और आर जी. कॉलिंगवुड ने किया। क्रोचे के अनुसार सौंदर्य सफल अभिव्यक्ति या केवल अभिव्यक्ति है। यदि अभिव्यक्ति सफल न हुई तो उसे अभिव्यक्ति कहा ही नहीं जा सकता। वह कला को कला के रूप में मान्यता देकर उसे उपयोगिता नैतिकता तथा समस्त व्यावहारिक मूल्यों के बंधन से मुक्त मानता है। क्रोचे कला को व्यक्तिनिष्ठ मानता है और उसे सहजानुभूति, अभिव्यंजना अथवा स्वरूप-मात्र स्वीकार करता है।

क्लाइबबेल आधुनिक युग के प्रसिद्ध कला शास्त्री है। इन्होंने अपने 'आर्ट' नामक ग्रंथ में चित्रकला को अपना प्रतिपाद्य विषय मान कर अपने कला-विषयक मत का निरूपण किया है। ये सौंदर्यशास्त्र का मूल उत्स विलक्षण संवेग की निजी अनुभूति को स्वीकार करते हैं और उसे ही कला मानते हैं जो विषय-वस्तु इस विलक्षण संवेग को उद्रिक्त करे। कला हमें मानवीय क्रियाकलाप से ऊपर उठा कर सौंदर्यात्मक संसार में निमग्न कराती है। इन्होंने बताया कि कला द्वारा जिस भावना की जागृति होती है वह देश-काल के बंधन से मुक्त होती है। रॉजरफ्राय ने भी चित्रकला के आधार पर अपने सौंदर्य-संबंधी मतों की व्याख्या की है। इन्होंने विजन एण्ड डिजाइन नामक ग्रंथ में बताया है कि कला मनुष्य के काल्पनिक जीवन की अभिव्यक्ति तथा प्ररोचना है। ये कला में किसी प्रकार के नैतिक दायित्व को स्वीकार नहीं करते और उसे मनुष्य के यथार्थ अस्तित्व की अनिवार्य आवश्यकताओं से मुक्त मानते हैं। कलाकार कला के द्वारा जिस संवेग को प्रकट करता है वह कल्पना पर आश्रित होने के कारण यथार्थ जीवन के आवेगों से दुर्बल होता है। कलागत आनन्द या कला द्वारा प्राप्त आनन्द ऐन्द्रिय आनन्द से अधिक मौलिक और भिन्न होता है।

कलावादी आचार्यों ने कला को जीवन से इतना अधिक दूर रख दिया कि दोनों के बीच बहुत बड़ी खाई उत्पन्न हो गई, फलतः रिचर्डस् प्रभृति आचार्यों ने कलागत संदर्भ को जीवनगत संदर्भों के साथ जोड़ने का सफल प्रयत्न किया। उन्होंने अपने सम्प्रेषण सिद्धांत (Theory of Communication) के आधार पर यह निष्कर्ष उपस्थित किया कि सौंदर्यानुभूति में कोई विलक्षण तत्त्व निहित नहीं रहता। उन्होंने अपनी मूल्यवादी आलोचना को मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर प्रतिष्ठित किया है। 'सम्प्रेषण-सिद्धांत' के अनुसार कवि या कलाकार तथा प्रमाता की अनुभूतियों समान होती हैं और प्रमाता की अनुभूति कलाकार की अनुभूति से प्रभाव ग्रहण करती है। सम्प्रेषण (Empathy) को वे न तो संक्रामक मानते हैं और न इन्द्रियातीत, उस स्थिति में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को, कुछ विशेष परिस्थितियों में, समान अनुभूति होती है।

रिचडर्स् ने जीवन-बोध तथा कलाबोध में अंतर स्वीकार करते हुए भी दोनों को सजातीय अनुभव माना तथा सौंदर्यानुभूति को जीवनानुभव की अपेक्षा अधिक जटिल और संश्लिष्ट अनुभूति कहा। जॉनड्यूई ने रिचर्डस् की भाँति कलानुभूति माना है। उनके अनुसार कला अनुभवों को अधिक सार्थक, सम्बद्ध तथा प्राणवन्त

रूप में संयोजित करती है। आधुनिक कला-दर्शन के विकास में मार्क्सवादी तथा फ्रायडवादी सिद्धांतों का भी बहुत बड़ा योग है। मार्क्स द्वारा प्रवर्तित द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कला को मानववादी दृष्टि का उद्योतन करता है। मार्क्स तथा एंगेल्स के कला-विषय मत सूक्ष्म और यथार्थ हैं और उनके विचारों का उन्नयन प्लेखनोव, क्रिस्टोफर काडवेल, जार्जलुकाच तथा राल्फफाक्स्र्स आदि द्वारा हुआ है। कला का भौतिकवादी चिंतन सौंदर्य की कोई अतीन्द्रिय सत्ता स्वीकार नहीं करता और उसे ईश्वर या चेतना की अभिव्यक्ति कहने में वास्तविकता का तिरस्कार मानता है। इसके अनुसार सौंदर्य वस्तु की सम्पत्ति है और कलाकार अपने सामाजिक जीवन के यथार्थ अनुभवों के द्वारा उसे आकर्षक रूप में उपस्थित करता है। मार्क्स कलागत सौंदर्य को सामाजिक श्रम का प्रतिफल मानता है। कलावादियों ने कला की मीमांसा में वस्तु की अपेक्षा रूप को अधिक महत्त्व दिया था, पर भौतिकवादियों ने रूप को भी सामाजिक तत्त्व स्वीकार कर उसे श्रम की प्रक्रिया का परिणाम कहा। मार्क्स ने घटनाओं तथा व्यक्तियों के वास्तविक निरूपण को ही कला का मूल लक्ष्य स्वीकार किया है। कला का विषय है मनुष्य और कला मानव मात्र की एक सचेत क्रिया है। उनका कहना है कि आर्थिक विकास से कला प्रभावित होती है और उससे सामाजिक चेतना प्रभावित होती है। काडवेल ने मार्क्सवादी विचारधारा के आलोक में सामूहिक संवेग सिद्धांत का अनुचिंतन किया। वह कला या कविता को मनुष्य की विकासशील आत्मचेतना मानता है और कविता को मानवीय संवेगों की अभिव्यक्ति कहता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही कला-चिंतन के क्षेत्र में मनोविज्ञान का प्रवेश हो चुका था और थिओडोर लिप्स ने समानुभूति सिद्धांत को मनोवैज्ञानिक पीठिका पर विकसित किया था। मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत के प्रस्तोता फ्रायड ने कलाकार को स्नायविक रोगी के समकक्ष कहा और कला को क्रीड़ा या खेल बतलाया। "लेखक भी बालक की तरह अपनी मनः सृष्टि करता है। इस प्रक्रिया में वह उसी प्रकार तल्लीन रहता है जिस प्रकार शिशु अपने खेल में। इस तल्लीनता की स्थिति में वह संसृति के यथार्थ स्वरूपों से अनभिज्ञ रह कर भाषा के माध्यम से ऐसे भावों को संजोने में समर्थ होता है जो उनकी आत्मतुष्टि के प्रमुख साधन सिद्ध होते हैं।" फ्रायड के अनुसार कला हमारी अवदमित भावनाओं की अभिव्यक्ति है। (दे. Frued)

पाश्चात्य-सौंदर्य चिंतन की लगभग ढाई हजार वर्ष की परंपरा में अनेक विचार-सरणियों का आविर्भाव हुआ, जिन्हें अध्यात्मवाद, उपयोगितावाद, बुद्धिवाद, भाववाद, रूपवाद, साहचर्यवाद, अभिव्यंजनावाद एवं मूल्यवाद कहा गया है।

अध्यात्मवादी चिंतकों में प्लेटो, प्लाटिनस तथा हीगेल मुख्य हैं। इन्होंने सौंदर्य को ईश्वर का रूप कह कर सौंदर्यानुभूति को दिव्य अध्यात्म-साधना का रूप प्रदान किया। उपयोगितावादी सौंदर्य-चिन्तकों के अनुसार सौंदर्य का संबंध नीति और उपयोगिता से है। इन्होंने सौंदर्य की समाजपरक व्याख्या प्रस्तुत की है तथा बताया है कि देश-काल-भेद के अनुसार सौंदर्यात्मक दृष्टि में परिवर्त्तन होता है और सौंदर्य सामाजिक परिस्थितियों और दृष्टिकोण पर आधृत रहता है। मार्क्सवादी चिंतकों का भी यही मत है। बुद्धिवादी चिंतकों में सेंटथामस, जॉनलॉक तथा काण्ट आदि आते हैं। इनके अनुसार सौंदर्य स्वच्छन्द कल्पना-द्वारा प्रस्तुत वह विचार है, जो चिंतन को प्रभावित करे। भाववादी चिंतकों ने कलागत सौंदर्य का विश्लेषण किया है। ऐसे विचारकों में टालस्टाय, आई. ए. रिचर्डस्, जार्ज सैंतायना, आर. जी. कालिंगवुड आदि आते हैं। मूल्यवादी सिद्धांत के अनुसार किसी वस्तु का सौंदर्य मूल्य-संबंधी ऐसा धारणा है, जो देश-काल की परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। इस वर्ग में आई. ए. रिचर्डस्, गैरिट्ट आदि आते हैं। इन्होंने कला के नैतिक एवं सौंदर्यात्मक मूल्य का प्रतिपादन किया है।

■

(History of Criticism)
हिस्ट्री ऑफ क्रिटिसिज्म
आलोचना का इतिहास

पाश्चात्य आलोचना की अत्यंत सशक्त परंपरा है, जो लगभग ढाइ हजार वर्षों से निरंतर विकसित होती गई है। इस आलोचना-सिद्धांत का विकास पाश्चात्य सभ्यता के साथ ही हुआ है और इसकी मान्यताएँ आज सार्वभौम वन गई हैं। पाश्चात्य साहित्यालोचन की परंपरा अखण्ड और अटूट है तथा होमर से लेकर आधुनिक युग की 'नई समीक्षा' तक इसकी विकास-रेखा अक्षुण्ण है और इसका क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध होता है। पाश्चात्य आलोचना की समृद्ध परंपरा को ऐतिहासिक दृष्टि से मोटे तौर पर सात युगों में विभक्त किया जा सकता है—पूर्व प्लेटो युग या अंकुरण, ग्रीक या यूनानी काव्यशास्त्र, लैटिन या लातीनी काव्यशास्त्र, मध्ययुगीन काव्यशास्त्र, नव्यशास्त्रीय काव्यशास्त्र, स्वच्छन्दतावादी काव्यशास्त्र तथा आधुनिक आलोचनाशास्त्र।

पाश्चात्य साहित्यालोचन का मूल उत्स प्राचीन यूनान या ग्रांस का सांस्कृतिक परिवेश है और उसका सूत्रपात होमर तथा हीसिऑड की रचनाओं से होता है। इनके अतिरिक्त तद्युगीन ग्रीक चिंतकों, सौंदर्यशास्त्रियों, कवियों एवं नाटककारों की रचनाओं में इसके सूत्र उपलब्ध होते हैं। इसकी प्रल आलोचनात्मक-परम्परा का पूर्ण विवरण सम्प्रति उपलब्ध नहीं है; क्योंकि तत्कालीन साहित्य का विपुलांश

विस्मृति के गर्भ में विलीन हो चुका है और उस समय की साहित्यिक मान्यताएँ स्फुट रूप में ही विद्यमान हैं। होमर कृत 'इलियड' और 'ओडेसी' तथा हिसिऑडकृत 'थियोजोनी' से ज्ञात होता है कि उस समय तक महाकाव्य का सैद्धांतिक मानदण्ड स्थापित हो चुका था और काव्य के स्वरूप, प्रयोजन तथा प्रेरणा के संबंध में मत व्यक्त किये जा चुके थे। उस समय तक काव्य को दैवी प्रेरणा का प्रतिफल स्वीकार किया जाता था और होमर तथा हिसिऑड आनन्दोपलब्धि तथा शिक्षा को काव्य का प्रयोजन सिद्ध कर चुके थे। होमर ने रस-संचरण को काव्य का एक मात्र प्रयोजन मान लिया था। एरिस्टोफनीज के अधिकांश नाटकों विशेषत: फ्राग्स में आलोचना के प्रतिमानों की स्थापना हुई थी और आलोचना की एलिगोरिकल या प्रतीकवादी शैली उद्भावित हो चुकी थी (दे. आलोचना का आरंभ) प्लेटो और अरस्तू के आविर्भाव के पूर्व पाश्चात्य समीक्षा का जो स्वरूप निर्धारित हुआ था, उसमें समृद्ध काव्यालोचन के तत्त्व विद्यमान थे; अत: प्लेटो को पाश्चात्य समीक्षा का प्रवर्तक नहीं माना जा सकता; क्योंकि उसका सूत्रपात होमर प्रभृति कवियों और लेखकों द्वारा हो चुका था। यूनानी साहित्य शास्त्र में काव्य को अलौकिक आध्यात्मिक प्रेरणा से उद्भूत एक लोकोत्तर कला की मान्यता प्राप्त हुई थी।

प्लेटो ने समीक्षा-संबंधी किसी स्वतंत्र ग्रंथ की रचना नहीं की, पर उसके एतद्विषयक विचार 'आयॉन' 'फ्रीड्रस' 'रिपब्लिक', 'लॉज' तथा 'सिम्पोजियम' आदि ग्रंथों में स्फुट रूप में विद्यमान है। उसने पश्चिमी समीक्षा के प्रसिद्ध 'अनुकृति सिद्धांत' (दे. Theory of imitation) को प्रतिष्ठित किया और बताया कि कव्य प्रकृति का अनुकरण होने के कारण सत्य या वास्तविकता से दूर है। उसने कहा कि कवि दैवी शक्ति से प्रेरित और अभिभूत होकर ही काव्य की रचना करता है, अत: वह काव्य-रचना के समय स्वाभाविक अवस्था में नहीं रहता। काव्य की सृष्टि उन्माद की विक्षिप्तावस्था में होती है, अत: वह सर्वसाधारण के लिए उपादेय नहीं है। काव्य या कला बौद्धिक या चेतनात्मक न होकर भावात्मक और पाशविक है और उसका प्रभाव मानव मन के लिए कल्याणकारी नहीं होता। कवि अपनी रचनाओं में निम्नकोटि के भी चरित्रों का चित्रण करते हैं, जिनमें मानव जीवन का दुर्बल पक्ष विद्यमान रहता है, फलत: वह नैतिकता की दृष्टि से ग्राह्य नहीं होता। उसके अनुसार कलाकार कला के रूप में कोई मौलिक उद्भावना नहीं कर सकता और न वह हमारे समक्ष जीवन का यथार्थ रूप ही प्रस्तुत करता है। वह जीवन की छाया का चित्र खींचता है। उसका संबंध आभास या छाया की छाया

(appearance) से है। वह उस जगत् का चित्र खींचता है जो मिथ्या है, अतः वह वास्तविकता का चित्रकार न होकर आभास या छाया का चितेरा है। प्लेटो ने काव्य के महत्त्व का निषेध करते हुए कहा कि "वह हमारी चेतन वृत्ति और विवेक को जागृत न कर आत्म-विस्मृति और तल्लीनता लाता है, अतएव वह आदर्श प्रजातंत्र के लिए त्याज्य है।" (नया साहित्य नये प्रश्न, पृ. 59) प्लेटो की काव्यगत उद्‌भावनाओं की आलोचना की गई है, फिर भी उसकी साहित्यिक विचारणा में यूनानी वरिष्ठ समीक्षा-परंपरा का सर्वोपरि विकास प्रदर्शित होता है। उसने पूर्ववर्ती इतस्ततः बिखरी हुई साहित्यिक मान्यताओं का समाहार करते हुए समीक्षा की समृद्ध परंपरा का बीजारोपण किया जो अपने में महनीय सिद्धि है। (दे. Plato प्लेटो) (ई. पू. 428-347)

प्लेटो के पश्चात अरस्तू ने काव्यशास्त्र-विषयक गंभीर ग्रंथों का प्रणयन कर आलोचनाशास्त्र का सुसम्बद्ध स्वरूप उपस्थित किया। उसने 'पोइटिक्स' और 'रेह्टोरिक' नामक ग्रंथों में साहित्य-चिंतन की सर्वांगपूर्ण और तलस्पर्शी रूपरेखा प्रस्तुत की जिसका महत्त्व आज भी है। उसने अपने ग्रंथों में प्लेटो की भ्रांत धारणाओं का निरसन कर युगप्रवर्तक साहित्य-चिंतन की उद्‌भावना की। प्लेटो के विवेचन पर गणितशास्त्र का प्रभाव था और अरस्तू की मान्यताएँ प्राणिशास्त्र से अनुप्राणित थीं, फलतः दोनों की दृष्टियों में तात्त्विक भिन्नता परिलक्षित हुई। प्लेटो की दृष्टि अध्यात्म मूलक थी और अरस्तू की विज्ञानवादी। इसी दृष्टि के प्राधान्य के कारण उसने काव्य के विभिन्न रूपों का वर्गीकरण और उनके स्वरूप का मीमांसन किया। प्लेटो ने अपनी दार्शनिक दृष्टि के कारण कवि और काव्य को निंद्य सिद्ध किया था और अरस्तू ने अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण काव्य का पोषण और अभिनन्दन किया। प्लेटो की विवेचना के कारण काव्य का अस्तित्व ही निःशेष हो गया था; किंतु "अरस्तू ने उसके अस्तित्व या अनस्तित्व के औचित्य या अनौचित्य पर विचार न कर उसके अस्तित्व पर उसी प्रकार विचार किया जिस प्रकार एक प्राणिशास्त्री जीव जन्तुओं के अस्तित्व पर विचार करता है। जीव-जन्तु हैं, बस इतना ही उसके लिए अलम् है। काव्य है, अरस्तू के लिए बस इतना ही यथेष्ट है। उसने काव्य का अत्यंत विधिपूर्वक विश्लेषण कर उसे समाज के लिए उपयोगी सिद्ध किया।" (पश्चिमी आलोचनाशास्त्र, पृ. 62)

अरस्तू ने प्लेटो के इस सिद्धांत का खंडन किया कि कला या कविता सत्य से दुगुनी दूर है; क्योंकि उसमें वस्तु जगत् का अनुकरण किया जाता है जो कि

उस परम सत्य का अनुकरण है। अरस्तू ने कहा कि काव्यगत सत्य सार्वभौम एवं शाश्वत है और अनुकरण यथावत् प्रतिकृति-मात्र नहीं है। उसने अनुकृति सिद्धांत को व्यापक आधार प्रदान कर बताया कि वह (अनुकृति) प्रतिलिपि या प्रतिकृति मात्र न होकर पुनः सर्जना है। उसने कला को नवीन गरिमा से विमंडित कर सिद्ध किया कि कला प्रकृति की अनुकृति ही नहीं, उसका पूरक भी है। प्लेटो ने जिसे अनुकृति की अनुकृति कहकर दूषित किया था, उसे (कला को) अरस्तू ने युक्तिपूर्वक महनीय सिद्ध किया। कवि केवल उन्हीं घटनाओं या परिस्थितियों का ही अनुकरण नहीं करता जिन्हें कि वह देखता है अपितु वह सम्भावनाओं की भी परिकल्पना करता है। उसने काव्य के सत्य को इतिहास के सत्य से अधिक विस्तृत, व्यापक और उच्चतर लक्ष्य वाला सिद्ध किया। (दे. Aristotle अरस्तू) अरस्तू के समसामयिक आलोचकों में आइसाक्रेटीज तथा थियोफ्रैस्टस अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने भाषणशास्त्र का विवेचन कर इसे व्यापक आधार प्रदान किया है। उन्होंने गद्य-शैली के विविध पक्षों का विश्लेषण कर शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास तथा अलंकारों के सम्यक् प्रयोग पर विचार किया है। ईस्वी की प्रथम शताब्दी में 'डायोनीसियस' तथा 'डेमेट्रियस' नामक दो रीतिशास्त्री हुए। डायोनीसियस ने शैलीतत्त्व का विश्लेषण कर उसे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति कहा और उसके तीन तत्त्वों का विश्लेषण किया—शुद्धता, स्पष्टता तथा समास गुण। डेमेट्रियस ने गद्य-शैली के ऊपर 'स्टाइल' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की है, जिसमें चार प्रकार की शैलियों का विवेचन हुआ है। वह प्रांजलता को शैली का प्रधान गुण मानता है। उसने उदात्तशैली के अंतर्गत रूपक तथा उपमादि अलंकारों का विवेचन किया है। उसका कहना है कि सभी प्रकार के वाग्जाल हेय हैं, पर श्लेषादि अलंकारों का प्रयोग तभी मान्य हो सकता है जब वे रुचिकर एवं औचित्य पूर्ण हों। (दे. Plato, Aristotle, Dionysius and Demetrius)

ईसा की प्रथम शताब्दी में 'लोंजाइनस' नामक आचार्य (दे. Longinus) ने 'ऑन द सब्लाइम' या 'पेरिइप्सुस' नामक ग्रंथ की रचना कर उदात्त-तत्त्व का सूक्ष्म विश्लेषण किया। पाश्चात्य आलोचना के इतिहास में इसे प्रथम स्वच्छन्दतावादी आलोचक के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। उसने काव्य के नैतिक आधार तथा कवि-प्रतिभा का उपबृंहण किया है। उसके अनुसार उच्च कोटि का काव्य उदात्त मस्तिष्क वाले व्यक्ति द्वारा ही रचा जा सकता है और महान चरित्र का व्यक्ति ही भव्य काव्य की सृष्टि कर सकता है। वह कवि-कर्म की सफलता इस रूप में स्वीकार करता है कि वह अपनी भावना और कल्पना को पाठकों तक प्रेषित कर

सके। उसके अनुसार अभिव्यक्ति की उत्कृष्टता और भव्यता को उदात्त कहते हैं और इसी उदात्तता की उपलब्धि कर लेखक अक्षय कीर्त्ति प्राप्त करता है। उसने साहित्य या काव्य के उद्देश्य पर विचार करते हुए उसका उद्देश्य पाठकों को भावोन्भत्त या आत्मविभोर करना बतलाया। महान साहित्य में पाठकों को बार-बार उत्तेजित और उद्दीप्त करने की क्षमता होती है। उसने काव्य में उदात्त तत्त्व की प्रतिष्ठा करने के लिए महान विचारोद्‌भावना तथा प्रेरणा प्रस्त और उद्दाम आवेग की अनिवार्यता सिद्ध की। यूनानी साहित्यालोचन चिंतन की प्रौढ़ता का द्योतक हैं और उस पर दर्शन, नीति तथा सौंदर्य-मीमांसा की प्रगाढ़ छाया परिलक्षित होती है। (दे. Greek Criticism)

रोमी काव्य-चिंतन में मौलिकता के दर्शन नहीं होते, क्योंकि रोमी मस्तिष्क यूनानियों की उपलब्धियों से अत्यधिक अभिभूत था। रोमी काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि आलोचकों में होरेस (दे. Horace), क्विनटीलिअन और सिसेरो हैं। सिसेरो ने (दे. Cicero) ईसा से 55 वर्ष पूर्व भाषणशास्त्र के ऊपर 'ऑन द ऑरेटर' नामक प्रौढ़ ग्रंथ की रचना की थी (Deoratore)। उसके अनुसार भाषणकला की अगम्यता के कारण संसार में श्रेष्ठ वक्ता विरल हैं और वाग्मिता अत्यंत दुर्लभ गुण हैं। "इसकी सिद्धि के लिए गहन-गंभीर ज्ञान, भाषा पर समुचित अधिकार, अन्तः प्रवेशिनी मनोवैज्ञानिक दृष्टि, वाक्‌पटुता और हास्य की क्षमता, उच्चकोटि की निवेदन-विधि और स्मरण-शक्ति की आवश्यकता होती है।" (आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ.98-99) उसने बताया कि शैली में सौंदर्य की उत्पत्ति करने में भाषा की विशिष्ट भूमिका होती है और भाषा को सुंदर बनाने में शब्द, वाक्यांश, वाक्य-संगठन, अलंकारों समासों, कहावतों और मुहावरों के प्रयोग का अपना महत्त्व होता है।

रोमी काव्यशास्त्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर होरेस है, जिसने 'आर्सपोइतिका' या 'काव्यशास्त्र' नामक ग्रंथ की रचना की है इसका प्रभाव परवर्ती पीढ़ियों पर अधिक रहा है। काव्य-हेतु पर विचार करते हुए होरेस ने कवि के लिए प्रतिभा और अभ्यास दोनों की आवश्यकता पर बल दिया है। उसके अनुसार काव्य का प्रयोजन है शिव और सुंदर का स्पृहणीय संयोग अर्थात रसावबोध के साथ-ही-साथ काव्य का लक्ष्य मंगलकारी शिक्षा प्रदान करना होना चाहिए। वह कविता तथा चित्रकला में ऋजुता और अन्विति को अपेक्षित मानता है। "सत्काव्य

का मूल प्रतिभा में होता है या कला में ? यह एक विवादास्पद विषय है। मैं समझ नहीं पाता कि प्रतिभा के बिना अध्ययन की उपयोगिता क्या है, अथवा अभ्यास के बिना प्रतिभा का उपयोग कैसे हो सकता है ? अतः, सत्य यह है कि दोनों के सहयोग और समन्वय की आवश्यकता है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ.71) "कविता के लिए केवल अच्छी होना ही यथेष्ट नहीं है, उसे आकर्षक भी होना चाहिए।" (वही) "कवि का शब्दचयन सावधान और सुष्ठु होना चाहिए, और उसे किसी शब्द का परित्याग तो किसी का स्वागत करना चाहिए। .... यदि तुम किसी परिचित शब्द को किसी समुचित संदर्भ में रखकर अपने कौशल से उसमें नूतनता का आकर्षण उत्पन्न कर सको, तो तुम्हारी अभिव्यक्ति सराहनीय कही जाएगी। यदि किसी गूढ़ विषय के स्पष्टीकरण के लिए किसी नए शब्द की आवश्यकता प्रतीत हो तो ऐसे शब्द का निर्माण उचित कहा जाएगा, भले ही पुराने ढंग के लोगों ने उसे न सुना हो, और इस प्रकार की स्वतंत्रता का यदि दुरूपयोग न किया गया हो तो वह स्वीकार्य मानी जाएगी।" वही, पृ. 62-63 होरेस कवि के लिए काव्य-रचना संबंधी नियमों के पूर्ण परिपालन पर बल देता है। उसने रचना-शिल्प शब्दों की आत्मा तथा कविता के विभिन्न प्रकारों के वर्णन को ही अपनी चिंतना का विषय बनाया है। नाटक की रचना के प्रश्न पर उसने बताया कि वह जनसमूह के आवेगों का उद्दीपन करे तथा उसमें पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया जाय। उसने नाटक को पाँच अंकों में विभाजित किया और बताया कि रंगमंच पर एक ही बार तीन से अधिक पात्रों का प्रवेश न किया जाय।

क्विण्टीलियन प्रसिद्ध रोमी भाषणशास्त्री या रीतिशास्त्री है। उसने 'वक्तृत्वकला का ह्रास' तथा 'वक्ता की शिक्षा' नामक ग्रंथों का प्रणयन किया है। उसने कला, कलाकार तथा कृति तीनों के संबंध में विचार किया है और गद्य के विषय में अत्यंत प्रभावक मन्तव्य प्रस्तुत किया है। उसके मतानुसार कला और शैली के संबंध में सदा-सर्वदा के लिए किसी निश्चित मानदण्ड की स्थापना नहीं की जा सकती। उसने शैली, शब्द-चयन, शब्द-संघटन, अलंकरण, शैली वैशिष्ट्य, शैली की अदोषता, शैली-भेद तथा कला और जीवन की वास्तविकता के संबंध में मौलिक विचार प्रकट किए हैं। रोमी काव्यशास्त्र के विवेचन से ज्ञात होता है कि वह मुख्यतः भाषणशास्त्र के ही विवेचन तक परिमित रहा। (दे. क्विण्टीलियन · Quintilian)

मध्ययुग

पाँचवी शताब्दी से चौंदहवीं शताब्दी का कालखण्ड मध्ययुग या अंधकार युग के नाम से विख्यात है। (दे. Middle age मध्ययुग) ऐतिहासिकों ने इसे साहित्य-सर्जना का युग कहा है। जहाँ तक आलोचनात्मक साहित्य के निर्माण का प्रश्न है, इस दृष्टि से मध्ययुग उर्वर नहीं कहा जा सकता। इस युग के आलोचकों में बोथियस और दाँते मुख्य हैं। इंगलैण्ड और फ्रांस में कई आलोचकों ने अपनी प्रतिभा के आलोक से मध्ययुगीन अंधकार को तिरोहित करने का प्रयास किया है। इंगलैण्ड में जॉन ऑव सलिसबरी और रोजर बेकन, फ्रांस में एबेलर और इटली में पेटरार्क ने स्वच्छन्द चिंतन की परंपरा को अखण्ड रखा था। बोथियस (480-524 ई.) ने 'द कॉन्सोलेशन ऑव फिलॉसफी' नामक (De Consolatione Philosophiae) ग्रंथ में अपने साहित्यशास्त्रीय विचारों का भी समावेश किया है। उसके अनुसार काव्य रोमांटिक होता है। जिसके अध्ययन से हमारी मनोवेदनाओं का अंत नहीं हो सकता। कवि हमारे हृदय को भले ही वशीभूत करले, किंतु हमें मनस्तापों से मुक्त नहीं कर सकता। उसने काव्य को तर्क-शक्ति के मूलोच्छेदन का साधन बतलाया जो बुद्धि का प्रचंड शत्रु होता है। (दे. आधुनिक हिंदी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ. 110) बोथिअस प्लेटो से प्रभावित होकर इस तथ्य का समर्थन करता है कि काव्य में हमारे आवेगों को उद्दीप्त करने की शक्ति विद्यमान है, अत: उससे हमारी तर्क शक्ति का उच्छेदन हो जाता है। प्लेटो की भाँति उसने भी सत्यान्वेषण को मानव का परम कर्त्तव्य सिद्ध किया। उसने काव्य-विषयक जिस मानदण्ड का निर्माण किया है वह स्थूल और सामान्य उपयोगिता का निकष है, उसके आधार पर काव्य की उपयोगिता की परख नहीं हो सकती। मध्ययुग में पादरियों और प्यूरिटन नीतिशास्त्रियों ने काव्य-विषयक इसी दृष्टिकोण को उद्‌भावित किया था। दान्ते ने (1265-1321) मातृभाषा में लिखने के लिए संकल्प किया और अपना निर्णय दिया कि किसी भी लेखक के लिए अपनी मातृभाषा में ही रचना करना श्रेयस्कर है। उसने सर्वमान्य साहित्यिक भाषा की प्रकृति और स्वरूप के संबंध में विचार करते हुए काव्य के सामान्य गुणों का वर्णन किया है। उसके अनुसार कवि काव्य भाषा के चयन में अत्यंत सावधानी से कामले और विशिष्ट तथा सर्वोत्कृष्ट शब्दों का ही प्रयोग करे। वह अशिक्षितों एवं बच्चों द्वारा प्रयुक्त भद्दे और निष्प्राण शब्दों के प्रयोग को अवांछनीय मानता है। (दे. Dante)

नवजागरण युग

पुनर्जागरण काल की अवधि 15वीं और 16वीं शताब्दी है। इस युग में आलोचना का त्वरित विकास हुआ और अरस्तू के 'काव्यशास्त्र' के अतिरिक्त अन्य प्राचीन साहित्यालोचन-संबंधी ग्रंथों के अध्ययन और अनुशीलन की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ, फलतः प्राचीन आलोचनात्मक कृतियों का पुनरन्वेषण और पुनराख्यान किया गया। इस समय इटली के लोगों में ग्रीक तथा लैटिन साहित्य के अध्ययन की रुचि जगी और मुद्रणयंत्र के आविष्कृत होने से अरस्तू के भाष्यकारों की कृतियाँ प्रचारित हुईं। कास्तेलबेतरो, रोबोर्तेलो, मिंतुरनो तथा स्केलिजर ने अपने भाष्यों का प्रणयन कर अरस्तू पर अपने मन्तव्य को लादने का प्रयत्न किया और इस प्रयत्न में उसके मूल ग्रीक पाठ विकृत हो गए। पुनर्जागरण कालीन (दे. Renaissance पुनर्जागरण काल) आलोचक ग्रीक भाषा से पूर्ण परिचित नहीं थे और इस भाषा का उनका ज्ञान स्वल्प था; किंतु वे लैटिन से अभिज्ञ थे। उस समय अरस्तू के ग्रंथों के लैटिन अनुवाद मूल ग्रीक पाठ पर आश्रित न होकर अरबी से रूपांतरित हुए थे। "इस युग में पाण्डित्य एवं अध्ययन के वस्तुपरक मानदण्डों का अभाव था-भूलें की जाती थीं और बड़े विश्वास के साथ की जाती थीं।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, भूमिका, पृ.5) पुनर्जागरण काल में मानववादी विचारधारा का उद्योतन होने के कारण मनुष्यों का ध्यान वर्तमान जीवन की ओर गया और मध्यकालीन धार्मिक विश्वासों के प्रति लोगों को अरुचि हो गई; क्योंकि उसमें केवल धार्मिक विषय और अगले जीवन का ही विशेष विचार हुआ था। धर्म तथा परलोक-चिंतन के स्थान पर मानवाभिमुख दृष्टिकोण की प्रधानता हुई और सम्पूर्ण यूरोप में अध्ययन तथा चिंतन की नवीन चेतना दृष्टिगोचर हुई, जिसमें स्फूर्ति और उत्साह का भाव था। पुनर्जागरण या नवजागरण का प्रभाव इटली, फ्रांस और इंगलैंड पर अपेक्षाकृत अधिक पड़ा और इन देशों में अनेक साहित्य चिंतक उत्पन्न हुए। मध्ययुगीन मान्यताओं के विपरीत इस युग में काव्य-कला को उच्चतम स्तरों पर प्रतिष्ठित किया गया और काव्य को दर्शन तथा इतिहास से श्रेष्ठ बताया गया। इतालवी लेखकों की अनेक उपपत्तियों से इंगलैंड के लेखक अनुप्राणित हुए जिनमें सिडनी मुख्य है। सर फिलिप सिडनी ने 'एपोलॉजी फॉर पोएट्री' नामक ग्रंथ में सिद्ध किया कि कविता सभ्य समाज की वस्तु है और उसे शिष्ट समाज से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। उसने काव्य को ज्ञान की माता कहा और बताया कि सभ्य समाज में सर्व प्रथम ज्ञान की रश्मियाँ काव्य द्वारा ही विकीर्ण हुई थीं। उसने काव्य को ज्ञान का मूल

कह कर उसकी अभ्यर्थना की और उसे ज्ञान का आलोक वितरित करने का साधन स्वीकार किया। सिडनी ने प्रकारान्तर से प्लेटो द्वारा काव्य पर लगाए गए अभियोगों का निरसन किया और यह निष्कर्ष उपस्थित किया कि काव्य भाव के माध्यम से ज्ञान का आलोक वितरित करता है।

नव्यशास्त्रवाद

17वीं तथा 18वीं शताब्दी का साहित्य-चिंतन नव्यशास्त्रों के नाम से अभिहित किया जाता है। (दे. Neoclassicism नव्यशास्त्रवाद) इस युग में साहित्य-सृजन का केन्द्र इटली से हटकर फ्रांस चला गया और फ्रेंच कवि रोन्सार जो 'काव्य-विक्षेप' में आस्था रखता था, के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। उसने कल्पना-प्रधान प्रतिभा को ही महत्त प्रदान की थी, फलतः निकृष्ट कवियों द्वारा उसके सिद्धांत का दुरुपयोग हुआ। उसी समय फ्रेंच आलोचक मोलेर्ब ने अपनी उपपत्तियों द्वारा रोन्सार के विचारों के गढ़ को धराशायी कर दिया और बुअलो ने नव्यशास्त्रीय साहित्यालोचन की नींव सुदृढ़ कर दी। मोलेर्ब ने कविता की जाति तथा क्रियाकल्प के सिद्धांतों का निर्धारण कर उसे प्रेरणा की अपेक्षा कला घोषित किया। बुअलो, रापें तथा ला बोस्यू इस युग के महान स्तम्भ हैं, जिन्होंने नव्यशास्त्रीय काव्य-चिंतन को दृढ़ता प्रदान की। बुअलो ने इस मत की स्थापना की कि प्राचीन साहित्य-चिन्तन को अपनाकर काव्य के ऐसे मानदण्डों की सिद्धि हो सकती है जो उसे शाश्वत और अपरिवर्तनीय मानों से सुसज्जित कर सकता है। मलहार्ब की मृत्यु के पश्चात काव्य में कलात्मक अनुशासन की वृद्धि हुई और उसे कठोर नियमों में आबद्ध कर दिया गया। फ्रांसीसी आलोचकों ने (नव्यशास्त्रीय चिंतकों) इतालवी आलोचना-पद्धति से प्रेरणा ग्रहण की; किंतु उन्होंने उनके विचारों को वहीं तक अपनाया जो तीव्र मतभेद से रहित था। उन्होंने इतालवी काव्य-चिंतन की भ्रांतियों, असंगतियों तथा अंतर्विरोधों को अपनी गंभीर तर्कशक्ति की तुला पर कसकर त्याग दिया तथा प्राचीन आचार्यों के सिद्धांतों के अनुकरण की आवश्यकता पर बल दिया। इस युग में लोंजाइनस कृत 'काव्य में उदात्ततत्त्व' का पुनरन्वेषण किया गया पर उसकी मूल भावना का तिरस्कार किया गया। नव्यशास्त्रीय युग के साहित्यकारों ने प्राचीन सिद्धांत की वरेण्यता स्वीकार कर उन्हीं नियमों और सिद्धांतों के अनुपालन में अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा। इस युग में पुनर्जागरण कालीन अनियंत्रित उत्साह और उमंग को नियंत्रित किया गया और गद्य का समुचित विकास हुआ। इंगलैण्ड में ड्राइडेन, एडीसन और डॉ. जॉनसन प्रभृति

आलोचक नव्यशास्त्रीयतावादी संहिता को स्वीकार करते हुए भी फ्रांसीसी परंपरा के विरुद्ध रहे उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा और विवेक का आश्रय लेकर स्वतंत्र चिंतन का विकास किया और देशीय परंपरा की प्रतिष्ठा की। ड्राइडेन ने अरस्तू के अनुकरण की प्रवृत्ति की निन्दा की और कहा कि जो कुछ भी अरस्तू ने कहा है, वह सब ग्राह्य नहीं है। उनके त्रासदी-संबंधी प्रतिमान एउरिपिदेस तथा सोफोक्लेस से अनुप्राणित थे। उसने कहा कि यदि उन्होंने हमारी कृतियों को देखा होता तो वे निश्चय ही अपनी मान्यताओं को परिवर्तित कर दे सकते थे। नव्यशास्त्रवादी अन्वितित्रय के प्रसिद्ध सिद्धांत का खण्डन डॉ. जॉनसन ने किया और साहित्य में प्रतिभा के वर्चस्व की स्थापना की। उनके अनुसार प्रतिभा का अतिरेक साहित्य के लिए लाभप्रद हो सकता है, पर उसके अभाव में तो काव्य निर्जीव हो जा सकता है। उन्होंने संयम और अभ्यास द्वारा प्रतिभा को परिष्कृत करने पर जोर दिया और यह मत भी व्यक्त किया कि उसके अतिरेक से काव्य विशृंखल हो जा सकता है। बेन जॉनसन में शास्त्रीयता के प्रति प्रबल आग्रह का भाव दृष्टिगोचर होता है। ड्राइडेन ने साहित्य की सत्ता को विकासमान मान कर नियमों की चिरता की आलोचना की और बताया कि साहित्य कोई स्थिर पदार्थ नहीं हैं, समय और समाज की स्थिति के अनुसार उसके रूप, शैली और मान्यताओं में परिवर्तन होते हैं। उसने साहित्य का लक्ष्य आह्लाद प्रदान करना माना, जिसके माध्यम से शिक्षा भी प्राप्त होती है। उसके अनुसार 'शिक्षा' को साहित्य का स्वतंत्र लक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। एडीसन ने साहित्य में कल्पना-तत्त्व की प्रतिष्ठा की और प्रसिद्ध दार्शनिक बर्क की तद्विषयक खोजों को आधार बनाकर उनका उपयोग (साहित्य में) किया। उसने कल्पना को इन्द्रियगोचर सुखात्मक संवेदना कहा है। सृष्टि के पदार्थों को अपनी इन्द्रियों से देखने पर जो सुखानुभव होता है, वही कल्पना का आरम्भिक रूप है।

स्वच्छन्दतावादी युग

पाश्चात्य आलोचना के इतिहास में 19वीं शताब्दी का काव्य-चिंतन स्वच्छन्दतावादी युग के नाम से विख्यात है। (दे. Romantic age) इस साहित्य-चिंतन में नव्यशास्त्रवादी साहित्य-सिद्धांत के नियमों और मानों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर प्रखर है। इसमें उन्मुक्त भावधारा का प्रबल वेग दृष्टिगोचर होता है और परि-पारी-विहित परंपरा-मुक्त विचार-पद्धति के स्थान पर कवि की आत्मानुभूति और कल्पना को प्रधानता दी जाती है। स्वच्छन्दतावाद का प्रथम

स्फूरण काव्य के क्षेत्र में हुआ और यूरोप के प्राय: सभी देशों में स्वच्छन्द चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति साथ-ही-साथ हुई। चूँकि यूरोप की ऐतिहासिक स्थितियों में समानता थी, अत: इसका प्रभाव समस्त महादेश पर दृष्टिगोचर हुआ। इसके मूल में औद्योगिक क्रांति और विज्ञान के बढ़ते हुए चरण हैं और इसका उत्स व्यावसायिक क्रांति की उथल-पुथल है जो साहित्य में कल्पना के अविरल प्रवाह तथा निविड़ आवेग के रूप में प्रस्फुटित हुई। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में कतिपय दार्शनिकों की स्थापनाओं ने भी काव्यदर्शन में मौलिक परिवर्तन किया और उनके प्रभाव में आकर (विशेषत: काण्ट, फिक्टे, शेलिंग) काव्य में विवेक तथा रीति के स्थान पर अंतर्प्रेरणा, अंतर्दृष्टि, अंतर्प्रकाश, कल्पना तथा आनन्दातिरेक का प्राबल्य हुआ।

यूरोप के अन्य राष्ट्रों की तुलना में जर्मनी, फ्रांस और इंगलैण्ड वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगिक विकास की दृष्टि से अधिक सशक्त थे, फलत: रोमांटिक साहित्य की अवतारणा इन्हीं देशों में हुई। जर्मनी के स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों में लेसिंग, श्लेगल, फ्रीड्रिख नोवालिस, शिलर तथा गोथे (गेटे) विख्यात हैं। लेसिंग की प्रसिद्ध कृति 'लाओकून' 1766 ई. में प्रकाशित हुई, जिसमें चित्रकला, मूर्त्तिकला तथा कविता की मौलिक विशिष्टताओं का उद्घाटन किया गया। गेटे कला की पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थक था। उसने कहा कि कलाकार सदा अंतर्जगत् की प्रेरणा से कार्य करे। उसने कविता को आत्माभिव्यक्ति कहा जिसमें कवि को वैयक्तिक संतुष्टि प्राप्त होती है। उसके अनुसार कलाशक्ति निरंकुश और जन्मजात है और कविता वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। फ्रांस में विक्टर ह्विगो ने स्वच्छन्दतावाद का अग्रदूत्व किया। वह कला को सभी प्रकार के बंधनों और पूर्वाग्रहों से मुक्त करने के पक्ष में था। ह्विगो के दृष्टिकोण को ग्रहण कर शार्ल्स औगुस्ताँ तथा सैंत ब्यूह ने फ्रेंच आलोचना को समृद्ध किया। ब्यूव ने प्रकृति-विज्ञान के सिद्धांत को साहित्य में अवतरित कर यह सिद्ध किया कि साहित्य भी पेड़-पौधों की भाँति विकासमान है। उसके अनुसार कलाकार बाह्य आरोपित नियमों से मुक्त हैं; किंतु उसे अपने व्यक्तित्व के अस्तित्व के नियमों का पालन करना चाहिए। वह व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता है, जिसके बिना वह जी नहीं सकता। उसके अनुसार साहित्यकार के व्यक्तित्व में ही साहित्य का मूल विद्यमान है।

इंगलैण्ड में स्वच्छन्दतावादी आंदोलन का प्रादुर्भाव विलियम वर्ड्सवर्थकृत 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका से होता है। उसे स्वच्छन्दतावादी विचार-सरणि

का घोषणापत्र कहते हैं। इसमें रोमांटिक जीवन मूल्यों, नवीन अर्थों, सन्दर्भों और अभिव्यक्ति-प्रणालियों का अन्वेषण किया गया है तथा हसोन्मुख नव्यशास्त्रीय काव्य-परंपरा का निषेध कर काव्य के शाश्वत मूल्यों की उद्भावना की गई है। आंग्ल स्वच्छन्दतावादी साहित्य-चिंतन के विकास में शेली, कॉलरिज, कीट्स, बायरन, वर्ड्सवर्थ, सदे, लेह हंट, चार्ल्स लैम्ब, डिक्विन्सी तथा विलियम हेजलिट ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। वर्ड्सवर्थ ने कविता के स्वरूप-विवेचन में सहजानुभूति की तीव्र भावाभिव्यक्ति के अतिरिक्त सामान्य दैनिक जीवन की भाषा के प्रयोग पर बल दिया है। कॉलरिज ने कल्पनाशक्ति को ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति की सहोदरा घोषित कर उसे ससीम जीवात्मा में असीम ब्रह्म की शाश्वत सृजन-शक्ति क़ी आवृत्ति कहा। शेली ने कल्पना-शक्ति को काव्य का प्रमुख उपादान मानते हुए कविता को कल्पना की अभिव्यक्ति बतलाया, जो मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। स्वच्छन्दतावादी साहित्यशास्त्र काव्य में व्यक्तिवाद की प्रधानता स्वीकार कर उसमें भावप्रवणता तथा कल्पनाशीलता को विशेष स्थान देता है। अनुभूति के प्राधान्य के कारण कवि काव्य में वैयक्तिकता सौंदर्य, प्रेम, विराट् तत्त्व, रहस्यानुभूति, विषाद, असंतोष तथा स्वातंत्र्य लालसा की अभिव्यक्ति करता है। इसकी शैलीगत विशिष्टताओं में मानवीकरण, बिम्ब-विधान, प्रतीकयोजना तथा संगीतात्मकता को स्थान दिया गया है। पेटर ने सुंदर के साथ अद्भुत के संयोग को स्वच्छन्दतावादी कला का प्राणतत्त्व स्वीकार किया है।

आधुनिक युग

परवर्ती स्वच्छन्दतावादी काव्य-चिंतन से आधुनिक समालोचना का सम्यगारंभ होता है। 1850 ई. से लेकर अद्य प्रर्यन्त आधुनिक आलोचना ने अनेक सिद्धांतों का प्रवर्तन किया, जिनमें से तो कुछ स्वल्पक्षणस्थायी होने के कारण निःशेष हो गए और कई सम्प्रति विद्यमान हैं। आधुनिक आलोचना के विकास के साथ-ही-साथ सौंदर्यशास्त्र का भी समानांतर उन्नयन हुआ है और दोनों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है। पाश्चात्य आलोचना की अद्यतन धारा विज्ञान के बढ़ते हुए चरण से आक्रांत है और इसने दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान की मान्यताओं से पोष्यसामग्री ग्रहणकर अपने स्वरूप का विस्तार किया है। मार्क्स, फ्रायड, क्रोचे, प्रभृति युगप्रर्वत्तक चिन्तकों ने आधुनिक आलोचना के प्रतिमानों को अभिभूत और उपकृत किया है और कलादर्शन के कितने वादों ने आज की चिंतन-सरणि को आप्लुत किया है। समकालीन

साहित्य-चिंतन की बहुचर्चित पद्धतियों में यथार्थवाद, अतियथार्थवाद, अभिव्यंजनावाद, मनोविश्लेषण या फ्रायडवाद, सामाजिक यथार्थवाद या मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, प्रभाववाद, कलावाद, उपयोगितावाद, मनोवैज्ञानिक मूल्यवाद अधिक प्रसिद्ध हैं। पाश्चात्य आलोचना की अद्यतन चिंतना नई समीक्षा या न्यूक्रिटिसिज्म के नाम से प्रख्यात है, जिसका उद्‌भव अमेरिका में हुआ है। इनवादों में से अनेक ने अपनी जीवंत अंतर्दृष्टि एवं गंभीर चिंतन-प्रणाली के कारण विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की है और विश्वसाहित्य को प्रभाव में ला दिया है। मार्क्सवादी समीक्षा, फ्रायडवादी समीक्षा, अभिव्यंजनावाद तथा अस्तित्ववाद की उपलब्धियाँ ऐसी ही हैं। इस समय इटली, जर्मनी, फ्रांस, रूस, इंगलैण्ड तथा अमेरिका में आलोचनाशास्त्र ने प्रभूत उन्नति की है और अनेक प्रौढ़ चिंतकों की रचनाएँ विश्वव्यापी ख्याति अर्जित कर चुकी हैं। मैथ्यू आर्नल्ड, टालस्टाय, क्रोचे, मार्क्स, फ्रायड, ज्यांपाल सार्त्र, कॉडवेल, पेटर, ब्रेडले, आई. ए. रिचार्डस् तथा टी. एस. इलियट आधुनिक युग की महान विभूतियाँ हैं, जिन्होंने आलोचना के शाश्वत सौंदर्य का मूल्यांकन किया है। आर्नल्ड (1822-1888 ई.) ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "एसेज इन क्रिटिसिज्म" में कविता को जीवन की आलोचना कहा है। उसे मूल्यांकन के सच्चे और वस्तुनिष्ठ प्रतिमानों में आस्था है और वह बाह्यमूल्यों तथा मनमाने प्रयोग के कारण समीक्षा को गतिहीन और निष्प्राण बनाना नहीं चाहता। फिर भी उसने रोमांटिक पूर्वाग्रहों से अपने को मुक्त नहीं किया है। प्रसिद्ध कथाकार टाल्सटाय ने अपनी रचना कला क्या है" (What is Art) में उपयोगितावादी सिद्धांत का पल्लवन कर अपने को आदर्शवादी विचारक के रूप में प्रस्तुत किया है। उसने मानव संस्कृति का चरम लक्ष्य विश्वबन्धुत्व को माना है और उसी साहित्य को उपकारी सिद्ध किया है जो समस्त मानवता का कल्याण कर सके। उसकी दृष्टि धार्मिकता की ओर प्रवृत्त हुई है। वह कला को सौंदर्य की वस्तु नहीं मानता उसे किसी विशाल लोकमांगलिक तत्त्व से समन्वित होना चाहिए। वह प्रेषणीयता या संक्रामक गुण को कला की मूलभूत विशेषता स्वीकार करता है। मार्क्सीय काव्य-चिंतन के उद्‌भावक कार्लमार्क्स ने प्रगतिवादी समीक्षा शैली की उद्‌भावना की है, जिसका पूर्ण विकास रूस में हुआ है। इस आलोचना में समाज के आर्थिक ढाँचे के अनुरूप साहित्य की रूपरेखा निर्धारित की जाती है। मार्क्सवादी साहित्य-सिद्धांत को विकसित करनेवाले आलोचकों में काडवेल (अँगरेजी) फ्रेंज मेहरिंग (जर्मन) प्लेखानोव (रूस), तथा जार्ज ल्यूकाक्स (हंगरी निवासी, पर ग्रंथों की रचना जर्मन में) अधिक प्रसिद्ध हैं। समीक्षा की मनोविश्लेषण पद्धति का प्रवर्तन सिगमण्ड

फ्रायड ने किया है और उसे विकसित करने में युंग और एडलर नामक मनोवैज्ञानिकों का अत्यधिक योग है। इस सिद्धांत के अनुसार साहित्य या कला अवदमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति है और कामवृत्ति मनुष्य की सर्वाधिक प्रबल और प्रेरक महत्त्वपूर्ण शक्ति है। हर्बर्टरीड समीक्षा के क्षेत्र में फ्रायडीय अवचेतनतावाद के पोषक हैं। फ्रांस में सर्वप्रथम आविर्भूत अतियथार्थवादी चिंतन भी फ्रायडीय अंतश्चेतनावाद से प्रभावित है। अवचेतनावादी साहित्य-चिंतकों ने साहित्यिक कृतियों का मूल्यांकन अवचेतन मनोविज्ञान की पद्धति पर किया है। आधुनिक युग के महान सौंदर्यशास्त्री, दार्शनिक तथा आलोचक क्रोचे ने कला के क्षेत्र में अभिव्यंजनावाद नामक सिद्धांत का प्रवर्त्तन किया है। उनका मत मानस पीठिका पर प्रतिष्ठित है।

उन्होंने सहजानुभूति या अभिव्यंजना को कला कहा और उसका सर्वोच्च रूप अभिव्यंजना की श्रेष्ठता में स्वीकार किया। वे प्रत्येक सच्ची सहजानुभूति को अभिव्यक्ति मानते हैं। आधुनिक युग के दो आंग्ल आलोचकों—आई. ए. रिचर्डस् तथा टी. एस. इलियट-ने आलोचना के स्तरीय रूप का प्रवर्त्तन किया है। प्रथम ने मनोवैज्ञानिक मूल्यवाद नामक मत को प्रतिष्ठित कर संघटित मनोविज्ञान द्वारा कृतियों के आँकने का प्रयत्न किया है। रिचर्डस् ने साहित्यालोचन का वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत कर सृजन के अनुभव का अध्ययन मनोवैज्ञानिक अनुभव के रूप में किया है। इस युग के अन्य प्रभावशाली आलोचक टी.एस.इलियट ने परंपरानिष्ठा और वैयक्तिकप्रज्ञा के सिद्धांत का प्रवर्त्तन कर कला की निर्वैयक्तिकता में अपनी आस्था प्रकट की है।

आधुनिक युग की नवीनतम आलोचना-पद्धति अमेरिका में विकसित हुई है। नये आलोचकों में इम्पसन, क्लिन्थब्रुक, राबर्टपिनवारन, जानक्रो रैंशम तथा एलनटेट प्रभृति हैं। इन्होंने कलाकृति के मूल्यांकन में 'रूपात्मक समीक्षा' को प्रतिष्ठित किया है, जिसके अनुसार काव्य का अस्तित्व उसके रूप में निहित है और शब्दार्थ के प्रयोग-कौशल में ही कवित्व का चरमोत्कर्ष है। यह प्रवृत्ति अभी गतिमान है, इसका भावी स्वरूप भविष्य के गर्भ में है।

Humanism (ह्यूमनिज्म) मानवतावाद

मानवतावाद शब्द का प्रयोग अत्यंत व्यापक अर्थ में होता है, जिसका संबंध अर्थशास्त्र, राजनीति, समाज-दर्शन तथा दर्शनशास्त्र से है। "मानवतावाद का ध्येय

है सभी व्यक्तियों में एक-दूसरे के साथ अन्त: मधुर संवंध और सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करना। (जीवन की आध्यात्मिक दृष्टि, पृ.56) मानवतावाद में 'मानवीय मूल्यों' तथा 'मानवीय आदर्शों' की प्रधानता रहती है और मानवीय प्रकृति के उस पक्ष पर बल दिया जाता है, जो प्रेम, मैत्री, दया, सहयोग तथा प्रगति के रूप में प्रकट होती है। इसमें मानव की स्वतंत्रता, गरिमा, महिमा आदि का प्रतिपादन किया जाता है और समस्त मानवता के कल्याण की भावना निहित रहती है। इसे सिद्धांतत: किसी वाद के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता; क्योंकि प्रत्येक वाद में मानवतावादी तत्त्व निबद्ध होते हैं। मानववाद मानववादी कल्याण की साधना पर बल देता है और राजनीति के क्षेत्र में लोकतंत्र में विश्वास प्रकट करता है। प्रारंभ में यूरोप के लोग यूनान तथा रोम के साहित्य और संस्कृति के मानवीय तत्त्वों से संवलित जान कर उसका अध्ययन करते थे और उसमें निहित ज्ञान को आत्मसात् करते थे। वे प्राचीन परंपरावादी काव्य को मानव की विशिष्ट शक्ति की देन मानते थे, क्योंकि उनमें मानव जाति का शाश्वत पोषक तत्त्व और व्यावहारिक ज्ञान भरा हुआ था। पुनर्जागरण काल में ईसाई मानवतावादियों ने मानवतावाद का प्रवर्त्तन किया था। सिसरो को वास्तविक मानवतावादी माना जाता है। मानवतावादियों के अनुसार साहित्य में मनुष्य की इच्छा, आकांक्षा, वासना, प्रवृत्ति, पराक्रम तथा चिंतना का चित्रण होना चाहिए। और उसकी रुचि का वर्णन और पोषण हो संक्षेपं में वही साहित्य मानववादी हो सकता है जो हमारे मन में मानवीय चेतना को उद्‌बुद्ध और समृद्ध कर सके। मानवतावाद अनुशासनपूर्ण जीवन की कामना करता है और समग्रता तथा समस्वरता पर बल देता है। वह भौतिक आवेगों और उद्दाम कामनाओं पर नियंत्रण रखता है तथा मनुष्य के अंतर में विद्यमान नैतिक तत्त्वों को प्रकट करता है। इसे अलौकिक धर्म का लौकिकीकरण मान सकते हैं। यह संतुलन और विवेक में विश्वास करता है। ग्रीक लोगों की समस्वरता और रोमनों की शिष्टता ही मानववाद के आधारभूत तत्त्व हैं। यूरोप में पुनर्जागरण युग में मानववाद का पूनरुज्जीवन परिलक्षित हुआ था।

Hymn (हिम) स्तुति, स्तोत्र, ऋचा–

ईश्वर, देवता या किसी महापुरुष की प्रशंसा में जिन गीतों की रचना की जाती है, उन्हें हिम कहते हैं। इस प्रकार की कविताएँ सभी देशों में लिखी गई हैं।

Hypallage (हिपलेज) विशेषण विपर्यय

एक प्रकार का अलंकार। दे. Transferred Epithet

Hyperbole (हाइपरबोल) अत्युक्ति

एक प्रकार का अलंकार, जिसमें किसी पदार्थ का अतिशय बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया जाय। इसमें वर्ण्यवस्तु का अत्यंत प्रभावपूर्ण वर्णन होता है जिसका ध्येय प्रस्तुत प्रभाव को उद्दीप्त करना है।

Idealism (आइडियलिज्म) आदर्शवाद

आदर्शवाद में काव्य एवं कला को आत्मपरक स्वीकार किया जाता है और आत्मपरक चित्रण को कई प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। लेखक पदार्थों का चित्रण इस प्रकार करता है जैसा कि वे उसे (कलाकार को) प्रतीत होते हैं या जैसा कि वे हो सकते हैं अथवा जैसा कि उन्हें कलाकार के विचार या दृष्टिकोण के अनुसार होना चाहिए। आदर्शवाद में भावना, कल्पना और नैतिक तत्त्व का संमिश्रण होता है और अन्तत: नैतिक तत्त्व प्रबल हो उठता है। इसमें ऐसी कल्पनाओं का समावेश किया जाता है जो कल्याणकारी मूल्यों पर आधृत हों। कलाकार मानव के ऐसे स्वरूप का चित्रण करता है जो आदर्शभव्यता के गुण से अलंकृत हो और समाज की ऐसी स्थिति को चित्रित करता है जिसमें मानव-भविष्य की उज्ज्वल संभावनाएँ निहित हों। आदर्शवादी इस विचार का पोषक होता है कि "इस विश्व की प्रकृति ऐसी है कि इसमें सबसे उन्नत और सबसे मूल्यवान गुणों का चिरंतन विकास करना चाहिए या समय-गति के साथ-साथ अधिकाधिक प्रगाढ़ और विस्तृत रूप में विकास करना चाहिए। उपेदश-मात्र को आदर्शवाद नहीं माना जा सकता, यह उससे बड़ी वस्तु है।

आदर्शवादी जगत् की यथार्थ वस्तुओं में अपर्याप्ति का अनुभव कर उसमें अधिकतर और अधिकतम पर्याप्ति की भावना उत्पन्न करता है। "अत:, आदर्शवाद का अर्थ होगा वर्तमान में प्रतीत होनेवाली यथार्थ वस्तुओं में अपर्याप्तत्व का दर्शन और उससे अधिक पर्याप्ति या अलंबुद्धि को देनेवाली वस्तुओं की भावना उत्पन्न करना।" समालोचक, यथार्थवाद, अंक, पृ.38। आदर्शवाद में वस्तु या प्राकृतिक वस्तुओं का चित्रण उस रूप में होता है जिस रूप में कलाकार उन्हें देखने का प्रयत्न करता है अर्थात वह वस्तु के उस रूप को चित्रित करता है जो उसके मन

में प्रस्तुत होता है। वह अनुभव के विषय को अपनी प्रकृति के अनुसार रूप प्रदान करता है। इसमें कलाकार की कल्पना तथा उसका व्यक्तित्व पूर्ण रूप से क्रियाशील होता है। आदर्शवाद उच्च मानवीय संभावनाओं पर आश्रित रहता है और वह अनेकता में एकता, विश्रृंखलता में शृंखला, निराशा में आशा तथा दुःख में सुख-समाधान की प्रतिष्ठा का लक्ष्य धारण करता है। इसमें मानव के उज्ज्वल भविष्य के प्रति अडिग आस्था प्रतिबिंबित होती है। आदर्शवादी भाषा के प्रयोग में भी अपने सिद्धांत से अनुप्राणित होता है तथा शब्दों के प्रयोग में भावुकता एवं नाद-सौंदर्य को प्रमुखता देता है।

■

Image (इमेज)
बिम्ब

आधुनिक पाश्चात्य काव्य-दर्शन के अनुसार बिम्ब काव्य का एक अनिवार्य उपकरण है बिम्बरचना कला की सर्जना से अभिन्न है। कल्पना और बिम्ब में घनिष्ठ संबंध है। बिम्ब शब्द अँग्रेजी 'इमेज' का पर्याय है जिसका अर्थ आकृति, प्रतिभा या रूप है। यह वस्तुतः मनोविज्ञान का शब्द है जिसके अनुसार "पूर्व अनुभूतियों के प्रभाव के रूप में संचित मूर्त्त रूप या मानव प्रतिभाएँ ही बिम्ब कही जाती हैं तथा इन्हीं के माध्यम से हमारे मस्तिष्क की अनेक शक्तियाँ-मुख्यतः स्मृति और कल्पना-अपना कार्य संपादित करती हैं।" (साहित्य-विज्ञान, पृ. 313) बिम्बयोजना के द्वारा साहित्यकार अपनी अनुभूति को पाठकों तक पहुँचाता है। पाश्चात्य विचारकों ने बिम्ब की अनेक प्रकार से परिभाषा दी है। अँग्रेजी कोशों में इमेज का अर्थ किसी पदार्थ का मनश्चित्र या मानसी प्रतिकृति है। "अपने सरलतम रूप में यह (बिम्ब) शब्दों के माध्यम से निर्मित एक चित्र है।" The Poetic image is a picture inwords touched with some sensuous quality. (C.D.Lewis, Poetic image, page 19)

"काव्यात्मक बिम्ब शब्दों के माध्यम से निर्मित एक ऐसा चित्र है जिसका किसी न किसी प्रकार के ऐन्द्रिक गुण से संपर्क हो।"

"काव्यात्मक बिम्ब एक ऐसा शब्द है जो कि ऐन्द्रियानुभूति का भाव जाग्रत करता है।" (साहित्य विज्ञान, पृ.313) "बिम्ब एक प्रकार का भाव गर्भित चित्र

है।" (लीविस) "बिम्ब ऐन्द्रिय माध्यम द्वारा आध्यात्मिक अथवा बौद्धिक सत्यों तक पहुँचने का मार्ग है।" (सूजान के लैंगर) "बिम्ब किसी अमूर्त्त विचार अथवा भावना की पुनर्निमिति है।" (ह्वेले) "बिम्ब पदार्थों के आंतरिक सादृश्य की अभिव्यक्ति है।" (टी. ई. ह्यूम) (दे. आस्था के चरण, पृ. 134) उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर बिम्ब की निम्नांकित विशेषताएँ प्रकट होती हैं—

बिम्ब पदार्थ की प्रतिच्छवि है; पुनः सृष्टि है। किसी पदार्थ के साथ इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्रमाता के चित्र में उद्‌बुद्ध होने वाला एक चित्र है। इसके विषय मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों ही होते हैं पर उसका अपना रूप मूर्त्त होता है। काव्य बिम्ब ऐन्द्रिय तत्त्व परोक्ष रूप से विद्यमान होते हैं और ये उद्दीपक पदार्थों की अनुपस्थिति में कल्पना के द्वारा उद्‌बुद्ध होते हैं। (दे. आस्था के चरण, पृ.134, 135) शब्द और अर्थ काव्य बिम्ब के माध्यम होते हैं काव्य बिम्ब के मूल में राग की प्रेरणा अनिवार्य रूप से रहती है और यह सर्जनात्मक कल्पना से निर्मित होता है। "इस प्रकार काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानसिक छवि है जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है।" (डॉ. नगेन्द्र) इसका प्रेरक तत्त्व भाव है; उसके अभाव में इसका अस्तित्व संभव नहीं। ऐन्द्रिय अनुभव को इसका मूल उपकरण तत्त्व एवं सर्जनात्मक कल्पना को करण तत्त्व माना जाता है। प्रतीक, उपमान और रूपक के साथ काव्यबिम्ब का निकट संबंध है। उपमान को बिम्ब रचना का साधन कहा जाता है; अलंकार के साथ भी बिम्ब का घनिष्ठ संबंध है। अलंकार विधान और बिम्ब विधान को अप्रस्तुत विधान का वाचक कहा जाता है, पर बिम्ब की परिधि अपेक्षाकृत परिमित है। उसका संबंध केवल सादृश्यमूलक अलंकारों के साथ रहता है। मिथ सहजानुभूति, एलिगरी तथा मेटाफर के साथ भी बिम्ब का नैकट्य है।

काव्यबिम्ब में चित्रात्मकता, शब्द रूपात्मकता ऐन्द्रिकता, भावोत्पादकता तथा आरोपण का अभाव ये पाँच तत्त्व होते हैं। बिम्ब को मूल विषय पर अप्रस्तुत के रूप में आरोपित नहीं किया जाता, वह मूल का अविभाज्य अंग है।

बिम्बों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया गया है—विषय वस्तु के आचार पर, इन्द्रियों के आधार पर तथा प्रभाव के आधार पर। ऐन्द्रिय माध्यम के आधार पर बिम्ब के पाँच प्रकार होते हैं—दृश्य, श्रव्य, स्पृश्य, घ्रातव्य तथा रस्य या आस्वाद्य। कार्य की दृष्टि से बिम्बों के दो प्रकार हैं—अलंकरणात्मक बिम्ब (Decorative image) तथा क्रियात्मक बिम्ब (Functional image)

प्रभावात्मकता की दृष्टि से इसके दो प्रकार हैं—सजीव बिम्ब (The living image) तथा खंडित बिम्ब (The broken image)। भावात्मकता के कारण रस सृष्टि में सहायक बिम्ब के सजीव एवं प्रभाव रहित बिम्ब को खण्डित बिम्ब कहा जाता है। रोविन ने दस प्रकार के बिम्बों की कल्पना की है—सरल, तात्कालिक, विशृंखलित, प्रतिभाशून्य, संयुक्त, मिश्रित, संयुक्त, प्रतिभाशून्य, प्रतिभाशून्य, संयुक्त, एवं मिश्रित, रूपकात्मक तथा लाक्षणिक बिम्ब। बिम्ब काव्य की विषय वस्तु को आकर्षक बनाता है और प्रतिपाद्य विषय के मूल सौंदर्य का उद्‌घाटन करता है। इसके द्वारा ऐन्द्रिय प्रभाव उत्पन्न होता है। इसका उपयोग स्थूल वस्तुओं के प्रतिपादन में होता है, सूक्ष्म तत्त्वों की नियोजना में नहीं। अतः, यह एक मर्यादित काव्य सिद्धांत है, सर्वव्यापक नहीं।

Imagination (इमेजिनेशन) कल्पना

कल्पना काव्य या साहित्य का एक आवश्यक तत्त्व है। (दे. Poetry तथा literature) इसके द्वारा कवि या लेखक नवनिर्माण का कार्य करता है। इसका कार्य समन्वयात्मक होता है और यह विचार तथा पदार्थ के बीच मध्यस्थ का कार्य सम्पन्न करती है। कल्पना का अभिप्राय कल्पनम् या रचना (बनाना) से है। इसके अनके अर्थ प्रचलित हैं—

क— अप्रत्यक्ष वस्तुओं के संबंध में मनन या चिंतन। मैक्ड्रगल

ख— मानसिक कौशल। वुडवर्थ

ग— पूर्व अनुभवों की प्रतिलिपि को पुनरुत्पादित करने वाली शक्ति ई. जी. मोल। इसकीं परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है- "कल्पना एक ऐसी मानसिक शक्ति है जो वस्तुओं की अनुपस्थिति में या अप्रत्यक्ष पदार्थों के विषय में चिंतन-मनन करती है।" (साहित्य-विज्ञान, पृ. 177) इसके मुख्य तत्त्व इस प्रकार हैं—

क— यह पूर्वानुभूतियों पर आश्रित रहती है।

ख— यह भविष्याभिमुख होती है।

ग— इसकी क्रिया इच्छाप्रेरित होतीं है।

घ— यह बुद्धि के नियमन से मुक्त या स्वच्छन्द होती है। यह विशृंखिल भावों और विचारों को शृंखलाबद्ध कर देती है।

ङ— इसका आलंबन प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष होता है।

च— यह अनुपलब्ध ज्ञान-सामग्री को नवीन रूप में प्रस्तुत करती है।

छ— इसके उपादान बिम्ब के रूप में मस्तिष्क में संचित रहते हैं। (साहित्य-विज्ञान, पृ.179) कल्पना के अनेक भेद (मनोवैज्ञानिकों द्वारा) किये गए हैं; किंतु साहित्य में इसके सौंदर्योमुख रूप का उपयोग किया जाता है। कल्पना-प्रधान साहित्य में अत्युक्ति या अस्वाभाविकता, बिम्बात्मकता एवं अप्रस्तुत पक्ष का प्राधान्य होता है। इसे अनेक साहित्यकार साहित्य की आदि शक्ति या आत्मा के रूप में स्वीकार करते हैं। साहित्य-सर्जन में इसके महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता पर इसे साहित्य-रचना का पर्याय नहीं माना जा सकता। इसके द्वारा साहित्य में अपूर्व आकर्षण-शक्ति का समावेश होता है। साहित्य में कल्पना भावानुभूतियों से प्रेरित होकर विचारों या तथ्यों पर आश्रित रहती है। लांजिनस या लोनज़ाइनस के अनुसार कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा मानस-पटल पर बिम्ब अंकित होते हैं और विचारों तथा भावों का संयोग एवं एकीकरण होता है। इसे काव्य का बोधपक्ष कहते हैं।

Imagism (इमैजिज्म) बिम्बवाद

बीसवीं शताब्दी की अँग्रेजी अमेरिकी कविता का एक आंदोलन। इस आंदोलन के प्रवर्त्तक एजरा पाउण्ड माने जाते हैं जिन्होंने 1912 ई. में लंदन में इसका प्रारंभ किया था। इसमें जिन अन्य कवियों ने सहयोग दिया उनके नाम हैं—रिचर्ड ऑल्डिंगटन, एफ़. एस. फ्लिंट, हिल्डा डूटिटल। लंदन के युवा दार्शनिक टी. ई. ह्यूम भी इस आंदोलन के प्रवर्त्तकों में थे। ह्यूम स्वच्छन्दतावाद का विरोधी था जिसके अनुसार यह मानवतावाद के ह्रास की अन्तिम अवस्था का परिचायक है। वह एक नई शैली के काव्य का सृजन करना चाहता था। उसके अनुसार "अब जिस नए काव्य का सृजन होने जा रहा है, वह प्रसादपूर्ण, शुष्क और परिष्कृत होगा। उसमें ऐसे शब्द हरगिज नहीं होने चाहिए जो अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में योग न देते हों। कवि को चाहिए कि अपनी रचनाओं को कला समझे, भविष्य-कथन नहीं। काव्य शब्दों की पच्चीकारी से न कम है, न ज्यादा, अतः हर शब्द में अवितथता का होना आवश्यक है।" इस आंदोलन को एजरा पाउण्ड द्वारा सम्पादित 'दि रिपोर्टर्स्' की भूमिका में 'इमेजिज्म' कहा गया था। इसे 1914 ई. में 'दि इगोइस्ट' नामक पत्रिका में साहित्य गौरव प्राप्त हुआ।

'सभ इमेजिस्ट पोइट्स' के नाम से 1915 ई. में इस आन्दोलन का एक संग्रह प्रकाशित हुआ जिसकी भूमिका में बिम्बवादी प्रवृत्ति की समस्त विशेषताओं का आकलन किया गया था। उसे इस आंदोलन का घोषणापत्र कहा जाता है। उसमें कहा गया था कि इस संग्रह के कवि किसी दल का प्रतिनिधित्व नहीं करते। सभी कवि सामान्य सिद्धांतों के आधार परस्पर सम्बद्ध हैं जो उनके द्वारा स्वतंत्र रूप से निर्धारित किए गए हैं। इसमें महान काव्य के सभी मूल तत्त्व विद्यमान हैं।

(क) इस काव्य में सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया जाएगा; किंतु इसमें सदा उपयुक्त शब्द ही प्रयुक्त किए जाएँगे। लगभग ठीक और आलंकारिक शब्दों का प्रयोग अवांछनीय हैं।

(ख) नई मनोदशाओं को व्यक्त करने वाली नई लयों की उद्‌भावना करना इसका लक्ष्य है। इसमें पुरानी मनोदशाओं को प्रतिध्वनित करने वाली लय की नकल नहीं की जाएगी।

(ग) विषय के चयन में पूर्ण स्वतंत्रता रहेगी। आधुनिक जीवन के कलात्मक मूल्य में हमारा अटूट विश्वास है।

(घ) ऐसे काव्य की सृष्टि करना जो ठोस तथा विशद हो, न अस्पष्ट न अनिश्चित। एकाग्रता को इसमें काव्य का सारतत्त्व माना गया और बिम्ब प्रस्तुत करना अनिवार्य समझा गया।

बिम्बवादी आंदोलन पर प्रभाववादी चित्रकला का अत्यधिक प्रभाव था। अपनी मान्यताओं के अनुसार उन्होंने कविताओं में शब्दचित्रों का अंकन किया। यह आंदोलन अपनी सीमाओं के कारण अधिक दिनों तक टिक न सका और 1930 ई. के पश्चात कोई कविता-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। यह वस्तुतः 1919 से ही लड़खड़ाने लगा था और थोड़े ही समय में इसका अत्यधिक विरोध हुआ। इसने काव्य में शब्दों के अनावश्यक अपव्यय को रोका तथा शैली-शिल्प की कसावट के प्रति आग्रह प्रकट किया। शिल्पगत सचेष्टता की ओर इसने कवियों का ध्यान आकृष्ट किया। यह आंदोलन प्रतीकवादियों की भाँति समाज से कट गया था और बाह्य आवश्यकताओं के प्रति इसका ध्यान कम गया। वस्तुविषय की अपेक्षा करने के कारण इसका अधिक विरोध हुआ। समाज और जीवन के प्रति निराशाजनक दृष्टि रखने के कारण तथा काव्य में शैलीगत शिल्प के प्रति आग्रह होने एवं बाह्य यथार्थ से उदासीन रहने के कारण युग की जागरुक चेतना

के प्रति इसका सामंजस्य स्थापित न हो सका और यह काव्य प्रवृत्ति निःशेष हो गई। बिम्बवादी आन्दोलन उन्नीसवीं शताब्दी की अतिशय दार्शनिकता प्रधान अँग्रेजी कविता की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुआ था जिसमें वस्तु काव्य के सभी लक्षण विद्यमान थे। इसमें असीम को काव्य का विषय न बनाकर सामान्य दृश्यगत बिम्बों को काव्य के परिवेश में ग्रहण किया गया था। बिम्बवादी काव्य में बिम्बों के भिन्न-भिन्न प्रभावों को ध्यान में रख कर पूरी कविता में बिम्बों के पारस्परिक संबंधों पर विचार किया जाता है। इसमें बिम्ब-विधान की उलझनों पर अधिक दृष्टि रही है।

Imitation (इमिटेशन) अनुकरण या अनुकृति—दे. Aristotle तथा Plato.

Imperialism (इम्पीरियलिज्म) साम्राज्यवाद

राजनैतिक दृष्टि से अपने देश का साम्राज्य अन्य देशों पर स्थापित कर उन्हें पराधीन बनाने की नीति या भावना को साम्राज्यवाद कहते हैं। इसे पूँजीवाद की एकाधिकार की अवस्था या उसके विकास की अवस्था भी कहते हैं जिसमें एकाधिकारों तथा राजस्व-पूँजी का आधिपत्य स्थापित हो गया हो और पूँजी के निर्यात का महत्त्व प्राप्त कर लिया गया हो। एक शब्द में साम्राज्यवाद को पूँजीवाद के विकास का अन्तिम परिणाम माना जा सकता है। औद्योगिक दृष्टि से प्रगतिशील या समृद्ध राष्ट्र औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े राष्ट्रों पर अपना अधिकार और आधिपत्य जमाने का प्रयास करते हैं। जब पूँजीवादी या पूँजीवादी राष्ट्र अपने तैयार माल को अपने देश में खपा नहीं पाते तब वे अपेक्षाकृत पिछड़े राष्ट्रों में अपने माल को खपाने की चेष्टा करते हैं। उनके समक्ष दो प्रकार की समस्याएँ होती हैं-कच्चे माल की और अपने देश में तैयार किये गए माल को बेचने की। इन प्रश्नों का हल निकालने के लिए वे पिछड़े राष्ट्रों की खोज करते हैं, जहाँ उन्हें कच्चा माल सस्ता और उत्तम प्राप्त हो सके और जहाँ के लोग उनके तैयार माल को खरीद सकें। इस प्रकार वे ऐसे देशों में मनमानी दर पर अपना माल बेच कर उन्हें आर्थिक चंगुल में फँसा लेते हैं और अन्ततः उनपर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेते हैं। वे पिछड़े देशों की ऐसी अवस्था कर देते हैं जिससे कि उनका औद्योगिक-विकासन हो और उन्हें अपना राजनीतिक अधिकार जमाने में सुविधा हो। साम्राज्यवाद जातिवाद का पोषण करता है और दूसरे देशों को आर्थिक दृष्टि से लूट कर अपने देश को सम्पन्न बनाता है। इसने वर्ण-भेद की नीति को अपनाकर दुर्बल व्यक्तियों

पर अमानुषिक अत्याचार किये हैं और मानव-मानव में अंतर स्थापित किया है। साम्राज्यवाद संसार में घृणा का प्रचार कर मानव को मानव से तथा राष्ट्र को राष्ट्र द्वारा शोषण के लिए प्रोत्साहन देता है। राजनीति, व्यापार, उद्योग, श्रम, संस्कृति तथा शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में स्वेच्छारिता का नग्न नृत्य प्रदर्शित करना ही वर्ण-भेद का उद्देश्य है।

साम्राज्यवादी नीति ने विश्व की संस्कृति एवं साहित्य को प्रभावित किया है और इसकी शोषण-प्रवृत्ति ने संसार में रक्तहीन और रक्तमय क्रांतियाँ की हैं। इसके दूर व्यापी प्रभाव के कारण दो प्रकार के परस्पर विरोधी साहित्य की सृष्टि हुई है। साम्राज्यवाद के पोषकों ने ऐसे साहित्य का निर्माण किया है जिससे साम्राज्यवादी शक्ति अधिक सुदृढ़ और दीर्घजीवी बने। पर साम्राज्यवादी दमन से पीड़ित जनता ने ऐसे साहित्य की रचना की है जिसमें उसके अमानुषिक अत्याचार के प्रति विद्रोह और क्षोभ का भाव उमड़ पड़ा है।

Impressionism (इम्प्रेशनिज्म) प्रभाववाद

कला और साहित्य का एक आंदोलन जिसमें साहित्य या कलाकृति के संबंध में पड़नेवाले प्रभाव की सम्यक् अभिव्यक्ति होती है। साहित्य में इस आंदोलन का विकास प्रकृतिवादी सिद्धांत से हुआ जिसने कल्पना और प्रतीकात्मक बिम्बों की पुनर्स्थापना की। प्रभाववाद का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में फ्रांस में हुआ था। इसका लक्ष्य कला-परंपरा की रूढ़ियों का परित्याग कर प्रकृति को अभिनव तथा मौलिक रूप से देखना है। इसमें सामान्य प्रभावों के उपयोग पर बल दिया जाता है तथा सामान्य प्रभावों का उपयोग कर सशक्त विन्यास के द्वारा आकार, रूप और रंग की साधाना की जाती है। साहित्यालोचन की एक शाखा के रूप में इसका उपयोग व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं तथा व्यक्तिगत संवेदनशीलता पर केन्द्रित है। अनातोले फ्रांस ने इसे 'उत्कृष्ट कृतियों के बीच एक आत्मा के अनुभव का अभिलेख माना है। यह आधुनिक काल का एक विशेष बौद्धिक तथा सामाजिक परिवेश का प्रतिफलन है जो समकालीन संवेदनशीलता के एक पक्ष को प्रोद्भासित करता है।' प्रभाववाद एक नागरकला है, और केवल इसलिए नहीं कि यह नगर में भी 'लैंडस्केप' तत्त्व को खोजकर चित्रकला को ग्रामीण क्षेत्रों से नगर में ले जाती है, वरन् इसलिए कि यह संसार को एक नगरवासी की आँखों से देखती है और बाह्य प्रभावों के प्रति उसकी प्रतिक्रियाएँ उस आधुनिक प्राविधिक मानव की प्रतिक्रियाएँ होती हैं जिसके स्नायु अत्यधिक विश्रांत हों। यह एक नागर

शैली है; क्योंकि यह नगर के जीवन की परिवर्तनशीलता, उसकी व्याकुल लय, उसमें आकस्मिक एवं तीव्र, किंतु सर्वदा क्षणभंगुर प्रभाव को व्यक्त करती है। और ठीक इसी कारण इसमें ऐन्द्रिय बोध का अत्यंत विस्तार होता है, संवेदन शीलता की एक नई प्रखरता, एक नई आकुलता निहित है और गॉथिक तथा रोमाणटिक धाराओं की ही भाँति यह पश्चिमी कला के इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण मोड़ बन गया है। चित्रकला के इतिहास में, स्थिर और गतिशील, प्रतिरूप और रंग, अमूर्त्त विधान और प्राणवंत जीवन के एकांतर क्रम की जो द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया देखने में आती है, उसमें प्रभाववाद उस विकास का सर्वोच्च बिन्दु है जिसमें अनुभव के गतिशील तथा सप्राण तत्त्वों को मान्यता दी जाती है और जिसमें मध्ययुगों की गतिहीन विश्वदृष्टि सर्वथा विलुप्त हो जाती है। (पाश्चात्य काव्यशास्त्र सिद्धांत और वाद, पृ.267-268 से उद्धृत) प्रभाववादी कलाकार समय-प्रवाह में अनुभव के एक क्षण को रोक कर उसे कला के माध्यम से अमरता प्रदान करने का लक्ष्य रखता है। इसे आत्मकेंद्रित सौंदर्यवादी संस्कार की चरमावस्था कहते हैं और यह अपने में व्यावहारिक तथा सक्रिय जीवन के रोमानी परित्याग का चरमोत्कर्ष है। प्रभाववादी शैली में युग का चिंतन तथा कला दोनों अभिव्यक्त हुए हैं। इसके निर्माण में सापेक्षवाद, आत्मनिष्ठावाद, मनोविज्ञानवाद, इतिहासवाद, प्रतिव्यवस्थावाद तथा नीत्से और बर्गसां के सिद्धांतों का हाथ है। प्रभाववाद काल की प्रक्रिया को स्थिर नहीं मानता, वह उसे प्रवाह-रूप स्वीकार करता है। सृजनात्मक साहित्य में इसका प्रभाव अपेक्षाकृत आलोचना से अधिक दिखाई पड़ा है। इसमें वैयक्तिक प्रतिक्रिया को आलोचनात्मक मूल्यांकन का पद प्राप्त हुआ है। अनातोले फ्रांस तथा उसके अनुयायियों ने प्रभाववाद को शुद्ध आत्मपरकता का समानार्थी बना दिया था। टी. एस. इलियट ने प्रभाववादी आलोचना की निन्दा करते हुए ऐसे आलोचक को भावुक कहा है और उसे अपूर्ण आलोचक माना है। उनका कथन इस प्रकार है– "जिस भावुक व्यक्ति में एक कलाकृति वे सारे भाव जागृत करती है जिनका उस कृति से कोई भी संबंध नहीं है, और जो केवल व्यक्तिगत संबंधों से उत्पन्न प्रभाव हैं, वह भावुक व्यक्ति एक अपूर्ण कलाकार है।" (द सेक्रिड बुड, पृ. 7, पाश्चात्य काव्य शास्त्र: सिद्धांत और वाद, पृ. 280 से उद्धृत) रंगांकन की विशुद्धता तथा कलाकार के स्वातंत्र्य की स्थापना प्रभाववाद की महत्त्वपूर्ण विशिष्टता है। प्रभाववादी चित्रकारों ने उद्योग सृष्टि का आशावादी दृष्टिकोण से चित्रण किया; क्योंकि वहाँ भी उन्हें सौंदर्य की प्रतीति हुई। क्लोव मोने ने (1840-1926 ई.) प्रभाववादी सिद्धांतों को चरम सीमा

पर पहुँचा कर उसे चित्रकार के लिए उपयुक्त सिद्ध किया। "प्रभाववादी चित्रकार दृश्यान्तर्गत वस्तु के यथार्थ-रूप सादृश्य की ओर ध्यान नहीं देते, उनका लक्ष्य वस्तुसंचय पर हुए वातावरणं व प्रकाश के समूचे प्रभाव को चित्रित करना था अर्थात समय एवं ऋृतु के परिवर्तन के साथ वही वस्तु संचय उनके लिए भिन्न चित्रविषय बन जाता। बदलते हुए समाज के साथ वही वृक्ष उनको हरा, पीला, लाल, जामुनी इस तरह बदलते हुए रूप में दिखाई देता। ... सीमित अर्थ में आधुनिक कला के वस्तुनिरपेक्षता की ओर मार्गक्रमण में प्रभाववाद आरंभिक चरण था।" (आधुनिक चित्रकला का इतिहास, पृ.58-59)

उन्नीसवीं शताब्दी के औद्योगिक विकास के कारण योरोपीय जीवन में जो गतिशीलता आ गई थी उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति प्रभाववाद में हुई। इसमें अनुभूति के क्षणों को ग्रहण कर कला के द्वारा उसे स्थायी महत्त्व प्रदान किया जाता है। प्रभाववाद में स्थायीत्व और नैरन्तर्य पर क्षण की विजय दिखाई जाती है। इसमें सत्य को वस्तु रूप में न दिखाकर प्रक्रिया रूप में व्यक्त किया जाता है।

Impressionistic Criticism (इम्प्रेशनिस्टिक क्रिटिसिज्म)
प्रभावाभिव्यंजक आलोचना–दे. Criticism

Individualism (इण्डिविजुअलिज्म) व्यक्तिवाद

राजनीति में उस सिद्धांत को व्यक्तिवाद कहते हैं जो राज्य का हित कुछ चुने हुए व्यक्तियों के हाथ में सुरक्षित रहने में आस्था रखता है। इसमें समाज की अपेक्षा व्यक्ति को प्रधानता दी जाती है। "व्यक्तिवाद यह मानता है कि मानवों के हित मौलिक रूप से समान हैं, जो एक मनुष्य के हित में सर्वश्रेष्ठ है, वही सब मनुष्यों के हित में सर्वश्रेष्ठ है, व्यक्ति अपने हितों को इसी भाव से मानता है कि जिसमें दूसरे मनुष्यों के हितों के समान हैं और दबाव के अभाव में वह उनका इसी भाव में अनुसरण करेगा।" व्यक्तिवादी शासन द्वारा अतिशय नियमन या नियंत्रण की नीति को समाज के लिए अनिष्टकारी मानता है। वह आर्थिक या औद्योगिक क्षेत्र में राज्य का कोई नियंत्रण नहीं चाहता और निर्वाध प्रतियोगिता को उचित समझता है, क्योंकि इससे कम लागत में उत्पादन अधिक हो सकेगा और उपभोक्ताओं को कम मूल्य पर उपभोग की वस्तुएँ प्राप्त होंगी तथा श्रमिक अपने श्रम का सदुपयोग कर सकेंगे। व्यक्तिवाद का जन्म यूरोप में अठारहवीं

शताब्दी के अन्तिम चरण में हुआ था और सर्वप्रथम इस मत की व्याख्या बैंथम तथा जेम्स मिल ने की थी, पर 19वीं शताब्दी में इसके प्रवल समर्थक जॉन स्टुअर्ट मिल और हरवर्ट स्पेंसर हुए। उनका विचार था कि राज्य के न्यूनतम हस्तक्षेप से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव है। राज्य के हस्तक्षेप से व्यक्ति की अन्तःप्रेरणा और स्वनिर्भरता नष्ट हो जाती है। इससे व्यक्ति के उत्तरदायित्व की भावना नष्ट हो जाती है और वह दुर्वल बन कर अपने को पंगु बना लेता है। स्वतंत्र प्रतियोगिता से व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा उन्नत होती है और उसमें स्वतः प्रेरणा तथा स्वनिर्भरता प्रबल होती है। मिलके अनुसार "शासन का अत्यधिक हस्तक्षेप जब किसी की अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कार्य करने अथवा वांछनीय रूप से अपने विवेकानुसार क्रियाशील होने से वंचित करता है तो शारीरिक या मानसिक गुणों का कुछ भाग विकास से वंचित रह जाता है।" आधुनिक युग में भी व्यक्तिवाद का विकास हुआ, किंतु वह उन्नीसवीं शताब्दी के व्यक्तिवाद से कई अर्थों में भिन्न है। दोनों में समानता इस रूप में है कि दोनों ही राज्य की शक्तियों को सीमित करना चाहते हैं। इनमें अंतर यह है कि प्राचीन व्यक्तिवाद राज्य की तुलना में व्यक्ति को अधिक महत्त्व देता था, पर आधुनिक व्यक्तिवाद समूहों की महत्ता को स्वीकार कर राज्य की शक्तियों को विकेन्द्रित कर उन्हें समूहों को सौंपना चाहता है।

राजनीतिक व्यक्तिवाद से प्रभावित होकर साहित्य में भी व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा हुई है जो सामाजिक भावनाओं और विचारों की अपेक्षा निजी भावनाओं को अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है। जो साहित्यकार व्यक्तिगत विचारों और जीवन दृष्टियों को अधिक महनीय समझकर साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति करता है, उसे व्यक्तिवादी साहित्य कहते हैं। व्यक्तिवाद के विरोधी मत को समाजवाद कहते हैं। समाजवादी जीवन दृष्टि राजनीतिक और साँमाजिक विचारों को वाणी देती है और व्यक्तिवादी जीवनमूल्यों में ऐसे तत्त्वों की प्रधानता होती है जिनका संबंध लेखक की निजी या व्यक्तिगत मान्यताओं या विचारों से होता है। भक्ति, मोक्ष, सत्य तथा अहिंसा को विचारकों ने व्यक्तिवादी जीवन मूल्यों के रूप में परिगणित किया है।

Innuendo (इन्यूएन्डो)　वक्रोक्ति, व्यंग्य या व्यंग्यभाषण

एक प्रकार का अलंकार। जब सुखात्मक या दुःखात्मक वृत्तियों को व्यक्त करने के लिए वक्ता अपने वक्तव्य को सरल ढंग से न कह कर व्यंजक ढंग से

कहे। यह एक प्रकार का व्यंग्य या कटाक्ष है जो प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष होता है और श्रोता को उतना बुरा नहीं लगता जैसे; उसका जन्म धनी, किंतु ईमानदार व्यक्ति के यहाँ हुआ है। यहाँ, किंतु शब्द इस तथ्य का द्योतक है कि धनी लोग ईमानदार नहीं होते। इस अलंकार का प्रयोग निन्दा के ही अर्थ या प्रसंग में होता है, किंतु निन्दा को स्पष्ट ढंग से व्यक्त न कर गूढ़ से प्रकट किया जाता है।

Irony (ऑयरनी) व्यंग्य, वक्रोक्ति

किसी बात को सीधे ढंग से न कह कर उक्तिगर्भत्व के द्वारा कहा जाना ऑयरनी है। इसमें ऊपर-ऊपर से प्रतारणा लक्षित नहीं होती, किंतु इसके मूल में वक्ता की घृणा का भाव सन्निहित रहता है। ऑयरनी एक प्रकार की वक्रोक्ति, व्यंग्य या विद्रूप है जिसमें रचयिता या वक्ता की वाग्‌भंगी या रचनाभंगी प्रदर्शित होती है। इसका उद्देश्य रहस्योद्घाटन द्वारा किसी के यथार्थ रूप को प्रकट करना होता है। यह सरल और सांकेतिक दो प्रकार की हो सकती है। प्रथम में केवल आनन्द और उल्लास की भावना सन्निविष्ट होती है और द्वितीय में आनन्द के साथ गूढ़ संकेत का भी समावेश होता है। सांकेतिक वक्रोक्ति में किसी वर्ग या व्यक्ति को लक्ष्य बनाया जाता है।

Italian Criticism (इटालियन क्रिटिसिज्म) इतालवी आलोचना

इटली में काव्या-लोचन का सूत्रपात पुनर्जागरण काल के साथ ही प्रारंभ हो गया था और व्यापक पैमाने में अरस्तू के काव्यशास्त्र एवं अन्य प्राचीन आलोचकों की कृतियों की व्याख्याएँ होने लगी थीं। इटली की अलोचनात्मक उपलब्धियों से अन्य यूरोपीय देशों की आलोचना भी प्रभावित होने लगी थी। मध्ययुग में दाँते ने इतालवी या जीवंत भाषा के प्रयोग पर बल देकर उसका महत्त्व बढ़ा दिया था और अत्यंत प्रबल शब्दों में इसके गौरव की प्रतिष्ठा की थी। काव्यभाषा और काव्यशैली के संबंध में उसके विचार अत्यंत प्रौढ़ थे। उस समय के अन्य समीक्षक पेत्रार्क की स्थापनाएँ भी महत्त्वपूर्ण थीं। वह आलोचक कम, पण्डित और कलामर्मज्ञ अधिक था। 1527 से 1570 ई. की कालावधि में वीदा, 'त्रिसिनो' मिन्तूर्नो, विकतोरिअस, स्कैलीजर, कास्तेलवेत्रो, रोबर्तेलो आदि आलोचकों ने अरस्तू के काव्यशास्त्र का या तो अनुवाद किया उस पर भाष्यों या अनुभाष्यों की रचना की। इस युग में होमर और वर्जिल जैसे महाकाव्यकारों की कृतियों का पुनराध्ययन और अभिनव विवेचन हुआ। 'त्रिसिनो' ने व्याकरण पर विचार कर 'संकलनत्रय'

के सिद्धांत का प्रतिपादन किया और वीरकाव्यों का विवेचन कर कॉमदी के प्रसंग में हास्य का विश्लेषण इस प्रकार किया जो परवर्ती आलोचकों के लिए मार्गदर्शक बना।

इस युग में सैद्धांतिक समीक्षा के क्षेत्र में वाद-विवाद हुए और काव्य, काव्य-रूप, महाकाव्य, हास्य सिद्धांत तथा पूर्ववर्ती आलोचना पर विचार-विनिमय किया गया, पर उनके विवेचन की पीठिका परंपरादर्शवादी आलोचना ही रही। 'डेनीलो' की आलोचनात्मक मान्यता पूर्ववर्ती तथा परवर्ती आलोचना में समन्वय स्थापित करने वाली हुई और काव्य का उद्देश्य आनन्द प्रदान करना और उद्‌बोधन करना सिद्ध हुआ। उसने कवि के लिए सर्वकला तथा विज्ञान के साथ से सम्पन्न होना आवश्यक माना। केस्तेलवेत्रो की आलोचना में प्राचीन एवं नवीन भाषाओं के प्रति विशेष आग्रह का भाव देखा गया। उसने अरस्तू के विचारों से महाकाव्य को मुक्त कर नया मत स्थापित किया। उसके अनुसार इतिहास की भाँति काव्य भी केवल एक व्यक्ति के कार्यकलाप को उपजीव्य बना सकता है या अन्यान्य व्यक्तियों के क्रियाकलापों को एक ही साथ चित्रित कर सकता है। काव्य के उद्देश्य के संबंध में उसने आनन्द की स्वीकृति पर बल दिया। इतालवी आलोचना के विकास में केस्तेलवेत्रो का महत्त्वपूर्ण योग है। पुनर्जागरण काल में विशेषतः अरस्तू के 'काव्यशास्त्र' को ही उपजीव्य बनाकर वैचारिक क्रांति का समारम्भ हुआ और उससे प्रभाव ग्रहण कर विविध प्रकार की आलोचनाएँ प्रादुर्भूत हुईं। सत्रहवीं शताब्दी में इटली की आलोचना निस्तेज पड़ गई और कविता में नव्यतावाद की धूम मची।

नई प्रवृत्तियों के अन्वेषण में लोग इस प्रकार प्रवृत्त हुए कि प्राचीनों के प्रति आदर का भाव कम हो गया। इस युग की उत्कृष्ट आलोचनात्मक कृतियों में त्रैयानो बोकालिनी (1612 ई.) रचित 'रग्गुआग्ली डी पारनासो' है जिसमें संवादात्मक शैली में काव्य दोषों, काव्यचौर्य तथा पण्डितम्मन्यता पर व्यंग्य किया गया है। कालांतर में यह शैली इतनी लोकप्रिय सिद्ध हुई कि इसका प्रयोग साहित्य तथा राजनीति की समीक्षा के लिए होने लगा। इस शताब्दी का श्रेष्ठ गद्य-लेखक गैलीलियो गैलीलाइन था जिसने विज्ञान की भाँति साहित्य में भी समान प्रतिभा प्रदर्शित की। तत्कालीन काव्य की कुरुचि को दूर करने के लिए 1690 ई. में आरकेडियन अकादमी स्थापित हुई जिसके द्वारा समीक्षा के विकास में गति आई। सत्रहवीं शताब्दी के अंत तथा अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में इतालवी आलोचना

में विकास के चिह्न दृष्टिगोचर हुए, किंतु इसका संबंध आलोचना के पूर्ववर्ती स्वरूप के सर्वेक्षण तथा उसके महत्त्वपूर्ण रूपों के व्याख्यान से ही था। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में 'मुरातोरी' तथा विको नामक दो प्रतिभाशाली चिंतकों ने ऐतिहासिक आलोचना-पद्धति को विकसित किया और उनकी विवेचना में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई। विको ने इतिहास-दर्शन और आधुनिक सौंदर्य-चिंतन का उन्नयन किया और मानवीय दृष्टिकोण को प्राथमिकता प्रदान कर इतिहास को मानवीय क्रियाकलाप के विकास का परिणाम स्वीकार किया। वह काव्य को बौद्धिकता का विरोधी और ऐन्द्रिय अवबोध का सहयोगी मानता था जो कल्पना तथा निजंधरी कथाओं के सादृश्य के भाव से पूर्ण होता है। यद्यपि बिको को अपने समय में महत्त्व और सम्मान प्राप्त नहीं हुआ तथापि वह क्रोचे को प्रभावित करने के कारण महान बना। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इतालवी आलोचना अँग्रेजी अनुभववाद, फ्रांसीसी ऐन्द्रियता तथा जर्मनी के नव्यप्लेटोवादी सौंदर्य शास्त्रीय मान्यताओं से प्रभावित हुई। इस युग में 'गिउसेपे पिरिनी', 'विक्टोरिओ अलफीरी' 'मलेचिओरे सिजरेटी' तथा 'गिउसेपे बरेती' प्रभृति आलोचकों ने उल्लेखनीय महत्त्व की रचनाएँ कर इतालवी आलोचना को समृद्ध किया। बरेटी काव्य को बौद्धिक प्रयत्न न मानकर संवेदनात्मक मानता था और काव्य के मूल में प्रेरणा तथा यथार्थ की अनुभूति को काव्य-प्रतिभा के लिए आवश्यक स्वीकार करता था। वह काव्य में यथार्थवाद तथा नैतिकता के समावेश का पक्षधर था।

इटली में स्वच्छन्दतावाद का समारंभ 'मादाम द स्तल' (1816 ई.) द्वारा हुआ। 'लुडोविकोडी. ब्रेमे' 'सिलविओपे लिको' तथा 'एरमेस विस्कोण्टी' स्वच्छन्दतावादी आंदोलन के समर्थक थे और 'मेनजानी' ने भी इस आंदोलन में भाग लिया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में क्रोचे का आविर्भाव इतालवी समीक्षा के इतिहास में युगान्तर का सूचक है। (दे. Croce बेनेदितो क्रोचे Exprressionism) वह आधुनिक युग का महान आलोचक, सौंदर्यशास्त्री, तत्त्वज्ञानी तथा इतिहास-चिंतक था। उसने Aesthetics या 'सौंदर्यशास्त्र' नामक ग्रंथ की रचना की जो इस युग की विश्वविख्यात कृति है और उसका प्रभाव विश्वस्तर पर है। क्रोचे आदर्शवादी विचारक था जिसने आदर्शवादी सौंदर्य-दर्शन को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। उसके पहले काण्ट तथा हीगेल ने स्वतंत्र रूप से सौंदर्यशास्त्र पर ग्रंथों का लेखन किया था; किंतु उसे वास्तविक महत्त्व प्रदान करने का श्रेय क्रोचे को ही है। क्रोचे सौंदर्य-दर्शन के क्षेत्र में एक्प्रेशनिज्म या अभिव्यंजनावाद नामक विचारधारा का प्रवर्त्तक है जिसके अनुसार कला या काव्य

का चरमोत्कर्ष अभिव्यंजना में निहित है। उसके अनुसार काव्य तथा कलाएँ स्वतंत्र तथा निरपेक्ष आध्यात्मिक व्यापार हैं और कवि या कलाकार के मन पर दृश्य जगत् के नाना प्रकार के पदार्थों की जो छाया पड़ती है, उन्हें नया बिम्ब प्रदान कर अभिव्यंजित करने को कविता कहते हैं। वह समस्त काव्य-व्यापार को मानस-व्यापार मानता है और कलाओं के व्यापार को अखण्ड व्यापार स्वीकार करता है; क्योंकि समस्त कला एक ही अखण्ड अभिव्यंजना है। सृजनात्मक सक्रिय मन की अनुभूति में ही काव्यगत अभिव्यंजना की पूर्णता है। उसके अनुसार कला की वास्तविक अनुभूति मन में होती है। वह स्वयं प्रकाशज्ञान, अभिव्यंजना और कला के एकत्व पर विशेष बल देता है; क्योंकि वही (स्वयं प्रकाशज्ञान ही) अभिव्यक्त होकर कला के रूप में प्रस्फुटित होता है। स्वयं प्रकाश ज्ञान के अभाव में कला की परिकल्पना नहीं हो सकती। वह अरूप में रूप की सृष्टि को ही अभिव्यंजना और कला की संज्ञा देता है। क्रोचे के सौंदर्य-निरूपण पर आक्षेप भी हुए हैं, पर इससे उसका महत्त्व कम नहीं होता। आधुनिक कला-दर्शन के इतिहास में उसकी उपलब्धियाँ शिखरोन्मुख महत्त्व की हैं।

क्रोचे के समसामयिकों में 'गिउसेपे प्रेजोलिनी' तथा 'गिओवानी पैपिनी' थे और इनकी विवेचना का सामयिक महत्त्व भी कम नहीं था। यह युग दार्शनिकता का था, अत: कोरी विद्वता तथा वैज्ञानिकता की आलोचना हुई और विरोध हुआ। फलत: बौद्धिकता आलोचना में प्रश्रय प्राप्त नहीं कर सकी। 'जी. ए. बोर्गोज' स्वयं प्रकाश के साथ परंपरा, इतिहास, राजनीति तथा मनोविज्ञान के प्रति भी आग्रही था।

Jester (जेस्टर) विदूषक—हास्य उत्पन्न करनेवाला व्यक्ति या पात्र।

John Dryden (जॉन ड्राइडेन) (1631-1700 ई.)

अँग्रेजी आलोचक। महान आलोचक ड्राइडेन भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा से सम्पन्न था। वह सुप्रसिद्ध कवि, नाटककार, व्यंग्यलेखक तथा आलोचक था। उसने विभिन्न ग्रंथों की भूमिकाओं तथा समर्पण-पत्रों के रूप में अपनी साहित्यक स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं। उसकी सुप्रसिद्ध आलोचनात्मक कृति 'एसे ऑफ ड्रामेटिक पोइजी' है जो 1668 ई. में प्रकाशित हुई। इसे अँग्रेजी आलोचना की महान रचना माना जाता है। इसकी रचना कथोपकथन की शैली में हुई है जिसमें चार प्रमुख वक्ता हैं। ये चार वक्ता विविध दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रथम वक्ता क्राइस्ट प्राचीन लेखकों का प्रतिनिधि है और द्वितीय वक्ता यूजीन

एलिजाबेथ युगीन नाटकों का समर्थक है। तृतीय वक्ता लेसिडियस को अँग्रेजी नाटकों की अपेक्षा फ्रांसीसी नाटक अधिक रुचिकर प्रतीत होते हैं और चतुर्थ वक्ता नियण्डर है जिसे अँग्रेजी के नाटक (फ्रांसीसी नाटकों की अपेक्षा) अधिक पसंद हैं; यही ड्राइडेन के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है।

ड्राइडेन के साथ अँग्रेजी में तुलनात्मक समीक्षा का समारम्भ माना जाता है। उसने रंगमंच तथा नाटक से संबंद्ध विषयों का भी विवेचन किया है तथा प्राचीन युग के कवियों और चॉसर, शेक्सपियर एवं मिल्टन के संबंध में भी महत्त्वपूर्ण निर्णय दिया है। उसने प्राचीनों के प्रति आकर्षण और निष्ठा रखते हुए भी नवीनों के प्रति भक्ति प्रदर्शित की है। वह परंपरा को मान्यता देते हुए भी युगानुरोध को उतना ही महत्त्व देता है और सच्चे अर्थ में युगचेता आलोचक माना जाता है। उसके अनुसार साहित्य का लक्ष्य आह्लाद प्रदान करना है और इसी के द्वारा वह शिक्षा भी दे सकता है। उसने कला और नीति के चिराचरित द्वन्द्व का उत्तर देते हुए कहा कि साहित्यगत आनन्द स्वार्थहीन तथा असामान्य होता है और साहित्य या काव्य में इसका समावेश (असामान्यता एवं आनन्द का) कोरी अनुकृति के कारण नहीं होता। कवि भौतिक जगत् से पृथक् कल्पना लोक का निर्माण करता है जो दृश्य संसार से सर्वथा भिन्न और पृथक् होता है। भौतिक जगत् इन्द्रिय प्रत्यक्ष पदार्थ है तो काव्य मानस प्रत्यक्ष वस्तु। उसने बताया कि कवि की रचनात्मक प्रतिभा से वर्ण्य विषय को नया रूप या आकार प्राप्त होता है। ड्राइडेन ने कल्पना-तत्त्व के प्रति आग्रह का भाव प्रदर्शित किया है और काव्य में उदात्त चरित्रों के चित्रण की आवश्यकता पर बल दिया है। उसका कहना था कि साहित्य एक विकासमान सत्ता है; कोई स्थिर पदार्थ नहीं। उसके अनुसार काव्य में कोरी अनुकृति किसी बड़े आह्लाद की सृष्टि नहीं करती। उसने अरस्तू के अनुकृति-सिद्धांत को व्यापक बनाकर बताया कि कवि अपनी रचनात्मक प्रतिभा के द्वारा वर्ण्यवस्तु को नूतन आकार प्रदान करता है। वह काव्य में वस्तु की अनुकृति को महत्त्व नहीं देता, कवि उसे नया स्वरूप प्रदान करता है। काव्य को कवि आलोचक और समाज के संदर्भ में परखने की बात उसने कही और जीवन तथा नैसर्गिक प्रतिभा से पृथक् केवल नियमों द्वारा परिचालित साहित्य के प्रति अविश्वास प्रकट किया। उसने आलोचना को उसके कर्त्तव्य के प्रति प्रेरित किया और बताया कि साहित्य में एक राष्ट्र के सामूहिक या समग्र जीवन का सार निहित रहता है और साहित्य जीवन को पूरी समग्रता के साथ प्रतिबिंबित करता है। कला और साहित्य का रूप प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक युग की प्रतिभा के अनुकूल निर्मित

होता है। वह साहित्य का निकष अपनी राष्ट्रीय प्रतिभा और युग को अनुकूल बनाने के पक्ष में था। कवि राष्ट्रीय जीवन की समष्टिगत प्रतिभा का अविभाज्य अंग होता है, अत: उसकी कृतियों में जन जीवन की भावनाएँ प्रतिध्वनित होती हैं। चूँकि कवि की रचना का लक्ष्य पाठक वर्ग होता है, अत: प्रत्येक कलाकृति में राष्ट्रीय प्रतिभा से संपुष्ट कवि का व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है। उसके अनुसार काव्य का प्रधान लक्ष्य आनन्द प्रदान करना है, नैतिक शिक्षा या उपदेश देना उसके गौण लक्ष्य हैं। उसका मंतव्य था कि काव्य की आनन्ददायिनी शक्ति के मूल में जीवन और प्रकृति का अनुकरण निहित रहता है, किंतु वह अनुकरण वास्तविकता का यथातथ्य अनुकरण न होकर कवि-कल्पना और उसके रंग से रंजित होता है। वह कला को मूल की सुंदर अनुकृति मानता था। काव्य और कला में कल्पना के समावेश से नवीन जीवन स्पन्दन होता है। देश, कला और समाज के साथ साहित्य का सामंजस्य स्थापित कर उसने सार्वभौम आलोचना सिद्धांत की स्थापना की। ललित कल्पना के महत्त्व पर उसने अधिक बल दिया। उसके अनुसार कल्पना द्वारा कवि किसी भी कथानक में चरित्रों, उनकी मन:स्थितियों एवं विचारों का सन्निवेश कर रचना का रूप देता है। "कवि का यही मुख्य कार्य है और कल्पना का विशालतम क्षेत्र भी, क्योंकि कल्पना ही रचनाकार का सर्वोपरिगुण है। विवेकबुद्धि भी उसमें होनी चाहिए, किंतु सजीवता और निगूढ़ सौंदर्य प्रदान करने वाली शक्ति तो कल्पना ही है, विशेषकर गंभीर नाटकों में जिनमें पर्यवेक्षण का अधिक सहारा नहीं लिया जा सकता।" वह कवि कल्पना के रचनात्मक पक्ष पर बल देता है। उसने अनुकरण को स्वीकार करते हुए भी रचना के प्रभाव की गंभीरता और आनन्द को काव्य-प्रयोजन के रूप में अधिक महत्त्व दिया। काव्य में अनुकरण का महत्त्व है अवश्य, किंतु उसकी सफलता का आधार है अत्यंत गंभीरता के साथ सामाजिक की आत्मा को प्रभावित करने तथा सहृदय को आनन्द प्रदान करने में। वह हर्षोद्रेक को काव्य का एक मात्र लक्ष्य नहीं तो प्रमुख लक्ष्य मानता है। कविता का काम आनन्दानुभूति के द्वारा शिक्षा देना है। उसने कविता और नैतिक सत्य का घनिष्ठ संबंध स्वीकार किया है।

ड्राइडेन ने काव्य की भाँति नाटक का प्रयोजन भी मानव स्वभाव का जीवंत चित्रण कर मानस चित्रों द्वारा आनन्द तथा शिक्षा प्रदान करना स्वीकार किया। "नाटक मानव-स्वभाव का एक प्राणवान मानस चित्र है, जो मानवजाति को आनन्द और शिक्षा देने के लिए, उसके मनोभावों, मनोदशाओं तथा जीवन में होनेवाले परिवर्तन को प्रस्तुत करता है।" नाटक के संबंध में ड्राइडेन ने अन्वितित्रय के

सिद्धांत को अंगीकार किया है। नाटक के कथानक का काल चौबीस घंटे से अधिक न हो। नाटक में दृश्य न तो अनेक हों और न एक दूसरे से बहुत दूर स्थित। नाटक में गौण कथाएँ हों, किंतु वे मुख्य कथा से घनिष्ठ रूप से संबद्ध रहें।

उसके अनुसार काव्य मानव-प्रकृति का यथार्थ चित्र है। उसने नाटक की भाषा के संबंध में भी विचार किया है। वह वागाडंबर का विरोधी था और अलंकारों के सुरुचिपूर्ण प्रयोग का समर्थक। वह पुनरावृत्ति एवं अतिशयोक्ति का विरोधी था और वाग्स्फीति से उसे घृणा थी। वह तुच्छ विषय को गौरवपूर्ण भाषा में प्रकट नहीं करना चाहता था।

Judicial Criticism (जुडिसियल क्रिटिसिज्म) निर्णयात्मक आलोचना–दे. Criticism

Jung (युंग) प्रसिद्ध मनोविश्लेषण शास्त्री। दे. Fruedism

Kant (कांट) जर्मन दार्शनिक एवं सौंदर्यशास्त्री दे. History of Aesthetics.

■

Latine Criticism
(लैटिन क्रिटिसिज्म)
लातीनी आलोचना

प्रथम शताब्दी के प्रारंभ होते ही साहित्यिक गतिविधि का केन्द्र अलेक-जेण्ड्रिया से उठ कर रोम में स्थांतरित हो गया था और ग्रीक तथा रोम की महान सभ्यताओं और संस्कृतियों में परस्पर आदान-प्रदान प्रारंभ हुआ। राजनैतिक दृष्टि से रोम के विजयी होने पर भी दर्शन; साहित्य, कला, विज्ञान तथा राजनीति के क्षेत्र में उसे ग्रीक से प्रभावित होना पड़ा। रोमी आचार्यों ने ग्रीक साहित्यशास्त्रियों की महत्ता स्वीकार की और उनसे अभिभूत होकर अपने आलोचना-साहित्य को समृद्ध किया। अवश्य ही वे प्लेटो और अरस्तू ऐसी प्रतिभाएँ उत्पन्न न कर सके, पर उनकी मान्यताओं को ग्रहण कर आलोचनात्मक नियमों और सिद्धांतों का प्रतिपादन करते रहे। (दे. Greek Criticism ग्रीक आलोचना) वे ग्रीक आचार्यों की प्रतिभा के प्रकाश-पुंज को प्राप्त कर प्रोदभासित हो उठे, पर मौलिक देन के रूप में उनकी कोई विशिष्ट उपलब्धियाँ नहीं रहीं, उन्होंने ग्रीक सिद्धांतों का चर्वित चर्वण ही किया। फिर भी, सिसरो (106-43 ई. पू.) होरेस (ई. पू. 65-8) तथा क्विन्टीलियन (351-961 ई.) की आलोचनात्मक देन की महार्घता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। (दे. Cicero; Horace तथा Quintilian)

राजनीतिज्ञ होने के कारण सिसरो का ध्यान भाषण-कला की ओर गया। उसने भाषण-कला संबंधी तीन ग्रंथों का प्रणयन किया 'दे ओरातोरे' (Deoratore या 'वक्ता का चरित्र'), 'ब्रूटस' (सुप्रसिद्ध वक्ताओं की विशेषताएँ) तथा 'द ओरेटर' (The Orator) सिसरो के पूर्व एक अज्ञातनामा लेखक की रचना प्राप्त होती है जिसका नाम 'रेटौरिका एड हेरेनियम' है। यह ग्रंथ चार भागों में है जिसके प्रथम तीन भागों में क्रमशः भाषण के तीन प्रकारों वैधक (फोरेन्सिक) विमर्शकारी (डेलिबरेटिव) तथा प्रदर्शनात्मक (एपिडेइक्टिक) का विवेचन है और चतुर्थ खण्ड में शैली का विस्तृत विवेचन हुआ है और यही ग्रंथ का महत्त्वपूर्ण अंश है। इस रचना का प्रभाव मध्य युग एवं नवजागरण काल की रचनाओं पर देखा जाता है। सदियों तक लोगों का विश्वास था कि इसका रचयिता सिसरो ही है, पर कालांतर में इसके रचयिता के रूप में कार्निफिसिंयम नामक व्यक्ति को स्वीकार किया गया। इसमें बताया गया है कि शब्दालंकारों और अर्थालंकारों के प्रयोग से शैली में चारुता आती है और गुणों के दुरूपयोग से शैली दोषयुक्त हो जाती है। इसमें अलंकारों के प्रयोग पर आवश्यकता से अधिक बल देकर उनकी महत्ता प्रतिपादित की गई है। लातिन (लैटिन) गद्य को सँवारने और उसे साहित्यक अभिव्यक्ति के लिए सशक्त माध्यम बनाने में सिसरो का महत्त्वपूर्ण योग है। वक्ता की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए उसने लिखा है "कोई वक्ता तब तक प्रशंसा के योग्य नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसे प्रत्येक महत्त्वपूर्ण वस्तु का और समस्त शिष्ट कलाओं का ज्ञान न हो। कोई भी विषय क्यों न हो, उस पर उसे बड़प्पन के साथ बोलने की योग्यता होनी चाहिए। उसकी भाषा लच्छेदार और प्रवाहबद्ध होनी चाहिए। जब तक भाषणकर्ता अपनी कही हुई बात को खुद नहीं समझता, तब तक उसके वक्तृत्व को रिक्त और तुच्छ शब्दों का प्रवाह मात्र समझना ही ठीक होगा।" उसके अनुसार सर्वसाधारण की समझ में आनेवाली भाषा ही श्रेष्ठ है।

सिसरो के पश्चात लातीने रीतिशास्त्रकारों में होरेस का स्थान महत्त्वपूर्ण है। उसकी प्रसिद्ध रचना 'आर्सपोएतिका' काव्यशास्त्र की अत्यंत प्रसिद्ध कृति है जिसकी रचना काव्य पत्र के रूप में हुई है। इसमें मुख्यतः तीन तथ्यों पर विचार किया गया है—रचना शिल्प, शब्दों की आत्मा तथा कविता के विभिन्न प्रकार। उसका कहना है कि कवि के लिए यह आवश्यक है कि वह काव्य रचना विषयक नियमों का पूर्णतः परिपालन करे। उसने साहित्य के दो उद्देश्यों की प्रतिष्ठा की है—नैतिक शिक्षा तथा आनन्द। "कविता का उद्देश्य या तो उपयोगिता होता है या

मनोरंजन अथवा आनन्द तथा उपयोगिता का समन्वय।"— "व्यर्थ शब्द केवल उसी की लेखनी से निकलता है जिसकी स्मृति में बहुत अधिक अनावश्यक बातें भरी रहती हैं। कथा को यथार्थ से अधिक निकट होना चाहिए तभी वह आनन्द दे सकती है।" जो भी व्यक्ति शिव और सुंदर को समन्वित करता है वही सफल होता है; क्योंकि वही पाठक को मुग्ध भी करता है और उसे शिक्षा भी देता है। ऐसी ही पुस्तक प्रकाशकों के लिए लाभदायक सिद्ध होती है, उसका देश-देशांतरों में प्रचार होता है और उसके लेखक को स्थायी यश प्राप्त होता है। (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ.69) उसने काव्य-हेतु के संबंध में प्रतिभा और अभ्यास दोनों के समन्वय पर बल दिया है। सत्काव्य की रचना का मूल प्रतिभा में होता है या कला में? यह एक विवादास्पद विषय है। मैं समझ नहीं पाता कि प्रतिभा के बिना अध्ययन की उपयोगिता क्या है अथवा अभ्यास के बिना प्रतिभा का उपयोग कैसे हो सकता है? अतः, सत्य यह है कि दोनों के सहयोग और समन्वय की आवश्यकता है। वही, पृ.71। होरेस के काव्य-संबंधी विचार मुख्यतः अरस्तू की मान्यताओं पर आश्रित हैं। यद्यपि उसने कविता के अनुकृति मूलक सिद्धांत को प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार नहीं किया है तथापि कविता की तुलना अनुकृतिमूलक कला (चित्रकला) के साथ करते हुए उसकी स्वीकृति अप्रत्यक्ष रूप से कर देता है। उसका साहित्य-विवेचन-विषयक आधारभूत सिद्धांत औचित्य (Decorum) है। 'आर्सपोएतिका' के प्रारंभ में इसका विश्लेषण करते हुए अननुरूप या बेमेल वस्तुओं के संयोजन को उपहासास्पद बतलाया गया है।

क्विन्टीलियन रोम का प्रसिद्ध भाषणशास्त्री या रीतिशास्त्री है। उसने एतद्विषयक दो ग्रंथों का प्रणयन किया है—'वक्तृत्वकला का ह्रास' (Decausis corruptae Eloquentiae) तथा 'वक्ता की शिक्षा' (Institutio oratoria) जिनमें अन्तिम ग्रंथ अधिक प्रसिद्ध है। उसने अपने युग के अलंकारशास्त्रियों और वैयाकरणों की गलत शिक्षा को ही तत्कालीन शैली विषयक मान्यताओं के लिए दोषी ठहराया है। वह अपने ग्रंथ में कला, कलाकार तथा कृति तीनों के संबंध में विचार करता है, किंतु गद्य-शैली के संबंध में उसके मत अत्यंत प्रभावशाली हैं। उसका कहना था कि कला और शैली के संबंध में सदा-सर्वदा के लिए किसी निश्चित सिद्धांत को स्थिर नहीं किया जा सकता। उसका कहना है "कुछ नियम तो निश्चित रूप से ऐसे हैं जिन्हें हम कभी भी अस्वीकार नहीं कर सकते हैं, फिर भी कुछ ऐसे गुण हैं जो कला की पहुँच के परे होते हैं। इसलिए मेरा उद्देश्य ऐसे नियमों की स्थापना करना नहीं है जो सार्वजन्य और अनिवार्य

रूप से लागू होने चाहिए, वरन् मेरा उद्देश्य शैली-विषयक मुख्य सत्य को व्यक्त करने वाले सामान्य सिद्धांतों की विवेचना करना है।" उसने शैली, शब्द-चयन, शब्द-संघटना, अलंकरण, शैली वैशिष्ट्य, शैली की अदोषता, शैलीभेद, कला और जीवन की वास्तविकता के संबंध में मौलिक मन्तव्य व्यक्त किया है।

रोमी काव्यशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसकी उपलब्धियों पर यूनानियों का प्रखर प्रभाव था। उनकी मान्यताएँ अरस्तू प्रभृति आचार्यों के विचारों की अनुगूँज है। वे यूनानी दार्शनिकों से भी प्रभावित थे। रोमी काव्यशास्त्र अधिकांशतः भाषणशास्त्र के विवेचन में ही सीमित रहा। वहाँ समीक्षा के वर्गीकरण, नियमन तथा सिद्धांत-स्थापन की प्रवृत्ति दिखाई अवश्य पड़ी, किंतु उसमें समीक्षा के बाह्यमान पर ही ध्यान दिया गया। वे काव्य के औचित्य पर बल देते थे। आलोचकों ने मनोविज्ञान की उपेक्षा की और रूढ़ियों के अनुसार चलने की उत्सुकता दिखलाई, वस्तुतः उनकी आलोचना का यही दुर्बल पक्ष था। होरेस की 'आर्सपोएतिका' को सेंट्सबरी साधारण मेधा की रचना मानते हैं, पर परवर्ती समीक्षा-सिद्धांत को इसने अत्यधिक अनुप्राणित किया। रोमी आलोचकों ने ग्रीक आचार्यों की नीति प्रवणता को ग्रहण कर उसे और भी अधिक बढ़ाया और उनके काव्य-प्रेरणा-विषयक मत को पूर्णतः अंगीकार किया।

Leo Tolstoy (लियो तॉल्सतॉय) 1828-1910 ई.

रूसी लेखक एवं आलोचक।तॉल्सतॉय बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार था। उसकी गणना संसार के श्रेष्ठ साहित्यकारों में होती है। उसने 'एन्ना कैरेनिना', 'युद्ध और शांति' प्रभृति कालजयी उपन्यासों की रचना की है तथा अपनी कला और साहित्य-विषयक विचारणा को 'कला क्या है ?' (What is art) नामक पुस्तक (1898 ई. में प्रकाशित) में व्यक्त किया है। इस पुस्तक में वह एक आदर्शवादी विचारक के रूप में वह 'एक महान कलासाधक ही नहीं, लोकमंगल की साधना में संलग्न एक महान मनीषी भी है', उसकी प्रवृत्ति धार्मिकता की ओर अधिक है और विश्ववंधुत्व को वह मानव-संस्कृति का अन्तिम लक्ष्य मानता है। वह कला और साहित्य को अपने में स्वतंत्र वस्तु न मानकर मानव-विकास का एक साधन या उपादान मानता है। उसकी मान्यता है कि कला में जनता के मन और अनुभूतियों को प्रभावित करने की शक्ति है। उसके कला-संबंधी विचरों को 'मानवतावादी' कहा जा सकता है। उसने कला-चिंतन में समग्र और स्वस्थ जीवन-बोध को महत्त्व दिया है और उसमें अत्मोन्नति के लिए उपयोग मानवीय

मूल्यों की स्थापना की है। उसका मानवतावाद मानव-कल्याण का समर्थक होते हुए भी, अनीश्वरवादी और भौतिकवादी नहीं है। उसकी धर्म में आस्था है। वह अपने कला-संबंधी चिंतन में सूक्ष्म आध्यात्मिक, धार्मिक मानवदृष्टि को सामने रख कर सत्य, ईश्वरेच्छा, धर्मचेतना, जीवन-बोध-संभाव्य तथा शिवं आदि आध्यात्मिक मूल्यों से संपृक्त शब्दों का उपयोग करता है। उसके अनुसार कला मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण, आवश्यक और मूल्यवान वस्तु है। उसने कला को उपयोगितावादी और व्यावहारिक सिद्ध किया है। उसके अनुसार कला का कार्य तर्क के रूप में अगम्य और अबोध को अनुभूय और बोधगम्य बनाना है। वह कला को स्वयं लक्ष्य या प्रयोजन नहीं मानता और न उसका प्रयोजन उससे मिलने वाले आनन्द में सिद्ध करता है। कला को वह मनुष्य-मनुष्य के बीच सम्पर्क का एक उपादान मानता है। उसने कला के मूल में मानवीय व्यापार को देखा है जिसका लक्ष्य मानव में नैतिक और धार्मिक भावों का उन्नयन करना है। कला के द्वारा कलाकार अपनी भावना से अन्यों को संक्रमित करता है। मानवों में ऐक्य-स्थापन का लक्ष्य कला भावना द्वारा पूर्ण करती है। "कला की सही परिभाषा करने के लिए सबसे पहले आवश्यक है कि उसे आनन्द का साधन समझना छोड़ दिया जाए और उसे मानव-जीवन के तत्त्वों में से एक समझा जाए। यह दृष्टिकोण स्वीकार कर लेने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकते कि कला मानव-मानव के पारस्परिक सम्पर्क का साधन है। जिसने कला का निर्माण किया है या कर रहा है उसके साथ तथा जो उसी समय या उससे पूर्व या उसके बाद उस कलात्मक प्रभाव को ग्रहण करते हैं उन सामाजिकों के साथ प्रत्येक कलाकृति सामाजिक का विशेष प्रकार का संबंध स्थापित करती है।"

"भाषा मनुष्यों के विचारों और अनुभवों का प्रेषण करती हुई उनके संगठन के माध्यम का कार्य करती है, और कला भी ऐसे ही उद्देश्य की पूर्ति करती है। पारस्परिक सम्पर्क के इस दूसरे साधन, अर्थात कला और शब्दों के द्वारा साधित सम्पर्क में भेद यह है कि जहाँ शब्दों के द्वारा मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है वहीं कला के द्वारा वह अपनी भावनाओं का प्रेषण करता है।"

"कला की क्रिया इस तथ्य पर आधारित है कि एक मनुष्य अपने कान या आँख के द्वारा अन्य व्यक्ति की भावाभिव्यक्ति को ग्रहण करता हुआ उस भाव की अनुभूति करने में समर्थ है जिसने उसे व्यक्त करने वाले व्यक्ति को आन्दोलित किया था।" (कला क्या है ? दे० पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 213) "और

अन्य व्यक्ति की भावनाओं की अभिव्यक्ति को ग्रहण करने और स्वयं भी उन्हीं भावनाओं को अनुभव करने की सामर्थ्य पर ही कला की प्रक्रिया आधारित है।"
"जो भावना किसी ने पहले अनुभव की है उसे अपने में जगाना और अपने में जगाकर भंगिमाओं, रेखाओं, रंगों, ध्वनियों या शब्दों में व्यंजित विधाओं द्वारा इस प्रकार उस भावना को व्यक्त करना कि दूसरे भी उसी का अनुभव करें—यही कला की प्रक्रिया है।"

"कला एक मानवीय क्रिया है जिसका स्वरूप यह है, कि एक व्यक्ति सचेतन रूप से कुछ बाह्य संकेतों से स्वानुभूत भावनाओं को दूसरों के प्रति संप्रेषित करता है और दूसरे में भी वे ही भावनाएँ जाग्रत होती हैं और वे उनका अनुभव करते हैं।"

"जो कुछ भी कलाकार की भावना और विचार की तीव्रता द्वारा मानवता को कुछ नवीनता प्रदान करे वह कलाकृति है। किंतु, मनुष्य इसे जो महत्त्व प्रदान करते हैं वह वस्तुतः इस मानसिक क्रिया में प्रतिष्ठित हो, इसके लिए यह अनिवार्य है कि इसकी देन मानवता के लिए हितकर हो, क्योंकि यह स्पष्ट है कि किसी भी नई बुराई को, मनुष्य को बुराई की ओर अग्रसर करने वाले किसी नए लोभ को, हम वह मूल्य प्रदान नहीं कर सकते जो हम कला को मानवता के लिए कल्याणकारी होने के नाते देते हैं। कला का महत्त्व एवं उसका मूल्य मनुष्य के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में, आत्मविभूति की वृद्धि करने में है जो मानवता की सम्पत्ति है।"

तॉल्सतॉय कलावादी विचार का विरोधी था। उसका विश्वास था कि कलाकार उन्हीं भावों को अभिव्यक्त करता है जिनका अनुभव उसे प्रकृति एवं मानव-जीवन के सम्पर्क में आने से होता है। उसकी धारणा थी कि कला का लक्ष्य मानव की सर्वोच्च भावनाओं की अभिव्यक्ति करना है और यह उसकी धार्मिक या उत्कृष्ट आकांक्षाओं को उद्दीप्त करती है। कला का निर्माण मात्र मनोरंजन के लिए उचित नहीं है। उसे अपने अस्तित्व को सार्थक बनाने के लिए किसी विशाल लोक मांगलिक तत्त्व से समन्वित होना चाहिए और इसी में उसकी चरम उपलब्धि निहित है।

उसने कला की मूलभूत विशेषता प्रेषणीयता या संक्रामकता को स्वीकार किया तथा विज्ञान और कला को परस्पर अनुस्यूत करते हुए कहा कि वे एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। विज्ञान ऐसे ज्ञान को समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है जिसकी

उसे तत्काल आवश्यकता होती है और कला उन सत्यों को भावात्मक रूप प्रदान कर प्रेषणीयता या कलात्मक संक्रामकता के द्वारा उन्हें जनजीवन में प्रतिष्ठित करती है। तॉल्सतॉय के अनुसार कला उन्हीं संवेगों को संप्रेपित करे जो सहज, तथा सार्वभौम हों एवं उन्हें सभी व्यक्ति प्रशंसित करें। इस दृष्टि से उसने प्रेम एवं मानवबंधुत्व की प्रेषणीयता पर बल दिया। वह मानता है कि भावों का विकास कला के ही माध्यम से होता है और वही कलाकृति अधिक महत्त्वपूर्ण होगी जिसमें संक्रमण अधिक प्रभावशाली होगा। संक्षेप में उसके कला-विषयक सिद्धांत इस प्रकार हैं—

(क) कला पाठक या श्रोता के प्रति संक्रामक बने,

(ख) कला उसी समय संक्रामक हो सकती है जब वह सर्वसुलभ एवं बोधमयी हो,

(ग) कला के लिए धर्मप्राण होना आवश्यक है। उसके अनुसार कला के दो रूप हैं-अभिजात वर्ग की कला और सामान्य जनता की कला और इसका जीवन बोधक संस्कारी रूप जन कला में सुरक्षित रहता है।

Legend (लीजेण्ड) पुराकथा, दन्तकथा या निजंधरी कथा

ऐसी कथाओं को लीजेण्ड कहते हैं जो लोक में कुछ सत्य या असत्य रूप में प्रचलित होती हैं और कभी-कभी जब वे ऐतिहासिक कथाओं द्वारा जुड़ जाती हैं तो लोक उन्हें सत्य मान लेता है। ये कथाएँ पीढ़ियों तक अनुश्रुति के रूप में जनप्रवाह में, प्रवाहित होती रहती हैं। प्राचीन धर्मग्रंथों में ऐसी कथाओं का बाहुल्य है। ये ऐसी पुराकथाएँ हैं जो असत्य, अर्द्धसत्य होती हैं और अन्ततोगत्वा जनता द्वारा इन्हें ऐतिहासिक मानलिया जाता है।

Lessing (लेसिंग) (1729-1781) जर्मन आलोचक

लेसिंग आधुनिक जर्मन साहित्य का उन्नायक एवं विश्रुत आलोचक था। उसकी साहित्यिक मान्यता का ऐतिहासिक महत्त्व है। उसने 1766 ई. में 'लाकोन' या लाओक्न (Laokoon) नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें चित्रकला और कविता तथा मूर्त्तिकला की विशिष्टता का दिग्दर्शन कराया गया है तथा कलाओं के परस्पर संबंध एवं उनके मूल भेदों का विवेचन है। वह आलोचक के अतिरिक्त कवि और नाटककार भी था। धर्मशास्त्र, दर्शन, साहित्यिक इतिहास तथा कलादर्शन

में उसकी अप्रतिहत गति थी और कला-सृजन के सिद्धांत का वह अद्‌भुत पारखी था। उपर्युक्त सभी गुणों के अतिरिक्त उसकी विद्वता ने उसे अपने युग का सर्वश्रेष्ठ आलोचक बना दिया। उसने 'ड्रामेटर्जिक' (Dramaturgic) नामक ग्रंथ में नाट्यकला के सैद्धांतिक पक्ष का विवेचन किया है और त्रासदी, विरेचन, संकलनत्रय, करुणा एवं भय की विशद व्याख्या की है। काव्य और चित्रकला के संबंध में उसने अपनी मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत कर दोनों में अन्तर्भेद किया है।

लेसिंग अरस्तू का अनुयायी था। उसकी इच्छा थी कि अरस्तू की मान्यताओं का साहित्य के क्षेत्र में अक्षरशः पालन हो। अरस्तू के संबंध में उसका कहना था कि उसके आधारभूत सिद्धांत पूर्णतः सत्य एवं ठोस हैं। पर वे उतने दृढ़ नहीं हैं, अतः उनका गलत अर्थ लगाया जा सकता है। "मेरा विश्वास है कि मैं इसे निश्चित रूप से प्रमाणिक कर सकूँगा कि साहित्यिक रचना अपनी उच्चता से खिसके बिना अरस्तू के सिद्धांतों की अवहेलना नहीं कर सकती। विषादान्त नाटकों के लिए तो यह विशेष रूप से लागू है।"

लेसिंग कला के व्यापक क्षेत्र को स्वीकार कर सत्य और अभिव्यंजना-शक्ति को उसका आवश्यक गुण मानता है। इन्हीं गुणों के कारण प्रकृति की कुरूप-से-कुरूप वस्तु भी सुंदर कला-कृति के रूप में परिवर्तित हो सकती है। कला की सफलता उसकी बोधगम्यता और सम्प्रेषण में है। कलाकार की अभिव्यंजना-शक्ति ही सम्प्रेषण है। उसने प्लूटार्क के इस कथन का प्रतिवाद किया है कि 'चित्रमूक कविता है और कविता बोलता हुआ चित्र।' उसके अनुसार प्रत्येक कला अपने साधनों, रचना पद्धतियों एवं माध्यमों के वैविध्य के कारण दर्शकों और श्रोताओं पर भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करती है। उसका मत है कि कलाकार अपनी मानसिक स्थिति को दर्शक या श्रोता के समक्ष प्रकट करे, ऐसा न होने पर आलोचक द्वारा उसकी कृति का मूल्यांकन संभव नहीं है। वह मानता है कि चित्रकला और काव्यकला तथा अन्य कलाओं की अभिव्यक्ति का ढंग समान नहीं होता। काव्य को अन्य प्रकार की अभिव्यक्ति सदृश्य नहीं है, उसमें कुछ विशिष्ट प्रकार की अभिव्यक्ति ही स्थान पाती है। इसी प्रकार चित्रकला की अभिव्यक्ति भी सीमित है, उसके प्रकार परिमित हैं। यदि उनका सीमोल्लंघन किया जाय तो खतरा उपस्थित हो जाएगा। उसका कहना है "किसी कला का लक्ष्य वही हो सकता है जिसकी उपलब्धि के निमित्त केवल वही कला उपयुक्त हो, जिस उद्देश्य की उपलब्धि, समान रूप में या अपेक्षाकृत अच्छे ढंग से, अन्य कलाओं

द्वारा हो सकती है वह उसका लक्ष्य नहीं हो सकता।" अभिप्राय यह कि प्रत्येक कला की अपनी विशिष्टता होती है और इसी वैशिष्ट्य के कारण वह अपने लक्ष्य की सिद्धि करती है। इस विशिष्टता का निर्वाह आवश्यक है। यह विशिष्टता ही उस कला की आत्मा है। फलत: कलाकार को कला की आत्मा या उसकी विशिष्टता का ज्ञान होना आवश्यक है। क्योंकि इसके बोध से ही कलाकार अपनी कला का सम्यक् उपयोग कर सकता है और तभी उसके वांछित लक्ष्य की सिद्धि संभव है। उसने कविता के संबंध में अपना मन्तव्य उपस्थित करते हुए कहा-"कविता को चाहिए कि वह अपने कृत्रिम संकेतों का त्याग कर स्वाभाविक संकेतों की ओर अग्रसर हो; इसी बात में यह गद्य से भिन्न है और कविता बन जाती है। जिन उपकरणों द्वारा यह कार्य संपन्न होता है, वे हैं शब्दों की ध्वनि, शब्दों की स्थिति, परिमाण, अलंकार उपमा आदि। इनसे कृत्रिम संकेत निर्मित होते हैं जो स्वाभाविक संकेत जैसे लगते हैं, किंतु वस्तुत: इनसे वे संकेत स्वाभाविक संकेतों के रूप में नहीं बदल जाते। परिणामत: केवल इन्हीं उपकरणों का प्रयोग करनेवाली समस्त शैलियों को निम्न कोटि की कविता कहनी चाहिए। उच्च कोटि की कविता वह है जो कृत्रिम संकेतों को पूर्णतया स्वाभाविक संकेतों में बदल देती है; इसे नाट्य कविता कहते हैं।" (पाश्चात्य समीक्षा-दर्शन, पृ.213) इस प्रकार वह नाट्य कविता की उत्कृष्टता सिद्ध करता है।

'लाओकून' में लेखक ने काव्य और चित्रादि कलाओं का अंतर स्पष्ट किया है। उसने अपने कला-विषयक विचारों को स्पष्ट करने के लिए ऐसे विषय का चयन किया जिसके आधार पर मूर्त्ति बनाई गई थी और कविता भी लिखी गई थी। 'लाओकून' ट्रोजन के एक पुरोहित का नाम था जिसके अपराध से देवगण रूष्ट हो गए थे। वे उसे दण्ड देना चाहते थे। एक दिन जब वह समुद्र के तट पर पोजिडन की पूजा में निरत था, उसी समय समुद्र की उत्ताल तरंगें उठीं और अकस्मात् उसमें से दो भयंकर सर्प फुत्कार करते हुए प्रकट हुए और उन्होंने पुजारी तथा उसके बच्चों को काट लिया। लाओकून ने सर्पों के पाश से छूटने के लिए भरपूर चेष्टा की तथा भय और कष्ट से पीड़ित होकर चीत्कार कर उठा। इसी घटना के आधार पर रोम के वैटिकन नगर में एक मूर्त्ति गढ़ी गई है जिसका निर्माणकाल पुरातत्त्वविदों के अनुसार ई. पू. 50 वर्ष है। कहते हैं कि इस मूर्त्ति का निर्माण तीन मूर्त्तिकारों ने किया और यह मूर्त्ति छ प्रस्तर खण्डों पर निर्मित हुई है। इस मूर्त्ति में 'लाओकून' का मुँह आधा खुला हुआ है और एक दबी हुई आह के

के सम्प्रेषण के स्थान पर कहानी अथवा विधायक कल्पना के माध्यम से आनन्द प्रदान करती है।" स्कॉट जेम्स का कथन है "साहित्य भावना की क्रमागत पीढ़ियों की मनीषा का आलेखन है। यह उस समय और भी सशक्त स्वरूप ग्रहण कर लेता है जब इसका उद्‌भव समसामयिक लोगों में प्रचलित विचारों से होता है। सिंहावलोकन के समय यह ऐसा आदर्श और उत्कृष्ट स्वरूप ग्रहण कर लेता है जो आगत एवं अनागत साहित्यिक परंपराओं को प्रभावित ही नहीं करता, अपितु हमेशा के लिए एक प्रेरणास्तम्भ बन जाता है।" (आलोचना के बदलते हुए मान और हिंदी साहित्य, पृ. 62-63)

साहित्य मानवीय भावनाओं की रसात्मक या कलात्मक अभिव्यक्ति एवं जीवन के धरातल पर निर्मित महाप्रसाद है। साहित्यकार के हृदय में जब भावों का उद्वेलन होता है, तभी साहित्य की सरिता उद्यामवेग से निःसृत होकर प्रवाहित होने लगती है। जीवन और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं। जीवन और समाज से पृथक् होकर साहित्य की परिकल्पना हास्यास्पद है। वह साहित्य जो जीवन से दूर रहकर कल्पना-कानन में विचरण करता है, वह कला जो जीवन की मधुरिमा से हटकर अपना स्वर मुखरित करती है, उसमें जीवंत चेतना का नितांत अभाव रहता है। वह क्षणभर के लिए भले ही लोगों के हृदय में रम्याद्‌भुत तत्त्वों को उभार दे; किंतु उसमें स्थायित्व नहीं आ सकता। वही साहित्य चिरंतन और शाश्वत हो सकता है, जिसमें जीवनानुभूतियों का स्वर प्रखर हो और जो समाज की विभिन्न समस्याओं के प्रति सजग एवं उसके निगूढ़ तत्त्वों से दीप्त रहे। यह दीप्ति ही साहित्यकार के जीवनोद्देश्य का प्रधान संबल है और इसके द्वारा ही उसका श्रम सार्थक होता है। कोई भी साहित्यकार निभृत निकुंजों में बैठकर साहित्य की रागिनी नहीं छेड़ सकता उसका स्वर अरण्यसेदन बन कर रह जाएगा। मानव में जो मानवीय चेतना है वही साहित्य का विषय होता है और साहित्य या काव्य मानवीय मूल्यों का उद्योतन कर भावनाओं का परिष्कार करता है। कोई भी साहित्य जीवन की समस्या से अपने को दूर नहीं रह सकता; क्योंकि साहित्यकार स्वयं समाज का अंग है। चूँकि साहित्यकार की भावनाएँ ही उसके साहित्य में अनुगूँजित होती हैं, अतः जीवन से असंपृक्त साहित्य की कल्पना अकल्पनीय है। साहित्य को साहित्य बनने के लिए आवश्यक है कि वह मनुष्य के हृदय की धड़कनों को समझे और मानव के हृदय में गूँजित और ध्वनित ध्वनिको को श्रवण करने का प्रयास करे।

जीवन की सरिता में वह कौन-सा गरिमापूर्ण उच्छलन है, इसे कलाकार या साहित्यकार की आँखें ही देख पाती हैं। साहित्यकार संवेदनशील प्राणी होता है। वह समाज के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख मान कर उन्हें साहित्य में रूपायित करता है। सच्चे कवि के हृदय में भेद नहीं, अभेद का भाव आपूर्ण रहता है, वह खण्डबद्ध न होकर अखण्ड होता है। प्रकृति में निहित अनन्त सौंदर्य राशि को निर्वगुण्ठित कर साहित्यकार सबके समक्ष रख देता है। वह रचना की भूमिका में जिस छवि का अंकन करता है, उसे सम्प्रसारित करने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझता है। सारा संसार उस विश्वनियन्ता के अपूर्व सौंदर्य से दीप्त है, इसमें सर्वत्र उसी की छबि प्रोद्भासित हो रही है। चिंतन के क्षणों में जब कवि या साहित्यकार का राग बेसुध हो उठता है, तभी काव्य या साहित्य की रागिनी स्पंदित होने लगती है और उसका राग परिमित क्षेत्र से उठकर सार्वभौम रूप में निखर उठता है। साहित्य और साहित्यकार देश और काल की सीमा से परे हैं, उनका स्वरूप शाश्वत और विश्व जनीन होता है। कवि जब स्व को पर में और ससीम को असीम में व्यक्त कर सौंदर्यानुभूति की चिन्मयी प्रेरणा से आह्लादित हो उठता है, तभी कविता का राग उसके हृदय में निनादित होने लगता है और शब्दों से लिपट कर बाहर आ जाता है। वास्तव में उसके हृदय में स्फुरित सौंदर्य-चेतना को व्यक्त करने की क्षमता शब्दों में नहीं होती। जब कवि के हृदयगत भावों को शब्द स्वरूप प्रदान करने में अक्षम हो जाएँ तभी उसकी कला का उत्तमांश अभिव्यक्त होता है। शब्दों में अभिव्यंजन का शैथिल्य ही कला की उच्चता की स्थिति का द्योतक है। साहित्य-रचना के समय वह कौन-सा शिवनेत्र खुल जाता है, इसे साहित्यकार या कवि नहीं बता सकता; किंतु उसमें इस प्रकार की गरिमा होती है कि वह मन के भावों को रोक नहीं पाता और वह बरसाती वन्या की भाँति अनवरुद्ध गति से प्रवाहित हो जाती है।

साहित्य का वर्ण्य मानव जीवन की शाश्वत और विराट् भावनाओं का समुज्ज्वल रूप है। साहित्यकार जीवन की विशाल पीठिका को अपना कर ही साहित्य का प्रणयन करता है। जीवन अपने में वैविध्यपूर्ण है, अतः साहित्य में भी वह विविधता रूपांतरित होती है। सभ्यता के उस काल में मानव मन में जिन भावनाओं या भावानुभूतियों का उन्मेष हुआ था, यदि साहित्यकार उन्हीं को अपना विषय बना कर साहित्य-सर्जन करे तो वह शाश्वत सौंदर्य एवं स्थायित्व की भावना से आपूर्ण होगा। मानवीय भावनाओं का शाश्वत रूप प्रेम, घृणा, हर्ष, विषाद, क्रोध, वात्सल्य, उत्साह आदि जीवन की मूलप्रवृत्तियों में प्रतिफलित होता है। ये ऐसे

विषय हैं जो सार्वभौम, सार्वकालिक और शाश्वत जीवन मूल्यों से संपृक्त होते हैं। ये भावनाएँ किसी भी युग के लिए सत्य होती हैं और समय का आवरण इसे आच्छादित नहीं कर सकता तथा इनका रूप धूमिल नहीं हो पाता। साहित्यकार मानवीय चेतना में अंतर्निहित जीवन की इन चिरंतन भावनाओं का चित्रण करके ही अपने को अमर और कालजयी बना सकता है; क्योंकि ये ऐसी भावनाएँ हैं जो इतिहास की पीठिका में सदा जीवंत रहती हैं और इनकी महार्धता प्रत्येक युग में बनी रहती है अथवायों कहा जाय कि जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे शाश्वत जीवनमूल्यों से सम्बद्ध साहित्य का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है और वह गौरवान्वित होकर देश-काल की सीमा का अतिक्रमण कर आदरास्पद बना रहता है। साहित्य को दीर्घजीवी होने के लिए आवश्यक है कि वह जीवन की ऐसी समस्याओं का अंकन करे जो कभी भी प्राचीन न बनें। अतः, प्रबुद्ध साहित्यकार साम्प्रदायिक संकीर्णता में अपने को आबद्ध न कर विस्तृत आवेष्टन का चयन करते हुए अपने व्यक्तित्व को विभासित करता है। संसार का जितना भी महान साहित्य है, वह मानव जीवन की शाश्वत समस्याओं से विमंडित है। साहित्यकार की सारस्वत साधना का उत्तमांश साहित्य में मुखरित होता है और वही उसे कालजयी बनाने में सक्षम होता है।

जनमानस को प्रभावित करने वाले साहित्य की महत्ता सर्वसिद्ध है, इसे साम्प्रदायिक आलोचकों तथा प्राचीन साहित्यशास्त्रियों ने समवेत स्वर से स्वीकार किया है। जीवन्न के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण के कारण भी साहित्य की लोकप्रियता उभरती है और वह स्थायित्व से परिपुष्ट होता है। साहित्य में कल्पना, भावना, सौंदर्य, महिम, विराट् और बुद्धितत्त्व का समावेश होने से विचित्र प्रकार की गरिमा आती है। बिखरे हुए और विशृंखलित विचारों को सुसम्बद्ध और शृंखलित करने का कार्य कल्पना संपादित करती है। इसके द्वारा साहित्यकोर के विचार विशिष्ट प्रकार से तेजोज्ज्वल होते हैं। साहित्यकार निसर्गगंत सौंदर्योपासक होता है। वह ऐसी वस्तुओं में भी सौंदर्यान्वेषण कर लेता है जिनमें सामान्यं जन उसका (सौंदर्य का) लेश भी नहीं पाते। कवि या कलाकार संवेदनशील प्राणी होता है; वह भावनाओं की अभिव्यक्ति द्वारा अपनी संवेदनशीलता को अधिक परिष्कृत कर देता है। साहित्य में सौंदर्यानुभूति की महत्ता सार्वकालिक है। कवि या साहित्यकार मानव और मानवेतर प्रकृति के रूपचित्रण अथवा उनके माध्यम से अपनी सौंदर्य-चेतना की अभिव्यक्ति करता है। साहित्यकार के हृदय में सुसुप्त सौंदर्यचेतना जब शब्दों के माध्यम से व्यक्त होती है तो स्वभावतः उसमें मानव

और प्रकृति का संस्पर्श होने लगता है। कवि जब प्रकृति की छबि का अंकन करता है तो वह अपने हृदय का रस उड़ेल कर उसे अधिक प्राणवंत और शोभन बना देता है।

साहित्यकार की साधना का चरमोत्कर्ष कथन और कथ्य की नूतन सर्जना, प्रस्तुति या भंगिमा में है। साहित्यकार अथवा कवि जब अपनी प्रतिभा द्वारा पूर्ववर्ती सभी विचार-परंपरा और शैलीगत गरिमा को समाहित कर सर्वथा अभिनव पद्धति का निर्माण करता है तब उसकी सर्जनात्मक प्रतिभा का वैभव दीप्त हो उठता है। जब कवि अपनी अभिव्यंजना शक्ति द्वारा (शैलीगत वैभव से) भाषा के विकास के समस्त स्रोतों को अवरुद्ध कर दे अर्थात उसकी रचना में भाषा का ऐसा उदात्त और प्रोज्ज्वल रूप विकसित हो कि उसके विकास की सारी सम्भावनाएँ क्षीण पड़ जाएँ, तो इसी में प्रतिभज्ञान की चरम सीमा परिलक्षित होती है। शब्दगुंफ और भावसंयोजन के सम्यक् स्फुरण में ही कला की कलात्मक भंगिमा का निदर्शन होता है और वह अपने में गौरवमयी परंपरा को उपन्यस्त करती है। कवि की रससिक अनाविल शैली शब्दों के सहज उच्छलन से गुंफित होकर चित्रात्मक व्यंजना का संभार प्रस्तुत करती है।

ढाई हजार वर्षों की सुदीर्घ परंपरा में पाश्चात्य साहित्य शास्त्रियों ने साहित्य के विभिन्न पक्षों पर अत्यंत सूक्ष्मता के साथ विचार किया है। साहित्य के विषय, साहित्य और समाज, साहित्य को प्रयोजन, साहित्य और नीति तथा साहित्य और दर्शन संबंधी प्रश्नों पर वहाँ अत्यंत प्रौढ़ विचार प्रस्तुत किए गए हैं। साहित्य का माध्यम शब्द होता है; उसमें ध्वनि के साथ अर्थ का मेल अनिवार्य है। साहित्य में शब्दों के प्रयोग पर भी अत्यंत सूक्ष्म विचार हुआ है। पाश्चात्य साहित्य शास्त्रियों ने इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला है कि साहित्य या कला आत्म प्रकाशन है या प्रेषणमात्र। पर, अब यह सिद्धांत मान्य हो गया है कि साहित्यकार का लक्ष्य आत्मप्रकाशन के अतिरिक्त प्रेषण भी है। काव्य के सृजन तथा काव्यानन्द के संबंध में भी विचारकों ने अधिक तर्कवितर्क किया है। उनका निष्कर्ष यह है कि साहित्य यथार्थ के निरूपण के अतिरिक्त रचयिता के आत्म प्रकाशन का साधन भी है। वस्तुतः साहित्य की सृष्टि के मूल में निर्माण और आत्मप्रकाशन की दो प्रवृत्तियाँ ही क्रियाशील रहती हैं।

साहित्य के प्रयोजन के संबंध में भी अनेक प्रकार के मतवाद प्रचलित हैं। प्रायः सभी आचार्य इसका मूल लक्ष्य मनःप्रसादन या आनन्दोपलब्धि मानते हैं।

कोई इसे अधिक महत्त्व प्रदान करता है तो कोई इसे गौण रूप में स्वीकार करता है। साहित्य की आनन्ददायिनी शक्ति की मान्यता सार्वकालिक है। कुछ विद्वान इसे दैवी आनन्द का आंशिक रूप मानते हैं। प्लेटो ने इस तथ्य को स्वीकार किया था कि काव्य या कला में मन को प्रभावित करने की अद्‌भुत क्षमता है। वह इसे सामाजिक सुव्यवस्था और नैतिक उत्कर्ष के मार्ग में बाधक मानकर उन्नतिशील राज्य में कवियों की विद्यमानता को घातक स्वीकार करता था। इसके द्वारा नैतिक तथा राजनैतिक अभीष्ट की सिद्धि में व्यवधान उपस्थित होता है। प्लेटो की यह मान्यता परवर्ती शताब्दियों में भी दुहराई जाती रही और इसकी पुष्टि में सबल प्रमाण उपस्थित किए जाते रहे। पर, अरस्तू ने बताया कि काव्य का लक्ष्य हमारी वृत्तियों का विरेचन करना है। उसके मतानुसार काव्य में जीवन को इस प्रकार व्यक्त किया जाता है जिससे हमें आनन्द के साथ गंभीर ज्ञान की भी प्राप्ति हो। काव्य हमारी दूषित भावनाओं का परिष्कार कर उनमें आवश्यक सन्तुलन स्थापित करता है। आचार्यों ने इस प्रश्न पर वाद-विवाद किया कि साहित्य का उद्देश्य नैतिक प्रशिक्षण है या आनन्द की सृष्टि। रोमीय पंडित होरेस़ ने इस समस्या का स्थायी निदान प्रस्तुत करते हुए कहा कि इसके द्वारा दोनों ही कार्य संपन्न होते हैं। काव्य या साहित्य का प्रयोजन है हमारी भावनाओं का परिष्कार एवं उदात्तीकरण के साथ-ही-साथ आनन्दोपलब्धि या मनःप्रसादन। आनन्द के साथ नैतिकता का आदर्श की काव्य का परम प्रयोजन है। आधुनिक मनोविज्ञान काव्यसृष्टि के मूल में आत्म प्रकाशन और प्रेषण की प्रवृत्ति को मान्यता देकर उसकी उपादेयता हमारी मानसिक वृत्तियों की तृप्ति में मानता है। आई. ए. रिचर्ड्स के अनुसार काव्य मानसिक आवेगों में संतुलन और व्यवस्था उत्पन्न करने का साधन है। "कोई साहित्यिक कृति अपने उद्देश्य में तभी सफल होती है, जबकि उसमें आनन्द और उपयोगिता के ये दोनों 'स्वर' न केवल एक साथ विद्यमान हों, अपितु ये दोनों एक दूसरे से मिल कर अभिन्न हो जाएँ" (साहित्य -सिद्धांत , पृ. 39) साहित्य का आनन्द उच्चतर आनन्द होता है और उसकी उपयोगिता एक आनन्ददायक गंभीरता है, एक सौंदर्यात्मक गंभीरता है प्रत्यक्ष अनुभूति की गंभीरता है।

साहित्य और समाज में घनिष्ठ संबंध है, क्योंकि साहित्य की रचना किसी सामाजिक संदर्भ में, किसी संस्कृति के अंग रूप में, एक विशेष आवेष्टन में होती है। साहित्य से समाज की किसी-न-किसी तरह की तस्वीर खींची जा सकती है। लेखक समाज से केवल प्रभावित ही नहीं होता, वह उसे प्रभावित भी करता है। कला या साहित्य जीवन का प्रस्तुतीकरण ही नहीं करता अपितु वह उसे नया रूप

भी देता है। साहित्य को समाज का दर्पण और उसके उत्थान-पतन का कारण माना जाता है। इसको जीवन की व्याख्या कहा गया है। दोनों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का संबंध है। जीवन के हर्ष-विषाद और राग-द्वेष से ही साहित्य के कलेवर का निर्माण होता है और उसकी चेतना ही साहित्य को प्राणवंत और स्वाभाविक बनाती है। साहित्य का निर्माण जीवन से होता है, क्योंकि उसका विषय है जीवन और उसका समाज। साहित्यकार स्वयं मानव होने के कारण मानव-व्यापारों की उपेक्षा नहीं कर सकता। पर जागतिक जीवन से साहित्य में चित्रित जीवन भिन्न होता है, उसमें कल्पना और सौंदर्य का मिश्रण रहता है।

साहित्य का दर्शन या विचार से निकट का संबंध है। साहित्य एक प्रकार का दर्शन है जिसमें विचारों को शिल्प का जामा पहनाया जाता है। साहित्यकार प्रमुख विचारों का दोहन कर उन्हें अपनी कृति में स्थान देता है। भावना के साथ विचार का सुंदर समन्वय ही उत्कृष्ट कोटि के साहित्य का उदाहरण है। साहित्य का इतिहास बौद्धिक इतिहास के समानान्तर है, इसमें बौद्धिक इतिहास का प्रतिबिंब विद्यमान रहता है। वही साहित्य स्थायी हो सकता है जिसमें मानवीय सौंदर्य चेतना के साथ विचार की प्रौढ़ परंपरा भी अनुस्यूत हो। विचार या बुद्धि तत्त्व भी साहित्य का एक विचारणीय तत्त्व है। इसके माध्यम से कवि का जीवन और जगत् संबंधी दृष्टिकोण अभिव्यक्ति पाता है।

पाश्चात्य विचारकों (डीक्वेन्सी) ने साहित्य के दो विभाग किए हैं—Literature of Knowledge ज्ञानपरक साहित्य और Literature of Power शक्ति परक साहित्य। इन्हें क्रमशः उपयोगी और भावना प्रधान साहित्य कह सकते हैं उपयोगी साहित्य का संबंध ज्ञान की वृद्धि करने वाले साहित्य से है।

Literature of imagination (लिटरेचर ऑफ इमैजिनेशन) कल्पनाप्रधान साहित्य

दे. Literature जिस साहित्य में कल्पना की प्रधानता हो। इसकी विस्तृत परिधि में संपूर्ण सर्जनात्मक साहित्य आ जाता है।

Literary Criticism (लिटरैरी क्रिटिसिज्म) साहित्यालोचन या साहित्य-समीक्षा

साहित्य या काव्य के विविध पक्षों तथा तत्त्वों का सैद्धांतिक विवेचन करने वाला शास्त्र। दे. Criticism

Literature of Power (लिटरेचर ऑफ पावर) शक्ति का साहित्य

Litotes (लाईटॅटीज) वक्रोक्ति, कोमल व्यंग्य। एक अलंकार जब नकारात्म भाव का प्रयोग अन्य शब्दों के साथ सुदृढ़ स्वीकारात्मक भाव के रूप में हो तो यह अलंकार होता है।

जैसे वह बहुत नीच व्यक्ति नहीं है। अर्थात वह महान व्यक्ति है।

Litterateur (लितरातोर) साहित्यकार

साहित्य स्रष्टा या साहित्यकार। दे. Literature

■

Longinus (लोंजाइनस या लोंगिनुस) यूनानी आलोचक

यूनानी काव्यशास्त्र के इतिहास में अरस्तू के पश्चात अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व लोंजाइनस का है। उसका समय अनिश्चित है-संभवत: ईसा की प्रथम या तृतीय शताब्दी उसका आविर्भाव ऐसे युग में हुआ जब यूनानी सभ्यता अपनी समस्त प्रतिभा को समेट कर अंधकाराच्छन्न हो रही थी। उसकी विश्वविश्रुत कृति 'काव्य में उदात्ततत्त्व' या 'पेरिइप्सुस' है जिसका अँग्रेजी अनुवाद 'ऑन द सब्लाइन' होता है। उसकी रचना के अतिरिक्त उसके संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। शताब्दियों तक 'काव्य में उदात्ततत्त्व' का कोई भी विवरण प्राप्त न हो सका और उसे विस्मृति की कुहेलिका आच्छादित किए रही। सहसा इसका प्रकाशन इसकी रचना के डेढ़सहस्र वर्षों के बाद रॉबर्टेलो नामक फ्रेंच विद्वान द्वारा हुआ जिसे उसने पेरिस के एक पुस्तकालय में 1455 ई. में प्राप्त किया था। कालांतर में यूरोप की विभिन्न भाषाओं में इसके अनुवाद प्रकाशित होते गए और बिना किसी हिचकिचाहट के उसके लेखक के रूप में लोंजाइनस को ही मान्यता प्राप्त होती गई। इसका आंग्लानुवाद सर्वप्रथम जॉन हॉल द्वारा 1652 ई. में एवं फ्रेंच अनुवाद 1674 ई. में प्रसिद्ध फ्रेंच आलोचक बुअलो द्वारा हुआ।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारंभ में उसके संबंध में विभिन्न प्रकार की शंकाएँ उत्पन्न होने लगीं; फलत: दो प्रकार के तथ्य प्रकट हुए (1) लोंगिनुस की प्रामाणिक ग्रंथ-सूची में उक्त निबंध का अंतर्भाव नहीं है (2) निबंध की एक-दो प्राचीन

पाण्डुलिपियों में 'दिओन्युसिअस अथवा लोंगिनुस अंकित मिलता है।' (काव्य में उदात्ततत्त्व, पृ. 7, डॉ. नगेन्द्र) यूरोप में 'काव्य में उदात्ततत्त्व' के प्रकाशन के समय से लेकर उन्नीसवीं शती के प्रारंभ तक यह विश्वास किया जाता रहा कि इसका लेखक 'दिओनिसिअस लॉनजाइनस' ही है। उसके समय में अनुश्रुति यह थी कि उक्त ग्रंथ का रचयिता पाल्मुरा की रानी जेनोबिया का मंत्री लोंजाइनस ही है जो वीरता एवं कौशल के कारण प्रसिद्ध था तथा जिसने इसकी रचना ईसा की तीसरी शताब्दी में की थी। उसके विषय में कहा जाता है कि विद्रोह करने के कारण एरोलियन द्वारा उसकी मृत्यु हुई। उक्त ग्रंथ के लेखक एवं रचनाकाल के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों के दो विकल्प हैं। इसका रचयिता तीसरी शती में उत्पन्न लोंगिनुस था जो प्रसिद्ध वीर तथा विदग्ध था एवं उसने पालभ्युरा की रानी जेनोबिया के मंत्रिपद को सँभाला था। दूसरा मत यह है कि वह व्यक्ति कोई अज्ञात रोमी अथवा यूनानी आलोचक रहा होगा जिसका आविर्भाव ई. स. की प्रथम शताब्दी में हुआ था। दोनों पक्षों में अधिक सबल परंपरागत मत ही है जिसके पीछे पाश्चात्य जगत् के कई मनीषियों का समर्थन है जिनमें बुअलो, पोप एवं एडीसन है।

पेरिइप्सुस का प्रतिपाद्य विषय

लोंजाइनस के इस ग्रंथ की उत्कृष्टता का पता इसी से चलता है कि परंपरावादी एवं स्वच्छन्दतावादी उभयपक्ष के विद्वानों द्वारा समान रूप से समादृत हुआ। स्कॉटजेम्स ने प्रथम स्वच्छन्दतावादी एवं एटकिन्स ने इसे अन्तिम आभिजात्यवादी समीक्षकों में स्थान दिया। इस ग्रंथ का प्रतिपाद्य उदात्त या भव्यता (Sublimity) की कला का मूल्यांकन या विश्लेषण है। लोंजाइनस ने साहित्य के उस गुण का संकेत किया है जो पाठक के मन में तत्काल संवेगशील अनुभव का नवोन्मेष कर सिद्ध करता है कि भव्यता या उदात्तता के ही समावेश से साहित्य का सर्वोच्च आदर्श पूर्ण होता है। इसमें भाषणशास्त्र, पद्य, काव्य तथा शैली आदि के संबंध में अत्यंत महनीय तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं तथा उन मान्यताओं की पुष्टि के लिए अकाट्य प्रमाण भी प्रस्तुत हैं। इसके दो भाग हैं—प्रथम भाग में समसामयिक लेखकों के साहित्य-विषयक दोषों का उल्लेख है एवं द्वितीय भाग में उदात्ततत्त्व की व्याख्या है जिनमें विषय की रूपरेखा का अवधारण एवं गाम्भीर्य, समुचित अलंकार-प्रयोग, वाक्य-विन्यास का उत्कृष्ट रूप तथा शब्द प्रयोग का औचित्य आदि प्रमुख हैं।

उदात्त के संबंध में विचार करते हुए लोंजाइनस ने कहा है कि अभिव्यक्ति की विशिष्टता तथा उत्कृष्टता का नाम उदात्त है। यह काव्य का सर्वस्व है और इसी के कारण काव्य महान बनता है। उदात्तता आवेश में ही स्थित रहती है तथा उसका स्वर उत्कृष्ट मस्तिष्क में शब्दायमान होता है। उदात्त भाषा का प्रभाव श्रोता के अंतर में विचार के रूप में न पड़कर भावोद्रेक के रूप में होता है। भाषा में अवस्थित उच्चता एवं उत्कृष्टता ही उदात्त है; क्योंकि इसी के द्वारा प्रतिभाशाली व्यक्ति की रचना श्रोता के मन में भावावेश की स्थिति उत्पन्न कर देती है। इस अवस्था (भावावेश) में आत्मा में आह्लादकता का प्रसार होता है तथा उदात्तता के समावेश से कवि या काव्य की सम्पूर्ण शक्ति उद्भासित हो जाती है।

साहित्य का मूल उद्देश्य है पाठकों के मन में आह्लाद या परमानन्द की भावना का उद्रेक करना और उसकी उपलब्धि उदात्तता या भव्यता के ही समावेश के कारण संभव है। लोंजाइनस ने श्रेष्ठ साहित्य के ध्येय पर विचार करते हुए बतलाया कि वह शिक्षा प्रदान न कर श्रोता अथवा पाठक के हृदय में हर्षातिरेक की स्थिति उत्पन्न करता है जिससे कि बह भावाविष्ट होकर भौतिक जगत् से ऊपर उठे और किसी काल्पनिक लोक में विहार करने लगे।

उसने इस ग्रंथ के माध्यम से काव्य के मूलाधार का अन्वेषण, उसके स्वरूप का विश्लेषण एवं उसके स्रोत तथा प्रभाव पर विचार किया है। इसमें उदात्त तत्त्व को ही काव्य का मूल माना गया है और उसमें (काव्य में) निहित उदात्त की भावना का विश्लेषण न कर उदात्तशैली के ही मूलभूत तत्त्वों का समीक्षण किया गया है। अभिव्यक्ति की विशिष्टता एवं उत्कृष्टता ही उदात्तशैली के प्रमुख पक्ष हैं। इस ग्रंथ की रचना संवोधन-शैली में हुई है और वर्तमान रूप में यह निबंध अपने मूल रूप का एक तिहाई भाग है।

उदात्त के तत्त्व

लोंजाइनस के अनुसार उदात्तशैली के पाँच तत्त्व हैं—विचार की भव्यता (Grandeur of conception), शक्तिशाली भावावेग या भाव की उत्कृष्टता एवं धनता (Intensity of imotion), अलंकारों का समुचित प्रयोग (Appropriate use of figures), शब्दचयन या शब्द शिल्प की उदात्तता (Nobelity of Diction) एवं शब्द व्यवस्था की उत्कृष्टता (Elevation of word-order) या गरिमामय रचना-विधान। इनमें प्रथम दो तो उसके अंतरंग

तत्त्व हैं तथा शेष तीन बहिरंग तत्त्व। इनके अतिरिक्त उसने उदात्त के विरोधी तत्त्वों पर भी विचार किया है। उदात्त शैली के तत्त्वों में विरोधी तत्त्वों का बहिष्कार आवश्यक है।

विचार की भव्यता

यह उदात्त के सभी तत्त्वों में प्रधान है। इसके संबंध में लोंजाइनस का कथन इस प्रकार है—"अतएव, इसके लिए भी हमें, यद्यपि यह गुण अर्जित न होकर स्वभावजात होता है, यथासंभव अपनी आत्मा में उदात्त विचारों का पोषण करना चाहिए और उसे भव्य प्रेरणाओं से परिपूरित करना चाहिए।" यहाँ उसने कवि अथवा लेखक के लिए भव्य विचारों का पोषण एवं उच्च तथा महान प्रेरणाओं से परिपूरित होना आवश्यक माना है। काव्य में विचारों का भव्य एवं महान होना आवश्यक है। भव्य एवं महान विचार गरिमामयी शैली में ही प्रकट होते हैं। अतः, लेखक की आत्मा के विशाल होने पर ही उसकी शैली में ऊर्जा या उदात्तता का समावेश हो सकता है अन्यथा उसकी शैली निकृष्ट हो जाएगी। आत्मिक भव्यता के अभाव में साहित्य के गौरवमय रूप का सर्जन नहीं हो सकता। लोंजाइनस कहता है कि यदि लेखक में आत्मा की महानता स्वभावगत न हो तो भी महान एवं भव्य विचारों की चिंतना के द्वारा उसकी पूर्ति की जा सकती है। कोई भी व्यक्ति जीवन पर्यन्त हीन एवं क्षुद्र विचारों में तल्लीन होकर अमर तथा महान साहित्य का निर्माण नहीं कर सकता। गंभीर विचार वालों के द्वारा ही महान काव्य का सर्जन संभव है। विचार की भव्यता की प्राप्ति के दूसरे साधन के लिए लोंजाइनस ने पूर्ववर्ती महान साहित्यकारों की रचनाओं के अध्ययन एवं तदनुरूप आचरण को महत्त्व दिया है।

उदात्त की कला

लोंजाइनस ने इस संबंध में पूर्ववर्ती विचारकों का मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा कि कला पर नियंत्रण या अनुशासन नहीं होना चाहिए। उसके अनुसार प्रकृति का कार्य अभिव्यंजना के क्षेत्र में स्वतंत्र होते हुए भी अस्तव्यस्तता एवं नियमविहीनता से रहित है। कला में नियंत्रण एवं उत्तेजना दोनों का अस्तित्व आवश्यक है। अभिव्यक्ति के तत्त्व प्रकृति के आश्रित रहते हैं एवं कला उसे प्रकाश में लाती है।

शक्तिशाली भावावेग

इस विषय से संबद्ध विचार उसने अन्य ग्रंथों में व्यक्त किए थे; किंतु वे अनुपलब्ध हैं।

समुचित अलंकार प्रयोग

औदात्य की सिद्धि के लिए जिन प्रायोगिक साधनों की आवश्यकता होती है, उनमें एक अलंकार भी है। लोंजाइनस ने अलंकारों के प्रयोग के औचित्य पर ध्यान दिया है। उसके अनुसार अलंकारों की समूचित योजना के कारण ही शैली में भव्यता का समावेश होता है इस क्रम में उसने दो तथ्यों पर विचार किया है—अलंकार-विधान का औचित्य तथा उदात्त के पोषण के लिए अलंकारों का विवरण। उसने स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया कि अलंकार यांत्रिक प्रयोग न होकर शैली को सुंदर तथा चमत्कारपूर्ण बनाने के स्वाभाविक साधन हों। अलंकारों का निरंकुश कौशल शैली को भव्य नहीं बना सकता। उनका मूल यथार्थ भावनाओं के साथ लगा रहता है तथा वे शैली को वास्तविक लालित्य प्रदान कर मानव की कलात्मक रुचि को बढ़ाने में सहयोग देते हैं। अलंकारों का प्रयोग स्वतंत्र एवं निरपेक्ष न होकर प्रसंग के सहज अंग के रूप में होना उचित है। उनका इस प्रकार का प्रयोग किया जाय कि वे अलंकार की भाँत न लगें और न किसी का उस ओर ध्यान ही जाय कि यहाँ अमुक अलंकार है। इसीमें उनकी सार्थकता है कि वे विषय के साथ संपृक्त होकर सहजभाव से उसे कलात्मक बनाने में गति दे सकें। लोंजाइनस ने अलंकारों की संसृष्टि पर भी विचार किया है और बताया है कि एकाधिक अलंकारों के मेल से प्रबल प्रभाव पड़ता है। दो तीन अलंकारों के मिलने से शक्ति, प्रभावोत्पादकता एवं सौंदर्य की अत्यधिक वृद्धि होती है। अलंकारों का प्राकृतिकजन्य एवं अवसरोचित होना अत्यंत आवश्यक है। उदात्त के पोषक अनेक अलंकारों का उन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जिनमें रूपक, विस्तारणा, शपयोक्ति, प्रश्नालंकार, विपर्यय, व्यतिक्रम, पुनरावृत्ति, छिन्नवाक्य, प्रत्यक्षीकरण, संचयन, सार, रूपपरिवर्तन, पर्यायोक्ति आदि अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जिस प्रकार सूर्य के प्रखर प्रकाश में दीपक मन्द पड़ जाते हैं, उसी प्रकार उदात्त के 'सर्वव्यापी ऐश्वर्य' में स्नात होकर अलंकारों की चमत्कार दृष्टि तिरोहित हो जाती है। अलंकारों के इन्हीं गुणों के प्रभाव से भाषा में उदात्तता के अतिरिक्त विश्वासोत्पादकता भी आ जाती है।

उत्कृष्ट भाषा–(शब्द शिल्प)

लोंजाइनस ने शब्द शिल्प पर विशेष ध्यान दिया है। उसने शब्दावली की उपयुक्तता एवं प्रभावोत्पादकता को महत्त्व देते हुए बतलाया कि इससे श्रोता अत्यधिक आकृष्ट होते हैं और यही उनको मुग्ध करने का साधन भी है। उसने कहा कि "सुंदर शब्द सच्चे अर्थ में विचार की ज्योति हैं।" विचार तथा पदविन्यास का विकास एक दूसरे के आश्रय से होता है तथा वर्ण्यविषय के अनुरूप ही शैली में ओज, मृदुता, गुरुता एवं सौंदर्य का समावेश होना चाहिए। गरिमामयी भाषा का प्रयोग भव्य विषय में हो, तुच्छ एवं क्षुद्र विषय में ऐसी (गरिमामयी) शैली का प्रयोग करना किसी छोटे बच्चे के मुख पर त्रासद अभिनय का मुखौटा लगाने की भाँति उपहासास्पद है। (काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ. 95) उसने ग्राम्य शब्दों के प्रयोग को भी स्वीकार किया है। उसका कहना है कि कभी-कभी ग्रामीण शब्द एवं मुहाबरे अलंकृत-शैली से भी अधिक प्रभावोत्पादक होते हैं। लोंजाइनस शब्द-प्रयोग में अनुपात एवं सन्तुलन का पोषक है।

गरिमामय रचना-विधान

रचना विधान से लोंजाइनस का तात्पर्य है किसी निश्चित क्रम से शब्दों की योजना करने से। यह गुण स्वभावसिद्ध या साहजिक होता है और इसके द्वारा श्रवणेन्द्रियाँ ही नहीं आत्मा भी प्रभावित होती है। (काव्य में उदात्ततत्त्व, पृ. 105) रचना-विधान के अंतर्गत शब्द-विचार, कार्य सुंदरता तथा राग के अनेक रूप गुंफित होते हैं जिनका आविर्भाव मनुष्य के जन्म के साथ एवं उनका विकास मानव के विकास में निहित रहता है। शैलीगत रचना-विधान मानव शरीर रचना की भाँति है। जिस प्रकार-शरीर के विविध अवयवों का पारस्परिक संग्रथन शरीर को भव्य बनाता है, उसी प्रकार रचना के विभिन्न तत्त्वों के निवेषण से किसी उक्ति में औदात्त्य का समावेश होता है। गरिमा के तत्त्व परस्पर अलग होकर औदात्त्य को छिन्न-भिन्न कर देते हैं और महत्त्वपूर्ण वाक्य समूहों के पृथक् होने पर औदात्त्य भी बिखर जाता है। पर, उन समस्त तत्त्वों को परस्पर संपृक्त कर सामंजस्य की शृंखला में आबद्ध कर दिया जाता है तब वे एकान्विति के कारण श्रवण सुखद हो जाते हैं।

कल्पना

उदात्त के विभिन्न तत्त्वों की चर्चा के क्रम में प्रासंगिक रूप से बिम्बों का वर्णन करते हुए कल्पना पर हक्पात किया गया है। लोंजाइनस के अनुसार कल्पना द्वारा गरिमा, भव्यता एवं शक्ति का अत्यधिक विकास होता है। बिम्ब को उसने 'मानसिक प्रतिकृति' कहा है। कल्पना उसे कहते हैं जिसके द्वारा कवि किसी विषय का मानसिक दृष्टि से प्रत्यक्षीकरण करके, मोहक एवं चमत्कारपूर्ण शैली में, पाठक की मानसिक आँखों के समक्ष उसे उसी प्रकार उतार दे। कल्पना की इस परिभाषा में आधुनिक युग की कल्पना-संबंधी विचारों का संस्पर्श है।

विरोधी तत्त्व

लोंजाइनस ने कुछ ऐसे विरोधी तत्त्वों का भी निर्देश किया है जिनके कारण कोई भी रचना महान नहीं बन सकती। उसने उदात्तशैली को सर्वथा दोष-रहित एवं निर्भ्रान्त रूप में ही प्रस्तुत करना स्पृहणीय माना है। उदात्त के विरोधी तत्त्व हैं—बालेपता, रुचिहीन वाग्स्फीति, भावाडम्बर, शब्दाडम्बर आदि। बालेयता से उसका अभिप्राय है बचकानापन से। इसमें बच्चों के समान अवगुणों का प्राधान्य रहता है; जैसे चंचलता, गंभीरता का नितांत अभाव, असंयम, हीनता एवं कायरता आदि। चंचल पदों का गुंफन, असंयतवाक् निकृष्ट एवं क्षुद्र अर्थयुक्त शब्दावली का प्रयोग रचना में बालेयता का समावेश करता है। ये उदात्तशैली को हीन बनाने वाले तत्त्व हैं। भावाडम्बर दोष में अवसर के अनुपयुक्त एवं अनावश्यक खोखले आवेग को प्रदर्शित किया जाता है तथा जहाँ संयम की आवश्यकता हो वहाँ असंयम दिखाया जाता है। शब्दाडम्बर रचना के लिए अशोभन है। इन विरोधी तत्त्वों के अतिरिक्त जिन कई अन्य तत्त्वों का वर्णन किया गया है, वे हैं-विचाराभिव्यक्ति में नूतनता, भाषा का छिन्न-भिन्न एवं अस्तव्यस्त प्रवाह, अत्यधिक संक्षिप्तता तथा अभिव्यक्ति की क्षुद्रता। (दे. काव्य में उदात्त तत्त्व, पृ. 47)

काव्य-संबंधी विचार

उदात्त तत्त्व के विश्लेषण के क्रम में लोंजाइनस ने कवि एवं काव्य से संबद्ध मत व्यक्त किए हैं—

कवि

वह कवि के महान व्यक्तित्व को औदात्य के लिए आवश्यक मानता है। महान व्यक्तित्व से ही भव्यता का स्वर ध्वनित होता है। महान विचार की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्तित्व की गरिमा एक अनिवार्य तथ्य है। कवि का व्यक्तित्व सामान्य मनुष्य से ऊँचा होना चाहिए तथा उसमें कौशल के उत्कृष्ट गुणों का भी समावेश हो। कवि को संवेदनशील होना चाहिए तथा उसमें कलागत वैभव को व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता हो। "सच्चे वाग्मी को निश्चय ही क्षुद्र और हीनतर भावों से मुक्त होना चाहिए। क्योंकि यह संभव नहीं है कि जीवन भर क्षुद्र उद्देश्यों तथा विचारों से ग्रस्त व्यक्ति कोई स्तुत्य एवं अमर रचना दे सके। महान शब्द उन्हीं के मुख से निःसृत होते हैं जिनके विचार गंभीर और गहन हों। यही कारण है कि मनस्वियों को भव्यवाणी सहज ही प्राप्त होती है।" (काव्य में उदात्ततत्त्व, पृ.55) लोंजाइनस के अनुसार कवि शिक्षा द्वारा नहीं अपितु जन्म सिद्ध अधिकार पाकर अवतरित होता है।

काव्य का स्वरूप

लोंजाइनस के अनुसार उच्चकोटि का काव्य सार्वकालिक एवं सार्वभौम होता है। उसमें मनुष्यों को प्रभावित करने की अपूर्व शक्ति होती है। महान काव्य की चर्चा करते हुए उसने बताया है कि वह विभिन्न वृत्तियों एवं रुचियों के व्यक्तियों को समान रूप से आनन्द प्रदान करता है और इसके अध्ययन से शाश्वत आनन्द की प्राप्ति होती है। इस प्रकार की रचना युग और काल की सीमा का अतिक्रमण कर सार्वकालिक सौंदर्य की उपलब्धि कराती है। वह काव्य को अन्तः प्रेरणा का व्यापार मानता है और समस्त पुस्तक में इसी तथ्य पर विचार करता है कि आंतरिक भावोच्छ्वास को किस प्रकार महान शैली के द्वारा अभिव्यक्त किया जाय। यह कोई आवश्यक नहीं कि महान काव्य सदा निर्दोष ही रहे, निश्चय ही सर्वांगीण शुद्धता में आंशिक क्षुद्रता का होना अनिवार्य है।

लोंजाइनस की देन

लोंजाइनस पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र के इतिहास में उज्ज्वल नक्षत्र की भाँति जाज्वल्यमान है। वह पहला व्यक्ति है जिसने काव्य के नैतिक आधार एवं कवि-प्रतिभा को महत्त्व दिया है। उच्चकोटि का काव्य उदात्त मस्तिष्क में ही संभव है एवं उदात्त चरित्र ही भव्य काव्य की सृष्टि कर सकता है, आदि विचार कवि के

चारित्रिक महत्त्व को बताने वाले हैं। लोंजाइनस ने कवि प्रतिभा की अभ्यर्थना की है और काव्य-सृष्टि में आंतरिक प्रेरणा को महत्त्व प्रदान किया है। उसने काव्य के आध्यात्मिक धरातल की पुष्टि की एवं शैली के विभिन्न तत्त्वों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर काव्य के सार्वकालिक सिद्धांत की उद्‌भावना की। वह काव्य की अमरता का पोषक था और कवियों को पूर्ववर्ती महान रचनाकारों के आदर्शों को अपनाने की निःसंकोच सलाह देता था। उसकी मान्यता थी कि महान काव्य का उद्देश्य हमारी आत्मा को उच्च बनाना एवं पाठकों को नैसर्गिक आनन्द की उपलब्धि करा कर उनके व्यक्तित्व को ऊँचा उठाना है। उसने काव्य को अलौकिक उपकरण मान कर उसे ईश्वरीय प्रेरणा से उपलब्ध होनेवाली वस्तु कहा है। उसके अनुसार काव्य नैतिकता से भी महत्तर है।

काव्योत्कर्ष के अतिरिक्त उसने काव्य दोषों पर भी दृष्टिपात किया और यह अभिमत प्रकट किया कि महान काव्य में भी दोषों का रहना अनिवार्य है। उसने पाठकों की समस्या की छानबीन करते हुए बताया कि काव्य के निरंतर अध्ययन से ही मनोरागों का परिष्कार हो सकता है, अतः सुसंस्कृत रुचि का व्यक्ति ही काव्य का सच्चा पारखी हो सकता है।

उसने बताया कि महान साहित्य पाठकों को एक बार नहीं, बार-बार प्रभावित करता है तथा उसकी उच्चता तब और बढ़ ज़ाती है जब उसमें समान रूप से विभिन्न रुचि, विचार, काल एवं भाषा से सम्पन्न होने के लिए लेखक में मानवोचित समग्र गुणों के समावेश के साथ-ही-साथ उच्च कोटि की लेखनकला भी हो। लोंजाइनस ने रचना, रचयिता एवं पाठक से सम्बद्ध तीन तथ्यों पर विचार किया और बताया कि लेखक में प्रभावशाली या मनोहारी विचार एवं भाव, रचना में औदात्त्य या गरिमा तथा पाठक में सहृदयता और भावविह्वलता होनी चाहिए। उसने कवि के जिन तीन गुणों को अनिवार्य सिद्ध किया है, वे हैं—अलंकारों के समुचित प्रयोग की क्षमता एवं दक्षता, काव्य को भव्य बनाने वाला रचना-कौशल तथा शब्द-शिल्प का औदात्त्य।

उसने साहित्य को सौंदर्य की प्रबल शक्ति माना है। उसके अनुसार वही कला सार्वभौम एवं सार्वकालिक हो सकती है जिसके पीछे आध्यात्मिकता एवं नैतिकता का स्वस्थ पृष्ठाधार हो। उसका प्रधान उद्देश्य यह बतलाता है कि सशक्तशैली के लिए किन-किन बातों की अनिवार्यता है जिससे उसमें दुर्बलता, बचकानापन, बनावटीपन एवं कुरुचि न आने पाये।

उसके अनुसार साहित्य में सौन्दर्यानुभूति की बहुत बड़ी शक्ति है जो सम्पूर्ण मानव-समाज को बड़े वेग से प्रभावित करती है, उत्तेजना देती है तथा जो उसके स्वभाव में गहरे रूप से अवस्थित है उसका संवर्धन करती है। सौंदर्यानुभूति के कार्यकलाप को वह जितना आधुनिक विचारों तक पहुँचाता है उतना उसके पूर्ववर्ती किसी व्यक्ति ने नहीं पहुँचाया। होरेस ने काव्यात्मक शब्दों को ग्रामीण प्रयोग, वार्तालाप, मुहावरे और व्यंग्य तक ही परिमित कर दिया था; किंतु लोंजाइनस ने इन सबों को अभिव्यक्ति की ऊँचाई तक उठा दिया। अरस्तू से उसकी इस बात में सहमति है कि साहित्यजगत् भावजगत् है और कार्यरूप में उसका उद्देश्य मनोवृत्तियों के प्रक्षालन से है यद्यपि इसका उल्लेख वह कहीं भी नहीं करता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी भी बातों को प्रकाश में लाता है जिनका उल्लेख अरस्तू ने नहीं किया है, जैसे कल्पना का बृहत्क्षेत्र, रेचन की विस्तृत परिधि और प्रभावोत्पादकता जिसका संबंध मनुष्य की उच्चतर वृत्तियों से है।

Lyric (लिरिक) प्रगतीकाव्य

लिरिक या प्रगतीकाव्य का उद्‌भावक ग्रीक कवि पिण्डर माना जाता है। Layra लायर से (Lyre वीणा) इस शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। लायर या वीणा पर गाये जाने वाले गीतों को लिरिक कहते हैं। प्रारंभ में यह संगीत से संबद्ध था और इसमें देवी-देवताओं या वीरों का प्रशस्ति-गान किया जाता था। इसका गायन एक व्यक्ति भी करता था अथवा सामूहिक रूप से भी यह गाया जाता था। प्रगती को कविता का अत्यंत प्राचीन और सार्वभौम रूप माना जाता है। इसमें कवि की स्वानुभूति की अभिव्यक्ति होती है और यह काव्य का अनुभूतिपरक रूप है। इसे काव्य का सहज, स्वाभाविक और विशुद्ध रूप कहते हैं। इसकी अभिव्यक्ति प्रवाहपूर्ण, स्वाभाविक और स्वच्छन्द होती है तथा मनुष्य के भावपूर्ण उच्छलन का तीव्रतमवेग निहित रहता है। प्रगति की भाषा में संगीतिक तत्त्व प्रबल होता है और समरस भावों की मधुरता के साथ व्यक्तिगत अनुभूति की विवृत्ति होती है।

गेयता, भावप्रवणता, वैयक्तिकता, रागात्मक अन्विति, आत्मद्रव और प्रवाहमयी शैली प्रगती के प्रधान तत्त्व हैं। इसमें कवि व्यक्तिगत भावों को प्रकाशित करता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक हीगेल ने लिरिक-संबंधी चिंतन को नया मोड़ दिया। उसने इसमें निहित आत्मतत्त्व एवं उसके व्यक्तिपरक रूप की महार्धता स्वीकार की। वैयक्तिक तत्त्व का चरमोत्कर्ष इसमें दिखाई पड़ता है और कवि वाह्यतत्त्वों को आत्मसात् कर उन्हें आत्मतत्त्व से अभिभूत कर प्रकट

करता है। लिरिक भावप्रवण काव्य है जिसमें रचयिता के आंतरिक गुण व्यंजित होते हैं। पालग्रेव के अनुसार लिरिक की परिभाषा इस प्रकार है—"लिरिक की रचना किसी एक ही विचार, भावना अथवा परिस्थिति से सम्बन्धित होती है और उसकी रचना-शैली संक्षिप्त तथा भावना-रंजित होती है। तदनुसार उसकी प्रगति क्षिप्रगति से होती है।" [साहित्यरूप, पृ. 239]

लिरिक में संक्षिप्तता सांगीतिक तत्त्व एक ही भाव की त्वरा, प्रभावोत्पादकता तथा विकास की आंतरिक प्रक्रिया होती है। इसमें कल्पना तथा भावना का प्रकाशन प्रत्यक्ष रूप से होता है और अभिव्यंजना शैली सरल, अनावश्यक कृत्रिमता तथा अलंकरण से रहित होती है। इसका प्रभाव तीव्र एवं हृदयस्पर्शी होता है।

Marxism (मार्कसिज्म) मार्क्सवाद

आधुनिक युग की विचारधाराओं को जिन विभूतियों ने अधिक प्रोद्भासित किया है और विश्व-चिंतन को नई दिशा दी है, उनमें कार्लमार्क्स का नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है। उसने वर्तमान जीवन के प्रत्येक पक्ष को उपकृत कर उस पर गंभीर प्रभाव डाला है। मार्क्सवादी चिंतन पद्धति से साहित्य और साहित्यालोचन भी विशेष रूप से अनुप्राणित है। यों तो मार्क्स और ऐंजिल्स ने मुख्य रूप से दर्शन, इतिहास, अर्थशास्त्र और नीति के क्षेत्र में ही अपनी स्थापनाएँ की हैं, तथापि यदाकदा उन्होंने कला एवं साहित्य-संबंधी समस्याओं पर भी दृक्पात किया है। साहित्य में उनके विचार को 'समाजवादी यथार्थवाद' की अभिधा प्राप्त हुई है। इस मनीषी का जन्म 5 मई 1818 ई. को प्रशिया के ट्राइट नगर में एक यहूदी परिवार में हुआ था। पर 1824 ई. में उसके पिता ने ईसाइयों के प्रोटेस्टेंट मत को ग्रहण कर लिया था। उसके पिता वकील थे। मार्क्स स्नातक होने के पश्चात बोन तथा बर्लिन विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए प्रविष्ट हुआ; वहाँ उसने न्यायशास्त्र, इतिहास तथा दर्शन में विशेष रूप से दक्षता प्राप्त की। 1841 ई. में उसने डाक्टरेट का शोध प्रबंध प्रस्तुत किया। इस समय तक वह हीगेल के दर्शन से अत्यधिक प्रभावित था। अक्टूबर 1842 ई. से उसने वामपंथी हीगेल वादियों द्वारा परिचालित एक पत्रिका का संपादन प्रारंभ किया और पत्र की ख्याति बढ़ने से उसे तत्कालीन सरकार का कोपभाजन होना पड़ा और अंततः उसे 1843 ई. में उस पत्र को बन्द करने के लिए बाध्य होना पड़ा। 1843 ई. में उसने बचपन की परिचित जैनी नामक एक महिला से विवाह किया। 1844 ई. में वह पेरिस में ऐंजिल्स के सम्पर्क में आया और दोनों में अत्यधिक घनिष्ठता बढ़ी जो

जीवन-पर्यन्त अक्षुण्ण रही। दोनों ने नवम्बर 1847 ई. में लंदन की द्वितीय काँग्रेस में भाग लिया और वहाँ अपना विश्वविद्यालय 'कम्यूनिस्ट घोषणापत्र' लिखा जिसका प्रकाशन फरवरी 1848 ई. में हुआ। उसे क्रान्तिकारी होने के कारण बेलजियम पेरिस और वहाँ से पुनः जर्मनी आना पड़ा और जर्मनी से निकाले जाने पर उसे बाध्य होकर लंदन जाना पड़ा। निर्वासन-काल में उसे दरिद्रता, भुखमरी और भयंकर कष्ट का अनुभव हुआ, किंतु इस समय में ऐंजिल्स ने उसकी प्रभूत सहायता की। लंदन में रहकर उसने स्वतंत्र रूप से लेखन का कार्य चालू रखा और संगठन में भी सक्रिय रहा। वहाँ उसे दोनों ही कार्यों में सफलता मिली। उसने अपनी विश्वविख्यात कृति 'दास कैपिटल' या पूँजी की रचना तीन खण्डों में की। विपन्नता के कारण उसकी अधिकांश संतानें बचपन में ही मृत्यु को प्राप्त हुईं और 2 दिसम्बर 1881 ई. को उसे अपनी पत्नी का भी असह्य वियोग सहना पड़ा। 14 मार्च 1883 ई. को उसकी भी जीवन लीला समाप्त हो गई। फ्रेडरिक ऐंजिल्स का जन्म प्रशिया की राजधानी राइन में 1820 ई. में हुआ था। उसने 1838 ई. में अपने पिता के आग्रह से एक व्यापारिक कम्पनी की सेवा प्रारंभ की और अनिच्छापूर्वक उसे अध्ययन त्यागना पड़ा। उसने सेवाकाल में अपना अध्ययन अक्षुण्ण रखा और राजनीति तथा विज्ञान में विशेष रूप से दक्ष हुआ। उस समय जर्मनी में हीगेल का गहरा प्रभाव था, फलतः ऐंगिल्स हीगेलवादी बन गया। पर, आगे चलकर वह हीगेल का विरोधी हो गया और भौतिकवादी चिंतन की ओर प्रवृत्त हुआ। उसने 1845 ई. में एक पुस्तक की रचना की जिसका नाम 'इंगलैंड में श्रमिकवर्ग की दशा' था। 1844 ई. में मैनचेस्टर से जर्मनी जाते समय उसे मार्क्स से पेरिस में भेंट हुई और तब से जीवन पर्यन्त वह उसके लेखन में सहयोग देता रहा। उसे सरकार का कोपभाजन बन कर लंदन जाना पड़ा और 1870 ई. तक वह मैनचेस्टर में रहा। 1870 ई. में वह मार्क्स के निकट लंदन आ गया और उसके साथ 1883 ई. तक कार्यरत रहा। उसने कैपिटल की रचना में महत्त्वपूर्ण योग दयिा, पर यह ग्रन्थ मार्क्स के ही नाम से प्रकाशित हुआ। ऐंजिल्स की मृत्यु 5 अगस्त 1895 ई० को लंदन में हुई।

मार्क्स के दर्शन को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) कहते हैं। मार्क्स से पूर्व हीगेल ने 'डाइलेक्टिक' शब्द का प्रयोग किया था जो ग्रीक शब्द 'डायलेगो' के आदर्श पर प्रयुक्त हुआ था। डायलेगो का अर्थवाद-विवाद अर्थात् वार्त्तालाप एवं वाद-विवाद का द्योतक था। उस समय इसी प्रक्रिया से वक्ता अपने विरोधियों की असंगतियाँ प्रकट कर सत्य का प्रत्यक्षीकरण

करता था।ग्रीक दार्शनिक हेराक्लिट्स का कहना था कि प्रत्येक घटना का हेतु द्वन्द्व है और वही सभी वस्तुओं का स्रोत है। कालान्तर में हीगेल ने अपनी विचारधारा का मूलाधार द्वन्द्व को ही घोषित कर इसी के आधार पर अपने अध्यात्मवादी या आदर्शवादी सिद्धांत की स्थापना की। उसके अनुसार विकास की पद्धति द्वन्द्व पर आधृत है। कोल के मतानुसार हीगेल के द्वन्द्ववाद का सार इस प्रकार है—"उसने विश्व को दैविक न्याय की एक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जो निरंतर विरोध और संघर्ष की प्रक्रिया द्वारा अपने को प्रसारित करता है। सम्पूर्ण मानव इतिहास और केवल उसी से हमारा यहाँ संबंध है—उसके समक्ष विचारात्मक संघर्ष की एक लम्बी प्रक्रिया के रूप में फैल गया जिसका नश्चिय परिणाम विश्व-भावना की पूर्ण स्वानुभूति में विरोध का अन्तिम रूप से विनाश होगा। भौतिक स्तर पर समाज का विकास उसके लिए इस विचारात्मक प्रक्रिया की एक अभिव्यक्ति मात्र थी। मानव-इतिहास में जो घटित हो रहा है वह यह नहीं है जिसकी प्राप्ति होती है, बल्कि यह निरपेक्ष विचार में निहित वास्तविकता का क्रमिक तथा प्रगतिशील यथार्थीकरण है। प्रत्येक वस्तु विकास की सम्पूर्ण लौकिक प्रक्रिया में बीज रूप से वर्तमान थी, परंतु बीज यथार्थ का रूप विचार के लम्बे संघर्ष द्वारा ही धारण कर सकता था। यह संघर्ष जैसा कि इतिहास में दिखाई पड़ता है, अपूर्ण विचारों में होकर स्वानुभूति की ओर अग्रसर है। (मीनिंग ऑफ मार्क्सिज्म, पृ. 270)। हीगेल समाज को गतिशील और परिवर्तनशील मान कर उसका नियामक कारण विश्वात्मा को मानता है। उसने बताया कि उस प्रच्छन्न आत्म-शक्ति से ही विभिन्न स्थूल वस्तुओं का ज्ञान होता है। उसने द्वन्द्वात्मकता के अंतर्गत वाद (Thesis), प्रतिवाद (Anti Thesis) एवं युक्तवाद (Synthesis) की कल्पना कर बताया कि किसी भी अमूर्त का आरंभ विचारवाद से होता है और स्वाभाविक रूप से विचार से विरोध की उत्पत्ति होती है, जिसे प्रतिवाद कहते हैं। पुनः वाद और प्रतिवाद के संघर्ष के कारण जो समझौता होता है उससे नया विचार उत्पन्न होता है, इसे ही हीगेल युक्तवाद या संश्लेषण की संज्ञा देता है। यही युक्तवाद पुनः वाद होकर प्रतिवाद का रूप ग्रहण कर युक्तवाद के द्वारा नवीन विचार को जन्म देता है और यह क्रम निरंतर चलायमान होता रहता है।

पर, मार्क्स ने द्वन्द्व का आधार हीगेल की भाँति विचार (idea) को न मानकर पदार्थ (Matter) को माना। वह जगत् के पार्थिव रूप या भौतिक पदार्थ को ही चरम सत्य मान कर चला, क्योंकि वह विचार से भौतिकवादी था। उसने हीगेल

का विरोध कर वस्तु को चरम सत्य स्वीकार करते हुए बुद्धि, विचार और आत्मा को उसकी छाया या प्रतिबिम्ब कहा। वह हीगेल के प्रत्ययवाद या अध्यात्म का विरोधी था, फलतः उसने उसकी मान्यता को भौतिकवादी चिंतन में ढाल दिया। उसने अपनी मान्यता को हीगेल का विरोध मानते हुए कहा—"मेरी द्वन्द्वात्मक पद्धति से हीगेल से भिन्न ही नहीं अपितु उसकी सर्वथा विरोधी है। हीगेल ने मानव जीवन की प्रक्रिया अर्थात उसके चिंतन को प्रत्यय के नाम से अभिहित किया है और इसे उसने स्वतंत्र विषय घोषित किया है। पर, द्रष्टव्य यह है कि प्रत्यय भी यथार्थ विश्व की सृष्टि होने के कारण भौतिकता से मुक्त नहीं है। मैं मानव मस्तिष्क द्वारा प्रतिच्छायित भौतिक विश्व को अपने आदर्श रूप में ग्रहण करके इसी को अपने चिंतन का विषय बनाता हूँ।" [सेलेक्टेड वर्क्स, पृ. 413] मार्क्स भौतिक जगत् के मानव मस्तिष्क पर पड़े हुए प्रतिबिम्ब को ही विचार कहता है। ऐंजिल्स ने तो यहाँ तक कह दिया कि इन्द्रियों द्वारा दिखाई पड़ने वाला प्रत्यक्ष जगत् ही सत्य है और इन्द्रियातीत प्रतीत होनेवाली चेतनसत्ता इसी का परिणाम-मात्र है। आत्मा तो भूत का ही विकसित रूप है। मार्क्स भी मस्तिष्क को पदार्थ का चरम विकास मान कर दृश्यमान भौतिक जगत् को परम सत्य कहता है। इस दर्शन के अनुसार प्रत्येक पदार्थ की सत्ता शेष जगत् पर आश्रित रहती है और यह समस्त वस्तु जगत् चिरपरिवर्तनशील है। संसार का एक अणु भी स्थिर नहीं है। जगत् के प्रत्येक पदार्थ में विरोधी तत्त्व परस्पर विद्यमान रहते हैं और उनमें शाश्वत संघर्ष चलता रहता है। प्रत्येक वस्तु में उसके विनाश के तत्त्व वर्तमान हैं। पदार्थ के दो पक्ष हैं—सकारात्मक (पोजीटिव) और नकारात्मक (निगेटिव)। इनमें निरंतर द्वन्द्व चलता रहता है और संघर्ष के कारण पुराना तत्त्व नष्ट हो जाता है और नवीन तत्त्व उदित होता है। इसी निरंतर संघर्ष से विकास का क्रम निर्धारित होता है। मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के द्वारा यह सिद्ध किया कि प्रत्येक युग में दो विरोधी आर्थिक शक्तियाँ होती हैं और विरोध के कारण ही विकास होता है। इस युग में पूँजीवाद और सर्वहारावर्ग के द्वन्द्व के कारण पूँजीवाद का नाश होगा और साम्यवाद स्थापित होगा। मार्क्स के मतानुसार ये ही वर्ग-विचार तथा विरोधी विचारवाद और प्रतिवाद की अवस्था के सूचक हैं और वर्गहीन समाज युक्तवाद या सिन्थेसिस होगा। पूँजीवाद के भीतर उसके पतन के बीज विद्यमान हैं और इतिहास की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया में भौतिकवादी शक्तियाँ ही वास्तविक सिद्ध होंगी।

मार्क्स के चिंतन का दूसरा पक्ष है इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या (Materialistic Interpretation of History)। वह इतिहास की

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद द्वारा की गई व्याख्या को 'इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या' की संज्ञा देता है। इसमें समाज के ऐतिहासिक विकास और व्यक्ति के पारस्परिक एवं व्यक्ति तथा समाज के संबंधों की व्याख्या की जाती है। इस सिद्धांत के अनुसार मानव समाज की व्यवस्था पर उसके नियम, रीति-रिवाज, देशाचार, लोकाचार, राजनीतिक संघटन, धर्म, सदाचार तथा दर्शन का प्रभाव उन साधनों के द्वारा पड़ता है जिनके द्वारा उत्पादन होता है। उत्पादक के साधनों में परिवर्तन होने के साथ ही ऐतिहासिक और सामाजिक परिवर्तन होते हैं। उसने बताया कि इतिहास केवल कुछ राजनीतिक घटनाओं और राजा-महाराजाओं के क्रिया-कलापों का वृत्त या ब्यौरा न होकर मानव के आर्थिक संबंधों की गाथा है। इन्हीं आर्थिक संबंधों के परिवर्तन के साथ समाज के आचार-विचार, नियम, धर्म तथा राजनीतिक विचार भी परिवर्तित होते हैं; इतिहास की समस्त घटनाओं का आधार आर्थिक है। जिस युग में जिस प्रकार आर्थिक उत्पादन के सम्बन्ध होते हैं उसी प्रकार समाज और धर्म-नीति निर्मित होती है। मार्क्स का विश्वास था कि मानव अपने इतिहास का स्वयं निर्माता है, उसे किसी अदृश्य शक्ति पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती और न इसके लिए किसी धर्म की शरण में जाने की आवश्यकता है। वह ईश्वरवाद या अवतारवाद के प्रति आस्था नहीं रखता और न यही विश्वास रखता है कि महापुरुष किसी अदृश्य या ईश्वरीय सत्ता के प्रतिनिधि या अवतार हैं। वह धर्म को अफीम मानता है। जिस प्रकार जगत् में अन्य शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार महापुरुष भी जन्म लेते हैं। उसके अनुसार संसार परिवर्तनशील है, यहाँ कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। फिर समाज के आर्थिक संबंध कैसे स्थायी हो सकते हैं उनमें भी परिवर्तन अवश्यंभावी है। उसके विचार इस प्रकार हैं—"अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन में मनुष्य ऐसे निश्चित संबंध स्थापित करता है, जो अनिवार्य होते हैं और जो उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं करते, यह उत्पादन के संबंध उनकी भौतिक शक्तियों के उत्पादन के विकास की एक नियत अवस्था से मिलते-जुलते हैं। उत्पादन के इन संबंधों के कुल योग का नाम ही समाज का आर्थिक ढाँचा है- यही वास्तव में असली नींव है, जिस पर राजनीतिक तथा कानूनी भवन का निर्माण होता है और जिससे सामाजिक चेतना के निश्चित रूप मिलते हैं। भौतिक जीवन के उत्पादन के तरीके विधियाँ सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन की प्रक्रिया का निर्धारण करती हैं। उनके विकास की एक अवस्था में समाज में भौतिक उत्पादन शक्तियाँ वर्तमान उत्पादन के संबंधों के साथ संघर्ष करती है तब सामाजिक क्रांति का युग आरंभ

होता है। आर्थिक नींव में परिवर्तन के साथ ऊपर का भवन की परिवर्तित हो जाता है। ऐसे परिवर्तनों पर विचार करते समय हमें उत्पादन की आर्थिक अवस्थाओं में भौतिक परिवर्तनों, जिनका निर्णय प्राकृतिक विज्ञानों के द्वारा हो सकता है और कानूनी, राजनीतिक, धार्मिक, सौंदर्यात्मक तथा दार्शनिक संक्षेप में विचारात्मक रूपों में जिनमें मनुष्य इस संघर्ष के प्रति सचेत हो जाता है और उसमें लड़ने का प्रयत्न करता है—ये भेद करना चाहिए। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के संबंध में हमारा मत उस व्यक्ति की अपने संबंध में धारण पर निर्भर नहीं करता, उसी प्रकार हम परिवर्तन के ऐसे समय का निर्णय उसकी चेतावनी द्वारा नहीं कर सकते। इसके विपरीत इस चेतना की व्याख्या भौतिक जीवन की असंगतियों (Contradictions) से की जानी चहिए। अर्थात सामाजिक उत्पादन शक्तियों तथा उत्पादन के संबंधों में वर्तमान संघर्ष से चेतना की व्याख्या की जानी चाहिए। व्यापक रूप रेखा के रूप में हम एशियायी, पुरातन, सामंती और आधुनिक पूँजीवादी उत्पादन की रीतियों को समाज के आर्थिक निर्माण के युगों के प्रगतिशील युग मान सकते हैं।" (सेलेक्टेड वर्क्स, भाग-1, पृ.300)

वर्गसंघर्ष

मार्क्स समस्त मानव जाति के इतिहास को वर्ग-संघर्ष का इतिहास मानता है। साम्यवादी घोषणापत्र की भूमिका में ऐंजिल्स ने वर्ग-संघर्ष के सिद्धांत का सात इन शब्दों में रखा है। "प्रत्येक ऐतिहासिक युग में, प्रचलित आर्थिक उत्पादन और विनिमय के साधन और उनके फलस्वरूप सामाजिक प्रणाली एक ऐसे आधार का निर्माण करती है जिस पर उस युग का राजनीतिक और बौद्धिक इतिहास खड़ा किया जाता है, और केवल उससे ही इसकी व्याख्या की जा सकती है। इसलिए मनुष्य जाति का कुल इतिहास (अरण्य समाज के, जिसमें भूमि पर सामान्य स्वाम्य था, भंग होने के पश्चात से) वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। इन वर्ग युद्धों का इतिहास विकास की एक माला है जो आज कल इस अवस्था को पहुँच गई है कि जिसमें शोषित और पीड़ित मजदूर वर्ग, शोषक तथा शासक उच्च-वर्ग के अत्याचारों से तब तक मुक्ति नहीं पा सकता और वर्ग-युद्ध से मुक्त न कर दे।" वर्ग-संघर्ष के संबंध में पाँच तथ्यों पर बल दिया गया है—

(क) समाज की आर्थिक व्यवस्था के परिणाम-स्वरूप वर्ग-संघर्ष और वर्ग-भिन्नता का जन्म होता है।

(ख) अरण्य समाज के नष्ट होने पर मानव समाज वर्गों में विभक्त हुआ।

(ग) प्रत्येक युग का शासक वर्ग अपने हितों की सिद्धि करता है।

(घ) पूँजीपतिवर्ग एवं मजदूर वर्ग में संघर्ष की स्थिति अवश्यंभावी है।

(ङ.) वर्ग-संघर्ष का अंत करने से ही वर्ग-हीन समाज की स्थापना करने के लिए मजदूर वर्ग को सभी वर्गों का अंत करना होगा।

(च) वर्ग-विद्वेष या वर्ग-संघर्ष का एक मात्र कारण अधिक वैषम्य है। मार्क्स की धारणा है कि वर्ग-संघर्ष का अनिवार्य परिणाम पूँजीवाद का अंत और सर्वहारा वर्ग की विजय है।

अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत (Theory of Surplus Value)

इस सिद्धांत का प्रतिपादन न कर मार्क्स ने सिद्ध किया कि पूँजीवादी प्रणाली में पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण होता है। उसका कहना है, "अतिरिक्त मूल्य की सृष्टि या उत्पत्ति और इसलिए धन का पूँजी के रूप में रूपांतर की व्याख्या न तो इस मान्यता के आधार पर की जा सकती है कि पण्यों की विक्री अपने मूल्य से अधिक पर हुई है और न इससे कि वे अपने मूल्य से कम पर खरीदे गए हैं। यदि समान पण्यों का विनिमय किया जाय, तो कोई अतिरिक्त मूल्य नहीं उत्पन्न होगा और यदि असमान पण्यों का विनिमय किया जाय, तो भी कोई अतिरिक्त मूल्य उत्पन्न नहीं होगा। प्रचलन या पण्यों का विनिमय से कोई मूल्य नहीं मिलता।" श्रम-शक्ति का निर्धारण उस समय से होता है जो किसी पदार्थ के उत्पादन में लगता है। श्रम-शक्ति व्यक्ति की जीवनी शक्ति के रूप में विद्यमान रहती है। "श्रमिक अपने कार्य-काल में जितना आवश्यक श्रम करता है, वह प्राय: उससे भी अधिक श्रम करता है, जिससे वह अपने लिए कोई मूल्य पैदा नहीं करता। इस प्रकार अधिक श्रम करके वह अपने पूँजीपति के लिए अतिरिक्त मूल्य पैदा करता है। कार्य करने के दिन के इस श्रम को 'अतिरिक्त श्रम-काल' (Surplus labour time) और उस समय में जो श्रम किया गया है, उसे अतिरिक्त श्रम (Surplus labour) कहा गया है।" मार्क्स का कहना था कि जैसे-जैसे पूँजीवाद का विकास होता जाएगा, वैसे-वैस श्रमिक या सर्वहारा वर्ग विपन्न होता जाएगा। वह मानता है कि समाजवादी व्यवस्था की स्थापना सर्वहारा क्रांति से ही होगी। इसके लिए आवश्यक है कि सर्वहारा वर्ग के ही हाथ में राज्य सत्ता हो। राज्य सत्ता के हस्तगत न होने पर सर्वहारा वर्ग द्वारा समाजवादी व्यवस्था की स्थापना संभव नहीं है। इस संबंध में उसने साम्यवादी घोषणापत्र में अपना मन्तव्य प्रकट किया है—"हमने यह देख लिया है कि मजदूर-वर्ग की क्रांति में

पहला पग है सर्वहारा-वर्ग या मजदूर-वर्ग को एक शासक वर्ग की स्थिति को पहुँचा देना और प्रजातंत्र के युद्ध में विजय प्राप्त करना। सर्वहारावर्ग अपनी राजनीतिक सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग क्रमशः पूँजीवादियों से समस्त पूँजी हस्तगत करने में और उत्पादन के समस्त साधनों को राज्य के हाथों में केंद्रीभूत करने में करेगा-राज्य से तात्पर्य सर्वहारावर्ग से है, जिसका संगठन एक शासक-वर्ग के रूप में किया गया है और जो कुल उत्पादन शक्तियों में यथासंभव वृद्धि करेगा।" साम्यवादी व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार काम करेगा और प्रत्येक को अपनी आवश्यकतानुसार उपज में भाग मिलेगा। "साम्यवादी समाज की उच्चतम अवस्था में, श्रम-विभाजन के अंतर्गत व्यक्तियों की पराधीन दासता की अवस्था और उसके साथ मानसिक व शारीरिक श्रम में विरोध का अंत हो जाएगा; जब श्रम जीवन का साधन न रह कर जीवन की प्राथमिक आवश्यकता बन जाएगा; जब उत्पादन शक्तियों में भी वृद्धि हो जाएगी और उससे व्यक्ति के सर्वतोमुखी विकास में भी वृद्धि हो जाएगी और समस्त सहकारी सम्पत्ति अत्यधिक मात्रा में बढ़ने लगेगी-ताकि पूँजीवादी अधिकार के सीमित क्षितिज का अंत होगा और समाज अपनी पताका पर यह लिखेगा कि:—प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार काम करे; प्रत्येक को अपनी आवश्यकता के अनुसार उपज में भाग मिले।" इस प्रकार साम्यवादी व्यवस्था के अन्तिम चरण में राज्य का विनाश हो जाएगा और सभी लोग सामाजिक संबंध के मौलिक नियमों का पालन करते हुए स्वयं अपनी योग्यता के अनुसार काम करने लगेंगे। उत्पादन में अधिक वृद्धि होने पर समाज को ऐसा नियम बनाने की आवश्यकता ही नहीं होगी कि प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम की मात्रा के अनुसार उपज में भाग लेगा वरन् वह अपनी आवश्यकता के अनुसार ही उसे ग्रहण करेगा।

मार्क्स के कला-विषयक विचार

मार्क्स ने आर्थिक और सामाजिक मत के संदर्भ में अपने कला-संबंधी विचारों का प्रतिपादन किया है। वह मानव जीवन की बौद्धिक प्रक्रिया को भी उत्पादन प्रणाली के आधार पर निर्धारित करता है और कला-सृजन का भी आधार भौतिक मानता है। उसके अनुसार कला समाज या जीवन के आर्थिक पहलू से संबद्ध है और आर्थिक संबंध को ही कला का निर्णायक माना जा सकता है। मार्क्स की मान्यता है कि वर्गहीन समाज में ही वर्गहीन साहित्य की सृष्टि हो सकती है। वह साहित्य को वर्गवाद की उपज मानता है। मार्क्स के साहित्यिक मत को समाजवादी

यथार्थवाद की संज्ञा दी जाती है जिसमें यथार्थ जीवन का समाजवादी ढंग से अंकन किया जाता है। समाजवादी यथार्थवाद की मान्यता है कि लेखक द्वन्द्वात्मक भूमिका को आत्मसात् करके ही यथार्थ चित्रण में अग्रसर हो सकता है। "समाजवादी-यथार्थवाद जहाँ वस्तुगत यथार्थ को उसकी सारी सजीवता, सच्चाई तथा तीव्रता में चित्रित करने का आग्रह करता है, वहाँ इस बात पर भी जोर देता है कि यथार्थ का चित्र, उस यथार्थ के बीच सक्रिय मनुष्य का चित्र, उसकी सम्पूर्ण भूमिका में उतरे। लेखक केवल सतह पर उतराती हुई वास्तविकता का अंकन मात्र करने न रह जाय। सतह के भीतर की अधिक गहरी भूमिकाओं को प्रत्यक्ष करे केवल समाज की गंदगी, भ्रष्टाचार, शोषण, अराजकता और अन्धकार को ही दत्तचित्र होकर न उभारे, इस वास्तविकता से संघर्ष करती हुई प्रगतिशील शक्ति को भी उतनी ही तीव्रता से मूर्त करे, बल्कि उस पर अधिक जोर दे और इस प्रकार भविष्य के उस Vision की सृष्टि करे जो विरोधी परिस्थितियों के इस संघर्ष की एक आवश्यक और अनिवार्य परिणति प्रतीत हो, जिसका संबंध आस्था, विश्वास तथा सृजन की नई भूमिकाओं से हो, जो कृति में चित्रित समस्त प्रकार की वास्तविकता से अधिक प्रखर तथा भास्वर हो, उसकी अपेक्षा अधिक जीवित सत्य हो।" (आलोचना, 28 पृ. 29) समाजवादी यथार्थवाद की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(क) यह साहित्य को, श्रमिक वर्ग के समाजवादी आदर्शों में शिक्षित करने का माध्यम मानता है।

(ख) यह संघर्षरत व्यक्ति के जीवन के यथार्थ स्वरूप को विशेष महत्त्व प्रदान करता है।

(ग) इसका दृष्टिकोण मानवतावादी होने के साथ ही अंतर्राष्ट्रीय है।

(घ) यह आधुनिक, अमानवीय एवं अयथार्थ विचारधाराओं का विरोधी है।

(ड.) यह प्रतिनिधि परिस्थितियों में प्रतिनिधि पात्रों के चित्रण को महत्त्व देता है।

(च) यह बोधगम्यता को साहित्य का विशिष्ट गुण मानता है।

(छ) इसका दृष्टिकोण प्रचारवादी होने के साथ ही सोद्देश्य है।

(आलोचना के बदलते मानदण्ड और हिंदी साहित्य, पृ. 510)

मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन के तीन स्वरूप हैं। इसके प्रथम स्वरूप में मार्क्स और ऐंजिल्स के कला संबंधी चिंतन आते हैं और द्वितीय स्वरूप में लेलिन, माओत्सेतुंग की साहित्यिक मान्यताओं का आकलन किया जाता है। मार्क्सवादी साहित्य का तीसरा स्वरूप प्लेखनोव, ट्रॉटस्की, क्रिस्टोफर कॉडवेल तथा जार्ज लुकाच की कृतियों में देखा जाता है।

मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन का प्रथम स्वरूप

मार्क्स का कहना है कि उत्पादन प्रक्रिया का जीवन की सामाजिक राजनैतिक तथा बौद्धिक प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है और साहित्य-सृजन आर्थिक संबंधों का ही परिणाम है। साहित्यकार समाज-सांपेक्ष प्राणी है, अतः उसके ऊपर उसके आवेष्टन का प्रभाव पड़ना आवश्यक है। कोई भी साहित्यकार इस प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकता; यहाँ तक कि उसकी कल्पनाएँ भी इससे नियंत्रित होती हैं। साहित्यकार पर साहित्य के यथार्थ को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करने का दायित्व होता है और यथार्थवादी दृष्टि का परित्याग कर चलने वाला साहित्य प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। साहित्य की रचना सोद्देश्य होनी चाहिए और उसे सर्वहारा वर्ग या शोषित का पक्षधर होना चाहिए। इसी प्रकार के साहित्य द्वारा शोषण का अंत करने के लिए जनमानस तैयार हो सकेगा। "जो साहित्य वर्ग-संघर्ष का चित्रण नहीं करता — वर्ग संघर्ष से बच निकलने का प्रयत्न करता है, वह भविष्य के लिए अपना स्पष्ट दृष्टिकोण नहीं रखता, सर्वहारा के संघर्ष का सहायक सिद्ध नहीं होता, वह समाजवादी यथार्थवाद नहीं कहा जा सकता। जैसा कि इतिहास के संबंध में ऐंजिल्स ने लिखा है कि इतिहास का अध्ययन वर्ग-संघर्ष का इतिहास है—वैसे ही यह कहा जा सकता है कि साहित्य का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। अब तक साहित्य में वर्ग-संघर्ष स्वाभाविक रूप से अपने आप चित्रित होता रहा है, किंतु आज हम इस सत्य को जान गए हैं जो हमें जानबूझ कर उस प्रकार का साहित्य निर्मित करना चाहिए जो वर्ग-संघर्ष को तीव्र करे तथा समाज को ठीक उस दिशा में ले जाय, जहाँ से समाजवादी और आगे वर्गहीन समाज-व्यवस्था का पथ प्रशस्त हो सके।" (आधुनिक हिंदी आलोचना एक अध्ययन, पृ.38-39) साहित्यकार का उद्देश्य बुर्जुआ समाज की आशाओं को ध्वस्त कर वर्तमान समाज के प्रति संदेह की दृष्टि से देखना है तथा यह विचार व्यक्त करना है कि यह समाज ह्रासोन्मुखी है और न यह व्यवस्था सदा चल सकती है। साहित्य की मार्क्सवादी व्याख्या में युग तथा साहित्य के अभिन्न संबंध

को मान लिया गया है। मार्क्स मानता है कि उत्पादन के प्रकारों द्वारा ही साहित्य का स्वरूप-निर्मित होता है। विचार अंततः अर्थ के द्वारा ही निर्मित होते हैं और निर्मित होने के पश्चात वे अपने विकास के लिए स्वतंत्र मार्ग का अवलम्ब ग्रहण करते हैं। ऐंजिल्स की मान्यता है कि विचारों का क्षेत्र आर्थिक विकास से ही नियंत्रित होता है और साहित्य, दर्शन आदि सभी आर्थिक संबंधों के परिवर्तन की प्रेरणाएँ हैं। कलाकार वर्ग की मान्यताओं के नियंत्रण से मुक्त नहीं हो सकता।

मार्क्स ने मनोविश्लेषणवादियों के इस मत को अस्वीकार कर दिया है कि कला की सृजन प्रक्रिया अचेतन और यांत्रिक है। उसने बताया कि कलात्मक आनन्द मनोरंजन-मात्र न होकर उससे उच्चतर तत्त्व है और कलात्मक आनन्द का आस्वादन वही कर सकता है जिसकी कला संबंधी रुचि अधिक परिष्कृत तथा सुसंस्कृत होती है। मार्क्सवाद में काव्य या कला का आरंभ सामूहिक भाव या सामाजिक चेतना से माना जाता है, फलतः काव्य के संबंध में उसका दृष्टिकोण सामूहिक या समाजवादी है। मार्क्सवादी साहित्य-दर्शन के अनुसार प्रत्येक कलाकार जन-जीवन में घुलमिल कर उसकी वास्तविक स्थिति को अनुभूति के द्वारा ग्रहण करे; क्योंकि वह सम्पूर्ण जन-जीवन के साथ अपने आपको तदाकार करने से ही सामूहिक भावों को सम्यक् रूपेण ग्रहण करता है। मार्क्सवादी आलोचना सामान्य को ही काव्य की प्रेषणीयता का आधार मानती है, वैचित्र्य को नहीं। वह ऊहात्मक और चमत्कार प्रधान शैली को जनवादी साहित्य के लिए उपयुक्त नहीं मानती। जनवादी साहित्य की भाषा का सरल और प्रवाहपूर्ण होना आवश्यक है अर्थात भाषा में चमत्कार और कलाबाजी के स्थान पर संवेदनीयता और हृदयस्पर्शिता को अधिक प्रश्रय दिया जाता है। मार्क्सवादी साहित्य-समीक्षा में साहित्य को सामाजिक क्रिया कहा गया है जो जनसाधारण के जीवन से घनिष्ठ संबंध स्थापित कर सके।

मार्क्सवादी आलोचना को समाजशास्त्रीय आलोचना कहते हैं जिसका ध्येय साहित्य के ऐतिहासिक तथा गतिशील संबंध का उद्घाटन करना है और वह लेखक को ऐसे साहित्य सृजन की ओर आकृष्ट करती है जो समाज को बदल देने वाला हो। उसके मूल्यांकन का आधार बौद्धिक है और वह मार्क्सवादी जीवन-शक्तियों के आधार पर कला की श्रेष्ठता को आँकती है। मार्क्स मानवतावाद का पुजारी था और उसने प्रत्येक स्थिति में मानववादी विचारों का ही स्तवन किया है। वह कला से इस तथ्य की अपेक्षा करता है कि वह भविष्य के

समाज के निर्माण के अनुसार निर्मित हो और पूँजीवादी सभ्यता के विरुद्ध नियोजित रहे।

मार्क्सवादी साहित्य का द्वितीय स्वरूप

इस युग के विचारकों में लेनिन और माओत्सेतुंग विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। ब्लादमीर ईलिच लेलिन विश्व के प्रथम समाजवादी राज्य के संस्थापक के रूप में विख्यात है। उसका जन्म 22 अप्रैल 1870 ई. को सिमब्रिस्क में हुआ था और मृत्यु 21 जनवरी 1925 ई. में हुई। उसने साहित्य के क्षेत्र में भी अनेक ऐसी भ्रान्तियों का निराकरण किया जो मार्क्सवाद को ठीक तरह से न समझ पाने के कारण उत्पन्न हुईं थीं। वह एक सीमा तक साहित्य की मौलिक स्थिति को स्वीकार करता था तथा साहित्यकार को स्वतंत्रता की दृष्टि से निरपेक्ष नहीं मानता था। वह साहित्य को कम्युनिस्ट पार्टी के साथ सम्बद्ध कर यह विचार व्यक्त करता है कि वह पार्टी के सिद्धांतों के प्रचार का माध्यम है। लेनिन के अनुसार साहित्य सर्वहारा का अस्त्र है; उसे पार्टी का अनुगामी होकर सर्वहारा के हितों की सुरक्षा पर ध्यान देना चाहिए। साहित्य पार्टी के सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम का एक सुनियोजित अंग है; जो साहित्य इस अंग की पूर्ति नहीं करता वह वैयक्तिक है, फलतः उसका प्रतिवाद करना चाहिए। लाखो मजदूरों की सेवा करने वाला साहित्य ही वास्तविक रूप से स्वतंत्र कहा जाता है। लेनिन के मतानुसार मार्क्सवादी साहित्य का मूलाधार है यथार्थवाद और यह वह पद्धति है जिससे साहित्य शक्तिशाली बनता है। वह मार्क्स की भाँति धर्म को घृणित और प्रतिक्रियावादी तत्त्व मानता है और साहित्यकार की सफलता इस दृष्टि से आँकता है कि वह मजदूर आंदोलन एवं समाजवादी संघर्षों की मान्यताओं को हृदयस्थ कर उसके क्रांतिकारी स्वरूप का पूर्णतः उद्‌घाटन करे। वह साहित्य की सामयिक शक्ति में विश्वास करता है और उसकी उपयोगिता को ही दृष्टि में रख कर उसकी शाश्वतता की स्वीकृति प्रदान करता है। वह प्राचीन साहित्य का मूल्यांकन मजदूर आंदोलन की दृष्टि से नहीं करता, अपितु उसे तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आँकना चाहता है।

माओत्सेतुंग

माओ लेलिन की भाँति साहित्य को जनता के हित में प्रयुक्त करना चाहता है। 1942 ई. में आयोजित येनान की गोष्ठी में उसने विविध दृष्टियों से कला के

ऊपर विचार व्यक्त किया है। कला के निर्माण और उद्देश्य पर विचार करते हुए माओ ने कहा कि साहित्य श्रमिकवर्ग के हितों का प्रमुख संरक्षक है तथा सर्वहारा वर्ग के हितों की रक्षा करता है। साहित्यकार बुर्जुआवर्ग की अपेक्षा सर्वहारा वर्ग को विशेष महत्त्व प्रदान करे; क्योंकि बुर्जुआवर्ग के साहित्यकार उसी वर्ग के बौद्धिक लोगों को अपने साहित्य का विषय बनाते हैं। उसके अनुसार "चूँकि साहित्य श्रमिक, कृषक एवं सैनिक वर्ग को दृष्टिपथ में रख कर सृजित किया जाता है, अतएव सर्वप्रियता का अर्थ इन लोगों में साहित्य एवं कला का प्रचार करना उन्नयन का अर्थ उनके कलात्मक एवं साहित्यिक समीक्षा के स्तर का विकास करना है।" वह मानवता के प्रति विशिष्ट प्रेम को कला का केंद्रबिन्दु मानता है तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की उत्पत्तियों को यथावत ग्रहण कर उन्हें ही कलात्मक पर्यवेक्षण का विषय बनाना चाहता है। माओ ने बताया कि साहित्यकारों का काम जनता को प्रोत्साहित करना तथा पार्टी को समर्थन देना है। (ऑन आर्ट एण्ड लिटरेचर, पृ. 93, 102, 103, 107, 108 तथा 77-91 एवं टाक्स एट दि एनान फोरुम, पृ. 35-37)

मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन का तृतीय स्वरूप

इस क्षेत्र के विचारकों में प्लेखानोव, ट्रॉटस्की तथा क्रिस्टोफर कॉडवेल अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। प्लेखनोव की प्रसिद्ध पुस्तक 'आर्ट एण्ड सोशल लाइफ' है जिसमें मनुष्य की कलात्मक चेतना के विकास तथा कला के सामाजिक संबंध का निरूपण है। 'टालस्टाय' के सम्प्रेषण-सिद्धांत का प्रतिवाद करते हुए उसने इस तथ्य का प्रतिपादन किया कि कला के माध्यम से मनुष्य के भाव तथा विचार को मूर्त्त बिम्बों के आधार पर अभिव्यंजित किया जाता है। प्लेखानोव का पूरा नाम जॉर्ज बैलेंटा-इनोविच प्लेखानोव था। उसका जन्म तांवोव राज्य के मध्यवर्गीय कृषक परिवार में 1856 ई. में हुआ था। 1876 ई. में जारशाही के विरुद्ध भारी प्रदर्शन में उसने भाग लिया था और उसे देश निकाले का आदेश प्राप्त हुआ और अंततः उसे रूस छोड़ कर यूरोप में भ्रमण करना पड़ा। स्विटजरलैंड में निवास करते हुए प्लेखानोव ने अनेक ग्रंथों की रचना की और 'कला तथा सामाजिक जीवन' नामक पुस्तक को 1912 ई. में प्रकाशित कराया। रूसी क्रांति के पश्चात वह स्वदेश लौटा और समाजवादी रचना में सक्रिय रूप से योग देने लगा। उसकी मृत्यु 1918 ई. में हुई। कला के संबंध में उसके विचार इस प्रकार हैं—"कला का कार्य मानव चेतना के विकास में सहायता करना है, सामाजिक व्यवस्था को उन्नत बनाना

है। ... 'कला कला के लिए' सिद्धांत का तब जन्म होता है जब कलाकार अपने सामाजिक परिवेश के साथ एकाकार नहीं हो पाता।" उसके अनुसार कला एक सामाजिक तत्त्व है। इतिहास सामाजिक पद्धति का प्रतिबिम्ब होता है और वह समाज की उत्पादन शक्तियों का विकास करता है। समाज में परिवर्तन होने पर विचारधारा में भी परिवर्तन होता है कला में भी सामाजिकता प्रधान तत्त्व के रूप में निहित रहती है। वह 'कला कला के लिए है' का खण्डन कर 'कला जीवन के लिए है' का प्रबल पोषक है। प्लेखानोव को साहित्य में भाव तथा विचार दोनों की ही स्थिति मान्य है। कलाकार अपने चारों ओर के परिवेश से जो अनुभव प्राप्त करता है उसी के यथार्थ को जब मानस चित्रों के माध्यम से व्यक्त करता है, तो कला की सृष्टि होती है। उसने साहित्येतिहास को समझने के लिए सामाजिक स्थितियों के परिवर्तन पर ध्यान देने की बात कही है। वह व्यक्तिवाद पर आधृत सभी मान्यताओं और जीवन-पद्धतियों को अमान्य घोषित करता है। उसके अनुसार रहस्य-भावना सौंदर्य की दृष्टि से हेय बुद्धि-रहित, अंतर्विरोधों से संबलित तथा मिथ्या भावना पर आश्रित है। उसने प्राचीन कला के साथ श्रम के अनिवार्य संबंध की घोषणा की है और उसी को आसान करने के लिए कला के जन्म की परिकल्पना की है। उसके विचारानुसार श्रम कला की अपेक्षा अधिक प्राचीन है। कला जीवन की अनुगामी तथा जीवन को सुंदर बनाने का साधन है। सिद्धांतहीन और सामाजिक परिप्रेक्ष्य से रहित कला का कोई मूल्य नहीं होता। प्लेखोनेव वर्ग-संघर्ष को जीवन का सर्वोच्च सत्य मानता है।

ट्रॉटस्की का मत मार्क्स तथा ऐंजिल्स के कला-विषयक विचार के अधिक निकट है। उसके मतानुसार "मार्क्सवादी पद्धति नई कला के विकास का मूल्यांकन करने का अवसर उपस्थित करती है। उसके समस्त स्रोतों को खोजती है, आलोचनात्मक प्रकाश द्वारा पथ को उजागर करके सर्वाधिक प्रगतिशील शक्तियों को सहायता पहुँचाती है, लेकिन इससे अधिक कुछ भी नहीं करती। कला को अपने माध्यमों द्वारा ही अपनी राह बनानी पड़ेगी। 'मार्क्सवादी' प्रणाली और कलात्मक प्रणाली एक ही वस्तु नहीं है। पार्टी श्रमिक वर्ग का नेतृत्व करती है, इतिहास की विशाल गति का नहीं। कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें वह अपना नया विन्यास करती है, कला का क्षेत्र वह नहीं है जिसमें पार्टी को आदेश देने की आवश्यकता हो। कला की रक्षा करना और सहायता करना पार्टी का काम है। परंतु, नेतृत्व केवल अव्यक्त रूप से ही हो सकता है।" "नई समाजवादी कला 'कामेडी' को जीवित करेगी, क्योंकि भावी मानव हँसना चाहेगा। वह उपन्यास को

नया जीवन देगी। वह गीतों को सम्पूर्ण अधिकार प्रदान करेगी; क्योंकि नया आदमी पुराने लोगों से बेहतर और अधिक शक्तिशाली ढंग से प्यार करेगा, वह जीवन और मृत्यु के प्रश्नों पर विचार करेगा। नई कला समस्त पुराने स्वरूपों को पुनर्जीवित करेगी जो सृजनात्मक आत्मा के विकास में प्रतिफलित हुए। उन स्वरूपों का ह्रास और पतन आत्यन्तिक नहीं है, अर्थात यह नहीं समझा जाना चाहिए कि वे नए स्वरूप नए युग की आत्मा से बिलकुल ही मेल नहीं खाते। नए युग के कवि के लिए कुल इतना आवश्यक है कि वह मानव-जाति के विचारों को फिर से विचारे, उसकी अनुभूतियों को फिर से अनुभव करे।" (आलोचना विशेषांक, अक्टूबर 1953, 149-153)

'रैल्फ फाक्स' ने साहित्य में पूँजीवादी प्रवृत्तियों का विरोध किया और बताया कि काव्यगत सत्य अनिवार्यत: सामाजिक होता है। उसके अनुसार कला की मूल्यवत्ता यथार्थवाद के आग्रह और अभिनिवेश के कारण है, कलाकार को आदर्शवादी नहीं होना चाहिए। उसकी मान्यता है कि मार्क्सवाद से ही कलाकार काव्य के सत्य को प्राप्त कर सकता है। उसके अनुसार "कला वह साधन है जिसके द्वारा व्यक्ति यथार्थ को आत्मसात् करते हुए उसकी अनुभूति करता है वह आंतरिक चेतना के प्रज्ज्वलित सौध से यथार्थ की उत्तप्त धातु को निकालता है, उसे अपने उद्देश्य के अनुरूप मोड़ता है और क्रांतिपूर्ण विचारों की शक्ति का विनियोग कर उसे एक आकार प्रदान करता है।" (आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान, पृ.56)

कॉडवेल-

क्रिस्टोफर कॉडवेल का जन्म 20 अक्टूबर 1907 ई. में पुटनी में हुआ था। उसने 16 वर्ष की अवस्था में अध्ययन छोड़कर यौर्कशायर आबजर्वर में तीन वर्षों तक संवाददाता का कार्य किया। पुन: लंदन आकर एक प्रकाशक के यहाँ नौकरी करने लगा। पहले तो वहाँ वह संपादक बना, तदनंतर उस संस्था का संचालक बन गया। 1935 ई. में उसका 'यह मेरा हाथ' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। 1934 ई. के अंत तक वह मार्क्स, ऐंजिल्स एवं लेनिन की कृतियों का पाठक बना और इसी बीच 'इल्यूजन एण्ड रियलिटी' (भ्रम और यथार्थ) नामक पुस्तक की रचना हुई। वह पोपलर कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बना और कुछ महीनों के पश्चात पेरिस जाकर 'पोपुलर फ्रन्ट' का अनुभव प्राप्त कर सका। उसकी मृत्यु

12 फरवरी 1937 ई. में स्पेन में हुई। उसकी अन्य दो महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं–'स्टडी इन डाइंग कल्चर' तथा 'फरदर स्टडी इन डाइंग कल्चर'।

कॉडवेल ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार पर आलोचना-सिद्धांत को सुसम्बद्ध किया। उसने 'भ्रम और वास्तविकता' (Illusion and Reality) नामक ग्रंथ में समीक्षा प्रणाली को नई दृष्टि से संपन्न किया। वह साहित्य और समाज में घनिष्ट संबंध का पोषक है तथा साहित्यिक एवं सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार आर्थिक स्वीकार करता है–

Poetry is regarded, then, not as something racial, national, genetic or specific in its essense, but as something economic. (Illusion and Reality, page 7)

चूँकि समाज का आधार आर्थिक है, अत: उससे संबद्ध होने के कारण समाज भी आर्थिक आधार पर आधृत है। काव्य का आधार जातीय, राष्ट्रीय या साम्प्रदायिक न होकर आर्थिक ही है। वह काव्य को जन जीवन से प्रत्यक्ष सम्बद्ध मानकर यह सिद्ध करता है कि पहले काव्य का उपयोग मानव की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित्त किया जाता था। उसके अनुसार कविता द्वारा मानव संवेगों की अभिव्यंजना होती है; वह मानव की विकासशील आत्म-चेतना है। मानव-संवेगों की अभिव्यक्त करने के कारण कविता द्वारा मुख्यत: समाज की मानव-क्रियाएँ ही अभिव्यक्त होती है। "कविता स्वभावत: गीत है, गीत स्वभावत: कुछ ऐसी चीज है जो अपनी लय के कारण इकट्ठा गाया जाता है और सामूहिक भावना को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। सुघरी हुई भाषा के रहस्यों में एक है।"

"इस प्रकार कविता नृत्य, यज्ञ और संगीत से मिलकर जाति की अंतर्जातीय शक्ति का स्विच बोर्ड बन जाती है और उसको सामूहिक कार्यों की गाड़ी के रूप में निर्देश करती है जिन सामूहिक कार्यों का सन्निकट कारण या परितुष्टि दृष्टि क्षेत्र में नहीं होता है या जिनका निर्धारण स्वयं अंतर्जातीय वृत्तियों से नहीं होता है।" "अत: कविता को वंश परंपरागत, राष्ट्रीय, उत्पत्ति-विषयक या विशिष्ट सारयुक्त नहीं समझना चाहिए। अत:, हम आशा करते हैं कि संस्कृति और कलात्मक विकास के साथ श्रम-विभाजन पर आधारित जटिलता की वृद्धि हो। परंतु, अब तक कोई सौंदर्यात्मक स्तर परिचित नहीं है। यह श्रम-विभाजन और श्रम-व्यवस्था से सम्बद्ध एक गुण है।" (भ्रम और वास्तविकता) "परंतु, कला के द्वारा जातीय उत्सवों पर संगठित सामूहिक भावना कार्य में मिठास घोलती है और भय की

आवश्यकता से उत्पन्न होती है, अत: यह पुन: कार्य को हल्का करने के लिए श्रम में व्याप्त होती है। खेत में गुड़ाई करना, चप्पू मारना, हल चलाना, फसल काटना और किसी चीज को खींचना जैसे सामूहिक कार्य आदिम व्यक्ति लययुक्त गीत से करता है जिस गीत में उसके कार्य से संबंधित कलामय सामग्री होती है और वह गीत उसके कार्य के पीछे रहने वाली सामूहिक भावना को अभिव्यक्त करता है।" (वही) "जब फसली गीत कार्य में मिश्री घोल देता है तब कार्य सुचारु रूप से चलता है। क्योंकि कविता वह है जो यह है। यह यथार्थ से परे यथार्थ को प्रदर्शित करती है और एक ऐसे यथार्थ को जन्म देती है तथा साधारणतया उसको चित्रित करती है, जो गौण होने पर भी महान और अधिक जटिल है। कविता अन्न को उसके ठोस रूप में और फसल को उसके तथ्यात्मक रूप में जो उसको पहचानने में सहायता करता है और जो उसके जीवित रहने के लिए समुचित वातावरण तैयार करता है—उनका वर्णन करती है और उनको अभिव्यक्त नहीं करती है—परंतु, भावनात्मक, सामाजिक और सामूहिक जटिलता को जिनका शास्त्रीय संबंध फसल से है—कविता उनको अभिव्यक्त करती है। x x x x कविता का सत्य न तो उसके भावपूर्ण कथन और न इसकी तथ्यपरक विषय-वस्तु है, परंतु कविता का सत्य है उसका समाज में गतिशील अभिनय और उसकी सामूहिक भावना का सारा" (वही) कॉडवेल कविता को सामूहिक संवेग की वस्तु मानता है। कविता द्वारा उत्पन्न संवेग सम्मिलित मानव की अनुभूति से उद्‌भूत है और कविता का 'अहम्' मानव के समस्त सम्मिलित संवेगात्मक जगत् का सर्वमान्य अहम् है। कविता भावात्मक प्रवृत्ति को व्यवस्थित रूप से संप्रेषित कर सामाजिक अहम् को व्यक्त करती है। संवेग यथार्थ जीवन से प्राप्त होते हैं। कला का क्षेत्र कल्पित संसार है, जो कृत्रिम होता है। संवेदना की तीव्रता का नाम सौंदर्य है जो सामाजिक सार्वभौम को प्रकट करता है। कवि की चेतना सामाजिक जगत् से प्रभाव ग्रहण करती है। कवि की आत्माभिव्यक्ति आत्मसमाजीकरण ही है। कवि अपनी व्यक्तिगत अनुभूति को इस प्रकार अभिव्यक्त करता है कि वह कलाकृति के रूप में प्रतीत होकर कला के सामाजिक जगत् में अंतर्मुक्त हो सके। कवि की कला-प्रक्रिया विकासशील होती है। कविता की प्रकृतिगत विशेषताओं का वर्णन करते हुए कॉडवेल ने निम्नांकित सूत्र प्रस्तुत किए हैं—

(क) कविता लयात्मक होती है—

(ख) कविता का अनुवाद करना कठिन कार्य है।

(ग) कविता भावात्मक प्रयत्न है, किंतु अबौद्धिक है।

(घ) कविता प्रतीकात्मक नहीं होती

(ङ.) कविता मूर्त्त होती है

(च) कविता की प्रकृति संघात्मक प्रभाव की होती है।

(छ) कविता में सौंदर्यात्मक प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता होती है।

कॉडवेल के मतानुसार सच्चा काव्य जनमत को अभिव्यक्त करता है, यदि उसे शासक या पूँजीवादी वर्ग का साधन बनाया जाएगा तो उसका दुरुपयोग होगा। कविता में कवि सामूहिक भावों की व्यंजना करता है अर्थात वह अपनी कृतियों में अपने वर्ग या समाज के स्वार्थों से प्रेरित होकर ही तद्वत् भावों की अभिव्यक्ति करता है। काव्य समाज को उन्नत करने का अस्त्र है, उसका कार्य श्रम के लिए मनुष्य को प्रेरणा प्रदान करना है। वह श्रम को हलका बनाता है। कॉडवेल काव्य को मनुष्य की उत्पादक या आर्थिक कार्य प्रणाली मानता है। यदि इस मूलाधार से काव्य को असंपृक्त कर दिया जाय तो उसके वास्तविक विकास को समझना असंभव हो जाएगा। काव्य या कला का कार्य मनुष्य की सामाजिक चेतना को उद्‌बुद्ध कर उसे समाज के अनुरूप बनाना है। काव्य में व्यक्त सौंदर्य का निर्णय सामाजिक चेतना से सम्पन्न मनुष्य द्वारा होता है। काव्य-रचना के समय कवि आत्माभिव्यक्ति न कर निजी अनुभूति को सामाजिक अनुभूति में लीन करने का उपक्रम करता है। काव्य की सामाजिकता को स्वीकार करके ही कॉडवेल ने उसमें लय तथा गेयता को उसका आवश्यक तत्त्व माना है। कॉडवेल मनोविश्लेषणवाद, कला कला के लिए है आदि वादों का खण्डन कर काव्य की उपयोगिता का उद्‌घाटन करता है।

मार्क्सवादी-समीक्षा-सिद्धांत साहित्य को सामाजिक क्रिया मान कर उसका घनिष्ठ संबंध जन साधारण से स्थापित करता है। इसका आधार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पूर्ण सत्य को अवतरित नहीं करता, उसमें सत्य का अंशमात्र है। वह सांप्रदायिक या संकीर्ण साहित्य के निर्माण पर बल देता है जो किसी वर्ग विशेष के लिए ही ग्राह्य हो सकता है। वह बुर्जुआ-वर्ग के प्रति घृणा का प्रचार करता है और साहित्य को शाश्वत नहीं मानता। वह साहित्य को केवल रोटी की समस्या के हल करने का साधन मानता है, उसके सांस्कृतिक महत्त्व को अनसुना कर देता है। मार्क्सवादी विचार धारा में भौतिक समृद्धि को ही मानव का परम ध्येय माना

गया है। फिर भी उसने सामाजिकता, यथार्थवाद आदि के संबंध में जो धारणाएँ स्थिर की हैं, उन्हें साहित्य के लिए हितकर माना जा सकता है। उसके साम्प्रदायिक रूप को साहित्य तथा संस्कृति दोनों के लिए बाधक माना जा सकता है। मार्क्सवादी विचारक साहित्य को स्पष्ट रूप से पार्टी से सम्बद्ध मान कर उसके द्वारा दल की विचारधारा का प्रचार कराना चाहते हैं और पार्टी के कार्यों तथा सिद्धांतों से साहित्य का अभिन्न संबंध स्थापित करते हैं। इस प्रकार वे साहित्य को विचारों के कटघरे में बाँध कर उसे संकीर्ण बना देते हैं। मार्क्सवादी साहित्य-सिद्धांत में ऐसे साहित्य के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया जाता है जो समाज को बदल सके और उससे भिन्न साहित्य को वह प्रतिक्रियावादी मानता है। उसके अनुसार काव्य की भाषा में अत्यधिक कोमलता का समावेश पूँजीवादी प्रवृत्ति की देन है। ऐसे साहित्य को वह वासना की तृप्ति का साहित्य मानता है। जनवादी साहित्य की भाषा कलाबाजी और चमत्कारिता से रहित तथा बोलचाल की सामान्य भाषा होती है। वह ओज और कठोरता को जनवादी साहित्य का अनिवार्य तत्त्व मानता है।

Marxist Criticism (मार्क्सिस्ट क्रिटिसिज्म) मार्क्सवादी आलोचना–
दे. Criticism

Masque (मास्क) लीला रूपक

सत्रहवीं शताब्दी में इटली, जर्मनी और फ्रांस में मास्क का विशेष रूप से प्रचार हुआ था। इसमें तड़क-भड़क से पूर्ण वेशभूषा का प्रयोग होता था और संगीत, नृत्य, वेशभूषा तथा दृश्यावली का महत्त्व दर्शाया जाता था। मास्क में घटना और सम्वादों की महत्ता न्यून थी इसमें अत्यंत सुंदर नृत्य किये जाते थे। यह एक प्रकार का संगीत नृत्यबद्ध नाटक था, जिसमें उच्चवर्ग के व्यक्ति भाग लिया करते थे और इसकी व्यवस्था राजप्रासादों में होती थी। इसमें महिलाएँ भी योग दिया करती थीं। इंगलैण्ड में बेनजॉन सन के समय में यह नाट्यविधा अत्यंत लोकप्रिय हुई और वे ही इसके श्रेष्ठ लेखक माने गए।

Materialism (मैटीरियलिज्म) भौतिकवाद

भौतिक पदार्थों को प्राथमिक मानने वाले तत्त्व चिंतन या दार्शनिक सिद्धांत को भौतिकवाद कहते हैं। यह मानसिक या आत्मिक सत्ता को अस्वीकार कर उन्हें

भौतिक पदार्थ का ही सूक्ष्म रूप मानता है। भौतिक वादियों के अनुसार आत्मा पदार्थ से विकसित है यह आत्मसुखवादी नैतिक धरातल पर अधिष्ठित है। यह आधिदैविक या आध्यत्मिक सता को छलना मानता है। यह भौतिक सामग्रियों के सुखोपभोग को ही जीवन का चरम लक्ष्य मानता है और आनन्द तथा सुख के एकत्रीकरण को अपना नैतिक आदर्श स्वीकार करता है। भौतिकवाद भौतिक पदार्थ को परम तत्त्व मानता है और जीवित तंत्र तथा मानव व्यक्तित्व की उत्पत्ति भौतिक तंत्र से ही समझता है। उसके अनुसार भौतिक सत्ता के ही आधार पर विश्व की व्याख्या संभव है। भौतिकवाद के अनुसार बाह्य जगत् मनुष्य के प्रत्ययों, मानों का समुच्चय नहीं, एक स्वतंत्र सत्ता है। वह भूतों, भौतिक तत्त्वों, जड़पदार्थों और अचेतन द्रव्यों के संयोग से निर्मित हुआ है, बाह्य जगत् को किसी चेतन तत्त्व का परिणाम नहीं कहा जा सकता। कार्लमार्क्स ने भौतिकता की प्रधानता को स्वीकार कर अपने सिद्धांत को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की अभिधा प्रदान की है। (दे. Dialetical Materialism) साहित्य के क्षेत्र में भौतिकवाद से यथार्थवाद की सृष्टि हुई है। भौतिकवाद भौतिक या लौकिक जगत् को ही वास्तविक मानता है और इसके अतिरिक्त किसी दूसरे जगत् का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता। यह विश्व का मूलाधार भूत या जड़ तत्त्व को मानता है और इसी भूत से विश्व के नाना पदार्थों की उत्पत्ति होती है, इस विचार को स्वीकार करता है। भौतिकवाद यह मानता है कि विश्व के निर्माण, विकास तथा ह्रास के प्राकृतिक नियम ही पर्याप्त हैं, इसके लिए किसी अलौकिक सत्ता की आवश्यकता नहीं होती। ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार न करने के कारण यह अनीश्वरवादी है। यह जड़ या चेतन स्वरूप भूत को ही मूल तत्त्व मानता है; ईश्वर को नहीं। यह विश्व-प्रक्रिया को बिना किसी प्रयोजन के यंत्रवत् मानने के कारण यंत्रवादी है। इसके अनुसार विश्व के प्राकृतिक नियमों का अटल रूप होता है, उसके उल्लंघन होने का कभी प्रश्न ही नहीं उठता। संसार में जो भी घटनाएँ घटित होती हैं, उन्हें उन्हीं नियमों का अवश्यंभावी परिणाम कहा जा सकता है। भौतिकवाद यह मानता है कि भूत से निर्मित पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, पर भूत स्वयं नष्ट नहीं होता। केवल भूत को ही मूल तत्त्व मानने के कारण इसका नाम भौतिकवाद है।

Marx (मार्क्स कार्ल– **दे. Maxism**

■

Matthew Arnold (मैथ्यू आर्नल्ड)
(1822-1888 ई.)

अँग्रेजी कवि और आलोचक। अर्नाल्ड ने साहित्य, धर्मशास्त्र, शिक्षा तथा संस्कृति के संबंध में अत्यंत प्रौढ़ विचार व्यक्त किये हैं। उसने स्वच्छन्दतावादी काव्य-सिद्धांत का खण्डन कर आभिजात्य या शास्त्रवादी (क्लासिकल) सिद्धांत की स्थापना की। उसकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं—'प्रिफेस टु दि पोएम्स' (1853 ई.), 'ऑन ट्रान्सलेटिंग होमर' (1861 ई.), 'ऑन दि स्टडी ऑफ कैल्टिक लिटरेचर' (1867), 'एस्सेज इन क्रिटिसिज्म' प्रथम भाग (1865), द्वितीय भाग (1888) तथा तृतीय भाग (मरणोपरांत प्रकाशित)। उसने संस्कृति विषयक अपने विचारों को 'कल्चर एण्ड एनार्की' (1869 ई.) नामक ग्रंथ में उपन्यस्त किया है और उसमें व्यक्त विचार उसके काव्य और आलोचना के आधार हैं।

आर्नोल्ड ने आलोचक के कर्त्तव्य को निर्धारित कर बताया कि वह समाज और संस्कृति से संबंध स्थापित कर उत्तमोत्तम रचनाओं का चयन और प्रसार करे। उसके अनुसार काव्य जीवन की आलोचना है और आलोचना का संबंध जनता से है। उसने साहित्य को जीवन की व्याख्या मानकर विषयवस्तु की व्यापकता और उसके गंभीर निरूपण को विशेष महत्त्व दिया। वह काव्य और जीवन के वास्तविक अनुभवों में गहन संबंध मानता है और काव्य को जीवन की आलोचना इस अर्थ में कहता है कि वह काव्य-सत्य तथा काव्य-सौंदर्य के नियमों द्वारा निर्धारित परिस्थितियों में निहित रहता है। वह काव्य को सभी प्रकार के

ज्ञान-विज्ञान से उत्कृष्ट मानता है– "काव्य का भविष्य महान है; क्योंकि जैसे-जैसे यह उत्कृष्टता को प्राप्त होगा, मानव जाति को इसमें अधिकाधिक आश्रय मिलेगा। कोई ऐसा विश्वास नहीं रहा जो हिल न गया हो, और कोई ऐसी परंपरा नहीं बची जो लुप्त न हो गई हो। हमारा धर्म, तथ्य-कल्पित तथ्य के रूप में परिणत हो गया है, अपने भावों को उसने तथ्यों से जोड़ दिया है, लेकिन अब वही तथ्य इसे नष्ट कर रहा है। लेकिन कविता के लिए विचार ही सब कुछ है बाकी सब माया का संसार है। कविता अपने भावों को विचार से संयुक्त करती है। विचार ही तथ्य है। हमारे धर्म का सर्वाधिक संबल अंश अनजाने में लिखी गई कविता है।" (पाश्चात्य समीक्षा-दर्शन, पृ. 295 से उद्धृत)

उसने आनन्द को काव्य का महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना है। पर, उसे वह उत्कृष्ट कार्य व्यापार से जोड़ देता है। उसके अनुसार यदि काव्य का विषय उत्कृष्ट हो, उसमें सत्य और गांभीर्य हो तो उसमें स्वतः ही शैलीगत उत्कर्ष का समावेश हो जाएगा। उसने कविता का संबंध उत्कृष्ट कार्य व्यापार के माध्यम से मानव स्वभाव के मूल या शाश्वत भावों के साथ स्थापित किया है। क्योंकि इनमें कभी परिवर्तन नहीं होता। "समस्त राष्ट्रों में सदा-सर्वदा काव्य के शाश्वत विषय क्या रहे हैं? कार्य-व्यापार, मानव के कार्य-व्यापार। उनमें एक निहित रोचकता होती है, कवि की कला द्वारा रोचक नीति से ही उसका संप्रेषण होना चाहिए। ...अतः, सर्व प्रथम तो कवि को उत्कृष्ट कार्य-व्यापार का चयन कर लेना चाहिए। और सबसे उत्कृष्ट कार्य-व्यापार कौन से होते हैं? निश्चय ही वे जो मानव के सहज संस्कारों को सबसे अधिक आंदोलित करें, उनमूलवर्ती भावनाओं को (आंदोलित करें) जिनका जातीय मानस में स्थायी वास होता है और जो काल-निरपेक्ष होती हैं। ये भावनाएँ स्थायी और अपरिवर्तनशील होती हैं और इनके अनुरंजन के साधन भी स्थायी और अपरिवर्तनशील होते हैं।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा पृ. 147)

आर्नल्ड काव्य का प्रयोजन उपदेश या शिक्षा देना नहीं मानता, वरन् उसे उत्कृष्टतम आनन्द की सृष्टि करने में समर्थ मानता है। "किसी काव्य-कृति के लिए इतना ही आवश्यक नहीं है कि वह जीवन का सही प्रस्तुतीकरण हो, वरन् यह भी आवश्यक है कि मनुष्यों को उससे आनन्द मिले।" "मानव-जाति में स्थायी और कालनिरपेक्ष रूप से रहनेवाली मूल अनुभूतियों का स्पर्श करना ही मनुष्य को आनन्द प्रदान करता है।"

आर्नल्ड के अनुसार निष्पक्ष प्रयत्न आलोचना का एक विशिष्ट गुण है। उसने समीक्षक की अध्ययन-विषयक ग्रहणशीलता और तत्परता को महत्त्व दिया है और मूल्यांकन के सच्चे और वस्तुनिष्ठ प्रतिमानों में आस्था प्रकट की है। उसके अनुसार समीक्षा बाह्य मूल्यों तथा सिद्धांतों के मनमाने प्रयोग के कारण निष्प्राण एवं गतिहीन हो जाती है। आलोचक दुराग्रह रहित, ज्ञानार्जन के लिए समुत्सुक, सर्वोच्चकोटि के चातुर्थ एवं व्यवहार-कौशल से युक्त, सर्वोत्कृष्ट संयम-नियंत्रण, नमनशील, तथा उदात्त हृदयवाला हो। उसके अनुसार समालोचना से बौद्धिक जीवन गतिशील होता है और उसमें त्वरा आती है। निष्पक्ष समालोचना ही सच्ची समालोचना है।

Medieval Criticism (मेडिईवॅल क्रिटिसिज्म) मध्यकालीन आलोचना

पाश्चात्य आलोचना का एक युग जो तृतीय शती से तेरहवीं शताब्दी तक विद्यमान रहा और अंधकार काल के नाम से विख्यात हुआ। इस कालावधि में पाश्चात्य साहित्य-चिंतन की दिशा में कोई नवीन उद्‌भावना नहीं हुई और साहित्य-विवेचन अवरुद्ध-सा रहा। ग्रीक तथा रोमीय आलोचकों ने साहित्यालोचन की जिस मूर्धन्य समीक्षा-पद्धति और भव्य साहित्य-दर्शन की स्थापना की थी, उसका ह्रास इस युग में हुआ। इस ह्रास का कारण लगभग एक सहस्र वर्षों तक कैथलिक चर्च का व्यापक प्रभाव है, जिसे इतिहासकारों ने अशान्ति, अव्यवस्था एवं सांस्कृतिक अनिश्चयता का युग कहा है। जनजीवन में मसीही धर्म या चर्च की प्रधानता हो जाने के कारण रचनाओं पर धार्मिक अनुशासन (नियंत्रण) लगा दिया गया, फलत: स्वतंत्र चिंतन का क्षेत्र संकुचित हो गया या स्वतंत्र चिंतन अवरुद्ध हो गया। धार्मिक संस्थानों ने परलोक-चिंतन पर अधिक बल दिया और सांसारिक या इहलौकिक अनुराग के प्रति लोगों ने अपनी दृष्टि फेर ली। तत्कालीन धार्मिक नेतृत्व वर्ग ने साहित्य, नाटक, रंगमंच, अभिनय, नृत्य, संगीत और पार्थिव काव्य को हेय दृष्टि से देखा और इनके लेखन, प्रदर्शन एवं उपयोग पर कठोर प्रतिबंध लगा दिए गए। उन्होंने अपना अभिमत प्रकट किया कि इनके कारण मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है। और विवेक का विनाश हो जाता है। ईसाई धर्म के बढ़ते हुए चरण ने मनुष्य की नैसर्गिक कलात्मक रुचि और सर्जनात्मक शक्ति पर प्रबल आघात किया और साहित्य-चिंतन तथा साहित्य-सर्जन दोनों की गति रुक गई। धर्मनुशासन ने ग्रीक और रोमन साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की रुचि नि:शेष कर दी और सारी शिक्षण-संस्थाएँ चर्च के अधिकार में आ गईं और कितने ही

शिक्षा-संस्थान बन्द हो गए। निवृत्तिमूलक तथा वैराग्य प्रधान ईसाई धर्म ने ग्रीक की प्रशस्त तथा राष्ट्रीय कला को मान्यता न देकर उसे अस्वीकार कर दिया और इसके स्थान पर अपने पारलौकिक दर्शन के अनुरूप कला और साहित्य-सृजन पर बल देकर लोगों का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया। पर, इस धार्मिक निर्माणोन्मुखी कला की परिधि अत्यंत परिमित थी और यह जन समाज की भावनाओं से दूर हट कर केवल पादरियों और पुरोहितों का साहित्य बन गया था। इस प्रकार ईसाई धर्म का आरम्भिक युग तद्युगीन विकासोन्मुख कला के लिए बाधक और अवरोधक सिद्ध हुआ।

पर, तेरहवीं शताब्दी के अन्त होते-होते यूरोप की अंतर्मुख चेतना, जिस पर क्रिश्चियन धर्म की प्रगाढ़ छाया पड़ी हुई थी, दाँते की रचनाओं के रूप में विकास की ओर उन्मुख हुई। सहस्र वर्षों की अंधकारमयी निविड़ निशा का अवसान होते ही आशा का अरुणोदय हुआ। दाँते (दे. दाँते Dante) का महाकाव्य 'डिवाइन-कॉमेडी' नवप्रभात का सूचक था, जिसे यूरोप वासियों ने आश्चर्य-चकित नेत्रों से देखा। दाँते (1265-1321) का आविर्भाव तिमिराच्छन्न निशा में आलोक स्तम्भ की भाँति हुआ और उसने 'द वलगरी एलोक्वेन्तिया', 'कोनविविओ', 'ऑन द वर्नाकुलर' तथा 'द बैक्वेट' आदि सभी रचनाओं में अपने साहित्य-चिंतन एवं आलोचना-संबंधी विचारों का प्रदर्शन किया। उपर्युक्त सारी कृतियाँ लैटिन में निर्मित है। इस युग में प्लोटिनस (दे. प्लोटिनस) नामक दार्शनिक एवं कलाचिंतक (सौंदर्यशास्त्री) की भी कला-विषयक स्थापनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

मध्यकाल के कई धार्मिक नेताओं-बीथिअस और संत आगस्टाइन ने साहित्य या कला को मधुर विष पिलानेवाला एवं साहित्य-सुख को राक्षसी सुख की अभिधा प्रदान कर उसे हेय सिद्ध किया था। इनके विचारों में प्लेटों के आक्रामक स्वर की प्रकारांतर से पुनरावृत्ति हुई थी। उनका कथन था कि कविता के द्वारा इस लोक के प्रति मोह और आकर्षण का भाव उत्पन्न होता है, जिससे पारलौकिक जीवन चिंतन के प्रति विकर्पण होता है और इससे मसीही आत्मा के विकास में बाधाएँ आती हैं। पादरियों तथा धर्मोपदेशकों ने नाटक, रंगमंच तथा तत्संबंधी नृत्य, स्वांग, संगीत आदि सभी कलाओं का कठोरतापूर्वक बहिष्कार करने का विचार प्रकट किया और विदूषकों, अभिनेताओं आदि को शैतान का प्रतिनिधि बतलाकर उनकी विगर्हणा की। तत्कालीन पादरी अभिनय या नाटक को देखने तथा संगीत को सुनने में पाप-कर्म समझते थे। फलतः धर्मेतर या धर्मनिरपेक्ष साहित्य का जीवित

रहना कठिन हो गया था। ऐसे दूषित और घूँटनपूर्ण वातावरण में साहित्यालोचन का विकास असंभव था, फलत: वह ह्रसोन्मुख हो गया। जब साहित्य को ही पाप का पोषक माना गया और उसे सशंक दृष्टि से देखा गया तो ऐसी स्थिति में उसके विश्लेषण, विवेचन और मूल्यांकन का प्रश्न ही नहीं उठता और कौन व्यक्ति इस प्रकार का दुस्साहस करने के लिए कदम उठाता। उस समय भी विद्वत् समाज में चिंतन प्रधान या अर्द्धचिंतन प्रधान साहित्य की रचना होती थी और भक्तिपरक साहित्य पर्याप्त मात्रा में लिखा जाता था। स्काटजेम्स का कहना है कि उस समय विद्वानों की भाषा लैटिन का प्रयोग भी साहित्यिक अभिव्यंजना के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित करने वाला था और 'धार्मिक एवं मतवादी कट्टरता का दायित्व साहित्य-सृजन में ईमानदारी तथा समालोचना में स्वतंत्र विचाराभिव्यक्ति दोनों के लिए घातक तत्त्व था।' (दि मेकिंग ऑफ लिटरेचर पृ. 99) चर्च और पादरियों द्वारा विद्या तथा ज्ञान का क्षेत्र परिमित हो गया था और विद्यालयों में मुख्यत: पादरी ही शिक्षक हुआ करते थे। इन लोगों ने धर्म का पोषण करनेवाली कलाओं का बहिष्कार किया। उस समय सुहृद्-समाज में धार्मिक साहित्य की रचना होती थी, पर आलोचनात्मक साहित्य के लेखक पर नियंत्रण लगा दिया गया था।

उस समय दो प्रकार के समीक्षात्मक वक्तव्य प्रकाशित होते थे—धर्मविज्ञानियों के लेख तथा विद्यालय की पुस्तकें। तत्कालीन पादरियों ने विद्यालय में पढ़ाई जानेवाली सात कलाओं को मान्यता दी थी, उनमें समीक्षाशास्त्र को स्थान नहीं दिया गया था। पर, इसी क्रम में भाषण कला और पत्र-लेखन के रूप में समीक्षाशास्त्र का भी विकास हुआ। भाषण संबंधी शिक्षाओं में नवीन ढंग के अलंकरण पर अनावश्यक रूप से विचार किया जाता था। बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दी में काव्यशास्त्र संबंधी रचनाएँ पद्य में लिखी गईं; किंतु उनकी मान्यताएँ इतनी पुरानी थीं कि उनसे मध्यकाल की कविता प्रभावित या अनुप्राणित न हो सकी। उस समय की पढ़ाई जानेवाली तथाकथित सप्त कलाएँ व्याकरण, साहित्यशास्त्र (भाषण) तर्क, गणित, पत्रलेखन, संगीत तथा ज्योतिष-धर्माभिमुख हो गई थीं। पादरियों ने लैटिन को साहित्यिक माध्यम स्वीकार किया था। काव्य के संबंध में इस युग में जो विचार प्रकट किए गए थे, वे स्वतंत्र रूप से न होकर अन्य विद्याओं की शाखा के रूप में प्रस्तुत हुए। उसका संबंध मुख्य रूप से व्याकरण से था और काव्य की भावना रिह्टोरिक (Rhetoric) की शाखा के रूप में की गई थी। प्रसिद्ध आलोचक एटकिन्स के अनुसार सम्पूर्ण मध्ययुग में 'रिह्टोरिक ने काव्य का अपने में आत्मसात कर लिया और काव्य का अध्ययन

तात्त्विक महत्त्व की बातों को छोड़कर तत्कालीन रिह्टोरिक-संबंधी शिक्षाओं तक सीमित रह गया।' (पाश्चात्य-समीक्षा-सिद्धांत, पृ. 125)

मध्ययुग में दाँते के रूप में विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न कवि और आलोचक का प्रादुर्भाव हुआ। उसके बिना किसी धार्मिक पूर्वाग्रह के साहित्य का मूल्यांकन किया। उसने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'द वल्गरी एलोक्वेन्तिआ' में अपना भाषा-संबंधी विचार प्रस्तुत किया और काव्य के लिए सांस्कृतिक भाषा के उपयोगिता को महत्त्व दिया। यह आश्चर्य की बात है कि एक मसीही धर्मावलम्बी द्वारा ही साहित्य के मूल्यवान अभिलेख प्रस्तुत किए गए। उसने साहित्य में मुख्यत: भाषा की ओर मनुष्यों का ध्यान आकृष्ट किया और बताया कि चूँकि समस्त जीवधारियों में मनुष्य को ही भाषा का दैवी वरदान प्राप्त हुआ है, अत: उसे इस पक्ष पर अधिक ध्यान देना चाहिए। मनुष्य ने भाषा को भव्य बनाने के लिए शब्दों का निर्माण किया है। दाँते ने लोक भावना को आदर देते हुए मातृभाषा पक्ष लिया। उसके अनुसार बच्चा जिस भाषा में शैशवकाल से ही अपना विचार प्रकट करता है, उसी में उच्च कोटि का साहित्य रचा जा सकता है। उसने तत्कालीन प्रचलित भाषा लैटिन की उपेक्षा की और सार्वदेशिक वर्नाक्यूलर या मातृभाषा के प्रयोग के प्रति दृढ़ता का भाव प्रदर्शित किया। लैटिन पंडितों की भाषा थी, जिसके सीखने में काफी श्रम की आवश्यकता थी; अत: दाँते ने अनेक स्थानीय बोलियों में से किसी एक ऐसी बोली को ग्रहण करने की राय दी जिसमें स्थानीयता या प्रांतीयता का भाव न होकर सार्वदेशिकता हो और वह साहित्य रचना के लिए उपयुक्त हो, उसने इटैलियन भाषा को यह पद प्रदान किया और उसी में रचनाएँ की। उसने बताया कि इस भाषा को परिश्रमपूर्वक इतना सबल और सशक्त बनाना होगा जिससे इसमें सभी प्रकार के विचारों को वहन करने की शक्ति आ सके। उसने मातृभाषा में सुंदर और भव्य शब्दों के प्रयोग को उचित बताया तथा अनिश्चित, कर्कश, बचकाने, जनाने एवं ग्रामीण शब्दों के बहिष्कार की सलाह दी। भाषा और छन्द के संबंध में दाँते के विचार बड़े ही क्रांतिकारी, गंभीर तथा रोचक हैं।

मध्ययुग की काव्यशास्त्री स्थापनाओं में साहित्य की अन्योक्ति परक व्याख्या को महत्त्व दिया गया है तथा अन्योक्ति को समस्त साहित्य सर्जना का अंग माना गया है। पेट्रार्क ने अन्योक्ति को समस्त काव्य का प्राण कहा है। उस युग के धर्माचार्यों ने अन्योक्तिपरक व्याख्या को बाइबिल की मान्य व्याख्या शैली के रूप में स्वीकार किया था और उसकी अभिधामूलक, वैयक्तिक (Typical) तथा

नैतिक व्याख्याएँ की जाती थीं। कालांतर में अन्योक्ति ने मध्ययुग को व्यापक रूप से प्रभावित किया। मध्ययुग में ट्रेजेडी को राजाओं की दुःखमय कथा या राजकुमारों के दुःखमय पतन की कहानी का रूप दिया गया और कॉमदी को इलजिक (Elgiac) छन्द में रचित साधारण जनों के सुखद अंत की गाथा के रूप में मान्यता दी गई। कॉमदी 'जीवन का अनुकरण', 'राजनीति का दर्पण' तथा 'सत्य की प्रतिमूर्त्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुई। मध्ययुगीन काव्य-चिंतन के संबंध में विम्सॉट तथा क्लिन्थ ब्रुक के विचार इस प्रकार हैं—वस्तुतः मध्ययुग आलोचना का युग न होकर साहित्यिक सर्जना का काल था। इस समय लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार के प्रेम-काव्य तथा प्रगीतों की रचना हुई, नाटक का पुनर्जन्म हुआ और कथा, व्यंग्य, परी-कहानियाँ, आख्यान तथा अन्योक्ति का प्रणयन हुआ जिससे भावी आलोचना की समृद्धि का पृष्ठाधार प्रस्तुत हुआ। इस युग की साहित्य-चिंतना धार्मिकता से समन्वित तथा दार्शनिकता और धर्मशास्त्रीय अभिव्यक्ति से पूर्ण थी। निष्कर्ष यह कि यह युग धर्मप्रवण धार्मिक समाज के धार्मिक चिंतन का समय था जिसने साहित्य-समीक्षा की मानवीय क्रिया को प्रोत्साहन नहीं दिया। (दे. Literary criticism: A Short History page, 154)

"यह कहा जा सकता कि प्रतीकात्मकता का ग्रहण सामान्य रूप से मध्ययुगीन व्याकरण, साहित्य-सौंदर्य, धर्म-संबंधी विचारधारा का मुख्य सूत्र था, जिसका काव्य-सिद्धांत पर ग्रहरा प्रभाव था। साहित्यिक रचना के संबंध में मध्ययुगीन प्रतीकात्मक सिद्धांत का प्रसिद्ध उदाहरण दाँते का वह पत्र है जिसे कि उसने कैन ग्रैंडीडेला स्काला को अपनी रचना 'डिवाइन कमेडी' की व्याख्या करते हुए लिखा था और जिसमें धार्मिक व्याख्या के उदाहरण का अनुकरण करते हुए उसने न केवल अभिधात्मक अर्थ की अपितु तीन उच्च अर्थों —प्रतीकात्मक, आध्यात्मिक और वैयक्तिक या नैतिक—की योजना की। हमं कह सकते हैं कि यह स्वाभाविक स्फुरण से लिखित धार्मिक कविता की व्याख्या और समर्थन में धार्मिक प़द्धति का उपयोग है।" (Literary criticism: A Short History, page 148, पाश्चात्य-समीक्षा सिद्धांत, पृ. 124) मध्ययुग की उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए सेंट्सवरी ने अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है। "विश्वास के युग के रूप में प्रशंसित तथा तिरस्कृत यह (युग) वास्तव में तर्कपूर्ण दलील और क्रीड़ाशील अर्ध अविश्वास का मेल था। घृणा के साथ 'अज्ञान के युग' के रूप में माना जानेवाला यह युग जो कुछ भी जानता था उसे पूरी तरह जानता था और यह

कतिपय अन्य (युगों) के संबंध में नहीं कहा जा सकता। केवल तैयारी के रूप में संरक्षित इस (युग) ने वह उपलब्ध कर लिया जिसके लिए हम पाँच सौ साल से असफल प्रयत्न कर रहे हैं। हमें यह फौरन स्वीकार कर लेना चाहिए कि मध्ययुग और चाहे जो कुछ रहा हो वह निश्चय ही आलोचना का युग नहीं था। वह इस प्रकार का (अर्थात आलोचनात्मक) हो ही नहीं सकता था। यदि वह युग ऐसा कुछ करता तो उसका सारा कारबार ही नष्ट हो जाता। ... विजयिनी मौलिकता जिसने कि व्यवहार में प्रेम-प्रबंधों (Romance) का सर्जन किया, नाटक में क्रांतिकारी परिवर्तन किया, इतिहास को बदल दिया, नए प्रगीत (Lyric) को निर्मित किया वह सिद्धांतवादिता के समक्ष संकुचित और पक्षाघात से पीड़ित हो जाती और किसी समय हम 'आलोचनात्मक स्कूल' (School Rhetoric) की त्रुटियों के लिए इतने कृतज्ञ न होते (जितने कि इस समय हैं) क्योंकि यदि उसकी दशा अच्छी होती तो उससे (मौलिक सर्जना की) बहुत बड़ी हानि हो जाती।" (A History of Criticism. Vol.I Page 372-373, पाश्चात्य-समीक्षा-सिद्धांत से हिंदी अनुवाद उद्धृत)

Melodrama (मेलोड्रामा) अतिनाटक

त्रासदी के एक रूप को मेलोड्रामा कहते हैं जिसमें गंभीरता का अभाव होता है। इसमें ट्रेजडी की गंभीरता नहीं रहती, उसका विकृत रूप प्रस्तुत किया जाता है। मेलोड्रामा में लेखक मानव-मन के केवल ऊपरी स्तर का स्पर्श करता है। इसके कथानक, पात्र और संवाद सभी असामान्य और अस्वाभाविक होते हैं और त्रासदी का दुःख फीका पड़ जाता है। इसमें संगीत का प्राधान्य रहता है तथा लम्बे-लम्बे ओजपूर्ण कथन के अतिरिक्त लोमहर्षक दृश्य और अतिमानवीय घटनाएँ होती हैं। रोमांचकारी एवं चमत्कारपूर्ण घटनाएँ, विशद दृश्य-विधान, संगीत का बाहुल्य, गंभीर प्रयोजन का अभाव तथा पात्रों की कल्पना में सूक्ष्म तत्त्वों की कमी मेलोड्रामा की सामान्य विशेषताएँ हैं। प्रभावपूर्ण तथा अप्रत्याशित घटनाएँ रंगमंच पर घटित नहीं होती, उनका वर्णन किया जाता है। इसका उद्देश्य प्रेक्षकों के मन को आंदोलित करना है। अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी में मेलोड्रामा जर्मनी, फ्रांस एवं इंगलैंड आदि देशों में अधिक प्रचलित था और त्रासदी की अपेक्षा इसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई थी, पर आधुनिक युग में इसके प्रति रुचि कम हो गई है।

Memoirs (मेमॉयर्स) संस्मरण

जब लेखक स्मृति के आधार पर व्यक्तिगत अनुभव का वर्णन करे तो उसे संस्मरण कहते हैं। (दे. Remmenis cence)

Metaphor (मेटाफर) रूपक या लक्षणाश्रित अलंकार

एक प्रकार का अलंकार। इसका अर्थ अभेद प्रतीति है (रूपक), पर पाश्चात्य आलंकारिकों ने इसका प्रयोग व्यापक या उपचार के अर्थ में किया है। जब अप्रकृत बोधक शब्द के प्रयोग के मूल में साम्य या समानता का भाव हो तो उसे मेटाफर कहते हैं।

Metonymy (मेटोनीमी) सहवर्ती

एक प्रकार का अलंकार जिसमें वस्तु के बदले उसकी विशेषता या गुण का कथन या प्रयोग किया जाय। जैसे लेखक के लिए कलम या पेन का प्रयोग। राजसत्ता के लिए राजमुकुट का, कथन।

Middle age (मिडॅल एज) मध्ययुग

पाश्चात्य आलोचना के इतिहास में तीसरी शती से तेरहवीं शताब्दी तक का युग मध्यकाल के नाम से अभिहित किया जाता है। इसे अंधकार काल की भी संज्ञा प्रदान की गई है। (दे. Medieval Criticism)

Mimesis (मिमेसिज) अनुकरण
दे. Plato तथा Aristotle

Mock Epic (मॉक एपिक) विद्रूप महाकाव्य

किसी सामान्य या लघु घटना को आधार बना कर महाकाव्य की शैली में प्रस्तुत किया जाय तो उसे मॉक एपिक कहते हैं। इसका उद्देश्य हास्य का उद्रेक करना होता है। इसमें कवि तुच्छ विषय को गरिमामयी शैली में निरूपित करता है। अँगरेजी में अलेक्जैंडर पोप कृत 'दी रेप ऑफ दी लॉक' ऐसी ही रचना है जिसमें किसी सुंदरी की लटों के कटने की कथा को महाकाव्य का रूप प्रदान किया गया है।

Monologue (मानोलॉग) एकालाप

ऐसी नाट्यकृति जो एक ही पात्र के मुख से कहलाई जाय। एकालाप और स्वगत-कथन में पार्थक्य है। एकालाप अपेक्षाकृत एक व्यापक शब्द है जो संवाद और स्वगत भाषण से भिन्न है। इसमें किसी को लक्ष्य कर कथन किया जाता है अर्थात यह किसी के प्रति उद्दिष्ट होता है। स्वगत-भाषण एक या अकेला पात्र द्वारा किया जाता है जो अपने आप से बातें करता है; उसका कथन अन्य को लक्षित कर नहीं होता। वह स्वयं नहीं चाहता कि उसकी बातों का प्रभाव अन्य पर पड़े।

Modern Criticism (मॉडर्न क्रिटिसिज्म) आधुनिक आलोचना

आधुनिक आलोचना के दो चरण हैं—परवर्ती स्वच्छन्दतावादी चिंतन और बीसवी शताब्दी की आलोचना या अद्यतन युग। रोमांटिक युग की अवधि लगभग 50 वर्षों तक मानी जाती है; उसकी अन्तिम सीमा 1850 ई. है। इस समय से आज तक पाश्चात्य समीक्षा के विकास में अनेक वादों और चिंतन-सरणियों का उद्‌भव हुआ है और ज्ञान के अन्य क्षेत्रों की भाँति आलोचना भी विज्ञान से आक्रांत हुई है। आलोचनाशास्त्र राजनीति दर्शन, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के सिद्धांतों से ओतप्रोत हुआ है और क्रमश: विज्ञान का रूप धारण करने लगा है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भौतिकवादी यथार्थनिष्ठ वैज्ञानिक प्रभाव की प्रधानता बनी रही और कार्लमार्क्स के विचारों से प्रभावित समाजवादी यथार्थवादी चिंतन ने आलोचनाशास्त्र को अभिभूत किया। फ्रांस में बाल्ज़ाक तथा फ़्लाबर्ट प्रवर्तित यथार्थवाद कालांतर में जोला और उनके अनुयायियों द्वारा प्रकृतिवाद के रूप में परिवर्तित हुआ और साहित्य ने विज्ञान के समक्ष घुँटने टेक दिए। ज़ोला ने इस विचार का प्रतिपादन किया था कि उपन्यास लेखक भी वैज्ञानिक की भाँति सामग्री का संकलन कर निरपेक्ष रूप से उसका वर्गीकरण कर प्रयोग करता है। इस समय इंगलैंड और फ्रांस में भौतिकवादी तथा वैज्ञानिक प्रभाव प्रबल हो उठे थे और रूस में जर्मन दार्शनिकों से प्रभावग्रहण कर तथा स्वतंत्र चिंतन के परिणाम-स्वरूप यथार्थवादी विचार-प्रणाली सशक्त हो रही थी। भौतिकवादी दर्शन तथा यथार्थवादी साहित्य-चिंतन का चरमोत्कर्ष फ्रांस में दृष्टिगोचर हुआ। जर्मनी में आदर्श तथा अध्यात्म से संपुष्ट साहित्य-चिंतन तीव्र वेग से बढ़ रहा था और काण्ट तथा हेगल के विचारों की परंपरा अक्षुण्ण बनी हुई थी। जर्मनी की यह आदर्शवादी दर्शन-धारा का प्रभाव यूरोप के प्राय: सभी देशों में दिखाई पड़ा और उसने भौतिकवाद के बढ़ते हुए चरण को अवरुद्ध कर

दिया। फ्रांस में प्रतीकवाद, यथार्थवाद और प्रकृतिवाद का नवोन्मेष हुआ और उसकी प्रारंभिक अवस्था में पो, ह्विटमैन प्रभृति अमेरिकी लेखकों ने भी प्रेरणा प्रदान की। इनके साथ ही फ्रांस के रिम्बो, वर्लेन, मलार्मे आदि कवियों ने अनेक पारमार्थिक तत्त्वों तथा अनुभवों को आत्मसात् करते हुए काव्य के क्षेत्र में अभिनव रचनाशैली तथा विचार-पद्धति की सृष्टि की। इस प्रकार उन्नीसवी शताब्दी के अंत में यूरोप के प्रमुख देशों में आदर्शवादी आध्यात्मिक धारा और भौतिकवादी वैज्ञानिक धारा समानांतर रूप से प्रवाहित होती रही जिनमें अंतिम का वेग अधिक सशक्त और प्रखर था।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम सोपान में मैथ्यू आर्नल्ड ने गंभीर काव्यगत मूल्यों को प्रतिष्ठित किया और प्राचीन काव्य को काव्य का आदर्श स्वीकार किया। इनके समकोटिक अन्य आलोचकों में कार्लाइल, न्यूमैन तथा रस्किन के नाम विशिष्ट विभूतियों के रूप में लिए जा सकते हैं। इनकी साहित्यिक चिंतना सामाजिक, नैतिक एवं आचार परक मूल्यों से अनुप्राणित है। आर्नल्ड ने साहित्य और संस्कृति में संबंध स्थापित कर भविष्यवाणी की कि आगे की कविता धर्म और दर्शन से अभिभूत होकर अपना जीवन-प्राण ग्रहण करेगी। उसी समय कलावादी आंदोलन चला जिसने नैतिकता और आचार के बंधनों से साहित्य को मुक्त कर कला के मूल्यांकन के लिए सौंदर्य-चेतना के अतिरिक्त किसी भी निष्कष को अस्वीकार कर दिया। ऑस्कर वाइल्ड और पेटर आदि ने कलावाद का समर्थन कर 'कला कला के लिए है' का मोहक स्वर उद्घोषित किया। इनके अनुसार कला का एक मात्र उद्देश्य आनन्दोपलब्धि या आनन्द प्रदान करना है।

बीसवीं शताब्दी या समीक्षा का अद्यतन युग विज्ञान के गंभीर चिंतन से प्रभावित होकर आलोचना को वैज्ञानिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए कृत-संकल्प है। इस युग में बहुसंख्यक क्षणस्थायी समीक्षा-सिद्धांतों का प्रवर्तन हुआ है। "बीसवीं शताब्दी में बहुसंख्यक समीक्षा-सिद्धांतों का प्रवर्तन हुआ, जिनके स्वरूप और विशेषता का इतना आग्रह इतना प्रखर है कि समष्टि रूप में उन्हें लेकर किसी प्रकार की एक रूपता खोजना संभव नहीं जान पड़ता। इन सिद्धांतों के परस्पर विरोध, उनके दृष्टिकोण की विभिन्नता के हम इतने समीप हैं, कि उन्हें विलग करने वाले व्यवधान और रिक्तस्थल बहुत प्रबल बन कर हमारे समक्ष आते हैं और समन्वय के आकांक्षी का साहस भंग कर देते हैं।" (नया साहित्य नए प्रश्न, पृ. 80)

बीसवीं शताब्दी में मनोविज्ञान ने अभूतपूर्व उन्नति की है, फलतः आज के सौंदर्यशास्त्र और साहित्यालोचन पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ा है। आज का साहित्य चिंतन मार्क्स, फ्रायड, वर्गसां, कोचे, आईंसटीन तथा सार्त्र आदि मनीषियों की वैचारिक उपलब्धियों से प्रेरित और अनुप्राणित है। विगत 50-60 वर्षों से मनोविज्ञान के क्षेत्र में गंभीर अन्वेषण हुए हैं और उसके विभिन्न सम्प्रदायों की स्थापना हुई है तथा अनेक मतों का प्रचलन हुआ है। मनोविज्ञान ने मन की आंतरिक शक्तियों और अवस्थाओं का उद्घाटन कर मानव मन को नवीन भूमिका प्रदान की है। मैकडूगल तथा उनके सहकर्मियों ने मन की मूलप्रवृत्तियों की खोज कर उनकी तालिका प्रस्तुत की है जिनके आधार पर अनेक कथाकारों ने उपन्यासों तथा कहानियों के पात्रों का चरित्रांकन किया है और इन्हीं अंतर्जात प्रवृत्तियों के आलोक में कथा वस्तु का विकास किया है। आधुनिक युग की समस्त मनोवैज्ञानिक खोजों को आत्मसात् कर महान आलोचक आई. ए. रिचार्ड्स ने मनोवैज्ञानिक मूल्यवाद नामक अपने साहित्य-चिंतन की स्थापना की है तथा मनोवैज्ञानिक भूमिका पर साहित्य की उपयोगिता सिद्ध करने का प्रयास किया है।

अद्यतन आलोचना-पद्धति की पाँच प्रमुख धाराएँ हैं—क्रोचे का अभिव्यंजनावाद, मनोविश्लेषण-सिद्धांत, अतियथार्थवाद और अस्तित्ववाद, कार्लमार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद या समाजवादी यथार्थवाद तथा टॉल्स्टॉय एवं आइ. ए. रिचार्ड्स का उपयोगितावाद। इनके अतिरिक्त आलोचना की ऐतिहासिक पद्धति भी आधुनिक युग में अधिक सशक्त हुई है और टी. एस. इलियट ने अपनी मान्यताओं से पाश्चात्य आलोचना को दीप्त और भास्वर वनाया है। आधुनिक साहित्यालोचन को तीन पाश्चात्य मनीषियों ने अधिक प्रभावित किया है, वे हैं— कार्लमार्क्स, सिगमण्ड फ्रायड तथा ज्यां पॉलसार्त्र। क्रोचे इटली के ही नहीं विश्व के महान कलाशास्त्री और साहित्यचिंतक के रूप में समादृत हैं। उन्होंने प्रसिद्ध दार्शनिक विसो से प्रेरणा ग्रहण कर अभिव्यंजनावाद को अपनी सौंदर्य चेतना का रूप प्रदान किया। अभिव्यंजनावाद के अनुसार कला या काव्य अभिव्यंजना मात्र है और उसमें उक्ति के अतिरिक्त अर्थ का कोई महत्त्व नहीं होता अर्थात कला या काव्य का परम तत्त्व उक्ति में निहित है। अभिव्यंजनावाद विशुद्ध आँत्मवादी दर्शन है। क्रोचे ने कला-मीमांसा में रूपविन्यास (फार्म) पर अधिक बल दिया है। इस संबंध में उसके कुछ उद्गार इस प्रकार हैं—"प्रत्येक वास्तविक सहज प्रज्ञा अथवा मूर्त्तीकरण, अभिव्यंजना भी है।" "कलात्मक तथ्य, इसलिए रूप और केवल रूप है।" "सौंदर्य की परिभाषा हम सफल अभिव्यंजना,

या अधिक अच्छे रूप में, केवल अभिव्यंजना कहकर कर सकते हैं; क्योंकि अभिव्यंजना जब सफल नहीं होती तब वह अभिव्यंजना ही नहीं है।" क्रोचे ने सहजानुभूति या सहज प्रज्ञा को अभिव्यंयजना से अभिन्न माना है। (दे. Croce)

मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा के प्रवर्त्तक सिग्मण्ड फ्रायड हैं और इसके विकास में उनके दो अनुयायियों—युंग और एडलर—का भी महत्त्वपूर्ण योग है। यह समीक्षा फ्रायड के अवचेतन-सिद्धांत पर आधृत है। उन्होंने मन के तीन स्तर माने हैं—चेतन, अचेतन और अवचेतन और अचेतन को ही मनुष्य की समस्त मूल प्रवृत्तियों का कोष कहा है। चूँकि इन प्रवृत्तियों का अवाध तोषण नहीं होता, अतः सामाजिक और सांस्कृतिक बंधनों के कारण चेतन मन उनका दमन करता है। फ्रायड ने लिबिडो या काम को जीवन की मूल प्रवृत्ति माना है और बतलाया है कि अतृप्त काम वासनाओं का दमन नहीं होता और न उनका विनाश होता है। वे काम प्रवृत्तियाँ अचेतन में जाकर छिप जाती हैं और अपना प्रयोजन पूर्ण करने के लिए अवसर की खोज करती हैं। उसने कला या साहित्य का अवदमित भावनाओं की अभिव्यक्ति माना है अर्थात यह काम प्रवृत्ति का उदात्तीकृत रूप है। मनोविश्लेषणवादी सिद्धांत के अनुसार कला या साहित्य का आनन्द हमारी वर्जनाओं और कुण्ठाओं की पूर्ति का आनन्द है। बीसवीं शताब्दी का साहित्य-चिंतन सिंग्मण्ड फ्रायड का अत्यंत ऋणी है।

अतियथार्थवाद फ्रायडवाद की मान्यताओं पर आश्रित एक विद्रोही साहित्यिक आंदोलन है जिसे फ्रांसीसी सौंदर्यवाद का चरम सोपान माना जाता है। इसका प्ररोह पारनेशियनवाद में दबा हुआ था जो प्रतीकवाद में पल्लवित होकर अतियथार्थ के रूप में विशाल वृक्ष के रूप में परिणत हुआ। इस विचारधारा का नेतृत्व चार्ल्स बौदेलेयर ने किया था और इसका जन्मदाता आन्द्रे ब्रेतन था। फ्रांस से प्रारंभ होकर यह आंदोलन इंगलैंड, अमेरिका, जर्मनी और स्पेन में फैला और वहाँ के कवियों और चित्रकारों ने इस कलात्मक प्रवृत्ति से प्रभाव ग्रहण कर अपनी कृतियाँ प्रस्तुत कीं। इंगलैंड में अतियथार्थवादी आंदोलन के पोषक हर्बर्ट रीड रहे हैं। इस कला-चिंतन के अनुसार कलाकृति का संबंध स्वप्नों और व्यक्ति की अर्द्धजाग्रत अवस्थाओं के साथ होता है। हर्बर्टरीड ने कविता का स्वप्न के साथ निकट का संबंध स्थापित किया है। यह काव्य-सृजन में कल्पना का अत्यधिक प्रयोग करने पर बल देता है। सम्प्रति इसने अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन का रूप धारण कर लिया है।

अस्तित्ववाद आधुनिक युग की बहुचर्चित दार्शनिक विचारणा है जिसने साहित्य और कला को अत्यधिक प्रभावित किया है। इस विचारधारा का जन्म प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात जर्मनी में हुआ था जहाँ से यह फ्रांस और इटली में प्रविष्ट हुआ। इस दर्शन पर डेनमार्क निवासी सोरेन कीर्केगार्ड (1813-1855 ई.) की स्थापनाओं का प्रभाव पड़ा है और बीसवीं शताब्दी में कार्ल यास्पर्स की रचनाओं में इस दर्शन का समग्र विकास हुआ है। इस दर्शन का विशेष प्रचार मार्टिन हेडेगर ने किया है और सार्त्र ने अपने महत्त्वपूर्ण मौलिक विचारों से इसे समृद्ध किया है। उसने अपने उपन्यासों और नाटकों में मनुष्य के अस्तित्व, उसकी चेतना, विश्व-प्रकृति, संकल्पशक्ति और इनके आधार पर प्रवर्तित मानव जीवनमूल्यों की व्याख्या की है। बीसवीं शताब्दी की अद्यतन आलोचना पद्धति के रूप में अस्तित्वाद की प्रतिष्ठा हुई है। इसका विरोध भी कम नहीं हुआ है, फिर भी इसने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी मान्यताएँ स्थापित की हैं।

कार्लमार्क्स का दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नाम से अभिहित किया जाता है जिसका मूलाधार वर्ग-संघर्ष है। इस दार्शनिक चिंतन ने विश्वव्यापी आंदोलन का रूप ले लिया है जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर परिदृष्ट होता है। मार्क्स की साहित्यिक अवधारणा का आधार उनकी आर्थिक विचारणा है जिसके अनुसार साहित्य निरपेक्ष सत्ता न होकर समाज की अर्थव्यवस्था से नियमित और संचालित होता है। मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन रूस और इंगलैंड में अधिक प्रौढ़ता प्राप्त कर सका है। काडवेल ने इंगलैंड में इस सिद्धांत की व्याख्या की है। इस वर्ग के अन्य आलोचकों में एडमंड विल्सन, लिओनल ट्रिलिंग, हेरल्ड रोजेन बर्ग तथा फिलिप रैव आदि उल्लेखनीय हैं।

आइ. ए. रिचार्ड्स और टी. एस. इलियट आधुनिक युग के विश्व प्रसिद्ध साहित्य मनीषी माने जाते हैं। रिचार्ड्स ने मनोवैज्ञानिक मूल्यवाद नामक सिद्धांत का प्रवर्त्तन कर मनोविज्ञान के आधार पर काव्य-मूल्य की नवीन धारणा विकसित की है और अपने आलोचनात्मक सिद्धांतों का समारम्भ प्रभाववादी समीक्षा के विरुद्ध किया है। उनके अनुसार साहित्य का उद्देश्य पाठक या श्रोता में संतुलित मनोवैज्ञानिक स्थिति का निर्माण करना है। वे काव्य या कला को सम्प्रेषण-व्यापार मानते हैं।

इलियट काव्यरचना को निर्वैयक्तिक साधना मानते हैं। परंपरानिष्ठा और निर्वैयक्तिकता उनकी विचारणा के दो महान स्तंभ हैं। वे कविता को

आत्माभिव्यक्ति या कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं मानते, वह व्यक्तित्व से पलायन है—'व्यक्तित्व का अनवरत निषेध है' उन्होंने इतिहास को सातत्य के रूप में स्वीकार कर उसकी नई व्याख्या की है 'जिसमें वर्तमान तथा अतीत एक अविच्छिन्न परंपरा में सम्बद्ध हैं।' (नई समीक्षा: नए संदर्भ पृ. 6-7) "कवि वर्तमान की जीवंत अनुभूति करता है, परंतु संपूर्ण इतिहास उसकी चेतना में व्याप्त रहता है: वह वर्तमान में लिख़ता है, परंतु होमर से लेकर वर्तमान युग तक का समस्त काव्य उसके संस्कारों में रमा रहता है।" वही, पृ. 7

आधुनिक साहित्य-सिद्धांत के विकास में नई समीक्षा (New Criticism) की उपलब्धियाँ अपने में महार्थ हैं। इस आंदोलन का आविर्भाव बीसवीं शती के तृतीय दशक में अमेरिका में हुआ था, किंतु जॉन क्रो रैन्सम की समीक्षा-पुस्तक 'द न्यू क्रिटिसिज्म' के प्रकाशन से (1941 ई.) इसे अधिक बल मिला। इस वर्ग के अन्य आलोचकों में ऐलन टेट, आर. पी. ब्लैकमर, आइवर विण्टर्स, केनेथबर्क, विलियम एम्पसन, क्लिन्थ ब्रुक तथा रार्बट पेन वैरेन उल्लेख्य हस्ताक्षर हैं। पण्डितों ने आलोचना की इस धारा को 'रूपात्मक समीक्षा' की अमिधा प्रदान की है जिसके अनुसार काव्य का अस्तित्व उसके रूप में निहित है। वे शब्दार्थ के प्रयोग-कौशल को ही कवित्व का चरमोत्कर्ष स्वीकार करते हैं। आलोचना की यह प्रवृत्ति अभी गतिमान है और इसके स्वकीय गुण-दोष भी हैं, फिर भी भविष्य में इसका रूप क्या होगा, यह आगे की बात है।

पाश्चात्य समीक्षा का आधुनिक युग अनेक नवीनवादों के विवादी स्वर से अनुगूंजित रहा है, जिनमें से कई निःशेष होकर अपना इतिहास छोड़ चुके हैं और कई अपने स्वस्थ जीवन-दर्शन के कारण गतिशील हैं। इनकी उपलब्धियों का निर्णय भविष्य का इतिहास करेगा।

Music (म्यूजिक) संगीत– **दे. Art**

Musical Comedy (म्यूजिकल कॉमेडी) संगीत कॉमदी

इसे बैलेड ओपेरा का विकसित रूप कह सकते हैं जिसमें अल्प कथानक के माध्यम से हास-परिहास, हास्यजनक परिस्थिति का समावेश होता है। इसका कथासूत्र अल्प होता है और संवाद हास्यपूर्ण होते हैं तथा गीत, सहगान और नृत्य का सन्निवेश किया जाता है।

अस्तित्ववाद आधुनिक युग की बहुचर्चित दार्शनिक विचारणा है जिसने साहित्य और कला को अत्यधिक प्रभावित किया है। इस विचारधारा का जन्म प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात जर्मनी में हुआ था जहाँ से यह फ्रांस और इटली में प्रविष्ट हुआ। इस दर्शन पर डेनमार्क निवासी सोरेन कीर्केगार्ड (1813-1855 ई.) की स्थापनाओं का प्रभाव पड़ा है और बीसवीं शताब्दी में कार्ल यास्पर्स की रचनाओं में इस दर्शन का समग्र विकास हुआ है। इस दर्शन का विशेष प्रचार मार्टिन हेडेगर ने किया है और सार्त्र ने अपने महत्त्वपूर्ण मौलिक विचारों से इसे समृद्ध किया है। उसने अपने उपन्यासों और नाटकों में मनुष्य के अस्तित्व, उसकी चेतना, विश्व-प्रकृति, संकल्पशक्ति और इनके आधार पर प्रवर्तित मानव जीवनमूल्यों की व्याख्या की है। बीसवीं शताब्दी की अद्यतन आलोचना पद्धति के रूप में अस्तित्वाद की प्रतिष्ठा हुई है। इसका विरोध भी कम नहीं हुआ है, फिर भी इसने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी मान्यताएँ स्थापित की हैं।

कार्लमार्क्स का दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नाम से अभिहित किया जाता है जिसका मूलाधार वर्ग-संघर्ष है। इस दार्शनिक चिंतन ने विश्वव्यापी आंदोलन का रूप ले लिया है जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर परिदृष्ट होता है। मार्क्स की साहित्यिक अवधारणा का आधार उनकी आर्थिक विचारणा है जिसके अनुसार साहित्य निरपेक्ष सत्ता न होकर समाज की अर्थव्यवस्था से नियमित और संचालित होता है। मार्क्सवादी साहित्य-चिंतन रूस और इंगलैंड में अधिक प्रौढ़ता प्राप्त कर सका है। काडवेल ने इंगलैंड में इस सिद्धांत की व्याख्या की है। इस वर्ग के अन्य आलोचकों में एडमंड विल्सन, लिओनल ट्रिलिंग, हेरल्ड रोजेन बर्ग तथा फिलिप रैव आदि उल्लेखनीय हैं।

आइ. ए. रिचार्ड्स और टी. एस. इलियट आधुनिक युग के विश्व प्रसिद्ध साहित्य मनीषी माने जाते हैं। रिचार्ड्स ने मनोवैज्ञानिक मूल्यवाद नामक सिद्धांत का प्रवर्त्तन कर मनोविज्ञान के आधार पर काव्य-मूल्य की नवीन धारणा विकसित की है और अपने आलोचनात्मक सिद्धांतों का समारम्भ प्रभाववादी समीक्षा के विरुद्ध किया है। उनके अनुसार साहित्य का उद्देश्य पाठक या श्रोता में संतुलित मनोवैज्ञानिक स्थिति का निर्माण करना है। वे काव्य या कला को सम्प्रेषण-व्यापार मानते हैं।

इलियट काव्यरचना को निर्वैयक्तिक साधना मानते हैं। परंपरानिष्ठा और निर्वैयक्तिकता उनकी विचारणा के दो महान स्तंभ हैं। वे कविता को

आत्माभिव्यक्ति या कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं मानते, वह व्यक्तित्व से पलायन है—'व्यक्तित्व का अनवरत निषेध है' उन्होंने इतिहास को सातत्य के रूप में स्वीकार कर उसकी नई व्याख्या की है 'जिसमें वर्तमान तथा अतीत एक अविच्छिन्न परंपरा में सम्बद्ध हैं।' (नई समीक्षा: नए संदर्भ पृ. 6-7) "कवि वर्तमान की जीवंत अनुभूति करता है, परंतु संपूर्ण इतिहास उसकी चेतना में व्याप्त रहता है: वह वर्तमान में लिखता है, परंतु होमर से लेकर वर्तमान युग तक का समस्त काव्य उसके संस्कारों में रमा रहता है।" वही, पृ. 7

आधुनिक साहित्य-सिद्धांत के विकास में नई समीक्षा (New Criticism) की उपलब्धियाँ अपने में महार्थ हैं। इस आंदोलन का आविर्भाव बीसवीं शती के तृतीय दशक में अमेरिका में हुआ था, किंतु जॉन क्रो रैन्सम की समीक्षा-पुस्तक 'द न्यू क्रिटिसिज्म' के प्रकाशन से (1941 ई.) इसे अधिक बल मिला। इस वर्ग के अन्य आलोचकों में ऐलन टेट, आर. पी. ब्लैकमर, आइवर विण्टर्स, केनेथबर्क, विलियम एम्पसन, क्लिन्थ ब्रुक तथा रार्बट पेन वैरेन उल्लेख्य हस्ताक्षर हैं। पण्डितों ने आलोचना की इस धारा को 'रूपात्मक समीक्षा' की अभिधा प्रदान की है जिसके अनुसार काव्य का अस्तित्व उसके रूप में निहित है। वे शब्दार्थ के प्रयोग-कौशल को ही कवित्व का चरमोत्कर्ष स्वीकार करते हैं। आलोचना की यह प्रवृत्ति अभी गतिमान है और इसके स्वकीय गुण-दोष भी हैं, फिर भी भविष्य में इसका रूप क्या होगा, यह आगे की बात है।

पाश्चात्य समीक्षा का आधुनिक युग अनेक नवीनवादों के विवादी स्वर से अनुगूंजित रहा है, जिनमें से कई निःशेष होकर अपना इतिहास छोड़ चुके हैं और कई अपने स्वस्थ जीवन-दर्शन के कारण गतिशील हैं। इनकी उपलब्धियों का निर्णय भविष्य का इतिहास करेगा।

Music (म्यूजिक) संगीत– दे. Art

Musical Comedy (म्यूजिकल कॉमेडी) संगीत कॉमदी

इसे बैलेड ओपेरा का विकसित रूप कह सकते हैं जिसमें अल्प कथानक के माध्यम से हास-परिहास, हास्यजनक परिस्थिति का समावेश होता है। इसका कथासूत्र अल्प होता है और संवाद हास्यपूर्ण होते हैं तथा गीत, सहगान और नृत्य का सन्निवेश किया जाता है।

Mysticism (मिस्टिसिज्म) रहस्यवाद

रहस्यवाद एक ऐसी भावना या प्रवृत्ति है जिसमें अपनी अपरोक्ष अनुभूति, चिंतनपरक अलौकिकोन्मुख तथा धार्मिक साधना अथवा अन्तःस्फुरित अनुभूति के माध्यम से परमतत्त्व, ब्रह्म या ईश्वर का साक्षात्कार किया जाता है। इसे ब्रह्मवाद या अद्वैतवाद का भावनात्मक स्वरूप कहा जा सकता है। आ० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार चिंतन के क्षेत्र में जो ब्रह्मवाद है, अद्वैतवाद है, वही कल्पना और भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है। ज्ञानी जिसे साधना द्वारा प्राप्त करता है उसे या उस लक्ष्य को रहस्यवादी भावना या स्वतः स्फुरित आंतरिक अनुभूति द्वारा प्राप्त करता है। रहस्यवादी ज्ञान को ब्रह्मानुभूति का साधन नहीं मानता, उसके अनुसार अपरोक्षानुभूति ही परमोत्कृष्ट साधन है जिसके द्वारा ईश्वर या परम तत्त्व का साक्षात्कार होता है। वह ज्ञान के सभी साधनों को अपूर्ण मानता है, पर बुद्धि का निषेध नहीं करता।

रहस्यवाद के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए अनेकशः प्रयत्न हुए हैं, पर वे सभी रहस्यमय या अस्पष्ट हैं। ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी में रहस्यवादी की जो परिभाषा दी गई है उसके अनुसार जो ज्ञानातीत सत्य की आध्यात्मिक अनुभूति में विश्वास करता है वह रहस्यवादी है। कुमारी अंडरहिल के अनुसार रहस्यवाद मानव की परात्पर के साथ भावात्मक ऐक्यानुभूति की प्रवृत्ति का प्रकाशन है। रहस्यवादियों की भावना चेतना की सम्पूर्ण भूमि को आक्रांत कर चलती है। वे रहस्यवाद को सत्य के प्रति उद्‌भूत भावात्मक प्रतिक्रिया कहती हैं।

"Mysticism is the tempramental reaction to the reality." (Hundred poems of kabir Preface) रहस्यवादी में असीम और अनन्त के प्रति तीव्र आकांक्षा तथा शाश्वत तक पहुँचने की तीव्र इच्छा होती है। एम. के स्पेन्सर ने रहस्यवाद का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह धर्म का क्रियात्मक रूप है। रहस्यवाद धर्म के महानतम रूप का भावात्मक मानवीकरण है। रहस्यवादी ईश्वरीय मनुष्य है जो प्रकृति के रहस्य को समझकर उसका उद्घाटन करता है। (Spritual Philosoply of life, Page 50) प्रो. रानाडे के अनुसार रहस्यवाद उस मानसिक स्थिति का प्रकाशन है जिसमें साधक को परमात्मा का सीधा सच्चा स्वगत एवं अनुभूति मूलक परिज्ञान होता है। (Mysticism in Maharastra, Preface) डॉ. रामकुमार वर्मा की परिभाषा अत्यंत स्पष्ट है। रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और

अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। (दे. कबीर का रहस्यवाद,) (दे. हिंदी की निर्गुण काव्यधारा तथा उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ. 578-580)

इन सभी परिभाषाओं में पाँच तथ्यों पर बल दिया गया है—

क. साधक की अनन्त और अज्ञात या सत्य स्वरूप रूपी प्रिय के प्रति तीव्र भावात्मक जिज्ञासा का उदय

ख. भाव या प्रेम का प्राधान्य

ग. आध्यात्मिकता

घ. अद्वैत की प्रवृत्ति

ड. साधना-संबंधी दुस्सह और रहस्यपूर्ण प्रक्रियाएँ—

रहस्यवाद दो प्रकार का होता है-भावनात्मक एवं साधनात्मक/भावनात्मक रहस्यवाद में अज्ञेय या अज्ञातसत्ता के प्रति प्रणय-संबंध स्थापित कर उससे मिलने का वर्णन होता है और साधनात्मक रहस्यवाद में उपयोग या यौगिक क्रियाओं के द्वारा ब्रह्मानुभूति का कथन किया जाता है।

रहस्यवाद मनुष्य की अत्यंत प्राचीन प्रवृत्ति है, यह उतना ही प्राचीन है जितनी की मानवता इसकी भावना सार्वकालिक और सार्वभौम है। संसार के सभी विकसित और अविकसित देशों में रहस्यवादी प्रवृत्ति का प्रतिपादन किया गया है और सभी प्रमुख भाषाओं में इस प्रकार की रचनाएँ हुई हैं। ईसाई संतों, सूफियों हिंदी प्रेमगाथा कवियों तथा संतों ने रहस्यवाद की उत्कृष्ट कोटि की रचनाएँ की हैं। भारत में रहस्यवाद की दो धाराएँ हैं—उपनिषदिक और यौगिका यौगिक रहस्यवाद की कई उपधाराएँ हैं—हठयौगिक, तांत्रिक, बौद्धतांत्रिक आदि। तांत्रिक रहस्यवाद में अभिव्यक्ति की रहस्यमयता दृष्टिगत होती है और उपनिषदिक रहस्यवाद में आध्यात्मिकता अद्वैतवाद एवं पवित्रता के दर्शन होते हैं। हठयौगिक रहस्यवाद अपनी साधना और अन्तर्मुखी वृत्तियों के कारण प्रसिद्ध है। सूफी रहस्यवाद में चार तथ्य प्राप्त होते हैं—प्रेम, विरह, सुरा तथा भावातिरेकता।

रहस्यवाद एक प्रकार की आध्यात्मिक साधना है जिसमें ब्रह्म की जिज्ञासा जाग्रत होती है और वही जिज्ञासा भावना से प्रारंभ होकर प्रियतम की जिज्ञासा बन

जाती है। साधक ब्रह्म रूपी प्रिय से मिलने के लिए तड़पने लगता है, उसकी खोज में व्याकुल हो जाता है।

रहस्यवाद में रूपकात्मक या प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है। साधक ब्रह्म की अस्पष्ट अनुभूति को अभिधा में व्यक्त न कर रूपकों का सहारा लेकर उसकी रहस्यमयता का प्रत्यक्षीकरण करता है। रहस्यवाद की दो अवस्थाएँ हैं—अंतर्मुखी और वहिर्मुखी। अंतर्मुखी रहस्यवाद के कई प्रकार हैं—शरीरमूलक, मनमृलक, वुद्धिमूलक, आत्ममूलक तथा भावमूलक। शरीरमूलक रहस्यवाद यौगिक प्रक्रिया या हठयोग से संवद्ध है। इस रहस्यवादी को पिण्डस्थ रहस्यों की शतश: अनुभूति होती है। मनमूलक रहस्यवाद में मन को अंतर्मुखी बना कर उन्मन के रहस्यों का अनुभव किया जाता है। बुद्धिमूलक रहस्यवाद में बुद्धि को अंतर्मुखी करके बुद्धिकी शतश: प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है। भाव तथा मनमूलक रहस्यवाद में साधक अंतर्मुखी होकर महत् स्वरूप के रहस्यों का वर्णन करता है। वहिर्मुखी रहस्यवाद में साधक द्वारा अपनी आत्मा का सारे विश्व पर भावनात्मक आरोप किया जाता है अथवा वह अहं को विश्व में लीन कर स्वयं विश्वरूप हो जाता है।

रहस्यवाद की अनेक अवस्थाएँ होती हैं—जागरण की अवस्था, परिष्करण की अवस्था, अशानुभूति की अवस्था, विघ्नों की अवस्था तथा मिलन की अवस्था। गुरु मंत्र प्राप्त कर साधक का परमात्मा या ब्रह्म के दिव्यसौंदर्य की ओर प्रेरित होना तथा उसकी चेतना का अंतर्मुखी हो जाना जागरण है। इस स्थिति में आत्मा परमात्मा की ख़ोज करती है। प्रियतम की प्राप्ति के लिए साधक का साधना में प्रवृत्त होना परिष्करण की अवस्था है। साधना के क्रम में साधक को जब परमात्मा की अंशानुभूति होती है तो वह आनन्दमयी भावातिरेकता से आपूर्ण हो जाता है। इसे अंशानुभूति की अवस्था कहते हैं। साधना के बाधक तत्त्वों को विघ्नावस्था कहते हैं। रहस्यवादी का प्रियतम के समीप पहुँच कर उसके मिलन में भावविह्वल होने की अवस्था को मिलन की अवस्था कहते हैं। मिलन की स्थिति में साधक या आत्मा परमात्मा रूपी प्रियतम के चरण में आत्मसमर्पण कर उसके साथ पूर्ण तादात्म्य प्राप्त करता है।

पाश्चात्य जगत् में प्लोटिनस की गणना महान रहस्यवादियों में होती है जिसने रहस्यवादी चिंतन को दार्शनिक पीठिका प्रदान की। ईसा मसीह का जीवन आदर्श रहस्यवादी का जीवन है और बाइबिल रहस्यवाद की उत्कृष्ट रचना है।

Myth (मिथ) पुराणकथा, धर्मगाथा, मिथक

ऐसी कथा जिसे धार्मिक अनुष्ठान में कार्यान्वित किया जाता है। व्यापक अर्थ में मिथ ऐसी गुम नाम कहानियों का द्योतक है जिसमें सृष्टि का उद्‌भव एवं नियति का वर्णन किया जाय। अरस्तू ने इसका प्रयोग कथानक, कथाबन्ध तथा गल्पकथा के रूप में किया है। मिथ ऐसी आख्यानात्मक कथा है जो व्यवस्थित दार्शनिकता के विपरीत भावुकतापूर्ण और अन्तः प्रज्ञा से संबद्ध होती है। आधुनिक युग में इसके क्षेत्र का विस्तार हो गया है। इसके अंतर्गत धर्म, लोक साहित्य, मानव विज्ञान, समाजविज्ञान, मनोविश्लेषण और ललितकलाओं का समावेश हो जाता है।

पुराणकथा या पुरावृत्त का संबंध धर्म, यज्ञ, आराधना सभी के साथ है। इसमें अनेक तत्त्वों का निरूपण प्रतीकात्मक शैली में किया जाता है। जैसे ऋतुओं से संबद्ध पुरावृत्त सर्जन और विनाश के अर्थ से पूर्ण होते हैं। पुरावृत्त में कथा की भाँति घटना-क्रम के प्रति विशेष आग्रह न होकर भावनात्मक एवं कल्पनात्मक क्षमता का प्राधान्य रहता है। इसमें प्रतीकों का अत्यधिक महत्त्व हैं और कथा मात्र तथा पदार्थ सभी प्रतीक का कार्य करते हैं।

Narrative Essay (नैरेटिव ऐसे) विवरणात्मक निबंध–

दे. Essay

Nationalism (नेशनलिज्म) राष्ट्रवाद

राष्ट्रीयता की भावना को संगठित रूप में अभिव्यक्त करने के भावात्मक माध्यम को राष्ट्रवाद कहते हैं। इस शक्ति के द्वारा मनुष्य राष्ट्रीयता को राष्ट्र के रूप में संगठित करने के लिए प्रेरणा प्राप्त करता है। राष्ट्र उस मानवीय समुदाय को कहते हैं जिसमें जाति, धर्म, भाषा, परम्परा, संस्कृति आदि बंधनों के परिणामस्वरूप राजनीतिक एकता होती है। गार्नर के अनुसार राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार है "एक राष्ट्र सांस्कृतिक समानता का सामाजिक समूह है जो अपने मानसिक जीवन और अभिव्यक्ति की एकता के विषय में पूर्ण चेतना एवं दृढ़ निश्चयी है।"

बार्कर के अनुसार "राष्ट्र ऐसे व्यक्तियों का समुदाय है जो निश्चित प्रदेश में निवास करते हों और जिनमें एक ही भूमि पर निवास करने के कारण परस्पर प्रेम हो।" राष्ट्रीयता मनुष्य की आंतरिक भावना होती है जो उसे एक सूत्र में आवद्ध

कर देती है। लास्की ने राष्ट्रीयता की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है—"राष्ट्रीयता की भावना में एक विशेष एकता की भावना निहित है जो इसमें भाग लेने वालों को शेष मानव जाति से पृथक् करती है। यह एकता एक ही इतिहास, संयुक्त प्रयास से प्राप्त विजय, और संयुक्त प्रयास से निर्मित परंपराओं का परिणाम है। इसमें रक्त संबंध की भावना पैदा हो जाती है जो मनुष्यों को एक सूत्र में बाँध देती है। ये अपने पारस्परिक सादृश्य को स्वीकार करते हैं और इस बात पर जोर देते हैं कि वे अन्य लोगों से भिन्न हैं। उनकी सामाजिक वसीयत स्पष्ट रूप से उसकी अपनी हो जाती है, जैसा कि मनुष्य अपने घर को एक विशेष रूप प्रदान करता है। उसकी अपनी एक कला, अपना एक साहित्य पैदा हो जाता है जो अन्य राष्ट्रों की कला और साहित्य से भिन्न रहता है।" राष्ट्रीयता के निर्माण में निम्नांकित तत्त्वों का प्रमुख हाथ होता है—भौगोलिक एकता, जातीय ऐक्य, सांस्कृतिक एकता, भाषागत एकता, धर्मगत एकता, ऐतिहासिक घटनाओं की एकता, राजनीतिक प्रेरणाओं की एकता, सामान्य आर्थिक हित, सामान्य अधीनता, सार्वजनिक इच्छा आदि। राष्ट्रवाद में स्वराष्ट्र का ऐक्य, स्वाधीनता, हितरक्षा, प्रभुता और विभिन्न प्रकार की एकता और समानताओं का पोषण और समर्थन होता है। यह ऐसी आंतरिक भावना है जिसका संबंध राजनीतिक शक्ति की प्राप्ति या विकास से होता है। इसमें राष्ट्रीय वैयक्तिकता को उच्च स्थान प्राप्त है और राज्य के राजनीतिक जीवन पर राष्ट्रीय शक्ति के अधिकार की माँग की जाती है। जब राष्ट्रप्रेम अंधभक्ति का रूप ग्रहण कर लेता है या उसमें कट्टरता आ जाती है तो राष्ट्रीय चेतना के प्राबल्य के कारण व्यक्ति अन्य राष्ट्रों को हीन दृष्टि से देखने लगता है। इस दृष्टि से इसके अपने गुण-दोष होते हैं जो स्वतंत्रता तथा एकता एवं विश्वव्यापी युद्धों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। राष्ट्रवाद राष्ट्रप्रेम की भावना का अतिमूल्यन कर नागरिकता को जाग्रत करता है जिससे प्रत्येक व्यक्ति को आत्म सम्मान और गौरव की भावना का अनुभव होता है। राष्ट्रीय अभिमान के कारण कभी-कभी राष्ट्रवाद विभिन्न राष्ट्रों के बीच विद्वेष और कलह का कारण बनता है और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अधीनस्थ करना चाहते हैं। अन्ध या कट्टर राष्ट्रवाद अंतर्राष्ट्रीयता या एक विश्व की भावना के विकास में बहुत बड़ा अवरोधक तत्त्व है और साम्राज्यवाद के प्रसार में इसका प्रमुख हाथ होता है। राष्ट्र के प्रति आसक्ति अपने में महत्त्वपूर्ण वस्तु है, किंतु यह आसक्ति जब चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो इसका विकृत रूप प्रकट होता है। वैसे राष्ट्रवाद स्वतंत्रता का परिचायक एवं देश प्रेम की भावना का वाहक है। आधुनिक युग में राष्ट्रवादी विचार ने जीवन

के आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक, तथा राजनीतिक विकास की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण योग दिया है और आधुनिक सभ्यता के विकास तथा विश्वमानवता के उन्नयन में इसकी महनीय देन है। यदि राष्ट्रीयता अन्य राष्ट्रों के महत्त्व को स्वीकार कर मानवता के प्रति रागात्मक संबंध की स्थापना करे तो उसे वांछनीय माना जाएगा।

Naturalism (नैचुरलिज़्म) प्रकृतवाद

प्रकृतवाद यथार्थवाद से उद्‌भूत एक साहित्यिक आंदोलन है जिसका उद्‌भव उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रांस में हुआ था। इसका रूप कथा-साहित्य में प्रदर्शित हुआ; विशेषत: प्रसिद्ध फ्रेंच उपन्यासकार एमिल ज़ोला की रचनाओं में। पण्डितों ने इसे यथार्थवाद के एक अभिनव प्ररोह के रूप में स्वीकार किया है। सैद्धांतिक रूप से इसके निर्माण में मनोविज्ञान, न्यूटन के भौतिकवाद, डार्विन के जीवविज्ञान हर्बर्ट स्पेन्सर तथा ऑग्युस्त कोंत के सामाजिक विचारों का प्रबल योग है। "यथार्थवाद और प्रकृतवाद में सैद्धांतिक स्थूल भेद यही है कि साहित्य में यथार्थवाद मुख्यत: भावुकता, रोमानवाद और आदर्शवाद का तिरस्कार है। प्रकृतवाद न केवल इनको तिलांजलि देता है, अपितु और आगे बढ़ कर भौतिक और यान्त्रिक अनुमानों पर आधृत एक नए जीवन-दर्शन का निरूपण करने लगता है। इस प्रकार साहित्यिक प्रकृतवाद ऐसे सिद्धांतों की घोषणा करता है, जिसके अधीन न्यूटन के भौतिकशास्त्र, डारविन के जीव विज्ञान और ऑग्युस्त कोंत और हर्बर्ट स्पेंसर के समाजवाद के शब्दों में यथार्थ की एक नई प्रकल्पना प्रस्तुत होती है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र: सिद्धांत और वाद)

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ्रांस के उपन्यासकारों ने प्रकृतवादी शैली को पूर्णत: विकसित किया था जिसका प्रतिनिधित्व ज़ोला ने किया। इसके प्रवर्तन में फ्रांसीसी उपन्यासकार गनकोर बन्धुओं का महत्त्वपूर्ण योग था। एक वाद के रूप में साहित्य में उन्होंने ही इसका प्रतिष्ठापन किया था। पर, इसका प्रथम सैद्धांतिक रूप ज़ोला की पुस्तक 'ल रोमान एक्स पेरिमेण्टल' में प्रतिपादित हुआ। तदनंतर बूनत्रिएर ने 'ल रोमान नैच्युरलिस्ट' नामक ग्रंथ में प्रकृतवाद के स्वरूप को अधिक स्पष्ट किया। इस सिद्धांत का विवेचन दो दृष्टियों से हुआ—एक विज्ञान या ज्ञानवृद्धि के माध्यम के रूप में तथा एक कला प्रणाली के रूप में। प्रथम का संबंध वस्तु से है और द्वितीय का अभिव्यंजना-प्रणाली से। भौतिकवाद, जीवविज्ञान तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में उन्नीसवीं शताब्दी में जो आविष्कार हुए थे उनका सार प्रकृतवाद में गृहीत हुआ है। भौतिकवाद के बढ़ते हुए चरण के कारण जीवन के

दृष्टिकोण में जो अंतर आया उसने परंपरागत मान्यताओं को झकझोर कर निरर्थक सिद्ध कर दिया और यहीं से साहित्य में वैज्ञानिक दृष्टि का समावेश हुआ। प्रकृतवाद ने परंपरागत नैतिकता के नियमों को छिन्न-भिन्न कर परीक्षित तथ्यों के आधार पर जीवन का पुनर्मूल्यांकन किया। डार्विन तथा स्पेंसर ने जीव-जन्तुओं के क्रमिक विकास का अध्ययन कर मनुष्य के पूर्वरूपों का निर्णय किया था और मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों के कारणों पर विचार किया था; किंतु उनके इस सिद्धांत का संबंध शरीर-विज्ञान तथा जीव-विज्ञान से अधिक था। प्रकृतवादी उपन्यासकारों ने पात्रों की चित्र-विकृति और उनके व्यक्तित्व में निहित पशुंता को ही अपनी कला का विषय बनाकर उनका उद्घाटन किया। इन लोगों ने ऐसे चरित्रों का निर्माण किया जो विषय-भोग की दृष्टि से पशुओं से भी नीच तथा निकृष्ट थे। प्रकृतिवाद मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं उपस्थित करता और पुरुष-स्त्री के बाह्य-सौंदर्य के उत्तेजक चित्रण पर ही अधिक ध्यान देता है। प्रकृतिवाद जीवन के स्वस्थ उपकरणों की अवहेलना कर विकृत तथा असंतुलित चरित्रों की जीवन-गाथा प्रस्तुत करता है और मनुष्य को प्रकृति का उसी प्रकार से क्रमशः विकसित रूप मानता है जिस प्रकार की संसार के अन्य प्राणी विकसित हुए हैं। वह मनुष्य को काम, क्रोध तथा विकृत मनोभावों की गठरी मान कर उसके अर्थहीन आचरणों, कामुक चेष्टाओं तथा अहंकारी मनोवृत्ति का चित्रण करता है। ज़ोला प्रभृति उपन्यासकारों ने वैज्ञानिक सिद्धांतों को उपन्यासों में अवतरित कर अन्य विषयों का एकदम बहिष्कार नहीं किया। "कलाकार को अपनी सौंदर्यानुभूति, अपनी व्यक्तिगत अनुभूति इन सब को व्यंजित करने की स्वतंत्रता है, पर वह स्वतंत्रता इतनी ही है कि सौंदर्यानुभूति और वैयक्तिक अनुभूतियाँ रोमांटिक कल्पना या आदर्श का आश्रय लेकर मानव-विकास के आधारभूत सत्यों के विरोधी न हों। ज़ोला के उपन्यासों में बिखरे पड़े तीव्र अनुभूति के प्रसंग इसके प्रमाण हैं।" (हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन पृ.383) कलात्मक प्रणाली के अनुसार प्रकृतवाद यथार्थ कथन को अभिव्यंजन का आधार मानता है, पर वह यथार्थ को उसके पूर्ण नग्न रूप में देखता है। वह कथानक की कृत्रिमता को हर प्रकार से मुक्त कर जीवन का निरीक्षण आवश्यक मानता है। वह शृंखलाबद्ध कथा को उपन्यास के लिए आवश्यक नहीं समझता और मनुष्य के प्राकृतिक रूप को चित्रित करने में अपनी सफलता का अनुभव करता है। प्रकृतिवादी यथार्थ शैली में अभिव्यंजना सदा सीधी होती है और उसमें व्यंजना का अभाव रहता है। वह कथन की भंगिमा या वक्रता को महत्त्व नहीं देता और न विचारों को अमूर्त रूप में प्रकट करता है।

प्रकृतिवाद का यथार्थ निरीक्षण पर आधृत होता है, और निरीक्षण के बिना किसी प्रयोग को वह व्यर्थ मानता है। पर निरीक्षण में वह एकांगी दृष्टि को अपनाकर जीवन के केवल निकृष्ट अंशों पर ही अपना ध्यान केंद्रस्थ करता है। वह जीवन में कालिमा अधिक देखता है, धवलता कम अर्थात जीवन के कुत्सित अंशों की ओर ही उसकी दृष्टि जाती है।

प्रकृतिवादी कला समाज की विद्रूपता, दुर्बलता और बीभत्सता को ही चित्रित करती है। उसका दृष्टिकोण अस्वस्थ होता है जिसका कारण उसका नैराश्य है। प्रकृतिवादी उपन्यास जीवन की नीच प्रवृत्तियों से आपूर्ण होते हैं, फलत: उनमें जीवन की नीचता और पतन में ही सौंदर्य की खोज की जाती है। प्रकृतवाद की आलोचना भी कम नहीं हुई है, लेकिन इसने विश्व साहित्य को महान कृतियाँ भी दी हैं। ज़ोला का 'नाना' नामक उपन्यास इसका प्रमाण है। आर्नल्ड हाउज़र ने 'सोशल हिस्ट्री ऑफ आर्ट' नामक ग्रंथ में प्रकृतवाद के संबंध में अपना विचार प्रकट किया है। "प्रकृतवाद कला की कोई समरूप और सुस्पष्ट धारणा नहीं है, न वह सदैव प्रकृति के एक ही विचार पर आधारित है। वह समय के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। उसके सामने सदैव एक विशेष और तात्कालिक लक्ष्य रहता है। वह सदैव किसी ठोस काम से संबंधित रहती है। वह अपनी जीवन-विषयक व्याख्या को विशेष उपलक्षणों तक ही सीमित रखती है। प्रकृतवाद में किसी लेखक का विश्वास इस कारण नहीं होता कि वह प्रकृतवादी निरूपण की शैलीविन्यास से ज्यादा महत्त्वपूर्ण कलात्मक पूर्व पीठिका मानता है बल्कि इसीलिए होता है कि उसे इसमें यथार्थ की एक ऐसी प्रवृत्ति या रुझान का पता चलता है जिसका या तो वह समर्थन करना चाहेगा या विरोध। यह खोज स्वत: किसी प्रकृतवादी पर्यावलोकन का परिणाम नहीं होती। उलटे प्रकृतवाद में अभिरुचि इसी खोज के कारण पैदा होती है। ... प्रकृतवाद पूर्ण यथार्थ को ही लक्ष्य मान कर नहीं चलता, न वह सामान्यत: 'प्रकृति' या 'जीवन' को ही लक्ष्य मानता है। वह विशेषत: उस पीढ़ी के सामाजिक जीवन को लेकर चलता है ... 1830 की पीढ़ी की सामाजिक चेतना, सामाजिक हितों पर थपेड़े लगाने वाले तत्त्वों के प्रति उसकी जागरूकता, सामाजिक उथल-पुथल और नवमूल्यांकनों के प्रति उसकी सजग दृष्टि—वे सब कारण हैं, जो उस पीढ़ी के लेखकों को सामाजिक उपन्यासों और आधुनिक प्रकृतवाद का स्रष्टा बना देते हैं। जिल्द दो, पृ. 735 । (पाश्चात्य काव्यशास्त्र: सिद्धांत और वाद, पृ. 151-152)

प्रकृतवादी साहित्य को यथार्थवस्तु का यथावत चित्र मानता है। कैमरे के द्वारा लिए गए चित्र में जिस प्रकार किसी तरह का भेदनहीं होता उसी प्रकार साहित्यकार द्वारा चित्रित चित्र में समाज का नग्न या यथार्थ चित्र अंकित होना चाहिए। इसमें गंदी तथा घिनौनी समझी जाने वाली वस्तुओं का चित्रांकन किया जाता है तथा जीवन के स्वस्थ उपकरणों का प्राय: अभाव होता है।

■

Neo-classicism
(निओ-क्लैसिसिज्म)

नव्य-शास्त्रवाद, नव्य-अभिजातवाद

17वीं -18 वीं शताब्दी के आलोचना सिद्धांत को यूरोप में नव्यशास्त्रवादी युग के नाम से अभिहित किया जाता है। इस कालावधि में प्राचीन आभिजात्य साहित्य की मान्यताओं की पुनः प्रतिष्ठा हुई थी और समीक्षाशास्त्र का केंद्र इटली से हट कर फ्रांस में स्थापित हुआ था। प्रसिद्ध फ्रांसीसी आलोचक ब्रुअलो (1636-1711 ई.) नव्यशास्त्रवाद के प्रवर्तक माने गए और उन्होंने आभिजात्यवादी कला के आदर्श तथा स्वरूप को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। इस युग के अन्य आलोचकों में ड्राइडेन और पोप (आंग्ल आलोचक) के नाम रेखांकित महत्त्व के हैं। बुअलो ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'आर्टपोएटिक' (काव्य कला) में साहित्यिकों के लिए 'आचरण संहिता' प्रस्तुत कर काव्य के उद्देश्य, काव्यशैली, काव्य प्रकृति एवं काव्य रूपों के संबंध में नियमों का निर्धारण किया था। उन्होंने कवियों को परामर्श दिया कि वे प्राचीन कवियों का अनुसरण कर सम्भव नीयता और औचित्य पर विशेष दृष्टि रखें। बुअलो सत्य और सुंदर को अन्योन्याश्रित मानते थे। उनके अनुसार "जो सत्य नहीं है वह सुंदर नहीं है और जो प्रकृति में विद्यमान नहीं हैं वह सत्य नहीं हो सकता।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ.८८) बुअलो ने विवेक और सुरुचि को काव्य की आत्मा मान कर रोम तथा यूनान के कवियों और आचार्यों को आदर्श-स्वरूप प्रस्तुत किया। फ्रांस में नव्यशास्त्रवादी सिद्धांत

को सुदृढ़ करने वाले अन्य आलोचक थे रापें तथा ला बोस्यू। बुअलो ने बताया कि साहित्योत्कर्ष के कुछ शाश्वत तथा अपरिवर्तनीय सिद्धांत होते हैं और प्राचीन साहित्य के नियमों को ग्रहण कर ही इस प्रकार के सिद्धांतों की उपलब्धि हो सकती है। पर, प्राचीनों को केवल इसलिए अपना पथ प्रदर्शक नहीं माना जा सकता कि वे प्राचीन हैं, अपितु उनमें प्रकृति या विवेक के आदर्श भी निहित रहें। नव्यक्लैसीकल युग में प्राचीन नियमों और सिद्धांतों को आदरास्पद मान कर साहित्यकारों के लिए उन्हीं नियमों के अनुकरण को वांछनीय स्वीकार किया गया। इस आलोचना-सिद्धांत में कलात्मक अभिव्यंजना, शिल्प तथा रूप पर अपेक्षाकृत अधिक बल दिया गया और वस्तु की नव्यता और मौलिकता को उतनी महत्ता प्रदान नहीं की गई। उसमें साहित्य को कल्पना की क्रीड़ा न मान कर उसे सर्जना और कला का समानार्थी स्वीकार किया गया और इसकी सिद्धि के लिए व्युत्पत्ति तथा अभ्यास की उपयोगिता को युक्तिसंगत माना गया। नव्यशास्त्रवादी आलोचना कल्पना को विवेक से अनुशासित कर कल्पना को वहीं तक काम्य मानती है जहाँ तक कवि उससे अपने मनोभावों के दृष्टान्ती करण में सहायता ग्रहण करे। "सच पूछिए तो नव्यशास्त्रवाद में 'यथेष्ट अनुशासन' पर ही अधिक बल पड़ता है। चूँकि संपूर्ण अठारहवीं शताब्दी की भावभूमि पर विज्ञान और विवेक का प्रभूत प्रभाव पड़ा है, अतः उसके लेखक उसी सत्य की ओर अधिक आकृष्ट थे जो सार्वभौम एवं निरूप्य होता है। इसके विपरीत, वे उस विचार को संदेह की दृष्टि से देखते थे जो नितांत व्यक्तिगत, विशिष्ट और असामान्य होता था। इस कारण नव्यशास्त्रवाद में सामान्य, सार्वभौम और स्वाभाविक विचारों का ही निरूपण समर्थनीय कहा गया है और इसमें उन्हीं भावों और अनुभूतियों का निदर्शन होता है जो सामान्य (नार्मल) लोगों के भाव और ऐसे ही लोगों की अनुभूतियाँ होती हैं।" (डॉ. राम चन्द्र प्रसाद, शैली, पृ. 77) औचित्य को नव्यशास्त्रवादियों ने अपने विशिष्ट सिद्धांत के रूप में मान्यता प्रदान की है और प्रकृति, अनुकृति, सम्भाव्यता तथा औचित्य को काव्य या साहित्य का निकष माना है। फ्रांसीसी नव्यशास्त्रवादियों के अनुसार काव्य की भाषा अभिजात तथा उदात्त हो। "अधिकांश नव्यशास्त्रवादी सिद्धांत में आदर्श एक महत्त्वपूर्ण उपादान था—यह बात उस स्थिति में भी सत्य थी जबकि उसके बहुत उदात्त स्वरूप की कल्पना न की गई हो। निश्चय ही महाकाव्य के नायक का एक निश्चित कार्य आदर्श प्रकृति का प्रतिनिधान था और पशुचारण काव्य के समर्थन में निरंतर यह तर्क दिया गया

कि उसमें स्वर्णयुग का निरूपण हुआ है, पतन-पर्व प्रकृति का अंकन हुआ है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र: सिद्धांत और वाद, पृ. 46)

इस समय के साहित्यकारों ने श्रेष्ठ प्राचीन साहित्यकारों के मार्ग पर चलने में ही गौरव का अनुभव किया। इस युग में उपन्यास, निबंध, साहित्येतिहास और पत्रकारिता का विशेष विकास हुआ और पत्रों के प्रकाशन से आलोचना-साहित्य में क्रांति आई। नव्यशास्त्र युग में महाकाव्य त्रासदी, शोकगीत, सम्बोधन-गीति के उन्हीं नियमों का अनुकरण किया गया जो अरस्तू या होरेस द्वारा निर्धारित किए गए थे। नव्यशास्त्रवादियों का विश्वास था कि अरस्तू आदि द्वारा निर्मित नियम शाश्वत, सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं। इस युग में नीति-उपदेश तथा आनन्द दोनों को काव्य का प्रयोजन मान कर नीति उपदेश को ही उसका परम प्रयोजन स्वीकार किया गया। उनके अनुसार वही कवि सफल माना जाता था जो पाठक या श्रोता के मन में किसी भाव को जाग्रत करने के पूर्व स्वयं उसका अनुभव करे। कवि के लिए नीतिवादी और ज्ञानवान होना भी इस युग का स्वीकृत तथ्य था। तत्कालीन आलोचकों ने प्रतिभा तथा प्रेरणा (inspiration) को भी कवि का आवश्यक गुण माना था, पर उनकी दृष्टि कलात्मकता और ज्ञान पर अधिक थी। उनका कहना था कि जो कवि असीमं ज्ञान से पूर्ण एवं काव्य नियमों का ज्ञाता है, वही उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य लिख सकता है। इस युग में संकलनत्रय के सिद्धांत का विरोध हुआ तथा अन्य नियमों के औचित्य पर संदेह प्रकट करते हुए उनमें परिवर्तन करने का विचार व्यक्त किया गया। उस समय रोमांटिक महाकाव्य के संबंध में नए नियम बनाए गए जिसका श्रेय एरियस्टो को है। नव्यशास्त्रवादियों के अनुसार विरेचन का अर्थ भय तथा करुणा के भावों का कठोर होना या दर्शकों का उनसे अप्रभावित होना किया गया। उदाहरणार्थ जिस प्रकार चिकित्सक घावों को देखते-देखते इतना अभ्यस्त हो जाता है कि उसके मन पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार दर्शक भी त्रासदी में प्रदर्शित करुणा तथा भय के भावों को देखकर इतना कठोर हो जाय कि वह उनसे अप्रभावित रहे।

नव्यशास्त्रवाद में साहित्यसर्जन में कल्पना और भावना का पूर्ण बहिष्कार न कर कल्पना के ऊपर नियंत्रण रखने पर बल दिया जाता है। वह कल्पना पर विवेक का अंकुश आवश्यक मानता है और कला सर्जन को अचेतन प्रक्रिया भी स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार कला-सर्जन के लिए चेतन या ऐच्छिक प्रयत्न आवश्यक है।

नव्यशास्त्रवादी सिद्धांत का केंद्र-बिन्दु प्रकृति का अनुकरण (imitation of nature) माना गया है। अरस्तू mimesis का अर्थ छवि चित्र या फोटोग्राफी की तरह अनुकरण नहीं मानता, वह उसका अर्थ प्रतिनिधान स्वीकार करता है। उसके मतानुसार प्रकृति का अर्थ 'जड़ प्रकृति' या निष्प्राण जीवन नहीं है। नव्यशास्त्रवादियों ने प्रकृतिं के अनुकरण का अर्थ यथार्थवाद से लिया है, यह वास्तविकता का पुन: सृजन है। "परंतु प्रकृति के अनुकरण को प्राकृतवाद या यथा तथ्य अंकन सिद्ध करने वाली यह व्याख्या नव्यशास्त्रवादी आलोचना का केवल एक पक्ष है। बहुधा प्रकृति का अर्थ 'सामान्य प्रकृति'—प्रकृति के सिद्धांत और क्रम समझा जाता था। किंतु, इसका अर्थ प्रारूपिक भी हो सकता है जो जाति मानव को सर्वत्र और सर्वदा एक ही रूप में देखता है और मानवेतर प्रकृति को विशुद्धत: स्थानीय और आकस्मिक स्थितियों से मुक्त मानता है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र: सिद्धांत और वाद पृ. 44) सार्वभौम प्रकृति के चित्रण के सिद्धांत ने ही आदर्शवादिता को जन्म दिया, ऐसे पात्रों के निर्माण की प्रेरणा दी जो नैतिक दृष्टि से उन्नत हों तथा ऐसे पात्रों के बहिष्कार की बात कही जो सामाजिक आदर्शों के प्रतिकूल आचरण वाले हों; क्योंकि ऐसा करने से ही वे सर्वप्रिय बन सकते थे। प्रकृति का अर्थ माना गया आदर्श प्रकृति (ideal nature)। कला का उद्देश्य सुंदर प्रकृति का उद्‌घाटन समझा गया, अत: उसमें चुनाव, आदर्शीकरण, सुधार आदि पर बल दिया गया। कला में अनुकरण के साथ-साथ चुनाव और आदर्शीकरण को भी आवश्यक माना गया। अत:, कलाकार की रुचि, उसकी आदर्श-संबंधी कल्पना, सौंदर्य-संबंधी दृष्टिकोण अंतर्दृष्टि आदि तत्त्वों पर बल दिया जाने लगा। इसी आदर्शीकरण की प्रवृत्ति के फलस्वरूप काव्यगतन्याय (Poetic justice) का सिद्धांत अपनाया गया और कवि से अपेक्षा की जाने लगी की वह ईश्वर के आचरण को न्यायसंगत सिद्ध करे, अपनी कृति के अंत में अपराधी को दण्ड पाते तथा निरपराध तथा सद्‌गुणी को अपने गुणों का प्रतिफल पाते दिखाए। (डॉ. शान्ति स्वरूप गुप्त, पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत, पृ. 220-221, द्वितीय संस्करण)

यूरोपीय आलोचना में नव्यशास्त्रवाद का प्रभाव इटली, फ्रांस और इंगलैंड में दिखाई पड़ा। इस सिद्धांत का नेतृत्व फ्रांस ने किया और बुअलो को सर्वसम्मति से इसका अग्रदूत स्वीकार किया गया। इंगलैंड में ड्राइडेन, एडीसन, पोप और डॉ. जॉनसन की साहित्यिक मान्यताओं ने नव्यशास्त्रवादी सिद्धांत को प्रखरता प्रदान की।

New Criticism (न्यू क्रिटिसिज्म) नई समीक्षा

नई समीक्षा आधुनिक युग की चर्चित आलोचना-प्रवृत्ति है जिसका जन्म मूलतः अमेरिका में हुआ है। इसका नामकरण जॉन क्रो रैंसम की प्रसिद्ध आलोचना नामकरण जॉन क्रो रैंसम की प्रसिद्ध आलोचना कृति New Criticism (नई समीक्षा) (1941 ई.) के आधार पर किया गया है। पर, 'नई समीक्षा' शब्दावली का प्रयोग जे. ई. स्पिगार्न ने अपनी पुस्तक 'द न्यू क्रिटिसिज्म' में (प्रकाशन काल 1911 ई.) किया था जिसमें यह विचार व्यक्त किया गया था कि समीक्षक किसी कला-कृति के विवेचन में नई विवेक-दृष्टि का उपयोग करे। आधुनिक युग के चतुर्थ चरण के अंत में यह प्रवृत्ति 'एक विशिष्ट समीक्षा दृष्टि का प्रतिनिधित्व' करने लगी। 'नई समीक्षा' को रूपात्मक समीक्षा भी कहते हैं। "रूपात्मक आलोचक का मूल सिद्धांत यह है कि कविता का अस्तित्व उसके रूप में ही निहित है, अतः कविता की समीक्षा का उद्देश्य है उसके रूप का—अर्थात ऐसे तत्त्वों और उनके अंतः संबंधों का विश्लेपण जिनके द्वारा उसके रूप की रचना होती है।" (नई समीक्षा नए संदर्भ, पृ. 14) नई समीक्षा के उन्नायकों में जॉन क्रो रैंसम (जन्म 1888 ई.) एलन टेट (जन्म 1899 ई.) रिचर्ड पी. ब्लैकमर (जन्म 1904 ई.) रॉबर्ट पैन वारेन (जन्म 1905 ई.) क्लीन्थब्रुक (जन्म 1906 ई.) (सभी अमेरिकी आलोचक) तथा इंगलैंड के विलियम एम्पसन (जन्म 1906 ई.) आते हैं। इस आंदोलन के अंतर्गत परिगणित आलोचकों में मतवैभिन्य है, पर समीक्षा से संबद्ध कतिपय मौलिक तथ्यों में इनके विचार समान हैं।

इनके विचारों में मूलभूत समता इस प्रकार है

क— इन्होंने कृति को ही आलोचना का केंद्र माना है, कृतिकार के मानस, रचना-व्यापार, ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ, नैतिक उपदेश और सहृदय की प्रतिक्रिया को समीक्षा के अंतर्गत स्थान नहीं दिया। नई समीक्षा में इन तत्त्वों को कृति के समझने में अनुपयोगी माना गया है।

ख— नई समीक्षा में कविता को विचार या भाव न कह कर पदार्थ कहा गया है जो अपने आपमें एक विशिष्ट अनुभव है और अपने रूप के अनुभव से अभिन्न है।

ग— कविता में अपनी रचना के युग की भावना या संवेदनशीलता के आधार की अभिव्यक्ति होती है।

घ— काव्य उसे कहते हैं जिसे किसी भी युग या स्थान पर प्रतिष्ठित आलोचकों ने उसे काव्य माना है।

ङ.— किसी भी युग की संस्कृति भले ही पथभ्रष्ट हो जाय, पर कविता गलत मार्ग पर नहीं जाती।

च— नई समीक्षा में इस सामान्य सिद्धांत का अन्वेषण हुआ है कि 'कविता को रूपायित करने वाली आधारभूत वस्तु क्या है'। इसके अंतर्गत कृति के अंगों या उनके परस्पर संबंधों का विश्लेषण तथा इसका विवेचन होता है कि ये अंग किस प्रकार एकान्विति लाभ करते हैं। कृति को रूपायित करने वाले शिल्प-कौशल एवं भाषा-कौशल के साधनों का अध्ययन नई समीक्षा का प्रमुख कर्त्तव्य-कर्म है।

छ— नई समीक्षा में काव्य के निरपेक्ष अस्तित्व को स्वीकार कर उसकी स्वतंत्र सत्ता या उसके व्यक्तित्व की विशिष्टता को ग्रहण किया गया है।

ज— नई समीक्षा में कृति को शाब्दिक संरचना या भाषिक संरचना के रूप में स्वीकार किया गया है तथा काव्य-भाषा का विवेचन करते समय प्रतीक, अनेकार्थता, विरोधाभास, विसंगति, द्वन्द्व, बिंब, तनाव, लय तथा छन्द आदि का विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया जाता है। डेविड डैचिज ने नये समीक्षकों के संबंध में अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रकट किया है—"ये आलोचक कविता को गहराई के साथ सूक्ष्म दृष्टि से पढ़ने की महत्ता पर बल देते हैं ताकि उसकी व्यंग्यात्मक अर्थच्छायाएँ और विरोधाभासपरक विवक्षाएँ स्पष्ट हो जाएँ, क्योंकि समुचित काव्याख्यान के लिए वे उन्हें अनिवार्य मानते हैं।" (समन्विति, पृ. 9 से उद्धृत) ब्रुक्स का काव्य-मूल्यांकन पर इस प्रकार का विचार है—"मेरा आग्रह है कि कविता की प्रारंभिक विवेचना कविता के रूप में करना ही उचित दृष्टिकोण है और यह वांछनीय भी है। हमने मानव-वैज्ञानिक और सांस्कृतिक इतिहासकारों की विचारधाराओं का अध्यवसायपूर्वक विश्लेषण किया है और उनके निष्कर्षों पर अच्छी तरह मनन भी किया है। हमने यह सबक इतनी अच्छी तरह सीखा है कि मुझे प्रतीत होता है कि अब भय यह नहीं है कि हम विभिन्न ऐतिहासिक कालों की कविताओं के बीच के अंतर को विस्मृत कर देंगे, वरन् डर यह है कि कहीं हम यह न भूल जाएँ कि उनमें साम्य क्या है? इस बात की संभावना नहीं है कि उत्कृष्ट कविताओं में

परस्पर विभेद करने वाले तत्त्वों को हम भूल जाएँगे, किंतु इस बात की पूर्ण संभावना है कि उनमें परस्पर जो निकट संबंध होता है, वह हमारी दृष्टि से ओझल हो जाएगा। ये तत्त्व वे हैं जिनके कारण वे कविताएँ होती हैं और जो उनकी उत्कृष्टता एवं निकृष्टता की कसौटी भी होती है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र सिद्धांत और वाद, पृ. 347)

नई समीक्षा में ऐकांतिक रूप से कविता की भाषा पर ध्यान केंद्रित किया गया है और उसमें प्रयुक्त शब्दों की विविध अर्थच्छायाओं के संदर्भ में कविता की संरचना का निरूपण हुआ है। एलेन टेट के अनुसार कवि की भाषा का अधिक महत्त्व होता है। "कवि का 'दर्शन' जो भी हो, अन्ततः आप उसे उसकी भाषा के माध्यम से जानेंगे, उसे जो कुछ कहना है उसकी सही सीमा उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा की गुणवत्ता ही है।" (समन्विति, पृ. 36 से उद्धृत) नए समीक्षकों ने साहित्यिक कृतियों के विश्लेषण एवं मूल्यांकन के निमित्त अपने प्रिय आलोचनात्मक शब्दों का प्रयोग किया है। ब्रुक्स का मूलभूत सिद्धांत 'विरोधाभास' में प्रतिफलित होता है और टेट ने 'तनाव' में अपने सिद्धांत को मूर्तिमान किया है। रैंसम ने 'शब्द-विधान' में ब्लैकमर ने 'भंगिमा' में और एम्पसन ने 'अनेकार्थता' (ऐम्बिग्युटी) के द्वारा अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। "ये सभी शब्द उन अर्थच्छायाओं की ओर संकेत करते हैं जो वे काव्यात्मक प्रसंगों में प्रयुक्त होकर धारण कर लेते हैं। नये समीक्षक की दृष्टि से किसी कविता की मूल्यवत्ता उसकी आर्थी समृद्धि पर निर्भर है। वह प्रायः ही एक वैज्ञानिक के अर्थ की एक कवि के अर्थ से तुलना करता है।" (समन्विति, पृ. 37)

नये समीक्षक कविता की अलंकृत शैली के प्रति अधिक आकृष्ट हुए हैं, उनके आकर्षण का आधार कथ्य नहीं है। विद्वानों ने नई समीक्षा को मुख्यतः काव्य-भाषा की समीक्षा कहा है जिसमें आलोचक अपना ध्यान पाठ-विश्लेषण की ओर केंद्रस्थ रखता है। "अर्थात पाठ-विश्लेषण द्वारा काव्य के शब्दार्थमय शरीर के सौंदर्य का उद्घाटन ही नई समीक्षा है।" (डॉ. नगेन्द्र, नई समीक्षा: नए संदर्भ, पृ. 33) ये आलोचक कवित्व को शब्दार्थ-कौशल में निहित मानते हैं। इसके अतिरिक्त किसी कृति में विचार-गांभीर्य या भावों की तरलता या सूक्ष्मता है, वह सब काव्य की सीमा और समीक्षा के क्षेत्र से बाहर है। अभिप्राय यह कि शब्द विधान का विश्लेषण और उसमें निहित अन्विति का संधान ही समीक्षा का लक्ष्य है, अर्थ-विधान या अर्थ-विधान के तत्त्वों का विश्लेषण और मूल्यांकन काव्यालोचन के अंतर्गत नहीं आते।

नई समीक्षा में काव्य का स्वतंत्र अस्तित्व मान्य है, उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व है। कलावादी आंदोलन की भाँति नई समीक्षा कलाकृति को ही केंद्रबिन्दु मानकर चलती है।

मूल्यांकन—नई समीक्षा में काव्य के स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना कर उसके वस्तुपरक अध्ययन की अनिवार्यता को महत्त्व दिया गया है। वस्तुपरक अध्ययन भाषागत अध्ययन का द्योतक है। काव्य-भाषा के विविध स्तरों का अध्ययन प्रस्तुत करने के कारण नई समीक्षा में आलोचना को भाषागत अध्ययन की ओर केंद्रस्थ किया गया, जिसके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

इसने साहित्येतर मूल्यों से काव्य को अछूता रखा और उसकी स्वायत्त सत्ता को प्रतिष्ठित किया। इसमें बताया गया कि काव्य का अपना स्वरूप है, उसका अपना प्रयोजन है और उसका माध्यम भी अपना है। नए समीक्षक इस तथ्य के प्रति अधिक आग्रह दिखलाते हैं कि काव्य विज्ञान या राजनीति का साधन न होकर जीवन में अपनी पृथक सार्थकता से युक्त है। नई समीक्षा ने काव्य के रूप में और शिल्प-विधान को पुनः प्रतिष्ठित किया और साहित्य में विचार के बढ़ते हुए प्रभुत्व को अनावश्यक सिद्ध कर रूप-सौंदर्य की महनीयता स्वीकार की इसके अनुसार कविता विचार नहीं; उक्ति है, वाणी का सौंदर्य है। नई समीक्षा में उक्ति-सौंदर्य का व्याख्यान और विश्लेषण किया गया और विवेचन की सूक्ष्म प्रविधि का उद्भावन कर काव्य के अर्थ विज्ञान को नूतन रूप प्रदान किया गया।

नई समीक्षा की अपनी सीमाएँ भी हैं। इसमें दर्शन या विधान का निषेध किया जाता है, फलतः इसमें स्वतः किसी शास्त्र या विधान के प्रति आकर्षण नहीं है। काव्य के शिल्प-विधान के प्रति अति मोह का प्राबल्य होने के कारण नई समीक्षा का दृष्टिकोण अतिवादी है। इसमें जीवन और काव्य के संबंध का निषेध किया गया है। नई समीक्षा में शब्द और अर्थ के कुशल प्रयोग द्वारा उत्पन्न चमत्कार को ही काव्य का परम प्रयोजन मान लिया गया है, जिससे काव्य का महत्त्व गौण हो गया है। शब्द-विधान को स्वतंत्र और मौलिक अस्तित्व प्रदान करने के कारण इसमें चमत्कार को अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया है तथा आलोचना की कलावादी दृष्टि को प्रतिष्ठित किया गया है। यह समीक्षा-पद्धति कुछ अंश तक प्रगीत और मुक्तक के लिए ग्राह्य हो सकती है, पर काव्य की अन्य विधाओं विशेषतः प्रबंध के लिए अव्यावहारिक है।

कुछ प्रसिद्ध आलोचक

जान क्रो रैंसम

इसने 1941 ई. में 'द न्यू क्रिटिसिज्म' (नई समीक्षा) नामक पुस्तक की रचना कर नई-समीक्षा को गति प्रदान की। इसकी दूसरी महत्त्वपूर्ण कृति 'द वर्ल्ड्स बॉडी' (जगत् का शरीर) है जो 1938 ई. में रची गई। इसकी अन्य पुस्तक (1930 ई.) 'गाड विदाउट थंडर' (विना गर्जन के ईश्वर) है जिसे नई समीक्षा की आधारभूत रचनाओं में माना जाता है। रैंसम के अनुसार कविता तीन भागों में विभक्त की जा सकती है—भौतिक, आध्यात्मिक या विचार प्रधान एवं तत्त्वमीमांसीय। भौतिक कविता में वस्तुओं का निरूपण किया जाता है, विचारों का नहीं। इस प्रकार की कविता में मूर्त्त वस्तु पर विचार किया जाता है। इसमें (शुद्ध कविता में) आदिम ताजगी तथा विम्बगत स्वतंत्रता निहित रहती है। आध्यात्मिक कविता में विचारों का प्राधान्य होता है। इसमें विम्ब अलंकारों का कार्य करते हैं और इसकी अभिव्यक्ति किसी रूपक के रूप में होती है। इसकी आधार वस्तु प्लेटो का भाव या प्रत्यय है। इसमें राष्ट्रीय, नैतिक, धार्मिक और सामाजिक विचारों का प्रतिपादन किया जाता है। तत्त्वमीमांसीय कविता अपनी अलौकिकता के कारण चमत्कृत कर एक विशेष प्रकार के बोध की दिशा में ले जाती है। रैंसम के अनुसार "अलौकिकता की उद्भूति तब सम्भव होता है जब कवि सादृश्य के माध्यम से विभिन्न पदार्थों में एक ऐसे तादात्म्य की खोज करता है जो आंशिक होता है, यद्यपि होना इसे पर्याप्त मात्रा में चाहिए; और फिर पूर्ण सामंजस्य की दिशा में प्रवृत्त होता है।"

रैंसम ने काव्य-भाषा के चार साधन बताए हैं—प्रथम कुछ विशिष्ट एवं प्रत्यक्षकारी शब्द हैं जिनके कारण वस्तुओं एवं घटनाओं की जीवंत मूर्त्तता भास्वर होती है। दूसरे स्थान पर उद्देश्य विहीन या विपर्यस्त शब्दों का स्थान होता है जिनके द्वारा एक प्रकार की बौद्धिक संकुलता उत्पन्न होती है। विपर्यास, अनेकार्थता, पदलोप तथा अन्य ऐसे उदाहरणों में इन्हें देखा जा सकता है। तृतीय प्रकार के शब्द लाक्षणिक हैं जिनके द्वारा सादृश्य अथवा साहचर्य के आधार पर विजातीय सामग्री का समावेश किया जाता है। अन्तिम स्थान छन्द का है जो "मूर्त्त के स्थान पर किसी मानवीय संवेग को भाषा के माध्यम से, बड़े यथातथ्य रूप में

रेखांकित करते हैं; और अनुभव-संहिति पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं।" (समन्विति, पृ. 31)

विलियम एम्पसन–

एम्पसन की गणना आधुनिक युग के महान आलोचकों में होती है। इसने (1930 ई.) 'सेवेन टाइप्स ऑफ ऐम्बिगुइटी' (सात प्रकार की अस्पष्टता), 'समवर्जन्स ऑफ पैस्टोरल' (गोपकाव्य के कतिपय विवरण, प्रकाशित 1935 ई.) तथा 'द स्ट्रक्चर ऑप कॉम्प्लैक्स वर्ड्स' (1951 ई.) नामक ग्रंथों की रचना की हैं। आलोचना में शाब्दिक विश्लेषण की कला को सुव्यवस्थित करने में एम्पसन ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है। प्रथम ग्रंथ में उसने अस्पष्टता या अनेकार्थता के सात साधनों का विवेचन किया है। उसका कहना है, "एक शब्द के अलग-अलग बहुत से अर्थ होते हैं; ये सब अर्थ परस्पर सम्बद्ध रहते हैं। इन अर्थों को अपना अर्थ पूरा करने के लिए एक दूसरे की आवश्यकता होती है; अथवा ये अर्थ एक दूसरे से संयुक्त हो जाते हैं जिससे कि एक शब्द का अर्थ होता है एक संबंध या एक कार्यपद्धति। यह एक ऐसा मापदण्ड है जिसका सतत अनुकरण किया जा सकता है। 'अस्पष्टता' का अर्थ है, जो हम कहना चाहते हैं, उसके संबंध में अनिश्चय एक ऐसा अभिप्राय जिसके अनेक अर्थ होते हों, एक ऐसी संभावना जिसके एक, दो अथवा दोनों ही अर्थ निकलते हों, और एक ऐसा कथन जिसके अनेक अर्थ हों।" (पाश्चात्य समीक्षा-दर्शन, पृ.441 से उद्धृत) अनेकार्थता या अस्पष्टता के सात प्रकारों का विवरण इस प्रकार हैं। (1) शब्द या वाक्य-विन्यास एक ही साथ अनेक अर्थों की उपलब्धि कराता है। (2) जब दो या उससे भी अधिक अर्थ लेखक के अभिप्रेत मुख्यार्थ के सहयोगी बन कर आते हैं। (3) जब एक ही शब्द अथवा पद के दो अर्थ एक विशिष्ट प्रसंग में उपयुक्त प्रतीत होते हैं। (4) जब किसी एक कथन के दो अर्थों का परस्पर सामंजस्य नहीं बैठता, किंतु वे दोनों मिलकर लेखक की मनःस्थिति का ज्ञान कराते हैं। (5) जब दो पदार्थ अपूर्ण रह जाते हैं और लेखक का दोनों के प्रति समान आकर्षण प्रतीत होता है तव इस प्रकार अनिश्चितता उत्पन्न होती है। (6) जब किसी कथन में निरर्थक रूप से शब्द दुहराए जाते हैं। वाक्यांशों आदि से कुछ पता नहीं चलता, अतएव पाठक स्वयं अर्थ निर्धारित करता है। (7) जब दो अर्थ आपस में विरोधी होते हैं और उनसे लेखक के मन में उत्पन्न विरोध का पता चलता है। (साहित्य-सिद्धांत, पृ. 49-50)

Novel (नॉवेल) उपन्यास

उपन्यास आधुनिक युग का अत्यंत लोकप्रिय साहित्य-रूप है जिसमें जीवन की समस्याओं का समाधान उपस्थित किया जाता है। यह मानव जीवन की समस्याओं का यथार्थ चित्र अंकित करने के कारण जीवन के अति निकट है तथा नाटक और महाकाव्य अपेक्षाकृत अधिक उन्मुक्त या स्वच्छन्द साहित्य-रूप हैं, जिनमें जीवन की यथार्थता की अभिव्यक्ति होती है। इसमें मानव जीवन का रोचक एवं मनोरंजक चित्र यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया जाता है। जीवन या मानव जीवन के चित्र को अंकित करने में उपन्यास अधिक सफल हुआ है, फलतः इसका क्षेत्र विस्तृत हो गया है। इसकी लोकप्रियता का मुख्य कारण इसकी रोचकता है। समाज का जैसा भी रूप होता है, उसे उपन्यासकार उसी रूप में चित्रित कर देता है; निदान इसमें जीवन के यथार्थ अनुभव को आधारभूत तत्त्व बनाया गया है। यह कल्पना के माध्यम से यथार्थ जीवन का चित्र अंकित करने वाला अधिक सिद्धहस्त साहित्य-रूप है, जिसमें जीवन का संघर्ष और समाज का यथार्थ और नवीन तथा सजीव चित्र प्रस्तुत किया जाता है। उपन्यास का महत्त्व उसकी लोकप्रियता, सजीवता, प्रभावशालिता तथा जीवन को विस्तृत चित्रफलक पर उपस्थित करने के कारण है। यह मानव-जीवन का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। आज कल उपन्यास का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत हो गया है और इसमें कौतूहल के अतिरिक्त बुद्धि तथा भाव तत्त्व का भी समावेश हुआ है। यह अब प्राचीन अतिलौकिक घटनाओं से हटकर मानव-जीवन तक केंद्रित हो गया है।

उपन्यास की परिभाषा

उपन्यास शब्द अँग्रेजी के नॉवेल (Novel) का समानार्थी है। नॉवेल शब्द इटालियन शब्द 'नाविला' से बना है जिसका अर्थ है सूचना। अँग्रेजी का नॉवेल शब्द नयापन या Newness का पर्यायवाची है जिसका अर्थ नवीन है। गुजराती में उपन्यास के लिए नवल शब्द का प्रयोग होता है और मराठी में इसे कादम्बरी कहते हैं। उपन्यास भारतीय नाट्यकला का शब्द है जिसका अर्थ है प्रसन्न करना-उपन्यासः प्रसादनम्। चूँकि उपन्यास के अध्ययन से पाठकों का मनोरंजन होता है अर्थात वे प्रसन्न चित्र हो जाते हैं, अतः हिंदी में आख्यायिका या वृहत्कथा के लिए उपन्यास शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'उपन्यास' उप +न्यास के योग से बना है जिसका अर्थ है निकट (उप) रखना (न्यास)। उपन्यास के माध्यम से लेखक जीवन की कथा को पाठकों के निकट रखता है, अतः इसका यह नाम (उपन्यास)

सार्थक है। न्यू इंगलिश डिक्शनरी में उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार दी गई है। "नाविल वह विस्तृत गद्यात्मक प्रकथन प्रधान रचना है जिसमें वास्तविक जीवन का अनुकरण करनेवाली घटनाओं और पात्रों का एक व्यवस्थित कथावस्तु के रूप में वर्णन रहता है।" डॉ. श्याम सुंदर दास के अनुसार "उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।"

मुंशी प्रेमचन्द ने कहा है कि "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।" डॉ. गुलाब राय-"उपन्यास कार्य-कारण-शृंखला में बँधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक वा काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।" उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि उपन्यास मानव के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है जो व्यक्ति एवं समाज की परिस्थितियों को अधिक विस्तार के साथ प्रस्तुत करता है।

आधुनिक युग में उपन्यास गद्य का एक सशक्त रूप माना जाता है। इसके माध्यम से उपन्यासकार जीवन की वास्तविक समस्या को, मानव जीवन के यथार्थ चित्र को, कल्पना का रंग चढ़ा कर प्रस्तुत करता है। आधुनिक समाज की विषमताओं विचित्रताओं, विद्रूपताओं तथा मानव-जीवन की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को जितनी सफलता के साथ उपन्यासों में अभिव्यक्त किया जा सकता है, उतना अन्य साहित्य रूपों में नहीं।

उपन्यास और महाकाव्य

उपन्यास तथा महाकाव्य में शिल्पगत अंतर होते हुए भी साम्य है। दोनों में मानव-जीवन का विस्तृत रूप प्रस्तुत किया जाता है अर्थात उपन्यास का वर्ण्यविषय भी महाकाव्य की भाँति सम्पूर्ण मानव-जीवन होता है। कथानक के अतिरिक्त दोनों की सामाजिक एवं ऐतिहासिक पीठिका भी विशेष महत्त्वपूर्ण होती है। दोनों में अंतर यह है कि महाकाव्य की अभिव्यक्ति पद्य के माध्यम से होती है तो उपन्यास गद्य में रचित होता है। उपन्यास के चित्रण में नाटकीयता होती है तो महाकाव्य में वर्णनात्मकता का प्राधान्य होता है। महाकाव्य की कथा वस्तु अधिकतर परंपरागत या ऐतिहासिक होती है, पर उपन्यास का कथानक अद्यतन और

काल्पनिक होता है। वैसे ऐतिहासिक उपन्यास भी होते हैं, जिनकी कथा वस्तु ऐतिहासिक घटना से सम्बद्ध होती है पर उसमें इतिहास क्रम और कल्पना का रंग प्रगाढ़ होता है। महाकाव्यकार किसी इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति का चित्रण पद्य में करता है, पर उपन्यासकार अपने जीवनानुभव को जीवन के किसी पक्ष को आधार बनाकर उसे काल्पनिक ढंग से प्रस्तुत करता है अर्थात वह अपने जीवन-संबंधी अनुभव का कल्पनात्मक चित्र उपस्थित करता है। उपन्यास और महाकाव्य में केवल अभिव्यक्तिगत भेद ही नहीं, दोनों में तात्त्विक अंतर भी है। यद्यपि दोनों के वैधानिक नियमों में परस्पर साम्य है तथापि उनकी स्वीकृतियों में अंतर प्रदर्शित होता है। महाकाव्य के लिए यह आवश्यक है कि उसमें वैधानिक नियमों का पूरी दृढ़ता के साथ निर्वाह किया जाय, पर उपन्यास में वैधानिक नियमों के परिपालन में काफी छूट रहती है। नवीन युग की सामाजिक और आर्थिक विषमताओं की अभिव्यक्ति उपन्यास में होती है अर्थात युग के आर्थिक और सामाजिक वैषम्य को रूप देने के लिए उपन्यासों की सृष्टि हुई है, पर महाकाव्य जातीय जीवन और सांस्कृतिक परिवेश को अधिक सशक्त ढंग से प्रस्तुत करता है। महाकाव्य का विकास सुनिश्चित और सुनियोजित सामाजिक मूल्यों के आधार पर हुआ था, पर उपन्यासों में युग के संघर्ष और यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति होती है। उपन्यास समाज के संघर्ष-संकुल पक्ष को अभिव्यक्त करता है, पर महाकाव्य में देश की समृद्धि एवं समाज के शांतमय क्षणों की अभिव्यक्ति होती है। महाकाव्य के चरित्र परंपरागत नियमों में आवद्ध होते हैं, पर उपन्यास में वर्ग का नहीं, व्यक्ति का चरित्र उभरता है। महाकाव्य में महदनुष्ठान, महान प्रयोजन, महान आयोजन, महान चरित्र, महत् उद्देश्य एवं महान शैली होती है, पर उपन्यास में उपर्युक्त तत्त्व नहीं होते। महाकाव्य में सामंतवादी जीवन का चित्रण होता था, पर उपन्यास में मध्यवर्ग को प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ और शोषित और सर्वहारा वर्ग को वाणी मिली। उपन्यास का कथानक जीवन के सामान्य धरातल को स्पर्श करता है, पर महाकाव्य की कथा महान उदात्त और जीवन के गरिमामय पक्ष का संस्पर्श करती है। महाकाव्य आदर्शवादी काव्य रूप है तो उपन्यास यथार्थवादी रचना। (दे. Epic या महाकाव्य)

उपन्यास और नाटक

नाटक और उपन्यास में तात्त्विक भेद है। नाटक दृश्यकाव्य है और उपन्यास श्रव्यकाव्य। नाटक की सफलता रंगमंच के कारण होती है अर्थात उसका अभिनय

किया जाता है, उपन्यास का आनन्द पढ़कर या सुनकर लिया जाता है। उपन्यास में लेखक का व्यक्तित्व पाठक के समक्ष रहता है अर्थात या तो वह स्वयं कथा का वर्णन करता है या किसी पात्र के मुख से उसे कहलाता है, पर नाटक में नाटककार स्वयं वहीं बोलता, उसके पात्र बोलते हैं अर्थात् नाटककार का व्यक्तित्व पात्रों के व्यक्तित्व से जुड़ा रहता है। सभी स्थितियों में पाठक को उपन्यासकार के व्यक्तित्व के साथ संबंध स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता रहता है, उसे ऐसा आभास होता है कि वह लेखक के साथ है। ठीक इसके विपरीत नाटककार अपनी कृतियों से अपने को सर्वथा पृथक् रखता है। उपन्यास में वर्णन की प्रधानता होती है अर्थात वह किसी विषय को शब्द के माध्यम से प्रस्तुत करता है, पर नाटककार को विषय के स्वरूप को अंकित करने का अवकाश नहीं रहता, वह पात्रों को रंगमंच पर अभिनीत करता है। उपन्यासकार शब्दों के सहारे पात्रों की वेशभूषा, स्वभाव, हावभाव एवं क्रिया-प्रतिक्रियाओं को चक्षु गोचर करता है। उपन्यास को इस कार्य के लिए किसी रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती, उसका रंगमंच तो उसके भीतर रहता है। उपन्यासकार अपनी भावनाओं या मान्यताओं का स्वतंत्र रूप से भी वर्णन करने में समर्थ होता है, पर नाटककार को ऐसी सुविधा उपलब्ध नहीं होती; वह किसी पात्र के माध्यम से अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। उपन्यासकार पात्रों के माध्यम से या सीधे पाठकों के समक्ष आ सकता है, पर नाटककार का व्यक्तित्व नाटक के पात्रों में लिपटा रहता है और वह पात्रों के मुख से वार्तालाप के द्वारा अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता है। उपन्यास में समय की कोई सीमा नहीं रहती, पर नाटक में समय की पाबन्दी लगी रहती है। उपन्यास हजारों पृष्ठों में समाप्त हो सकता है, पर नाटक को रंगमंच का ध्यान रख कर तीन या चार घंटों में समाप्त होना चाहिए। इसलिए उपन्यासकार को समय और आकार पर प्रतिबन्ध नहीं होता, वह इस दृष्टि से स्वतंत्र होता है। नाटककार को अभिनय के साधनों तथा रंगमंच की उपयोगिता कें अतिरिक्त प्रेक्षकों (दर्शकों) के धैर्य का भी ध्यान रखना पड़ता है। पर इस दृष्टि से उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत होता है और उस पर समय की कोई सीमा नहीं रहती। नाटक में कथानक, कथोपकथन (संवाद) के द्वारा आगे बढ़ता है और कथा वस्तु का विकास परिस्थितियों एवं क्रियाओं के

सहयोग से होता हैं, इसमें नाटककार तटस्थ रहता हैं। उपन्यासकार प्रत्यक्ष दृष्टि से भी कुछ कहता हैं, पर नाटककार पात्रों के मुख से बोलता है। उपन्यास और कहानी–(दे. कहानी)

उपन्यास के तत्त्व

उपन्यास के मुख्यतः छह तत्त्व हैं–कथावस्तु या कथानक (Plot) चरित्र-चित्रण या पात्र (Character), कथोपकथन या संवाद (Dialogue), वातावरण (Environment), शैली (Style) तथा उद्देश्य या प्रयोजन (Aim of life)।

कथावस्तु–उपन्यास के सभी तत्त्वों में कथावस्तु का सर्वाधिक महत्त्व है, क्योंकि यही उपन्यास का मूल होता है अर्थात कथानक या कथा के आधार पर ही उपन्यास की नींव पड़ती है। उपन्यास में रोचकता का समावेश कथा वस्तु के ही कारण होता है। यही वह तत्त्व है जो पाठकों को मनोरंजन प्रदान करता है। पर, इसका यह अर्थ नहीं कि कथा वस्तु से चरित्र-चित्रण का कम महत्त्व है। आधुनिक युग में मनोविज्ञान का विकास होने के कारण चरित्र-चित्रण की महत्ता अधिक बढ़ गई है। उपन्यास का मूलाधार कथानक ही है, जिस पर नाना प्रकार के मनोरम चित्र खींचे जाते हैं। उपन्यासकार की सफलता और कौशल कथानक के सुंदर संघटन या चयन में परिलक्षित होते हैं। उपन्यास में जिन घटनाओं और कार्यों का वर्णन होता है और जिन तथ्यों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है, उसे ही उसका कथानक कहते हैं। यद्यपि आधुनिक युग के उपन्यासों में कथावस्तु अत्यंत विरल एवं सूक्ष्म होती है तथापि उनमें कथा का अंश अवश्य विद्यमान रहता है; क्योंकि कथा वस्तु के अभाव में उपन्यास में औपन्यासिकता नहीं आ सकती। उसमें कहानी का होना आवश्यक है। उपन्यास की कथावस्तु कहीं से भी ग्रहण की जा सकती है। इतिहास, पुराण, समाज विज्ञान, राजनीति, जीवनी और अनुश्रुति किसी से भी उपन्यास का कथानक लिया जा सकता है। उपन्यास का जीवन के साथ निकट का संबंध होता है, अतः उसका कथानक जीवन से ही लिया जाना चाहिए जिससे कि उसमें सहज ही आकर्पण का भाव आ जाय और उपन्यास भी सजीव हो उठे। उपन्यास के कथानक की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उपन्यासकार उसके निरूपण में जीवन के प्रति सहज ही ईमानदार होकर उसका वास्तविक चित्र खींचे और उसमें अपनी अनुभूतियों या जीवनानुभव का

रंग भर दे। मनुष्य के स्वभाव, उसके संघर्ष, उसकी आशा, आकांक्षा, सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि का यथार्थ रूप प्रस्तुत कर ही उपन्यासकार अपनी कृति को महनीय बना सकता है। वह जीवन के जिस पक्ष का वर्णन करता हो, उसका उसे वास्तविक और सच्चा अनुभव होना चाहिए। कथानक अपने में कितना भी महान क्यों न हो यदि उपन्यासकार के अनुभवों में सच्चाई न होगी तो उपन्यास महान नहीं बन सकता।

अच्छे कथानक में मौलिकता, रोचकता, कौशल, संभाव्यता और गठन का होना आवश्यक है। मौलिकता कथानक का सहजगुण है। इसका अभिप्राय यह है कि लेखक किसी कथा का ऐसा वर्णन करे कि उसमें अभिनवता या नयापन दिखाई पड़े और वस्तु का निरूपण इस प्रकार किया जाय कि वह हृदयाकर्षक बन सके। चिर परिचित विपय को भी मौलिकता के कारण लेखक आकर्षक बना सकता है। उपन्यास के कथानक में कौतूहल का गुण रहना आवश्यक है अर्थात कथा का चुनाव ऐसा किया जाय कि पाठकों का कौतूहल उसमें आदि से अंत तक बना रहे। औत्सुक्य को जगाना ही सफल कथानक का लक्षण है और उसका इस प्रकार समावेश किया जाय कि पाठकों की जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढ़ती जाय। कौशल का अर्थ यह है कि उपन्यास की कथा वस्तु में संबंध का निर्वाह हो जिससे उसकी उलझनें सुलझती जाएँ। उपन्यास की कथा वस्तु दो प्रकार की होती हैं—सरल (Simple Plot) और जटिल कथानक (Complex Plot)। जटिल कथानक में एक से अधिक कथाएँ गुंफित रहती हैं अर्थात एक साथ उसमें कई कथाएँ चलती रहती हैं। ऐसी स्थिति में कौशल की अत्यंत आवश्यकता पड़ती है। संभाव्यता कथानक का आवश्यक गुण है। इसके कारण पाठक पग-पग पर चकित होता रहता है और कथानक में सजीवता आ जाती है। कोई घटना संयोगवश घटती हो तो भी वह संभाव्य जान पड़े। संगठितता का अभिप्राय यह है कि उपन्यासकार कथानक की विभिन्न घटनाओं में अपनी कलाचातुरी के द्वारा एकसूत्रता स्थापित कर उनमें क्रमबद्धता ला दे। जीवन में कितनी ही ऐसी घटनाएँ होती हैं जिनका मनुष्य के जीवन के साथ कोई सामंजस्य नहीं होता। कुशल उपन्यासकार की सफलता उनमें सामंजस्य स्थापित करने में है। उपन्यास की कोई भी घटना, कोई भी चित्र और कोई भी वर्णन असम्बद्ध न हो, प्रत्येक का संबंध कथावस्तु से होना चाहिए अर्थात उपन्यास में कार्य-कारण की श्रृंखला ढीली न हो। सरल कथावस्तु में एक ही कथा होती है।

कथावस्तु के गुंफन के विचार से उपन्यास के दो प्रकार हैं—असम्बद्ध कथानक का उपन्यास (Novel of loose plot) तथा सम्बद्ध कथानक का उपन्यास (Novel of organic Plot)। असम्बद्ध कथानक का उपन्यास वह है जिसमें विविध घटनाओं में कोई संगति नहीं होती और कहानी में अनेक शृंखलाएँ होती हैं। ऐसे उपन्यासों में पात्र ही अन्विति लाते हैं और उसके केंद्र में रह कर बिखरी हुई घटनाओं में एकसूत्रता स्थापित करते हैं। ऐसे उपन्यास किसी पात्र के जीवन की विविध घटनाओं के इतिहास होते हैं। इन उपन्यासों में एक के पश्चात दूसरे दृश्य आते रहते हैं। पर, संबद्ध कथानक के उपन्यासों में ठीक इसके विपरीत प्रासंगिक कथाएँ या उपकथानक प्रधान कथा से सम्बद्ध होते हैं। इन उपन्यासों में विविध प्रसंग एवं घटनाएँ परस्पर जुड़ी रहती हैं।

उपन्यासकार उपन्यास के कथानक को चार प्रकार से प्रस्तुत करता है। वर्णनात्मक या ऐतिहासिक ढंग से—इसमें उपन्यासकार तटस्थ होकर कथा को अपने से बढ़ाता है। आत्मकथात्मक—इसमें पात्र (नायक या नायिका) अपनी कथा स्वयं कहते हैं। पत्रप्रणाली—इसमें डायरी या पत्रों के द्वारा कथा का वर्णन होता हैं। मिश्रित-इसमें उपर्युक्त सभी साधनों का मिश्रण होता है।

चरित्र-चित्रण—उपन्यास में जिन व्यक्तियों या पात्रों का वर्णन होता है, उन्हें चरित्र कहते हैं और उनकी गतिविधियों या चारित्रिक विकास को चरित्र-चित्रण कहा जाता है। आधुनिक युग में चरित्र-चित्रण का बहुत बड़ा महत्त्व है। प्राचीन समय में उपन्यासों में कथानक की जटिलता और कौतूहल पर बल दिया जाता था और कथावस्तु ही सब कुछ होती थी, पर वैज्ञानिक विकास के साथ-ही-साथ मानव का महत्त्व बढ़ गया और उपन्यासों के पात्रों के चारित्रिक उतार-चढ़ाव की महत्ता स्वीकार की गई। मनोविज्ञान के विस्तार ने तो पात्रों की मनः स्थिति के विश्लेषण को सर्वाधिक महत्त्व दिया। किसी परिस्थिति विशेष में पड़ने पर पात्रों के मन में विरोधी और अविरोधी जिन भावनाओं का टकराव होता है, आज उसकी प्रतिष्ठा अधिक है। अतः, अब पात्र उपन्यासों की रीढ़ हो गया है।

उपन्यास जीवन की गाथा या कहानी है, अतः उसमें सहज ही पात्रों या चरित्रों की प्रधानता सिद्ध हो जाती है। उपन्यास के पात्रों का सजीव, स्वाभाविक और सहज होना आवश्यक है, वे अलौकिक और असाधारण न हों। पात्रों का ऐसा चुनाव किया जाय जो अपने कार्यों तथा विचारों के कारण पाठक की कल्पना में सजीव हो जाएँ। वे पात्र जो हमारी भावनाओं को प्रभावित करते हैं या अपने

कार्य-कलाप के द्वारा हमारी सहानुभूति प्राप्त करते हैं, हमारे स्मृति-पटल पर सदा के लिए अंकित हो जाते हैं। आधुनिक युग के उपन्यास घटना-प्रधान न होकर चरित्र-प्रधान होते हैं। पाठक कथा और उपन्यास की घटना को भले ही विस्मृत कर दे, पर पात्र तो उसके मन से उतरते नहीं। ऐसे पात्र स्वतः घटनाओं तथा परिस्थितियों का निर्माण कर अपने व्यक्तित्व के द्वारा उन पर अधिकार कर लेते हैं। ऐसे पात्रों का व्यक्तित्व स्वतंत्र होता है और वे लेखक के इच्छानुसार अपना चारित्रिक विकास न कर स्वयं स्वतंत्र गति से बढ़ते जाते हैं अर्थात वे लेखक के हाथ की कठपुतली नहीं होते। ये पात्र उपन्यास में उपस्थित होने वाले संघर्षों और समस्याओं का सामना स्वयं करते हैं। उपन्यास में पात्र का बाह्य और आंतरिक दोनों ही रूपों का चित्रण होता है। बाह्य रूप के अंतर्गत उसका स्वरूप, आकार, वेशभूषा, आचरण, रहनसहन, चालढाल तथा बातचीत के विशेष ढंग का चित्रण होता है, पर आंतरिक रूप के अंतर्गत उसकी मानसिक और बौद्धिक विशिष्टताएँ आती हैं। लेखक अपनी वर्णन-शैली के कौशल द्वारा पात्रों के स्वरूप एवं उनके ब्यौरों का सजीव चित्रण करता है और इस कला में वह जितना अधिक दक्ष होगा उतना ही अधिक उसके पात्रों का स्वरूप प्रभावशाली होगा। पात्रों के आंतरिक स्वरूप का उद्घाटन करने के लिए लेखक दो विधियों को अपनाता है—प्रत्यक्ष चित्रणविधि (Direct Method) एवं अप्रत्यक्ष चित्रणविधि Indirect Method प्रथम पद्धति में पात्रों के विचारों, भावों एवं उनकी चारित्रिक विशेपताओं का उद्घाटन कर लेखक उनके संबंध में अपना मन्तव्य उपस्थित करता है। अप्रत्यक्षविधि के अंतर्गत स्वयं लेखक किसी पात्र के संबंध में अच्छा या बुरा विचार व्यक्त न कर उसके कार्यकलाप, वार्तालाप तथा अन्य पात्रों पर पड़े हुए उनके प्रभावों का वर्णन कर उनके संबंध में पाठकों को चिंतन करने और अपना मत स्थिर करने के लिए स्वतंत्र कर देता है।

विद्वानों ने पात्रों के चार वर्ग किये हैं—व्यक्तिप्रधान चरित्र (Individual character)। ऐसे पात्र किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते अर्थात उनमें तत्संवंधी गुण-दोपों का अभाव होता है और वे अपना वशेष चारित्रिक गुण धारण करते हैं। वर्ग प्रधानचरित्र (Type character) ये पात्र किसी वर्ग विशेष (किसान, शिक्षक, श्रमिक, ज़मींदार आदि) का प्रतिनिधित्व करते हैं। स्थिर चरित्र (Static character) जो पात्र प्रारंभ से अंत तक एक ही स्वभाव के या समान होते हैं, उन्हें स्थिर चरित्र कहा जाता है। ये परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होते। गतिशीलपात्र (Round Character) जो पात्र प्रारंभ से अंत तक परिस्थितियों

एवं वातावरण के अनुसार अपने को मोड़ते रहते हैं, उन्हें गतिशील या विकसनशील पात्र कहा जाता है। परिस्थिति के छोटे आघात से भी इनके जीवन की दिशा परिवर्तित हो जाती है।

उपन्यास में चरित्र-चित्रण की कई प्रणालियाँ हैं—विश्लेषात्मक (Analytical Method) पद्धति जब उपन्यासकार किसी पात्र का चरित्र स्वयं अंकित करे या उस पर प्रकाश डाले तो उसे विश्लेषात्मक पद्धति कहते हैं। अभिनयात्मक पद्धति (Dramatic Method) जब उपन्यासकार पात्र का चरित्र स्वयं अंकित न कर अन्य पात्रों द्वारा या किसी पात्र के कार्य-कलाप से या वार्तालाप द्वारा कराए तो उसे अभिनयात्मक पद्धति कहते हैं।

कथोपकथन—कथोपकथन का अर्थ संवाद, वार्तालाप या कथनोपकथन है। यह नाटक का एक प्रसिद्ध तत्त्व है, पर इसकी उपयोगिता उपन्यासों में भी कम नहीं है। कथोपकथन का संबंध कथानक और पात्र दोनों से होता है। इसके द्वारा एक ओर जहाँ कथावस्तु का विकास होता है वहाँ दूसरी ओर चरित्र या पात्रों की विशेषताओं का भी उद्घाटन होता है। वह संवाद जो न तो कथानक का विस्तार करता है या उसको अग्रसर करने में सफल नहीं होता और न चरित्र पर प्रकाश डालता है, वह उच्च कोटि का संवाद नहीं माना जाता; वह संवाद के लक्ष्य से च्युत हो जाता है। पात्रों के वार्तालाप के संबंध में जब अन्य पात्र उसके गुण-दोष का विश्लेषण करते हैं तो उसे पात्र के चारित्रिक गुणों का उद्घाटन होता है। कथोपकथन का तीसरा उपयोग यह है कि वह सम्पूर्ण उपन्यास से एकरसता का हटाकर उसे मनो-रंजक, रोचक और नाटकीय तत्त्वों से युक्त कर देता है। कथोपकथन की भाषा पात्रानुकूल होनी चाहिए और उसे पात्रों के मानसिक धरातल के अनुरूप होना आवश्यक है। कथोपकथन, स्वाभाविक, सार्थक, सजीव और संक्षिप्त होना चाहिए। इसके द्वारा पात्रों के भाव और विचार, उनकी संवेदनाएँ तथा उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया में अंतर्निहित प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति होती है।

वातावरण—उपन्यास में जिस क्षण या समय में और जिस स्थान पर घटनाएँ घटित होती हैं, उसे वातावरण कहते हैं। अतः, उपन्यास के इस तत्त्व का अपना महत्त्व है। वातावरण के अंतर्गत दो तथ्यों पर विचार होता है-प्राकृतिक पीठिका अथवा चारों ओर की परिस्थिति तथा काल या समय विशेष से संबंध रखने वाले आचार-विचार, रीति-रिवाज तथा जीवन-पद्धति। प्रथम को भौतिक वातावरण कहा जाता है और द्वितीय को सामाजिक वातावरण। उपन्यास में लेखक का यही कर्त्तव्य

या लक्ष्य होना चाहिए कि वह जिस युग के वातावरण का चित्रण करता है, उसका वह सजीव चित्र प्रस्तुत कर दे। ऐतिहासिक उपन्यासों में तो उपन्यासकार को देशकाल, भाषा, रीति-रिवाज वेशभूषा आदि का सूक्ष्म ज्ञान रखना पड़ता है, अन्यथा तनिक भी असावधानी के कारण या विवरण की भूल होने से उसका प्रयत्न हास्यास्पद सिद्ध हो जाएगा। ऐतिहासकि उपन्यासों में तत्कालीन सभ्यता, संस्कृति, विचारधारा एवं जीवनादर्श का चित्रण आवश्यक होता है। भौतिक वातावरण-नदी, पर्वत आदि के चित्रण में भी चातुर्य, सूक्ष्मेक्षण की शक्ति और कलात्मकता का होना अनिवार्य है।

औपन्यासिक पात्रों की गतिविधि और उनकी क्रियाप्रतिक्रिया का वास्तविक ज्ञान तथा उनकी समस्या का समुचित परिचय बिना परिस्थिति या वातावरण को जाने नहीं हो सकता। अतः, उपन्यासकार का कर्त्तव्य है कि वह अपने पात्रों की वाह्य एवं आंतरिक परिस्थितियों का वास्तविक या यथार्थ रूप चित्रित करे। देशकाल का चित्रण करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसका संबंध उपन्यास के विषय से हो और वह कथानक को स्पष्ट करने में सहायता करे। देशकाल या वातावरण के अंतर्गत व्यापक रूप से सामाजिक जीवन के किसी पक्ष का उद्घाटन होता है।

उद्देश्य—उपन्यास जीवन का चित्र है, अतः उसमें मनुष्य के सुख-दुःख, आशा-निराशा और राग-द्वेष का वर्णन होता है। प्रत्येक उपन्यास में जीवन या समाज की किसी समस्या को उठाया जाता है और उपन्यासकार पात्रों एवं घटनाओं द्वारा उसका समाधान उपस्थित करता है। साहित्य का ऐसा कोई भी रूप नहीं है जिसका कोई उद्देश्य या प्रयोजन न हो, अतः उपन्यास की रचना भी निष्प्रयोजन नहीं होती। उपन्यासकार किसी मान्यता या विचार से प्रभावित होकर ही उपन्यास की रचना करता है और इस संबंध में उसके अपने स्वतंत्र जीवनादर्श या जीवन मूल्य होते हैं। वह उन्हीं विचारधाराओं की अभिव्यक्ति के लिए पात्र एवं घटनाओं की योजना कर अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है। अतः, कोई भी उपन्यास निरुद्देश्य नहीं लिखा जा सकता, उसके निर्माण में उसके रचयिता के जीवनमूल्यों को वाणी मिलती है। उपन्यासकार का उद्देश्य है जीवन की व्याख्या करना और वह अपने दृष्टिकोण से इस विषय का विश्लेषण करता है। पर, उपन्यास की रचना करने के पूर्व उपन्यासकार को चाहिए कि वह अपने पूर्व निश्चित सिद्धांतों के प्रचार के लिए उसकी रचना न करे, नहीं तो उसकी कृति एकमात्र प्रचार का साधन

बन जाएगी और उसके पात्र उसके हाथ के खिलौने बन जाएँगे। साथ ही पाठकों को यह मान न हो कि उपन्यासकार ने अपने सिद्धांतों का समावेश करके ही उपन्यास की रचना की है। सफल उपन्यासकार अपनी मान्यताओं के साथ कथानक, पात्र एवं वातावरण को इस प्रकार मिला देता है कि यह ज्ञात नहीं होता कि वह किसी सिद्धांत का प्रचार कर रहा है। उपन्यासकार कथानक और पात्रों की इस प्रकार योजना करे कि उसके जीवन के विविध पक्षों की व्याख्या भी हो जाय और अप्रत्यक्ष रूप से उसके सिद्धांतों की सिद्धि भी हो। वह अपने विचारों का प्रतिपादन व्यक्तिगत टिप्पणी के द्वारा अथवा पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से करे। वह या तो स्वयं भी उपस्थित होकर अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है या अपनी मान्यता के अनुसार किसी मात्र की सृष्टि कर उसके माध्यम से अपने जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति करता है। इसमें दूसरी विधि ही अधिक सुंदर और कलात्मक होती है। उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप से नीति या नैतिकता का प्रचार न होकर अप्रत्यक्ष रीति से होना चाहिए अर्थात उसमें घटनाओं का इस प्रकार संघटन हो जिससे असत्य के ऊपर सत्य की विजय दिखाई जाय। उपन्यासकार अपने जीवन-दर्शन को कलात्मक ढंग से या कला की रसमयी प्रणाली का अवलंब ग्रहण कर व्यक्त करे।

शैली–शैली उपन्यास का वह पक्ष है जिसका संबंध बाहरी सजावट से है। उपन्यास की शैली के ऊपर ही उसकी सफलता निर्भर करती है। यदि लेखक को भाषा पर अधिकार न हो तो वह पाठकों का मन: प्रसादन नहीं कर सकता। कथानक में संगति, क्रमबद्धता तथा संगठन शैली के कौशल के ही कारण आते हैं। श्रेष्ठ उपन्यासकार होने के लिए श्रेष्ठ गद्यकार भी होना आवश्यक है। अपने विचार को दूसरों तक पहुँचाने में शैली माध्यम का कार्य करती है और उसके लिए भाषा एक अनिवार्य साधन सिद्ध होती है। किसी भी रचना में नवीनता का समावेश शैली द्वारा ही होता है और इसी में साहित्य की गतिशीलता निहित है। जब तक कथन का ढंग सुंदर नहीं होगा तब तक रचना प्रभावशाली नहीं हो सकती। अत:, शैली की श्रेष्ठता के कारण ही उपन्यास महान बन सकता है।

उपन्यास के भेद–जीवन के वैविध्य का चित्रण करने के कारण उपन्यास के स्वरूप में भी विविधता दृष्टि-गोचर होती है। उपन्यासों का वर्गीकरण कथानक की शैली की दृष्टि से, कथानक के विचार से तथा विषय की दृष्टि से किया जाता है। उपन्यास के कुछ भेद इस प्रकार हैं–

सामाजिक उपन्यास–जो उपन्यास समाज और उसकी विविध समस्याओं को विषय बना कर लिखे जाते हैं, उन्हें सामाजिक उपन्यास कहा जाता है। इस प्रकार के उपन्यासों में किसी विशेष समय या काल की सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों का वर्णन किया जाता है। ऐसे उपन्यासों का ऐतिहासिक महत्त्व होता है और वे आगे आने वाले समय या युग के लिए इतिहास का कार्य करते हैं। चूँकि इनमें समाज की विविध समस्याओं का चित्रण रहता है, अत: इनमें प्रचारात्मकता की गंध आती है। इन उपन्यासों की भी कोई कोटियाँ होती हैं–आदर्शवादी, यथार्थवादी, रोमांटिक और प्रकृतिवादी। सामाजिक उपन्यास समाज के सुधारवादी आंदोलनों, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक आंदोलनों को अपना विषय बना कर चलते हैं और उनमें कतिपय मतों और सिद्धांतों का प्रचार भी होता है। समाजवादी या साम्यवादी उपन्यासों में मार्क्सवादी विचारों के आधार पर समाज के शोषक और सर्वहारा वर्ग का यथार्थ चित्रण होता है।

ऐतिहासिक उपन्यास–जिन उपन्यासों में ऐतिहासिक सत्य का वर्णन हो, उन्हें ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं। ये उपन्यास ऐतिहासिक घटनाओं को मुख्य आधार बना कर लिखे जाते हैं, पर उनमें यथार्थ की अपेक्षा कल्पना का प्राधान्य होता है। उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यासों में यथार्थ और कल्पना का मिश्रण या समन्वय होता है। इस प्रकार के उपन्यासों में युग विशेष के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं ऐतिहासिक परिवेश का सुंदर चित्रण किया जाता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में अतीत कालीन घटनाओं के आधार पर वर्तमान युग की समस्याओं का समाधान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास–मनोविज्ञान की खोजों और फ्रायडीयन मनोविश्लेषण के विकास के कारण आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का प्रचलन हुआ है। ऐसे उपन्यासों में विभिन्न मन:स्थितियों का चित्रण होता है।

अन्य उपन्यासों में आंचलिक, जासूसी और तिलस्मी उपन्यास आते हैं। आंचलिक उपन्यासों में किसी विशेष जनपद या भूखंड के निवासियों एवं उनकी समस्याओं तथा रस्मरिवाज का वर्णन होता है। ऐसे उपन्यासों में जनपद विशेष की प्रचलित लोकभाषा एवं मुहावरों का भी प्रयोग किया जाता है। जासूसी उपन्यास का संबंध विस्मय-जनक घटनाओं और अपराधों के अधिक कौतूहल वर्धक होता है। कुछ उपन्यास कथा प्रधान होते हैं और कुछ चरित्र प्रधान। कथा

या घटना प्रधान उपन्यासों में कथावस्तु के संघटन पर बल दिया जाता है और चरित्र प्रधान उपन्यासों में चरित्र की प्रधानता रहती है।

Nouvelle (नूवेल) उपन्यासिका

यह एक प्रकार का लघु उपन्यास है जो संघटना की दृष्टि से उपन्यास के निकट होकर भी कलेवर में उससे अल्प या लघु होता है। इसमें कहानी की एक सूत्रता, गठन और प्रभान्विति नहीं होती और न उपन्यास का विस्तार या फैलाव रहता है।

Novelist (नॉवेलिस्ट) उपन्यासकार

दे. Novel

Novellet (नावलेट) लघु उपन्यास

ऐसी कहानी जिसका रचना-विधान उपन्यास से मिलता-जुलता हो, पर उसका आकार और विस्तार लघु हो।

■

(खण्ड -3)

Objective Correlative
(ऑब्जेक्टिब कोरिलेटिव)

वस्तुपरक संयोजना दे. Eliote T.S.

Ode (ओड) सम्बोधन गीति

काव्य का एक प्रकार। इसकी उत्पत्ति प्राचीन ग्रीस में हुई थी। प्रारंभ में ये गीत सार्वजनिक अवसर पर सामूहिक गान के रूप में गाए जाते थे। ग्रीक कवि पिण्डर इस प्रकार के गीत का उद्भावक माना जाता है, फलत: इसे 'पिंडैरिक ओड' भी कहते हैं। यह अपेक्षाकृत विस्तृत गीति रचना है जिसके प्राचीन काल में दो रूप प्रचलित थे—प्रथम में एक प्रकार के स्टान्जा या स्ट्राफी की बार-बार आवृत्ति होती थी जिसमें एक प्रकार की निश्चित व्यवस्था रहती थी। दूसरे प्रकार का ओड जटिल हुआ करता था और उसमें तीन खण्ड होते थे-'स्ट्राफी', 'ऐन्टीस्ट्राफी' तथा 'इपॉडी'। इनमें 'स्ट्राफी' बारह पंक्तियों के भूमिका-भाग को कहते थे। दूसरी बारह पंक्तियों की 'ऐन्टी-स्ट्राफी' होती थीं जिसमें विषयोत्कर्ष दिखलाया जाता था। अंतिम अंश 'इपॉडी' में सत्रह पंक्तियाँ रहती थीं। ओड की रचना में आरोहावरोह पर विशेष ध्यान दिया जाता था। उपर्युक्त विभाजन गान तथा नृत्य की आवश्यकता के अनुसार किया गया था। 'स्ट्रोफी' का गान करते हुए अभिनेता मंच पर एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर बढ़ता था और 'ऐन्टी-स्ट्राफी' को गाते समय वह चल कर पहले स्थान पर आ जाता था। 'एपोड' गाते समय उसे गंभीर होकर या गंभीर स्वर में अपने स्थान पर ही रहना पड़ता था। लैटिन में भी ओड

लिखने की परंपरा थी जिसका प्रवर्तन होरेस ने किया था। उसके छन्द चार पंक्तियों के होते थे और प्रारंभिक दो पंक्तियों तथा अंतिम दो पंक्तियों की तुक मिली रहती थी। यूरोप में इन्हीं दो ओडों का अनुकरण हुआ।

ओड में विषयानुरूप छन्द बड़े या छोटे हुआ करते हैं। इसमें कवि प्रौढ़ तथा गंभीर शैली में अपने मन का आदर भाव किसी को सम्बोधित कर व्यक्त करता है। यह भाव तुकांत छन्दों में व्यक्त होता है। ओड में कवि उदात्तशैली में अपनी कवित्व-शक्ति का चरमरूप प्रकट करता है, जिसका विषय गंभीर और उदात्त होता है। इसके भाव गहन, विस्तृत और प्रभावशाली होते हैं। सम्बोध-गीति में वस्तु अथवा व्यक्ति को सम्बोधित कर कवि अपने मन के पूज्य अथवा बद्य भावों को व्यक्त करता है। कभी-कभी इसका विषय राष्ट्रीय जयन्ती, महान व्यक्ति की मृत्यु तथा विश्वविद्यालय की स्थापना भी हुआ करता है। कीट्स कृत 'ओड टु नाइटिंगेल' इसका उदाहरण है।

One Act Play (वन ऐक्ट प्ले) एकांकी नाटक

पाश्चात्य साहित्य में एकांकी की रचना दसवीं शताब्दी से होने लगी थी और इसका अभिनय धार्मिक अवसरों पर या सामूहिक भोज के समय किया जाता था। ऐसे समय में धार्मिक सन्तों की जीवनियाँ प्रदर्शित की जाती थीं और सामूहिक भोज के समय आमंत्रित अतिथियों के मनो रंजनार्थ धार्मिक चरित्र रंगमंच पर प्रदर्शित किए जाते थे जिससे कि लोग खाली समय का समुचित लाभ उठा सकें। अल्पकालीन मनोरंजन के प्रदर्शन से ही एकांकी नाटकों का उद्भव हुआ। संतों की जीवनियों के प्रदर्शन में विशेष रूप से उनके प्रेम, त्याग, संयम आदि पर बल दिया जाता था। इसमें पात्रों की संख्या अल्प होती थी और समय कम लगता था तथा विषय हल्का-फुल्का होता था।

पर, एकांकी का सांप्रतिक रूप आधुनिक युग की देन है। इसका अपना शास्त्रीय रूप है; इसे नाटक का छोटा रूप नहीं कहा जा सकता। इसका वैशिष्ट्य अन्विति, संक्षिप्तता और उच्च कोटि की मित व्ययिता में है। इसका अभिनय अल्प अवधि में होता है। इसमें एक ही घटना या प्रसंग द्वारा दर्शकों के मन पर प्रभाव डाला जाता है।

एकांकी की विशेषताएँ

एकांकी का विषय जीवन के किसी भी क्षेत्र से ग्रहण किया जा सकता है जो इतिहास, राजनीति, लोकजीवन, मनोविज्ञान, समाज, धर्म, हास्य आदि विविंध विषयों से सम्बद्ध हो। इसमें जीवन की जो घटना ली जाती है, वह अधिक प्रभावशाली, आकर्षक और लघु होनी चाहिए। इसका विषय गरिमामय तथा रोचक हो और वह वास्तविक जीवन से ग्रहण किया जाय, साथ ही उस पर कल्पना का भी आवरण चढ़ा रहे। एकांकी का विषय जीवन का अत्यंत साधारण विषय भी हो सकता है, पर लेखक को उसमें द्वन्द्व उपस्थित करने तथा उत्तेजना, विस्मय, कुतूहल और जिज्ञासा बनाये रखने की क्षमंता होनी चाहिए और वस्तु का निर्माण रंगमंच की विशेषता को ध्यान में रखकर करना चाहिए। एकांकी की घटना लघु तथा पाठकों या दर्शकों को प्रभावित करने में सक्षम हो। लेखक अनुभूति और अभिव्यक्ति में समन्वय स्थापित करे और प्रभाव की एकता उत्पन्न कर कौशल का परिचय दें। प्रभावऐक्य का अनुभव दर्शक को अत्यंत गंभीरता के साथ हो सके और एकांकी संक्षिप्त, गतिशील और क्षिप्रता से युक्त हो। अभिनेयता एकांकी का एक अनिवार्य गुण है।

संकलनत्रय का निर्वाह इसके लिए आवश्यक है, पर चरित्र-चित्रण का अभाव होता है। एकांकी में पात्रों का इस प्रकार नियोजन किया जाय जिससे उनकी चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट हो जाएँ। लेखक दर्शकों को प्रभावित करने वाले तत्त्वों पर बल दे तथा भाषा को प्रवाहपूर्ण एवं व्यंजनापूर्ण बनाए। अल्प शब्दों में अधिकाधिक भाव भरना लेखक की कलाचातुरी का द्योतक है। इसका चरित्र-चित्रण संकेतात्मक एवं मनोवैज्ञानिक होता है तथा संवाद स्वाभाविक, सजीव, रोचक, मर्म-स्पर्शी एवं संक्षिप्त होते हैं। संवाद ही एकांकी का प्राण होता है। मंच की सुविधाओं को देख कर ही इसमें रंग-संकेत किये जाते हैं और मंच का भी संकेत प्रस्तुत किया जाता है। इसमें लेखक को वस्तुगत दुरूहता और उलझनपूर्ण स्थलों को हटा देना चाहिए और उसका प्रारंभ इस प्रकार हो जिससे पाठकों या दर्शकों की उत्सुकता बनी रहे। इसका कथानक चुस्त, कटा-छँटा और आकर्षक हो तथा प्रारंभिक वाक्य से ही पाठक या दर्शक के मन में कौतूहल का भाव उत्पन्न हो जाए। इसमें पात्रों का परिचय दिया नहीं जाता अपितु वे स्वयं स्पष्ट हो जाते हैं। इसका आरंभ रोचक, आकर्षक और प्रभाववर्द्धक हो और कथावस्तु गतिशील रहे। इसकी मुख्यकथा चरमबिन्दु की ओर तीव्रता के साथ आगे बढ़े और उसमें

एकता, एकाग्रता और विस्मय तीन तत्त्वों का अनिवार्य रूप से समावेश किया जाय। एकांकी के प्रधान तत्त्व हैं—कथानक, पात्र, कथोपकथन और अभिनयशीलता। लेखक को वस्तु का निरूपण भावों या पात्रों के द्वन्द्व तथा आरोह अवरोह पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। इसके संवाद पात्र और परिस्थिति के अनुरूप हों और वे यथासंभव कथानक को अग्रसर करने वाले हों तथा पात्रों के गुण-दोषों पर प्रकाश डालें। एकांकी में स्वगत-कथन का प्रयोग अवांछनीय है; क्योंकि इससे उसमें अस्वाभाविकता आती है। दृश्यों का आधिक्य, लंबे-लंबे संवादों की योजना, वर्णन की बहुलता, उलझी-कल्पना दार्शनिक चिंतन की जटिलता, अस्वाभाविक भाषा-शैली, पात्रों की भीड़ सफल एकांकी के बाधक तत्त्व हैं। विषय के आधार पर एकांकी के कई प्रकार संभव है—सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, चारित्रिक, समस्यामूलक, हास्यप्रधान, विचार प्रधान, व्यंग्यात्मक तथा चारित्रिक एकांकी।

Onomatopoeia (ओनोमोटोपाइया) ध्वन्यर्थव्यंजना या अर्थानुरणन

एक प्रकार का अलंकार। काव्यगत शब्दों की ऐसी ध्वनि जिसमें शब्द बल से प्रसंग तथा अर्थ का अवबोध कराकर चित्र खड़ा कर दिया जाय। इस प्रकार के शब्द संघटन से काव्यार्थ को न समझनेवाला व्यक्ति उसके बाह्य सौंदर्य के प्रति आकृष्ट हो जाता है।

जैसे—कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि ॥

Opera (ऑपेरा) गीतिनाट्य —संगीत नृत्य-बद्ध नाटक को गीतिनाट्य या ऑपेरा कहते हैं। इसमें गीतमय संवाद प्रयुक्त होते हैं। यूरोप में इस प्रकार के नाटकों का आविर्भाव पुनरुत्थान काल में हुआ था जो प्राचीन ग्रीक त्रासदी को पुनरुज्जीवित करने के प्रयास-स्वरूप विकसित हुए। इसमें सम्पूर्ण कथा गीत के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है। इसके प्रधान तत्त्व हैं—प्रस्तावना, कथा, संवादाभिनय, गीत तथा नर्त्तन।

Optimism (ऑप्टिमिज्म) आशावाद

पाश्चात्य दर्शन का एक सिद्धांत जिसमें जीवन में सुख और शुभ को दुःख तथा अशुभ की अपेक्षा अधिक प्रबल माना जाता है। इसका विकसित रूप लाइबनित्स के सिद्धांत में प्राप्त होता है। वह मानता है कि यह विश्व अत्यंत सुंदर

है जितना कि चाहिए। इससे अच्छे विश्व की कल्पना नहीं की जा सकती। उसके अनुसार इस विश्व के निर्माण में एक प्रकार की सुसंगति एवं पूर्व-संस्थापित सामंजस्य है, जिसके विचलित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आशावादी व्यक्ति संसार को व्यवस्थाहीन न मान कर सुव्यवस्थित स्वीकार करता है और मनुष्य के सुखमय भविष्य की कल्पना करता है। आशावादी लेखक संसार की स्थिति से प्रसन्न रहता है और उसे सब जगह सामंजस्य दिखाई पड़ता है। वह युग की विचारधारा या प्रवृत्ति से निराश नहीं होता और सदा विश्वास करता है कि संघर्ष, दुःख, निराशा और विक्षोभ के वातावरण का अंत होगा और मानवता को सुख, शांति तथा कल्याण की प्राप्ति होगी।

आशावादी लेखक संतोषी होता है और जीवन में अशिव तत्त्व की अपेक्षा शिवत्व का प्राधान्य स्वीकार करता है।

Oxymoran (ऑक्सिमोऑरन) विरोधाभास

एक अलंकार। इसमें भिन्न या विरुद्ध अर्थवाले दो शब्द साथ-साथ रखे जाते हैं और दोनों मिल कर एक सुंदर विचार या मुहावरा बनाते हैं।

जैसे—एक प्रकार का कोलाहल रहित कोलाहल पत्तियों में व्याप्त था।

Painting (पेंटिंग) चित्रकला दे. Art

Panegyric (पेनजिरिक) प्रशस्ति रचना

ऐसी साहित्यिक कृति ज़ो किसी व्यक्ति, वस्तु या घटना की प्रशंसा में रची जाय।

Panorama (पैनोरमा) परिदृश्य

किसी बिम्ब या घटना-शृंखला का मानसिक चित्र अथवा किसी वर्ण्य-विषय का व्यापक दर्शन, परिदृश्य है।

Pantomime (पैन्टोमाइम) मूकाभिनय

पैन्टोमाइम का अर्थ अनुकरण करना है। इसमें मूक अभिनय या मुख से बिना शब्द निकाले ही अभिनय किया जाता है और पात्र मुख-मुद्राओं तथा भंगिमाओं के द्वारा कार्यों तथा मनःस्थिति को अभिव्यक्त करता है। मूकाभिनय में वाणी की

आवश्यकता नहीं होती, भावभंगी या मुखमुद्रा से ही सब कुछ कह दिया जाता है। हस्तसंचालन की क्रिया से ही अभिनेता सब कुछ बोलता है। प्राचीन समय में रोम और यूनान में इस प्रकार के नाटक अत्यंत लोकप्रिय हो गए थे।

Parable (पैरेबिल) दृष्टान्त कथा

ऐसी छोटी, उपदेशप्रद साहित्यिक कथा को पैरिबल कहते हैं जिसमें उपदेश या सिद्धांत का कथन या अनुमोदन किया जाता है। यह कथा संक्षिप्त एवं अन्योक्तिपरक होती है तथा इसके कथानक और पात्रों द्वारा किसी नीति का उपदेश दिया जाता है। इसके पात्र प्राय: मनुष्य रहा करते हैं; इसमें जीवन के अनुभव भरे रहते हैं। दृष्टांत कथा की घटना में किसी उपदेश या सिद्धांत का समर्थन किया जाता है और गौण पात्रों के रूप में पेड़, पौधे, जीव तथा निर्जीव पदार्थों को भी स्थान दिया जाता है।

Paradox (पैराडॉक्स) विरोधाभास

एक अलकार। एक प्रकार का वक्तव्य जो ऊपर से देखने पर अर्थहीन अंतर्विरोधी से युक्त एव परस्परविरोध हो, पर अन्ततः उसमें कोई अंतर्विरोध दिखाई न पड़े। जो बुद्धिसगत न होने पर भी सत्य लगे।

Parody (पैरोडी) बिडम्बना

ऐसी काव्य-रचना जिसमें अनुकरण द्वारा किसी काव्य या लेखक की विशेष प्रकार से हँसी उड़ाई जाय। यह अनुकरण भद्दा और अभिहस्यपूर्ण होता है। इसमें मूल लेखक की विषयगत भावना और रूप-विधान का रूपांतरण किया जाता है और उसको अनुकरण पर हास्य-व्यंग्य की सृष्टि की जाती है।

Paronomasia (पैरोनोमेसिया) श्लेष — दे. Pun। यह Pun का ग्रीक समानार्थी शब्द है।

Pastoral Poetry (पैस्टोरल पाएट्री) पशुचारण या पल्ली काव्य

ग्रामीण या देहाती जीवन को आधार बना कर निर्मित काव्य को पशुचारण काव्य कहते हैं। इसके पात्र गोप या गोपालक होते हैं। इसमें गोपालकों के जीवन, उनके पशुओं, मैदानों, घाटियों तथा पर्वतीय ढालों पर व्यतीत किये गए जीवन का चित्र प्रस्तुत किया जाता है।

'पैस्टोरल' लैटिन शब्द पैस्टर से बना है जिसका अर्थ चरवाहा है। इसमें सरल, स्वाभाविक, प्रकृति के निकट रहने वाले निष्कपट मानव जीवन की कल्पना ग्रामीण जीवन के अनुकरण पर की जाती है। पशुचारण काव्य में गड़ेरियों के मादक गीतों का भी वर्णन होता है। कवि ग्राम्य जीवन को अधिक स्वस्थ रूप प्रदान करता है; क्योंकि यहाँ उसे सुख, शांति और संतोष की प्राप्ति होती है।

Pathetic Fallacy (पैथेटिक फलेसी) संवेदन-आरोप

एक अलंकार। इसमें प्रकृति को मनुष्य की उन्नति एवं अवनति में सुखी और दुःखी दिखाया जाता है, वह हर्ष और विषाद प्रकट करती हुई दिखाई पड़ती है। निर्जीव पदार्थ का मानवीकरण करते हुए इसमें उस पर संवेदन शक्ति आरोपित की जाती है।

Periphrasis (पेरिफ्रेसिस) पर्यायोक्ति

एक प्रकार का अलंकार जिसमें सीधी बात को घुमा-फिराकर कहा जाय या कुछ शब्दों में कथित बात को बहुत शब्दों में कहा जाय। इसमें वक्ता को किसी बात के कथन में अधिक शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है।

Personal Essay (पर्सनल ऐसे) व्यक्तित्वप्रधान या ललित निबंध

दे. Essay

Personification (परसॉनिफ़िकेशन) मानवीकरण

जब निर्जीव पदार्थों पर सजीव मानवीय गुणों का आरोप हो या अमूर्त्त पदार्थों या गुणों पर मानवीय गुणों का आरोप किया जाय तो यह अलंकार होता है।

Pessimism (पेसिमिज्म) निराशावाद

निराशावाद को कोई विशिष्ट दार्शनिक सिद्धांत न मानकर जीवन की एक वैचारिक प्रवृत्ति कहा जा सकता है जिससे अनेक दार्शनिक मान्यताएँ प्रभावित हुई हैं। इसके अनुसार सारी सृष्टि दुःखमय है और मनुष्य का जीवन अभव्य है। निराशावादी सिद्धांत संसार को बुरा मान कर उसे रहने योग्य नहीं समझता और जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख की अधिक व्याप्ति स्वीकार करता है। उसके अनुसार जीवन व्यर्थ है। मनोविज्ञान निराशावाद को एक प्रकार का मानसिक रोग मानता है जिसे 'मैलंकोलिया' कहते हैं। इस रोग से पीड़ित रोगी वर्तमान के प्रति आस्थावान नहीं होता और भविष्य उसे अन्धकारमय दिखाई पड़ता है। उसमें

आत्मविश्वास का अभाव होता है। फलत: वह आस्थाहीनता का शिकार हो जाता है या यों कहें कि उसके जीवन में आस्थाहीनता विकसित होती है। निराशावादी वर्तमान की अपेक्षा भविष्य को अधिक आशंका ही दृष्टि से देखता है और वह यह मान कर चलता है कि मनुष्य की इच्छाएँ अतृप्त रह जाती हैं, वह जो कुछ भी सोचता है, पूरा नहीं होता। यदि किसी कारण उसकी इच्छाएँ पूर्ण भी हो गईं तो वे स्थायी नहीं रह सकतीं या उनसे मनुष्य को संतोष प्राप्त नहीं हो सकता।

निराशावाद का उत्कृष्ट रूप प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शोपेनहावर की विचारधारा में प्राप्त होता है। वह मानता है कि संसार में जन्म लेना ही मनुष्य का सबसे बड़ा अपराध है। आधुनिक युग में अस्तित्ववादी चिंतन ने भी निराशावादी विचार को प्रश्रय दिया है।

निराशावादी विचार से साहित्य भी प्रभावित हुआ है और साहित्यकार अपने इस दृष्टिकोण को कथानक, पात्र तथा व्यापार-निरूपण में प्रतिफलित करता है। निराशावाद संसार में सुख को अस्थायी मानकर दु:ख को स्थायी मानता है और मानव को नियति के अधीन मानकर उसके सारे प्रयत्नों को व्यर्थ ठहरा देता है। निराशावादी का विश्वास है कि संसार में दु:ख का स्थायी साम्राज्य स्थापित रहता है। स्वच्छन्तावादी काव्य में निराशावाद का स्वर प्रबल है; यह उसका एक प्रमुख तत्त्व है। निराशावाद के द्वारा साहित्य में पतनोन्मुख परम्परा की प्रतिष्ठा होती है और व्यापक निष्ठा के अभाव में कलाकार की दृष्टि जीवन के प्रति संकुचित और कुण्ठित हो जाती है। निराशावादी साहित्यकार आत्मोन्मुख होकर अपनी भीतरी कुण्ठा से ही टकराता रहता है और विवशता के कारण घोर निराशा से पीड़ित हो जाता है।

Philip Sidney (सर फिलिप सिडनी) (1554-1586 ई.) अँगरेजी आलोचक

सर फिलिप सिडनी ने 'द डिफेन्स ऑप पोएजी' (The defence of Poesie) एवं "एपोलोजी ऑप पोएट्री' (Apologie for Poetry) नामक पुस्तकों की रचना की है। उसने 'गॉसन' के आक्षेपों का उत्तर देने के लिए ही अपने ग्रंथों का निर्माण किया था। उसका जिस समय आविर्भाव हुआ उस समय सभ्य लोगों ने कविता की उपेक्षा की और शिष्ट समाज से उसका बहिष्कार हुआ। उसने काव्य के स्वरूप और जनजीवन पर पड़नेवाले उसके प्रभावों पर विचार किया तथा तत्कालीन मनोवृत्ति का अध्ययन कर काव्य के मानववादी विचार और

आदर्श जगत् का अनुकरण कर पाठक अपने चरित्र को उदात्त बना सकते हैं। अतः, यह कहना कि कविता मिथ्या है या वह हमारे चरित्र को गिरा देती है; सत्य का अपलाप करना है। सिडनी ने नैतिक आधार पर काव्य के औचित्य की सिद्धि की और उसकी पुष्टि के लिए तदनुरूप तर्क प्रस्तुत किया।

(घ) उसने बताया कि काव्य का उद्देश्य 'आनन्द के माध्यम से शिक्षा' प्रदान करना है। कवि द्वारा निर्मित संसार इस ढंग ने सर्जित होता है जिससे कि उसका अनुकरण करने के लिए मनुष्य स्वतः आकृष्ट हो जाय। इस कारण कवि-संसार के नैतिक आधार की उत्कृष्टता है। अतः, न तो काव्य-विषय और न काव्य-रूप ही हेय और अनुपयोगी हैं। काव्य को आकर्षक और उदात्त बनाने के लिए सिडनी ने 'काव्यन्याय' (Poetic justice) का वर्णन किया। इसके अनुसार प्रत्येक कवि को इस ओर ध्यान देना चाहिए कि वह काव्य में चित्रित पात्रों—उदात्त या दुष्ट चरित्र वाले—को इस रूप में चित्रित करे कि बुरों को बुरा फल एवं उत्तम को अच्छा फल प्राप्त हो। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि श्रेष्ठ और उदात्त चरित्रवाले व्यक्ति दुःख पाते हैं और खल या दुष्ट व्यक्ति समृद्ध या यशस्वी के रूप में दिखाये जाते हैं। चूँकि काव्य की मनोरम शैली के कारण पाठकों का उसकी ओर सहज आकर्षण होता है, अतः संभव है ऐसे चरित्रों का वर्णन पढ़कर वे उसी प्रकार अपने चरित्र का गठन करने में प्रवृत्त हो जाएँ। सिडनी ने काव्य-न्याय के सिद्धांत का प्रवर्तन कर आदर्शवाद की स्थापना की।

(ङ) उसने काव्य-वस्तु के अतिरिक्त काव्यशैली की रम्यता पर भी बल दिया है। जब तब काव्य की शैली में आकर्षण या माधुर्य नहीं होगा या उसमें अभिव्यक्तिगत कौशल नहीं होगा तब तक उसके प्रति पाठकों का ध्यान नहीं जाएगा। अतः, रूपशैली की भंगिमा के कारण ही पाठक का ध्यान काव्य की आदर्शवस्तु पर जाएगा। उसने भावावेग को काव्य का जीवन-प्राण कह कर शैली-पक्ष की महत्ता सिद्ध की। उसकी दृष्टि में काव्य-वस्तु (भाव) एवं अभिव्यक्ति की मधुरिमा (कला) दोनों का समान महत्त्व है। उसने विषय की उदात्तता और शैली की रम्यता दोनों पर बल देकर कला को आदर्श रूप दिया तथा बताया कि कला का उद्देश्य ऐसा चित्र प्रस्तुत करना है जिससे मनुष्य के लिए चरित्र का परिष्कार हो सके।

(च) इसी क्रम में सिडनी ने प्लेटो के भी काव्य-संबंधी आक्षेपों का उत्तर दिया था। उसका कहना है कि प्लेटो ने अनुत्तम या बुरी कविता का निरादर किया है न कि उत्तम कविता का। प्लेटो की आस्तिकता एवं देवत्व का सिद्धांत अपने में दोषपूर्ण है। उसके काव्य-संबंधी आक्षेप उसके धार्मिक सिद्धांतों से प्रभावित है, उसने काव्य की निकृष्टता की विगर्हणा की थी न कि काव्य की।

(छ) जर्मन दार्शनिक के तीन आक्षेपों का निराकरण करते हुए सिडनी ने बताया कि काव्य में गुणों के निरूपण की अपरिमित शक्ति विद्यमान है, अतः उसे समय नष्ट करने वाला नहीं कहा जा सकता। काव्य असत्य का जनक नहीं होता, क्योंकि कवि का मुख्य लक्ष्य सत्याश्रित कल्पना है। कवि ऐसे तथ्यों का वर्णन नहीं करता कि क्या उत्तम है या क्या निकृष्ट बल्कि हमें ऐसे तथ्यों से परिचित कराता है जो हमारे समक्ष सत्याश्रित परिकल्पना के रूप में प्रस्तुत होते हैं। उसने उसके तृतीय आक्षेप को अमान्य ठहराते हुए बताया कि काव्य हमारे चरित्र को उदात्तता की ओर ले जाता है। [आलोचना के बदलते हुए मान, पृ. 172] उसके अनुसार काव्य जीवन की प्रतिकृति-मात्र न होकर वास्तविक और स्थायी मूल्यों से परिपूर्ण है। प्रकृति ने कवियों को जितना महान और वैभवपूर्ण बनाया है, उतना संसार को नहीं। कवियों का संसार स्वर्णिम होता है और प्रकृति का संसार पीतल का होता है।

सिडनी काव्यवस्तु को आनन्द के माध्यम से शिक्षा देनेवाली मानता है तथा आदर्शवादी सिद्धांत शैली की महत्ता स्वीकार कर प्रभावोत्पादक शैली को ही काव्य का एकमात्र निकष स्वीकार करता है। अरस्तू की भाँति उसने काव्य को इतिहास की अपेक्षा अधिक गंभीर और दार्शनिक बतलाया और कहा कि कविता में विशेष की अपेक्षा सामान्य की अधिक अभिव्यक्ति होती है। काव्य दर्शन और इतिहास की अपेक्षा समाज को अधिक नैतिक स्तर पर स्थापित करने में सक्षम है। कविता में विशेष और सामान्य का समन्वय या एकीकरण किया जाता है और दार्शनिक द्वारा शब्दों के माध्यम से कथित तथ्य को कवि उदाहृत कर प्रस्तुत करता है। कवि किसी विषय का समग्र चित्र मानस-चक्षुओं के समक्ष उरेह देता है। उसने सर्वत्र सप्राण और भावावेगमयी शैली को महत्त्व दिया है और बताया है कि काव्य का सौंदर्य मनोरम और प्राभावपूर्ण शैली में ही निहित है। सिडनी की कृतियों में नवजागरणकाल का सैद्धांतिक पक्ष पूरी समग्रता के साथ अभिंव्यक्त हुआ है। उसने विभिन्न सूत्रों से विचारों को ग्रहण किया; किन्तु स्वतंत्र रूप से अपनी मान्यताओं का प्रतिपादन किया।

Play (प्ले) नाटक

दे. Drama

Pleonasm (प्लिओनाज्म) वीप्सा

दे. Tantology

Poem (पोएम) कविता दे. Poetry

Plato (प्लेटो)
(427 ई. पू. से 347 ई. पू. तक)

प्लेटो पाश्चात्य चिंतनधारा का प्रकाशस्तम्भ है। ज्ञान का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसे उसने अपनी प्रतिभा की रश्मियों से भास्वर न बनाया हो। वह मूलत: दार्शनिक था, पर उसकी देन ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में भी अन्यतम है। दर्शन के अतिरिक्त राजनीति, तर्कशास्त्र, साहित्य, समाजशास्त्र, शिक्षा आदि अनेक विषयों को उसने अपनी मान्यताओं से उपकृत किया है। सभी क्षेत्रों में उसकी देन अप्रतिम है। उसके ग्रंथ संवाद-रूप में लिखे गए हैं और उनमें मुख्य वक्ता उनका गुरु सुकरात है। यद्यपि इन संवादों में मुख्यत: सुकरात के ही विचारों की अभिव्यक्ति हुई है, फिर भी निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि उनमें कितना अंश सुकरात का है और प्लेटो का योग कितना है।

उसका जन्म एथेन्स के एक सम्भ्रान्त कुल में हुआ था। वह माता की ओर से सुप्रसिद्ध व्यवस्थापक सोलन एवं पिता की ओर से एथेन्स के अन्तिम राजा क्राड्स के कुल का था। उसे तत्कालीन एथेन्स की अच्छी-से-अच्छी शिक्षा प्राप्त हुई थी। जीवन के आरंभिक दिनों में उस पर सुकरात का प्रभाव पड़ा था। और वह उसके साथ आठ वर्षों तक रहा था। सुकरात ही उसकी प्रेरणा का स्रोत था; इसलिए अपने संवादों में उसने उनके प्रति श्रद्धा दिखलाई है। अरस्तू उनका शिष्य था तथा वर्षों तक उनके द्वारा स्थापित विद्यापीठ (अकादमी) में शिक्षा प्राप्त करता

रहा। प्लेटो ने अनेक ग्रंथों की रचना की है जिनमें 'सिम्पोजिया' (विचारगोष्ठी) 'फीडो' 'फीड्रस', 'आयोन', 'रिपब्लिक' (गणतंत्र) एवं 'लॉज' अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। 'सिम्पोजिया' में प्रेमदर्शन तथा सौंदर्य-दर्शन पर विचार किया गया है। 'फिलीबस' में उसके दार्शनिक सिद्धांत 'जाति-प्रत्ययवाद' (Theory of idea) के अनुसार नीतिशास्त्र का वर्णन है। 'रिपब्लिक' राजनीतिशास्त्र का महान ग्रंथ है, जिसके तीसरे एवं दसवें अध्यायों में साहित्य एवं काव्य के संबंध में क्रांतिकारी विचार प्रकट किए गए हैं। 'लॉज' में न्यायशास्त्रीय सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है।

प्लेटो की दार्शनिक मान्यताएँ

प्लेटो मूलतः दार्शनिक था जिसने नैतिक एवं दार्शनिक आधार पर साहित्य का मूल्यांकन किया। उनके संवादों में गद्यगीत का माधुर्य है और उनकी काव्य-विषयक मान्यताओं पर दार्शनिक विचारधाराओं का प्रभाव है। प्लेटो प्रत्यय या विचार जगत् को सत्य मानता है और भौतिक या पदार्थ जगत् को मिथ्या। उसके अनुसार विचार-जगत की छाया ही भौतिक जगत् है। भौतिक जगत् जो इन्द्रियगोचर जगत् है, तात्त्विक नहीं है, वह जातिप्रत्यय या विचार (ऐडिया) की छाया या नकलमात्र है। जाति प्रत्ययों या विचार का संसार भौतिक जगत् से नितांत भिन्न है एवं देश-काल की सीमा से अवाधित है, यही संसार स्वर्ग है। इसका स्रष्टा ईश्वर है जो शाश्वत, सतत् एवं अक्षय है। उनके अनुसार भौतिक जगत् नश्वर, चिर परिवर्तनशील तथा क्षणिक या अस्थायी है। ईश्वर या परमात्मा ने ही सभी देवताओं, नक्षत्रों एवं भौतिक जगत् का निर्माण किया है। वह प्रत्ययों या ऐडिया के अनुरूप ही संसार का निर्माण करता है। वह पूर्ण आत्मा है और अन्य कम पूर्ण आत्माओं का स्रष्टा है। उसे श्रेष्ठ आत्मा कहा जा सकता है। प्लेटो आत्मा को अपनी गति से गतिमान कह कर उसे अमर मानता है। प्रारंभ में ईश्वर एक विश्वात्मा को उत्पन्न करता है जो उसकी प्रतिमूर्त्ति होता है। विश्व के सभी सामंजस्य एवं सौंदर्य का कारण विश्वात्मा ही है। तत्पश्चात मानव आत्माओं की सृष्टि हुई है। प्लेटो ने विश्व की प्रक्रिया को प्रयोजनवती माना है जो किसी लक्ष्य की प्राप्ति में संलग्न है। अनुभव जगत् के ऊपर विचार जगत् का शासन है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह संसार एक लक्ष्य की ओर आगे बढ़ रहा है। इस संसार का परिवर्तन होता रहता है और उसके क़ारण भी होते हैं। इसके कारण भौतिक हैं और वे प्रधान कारण नहीं हैं। संसार का मुख्य हेतु है लक्ष्य या आदर्श

को प्राप्त करना। यह संसार बुद्धितत्त्व द्वारा संचालित होता है और वह (तत्त्व) आदर्श की खोज का प्रतीक माना जाता है।

प्लेटो के अनुसार विचार या प्रत्यय जगत् के चिंतन में संलग्न रहना ही जीवन का सबसे बड़ा कार्य है। उसने बतलाया कि संसार में मनुष्यों की दो श्रेणियाँ हैं—एक प्रकार के मनुष्य ऐसे हैं जो इन्द्रिय ज्ञान को प्राप्त कर संतोष ग्रहण करते हैं और दूसरे प्रकार के मनुष्यों का उद्देश्य है प्रत्ययों (ऐडिया) का ज्ञान प्राप्त करना। इसलिए संसार में प्रथम वर्ग के लोगों की संख्या द्वितीय वर्ग के लोगों से अधिक है। विश्व के अधिकांश मनुष्य छायाकृतियों में फँसे हैं। उसने इस तथ्य को गुफा का रूपक देकर प्रकट किया है। "संसार एक गुफा के समान है जिसके निवासी गुफा के द्वार की ओर पीठ किए बैठे हैं। उनकी दृष्टि गुफा की भीतरी दीवार पर है। गुफा के बाहर तरह-तरह की वस्तुएँ गुजरती हैं, जिनकी छाया उसकी भीतरी दीवार पर पड़ती है। गुफा-निवासी केवल उन छायाकृतियों को ही देख सकते हैं। वे वस्तुओं की छायाएँ हैं, उन वास्तविक पदार्थों की नहीं। इसी प्रकार अविचारी मनुष्यों को जातिप्रत्यय का संसार जो कि एकमात्र वास्तविकता है दिखाई नहीं देता। दर्शनशास्त्र का, प्लेटो की सम्मति में, यह कार्य है कि वह उन लोगों की दृष्टि को दृश्यजगत् से हटाकर प्रत्यय जगत् की ओर लगा दे।" (डॉ. देवराज: पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास, पृ. 64)

प्लेटो आदर्श गणतंत्र के नागरिकों को सभी दृष्टियों से पूर्ण एवं आदर्श बनाना चाहता था, इसलिए उसने कला या साहित्य की भी आदर्शमूलक व्याख्या प्रस्तुत की थी ताकि उसमें (कला में) किसी प्रकार का दोष न रह जाय। वह आदर्शवादी दार्शनिक एवं सुधारक था और उसकी इच्छा यूनान के प्रत्येक नागरिक को आदर्श-रूप देने की थी। वह मनुष्यों को सत्य की प्राप्ति में संलग्न करना चाहता था और नागरिक के रूप में सदाचारी होने की कामना करता था। उसका विश्वास था कि ज्ञान के द्वारा ही सत्य एवं सदाचार की प्राप्ति हो सकती है; ज्ञानोपलब्धि जीवन के अनुभव के अतिरिक्त साहित्य द्वारा भी संभव है। अतः, इस बात की परीक्षा के लिए कि साहित्य द्वारा प्राप्त ज्ञान लाभप्रद या हानिकारक है, उसने साहित्य या कला की दार्शनिक कसौटी पर परख की।

प्लेटो का काव्य-सिद्धांत

प्लेटो विश्व का अन्यतम दार्शनिक ही नहीं, श्रेष्ठ गद्यकारों में से एक है। काव्य-संबंधी उसकी मान्यताओं को देखकर आश्चर्य होता है कि स्वयं काव्यशक्ति सम्पन्न होकर भी उसने कवियों का तिरस्कार किया एवं उनके ऊपर (भावना में

तन्मय होकर काव्य-रचना करने के कारण) यह अभियोग लगाया कि वे हमारी भावनाओं को उत्तेजित करते हैं। उसके ग्रंथ अपने में स्वयं साहित्य की अपूर्व निधि हैं और उसके संवादों में काव्य तथा नाटकीय वैभव का सम्यक् समन्वय है। उनका कहना है कि काव्य का आनन्द बौद्धिक न होकर भावनात्मक होता है; अतः उसमें हमारी भावनाओं को उद्वेलित करने की अपूर्व क्षमता होती है, अतएव मानवीय बुद्धि को प्रभावित न कर भावनाओं को उत्तेजित करने के कारण काव्य या कला में पाशविक तत्त्व प्रधान है, जो हमारे चरित्र को गिरानेवाला होने के कारण आदर्श राज्य के लिए त्याज्य है। इसलिए उसने अपने 'गणतंत्र' से कवियों को बहिष्कृत करने की सलाह दी। प्लेटो ने अपने संवादग्रंथों-विशेषतः 'आयोन' और 'रिपब्लिक'—में होमर की प्रशंसा की है तथा उसके प्रति सहानुभूति के भी भाव प्रदर्शित किये हैं। स्कॉटजेम्स का कहना है कि जिस प्रकार कोई अपने पाप को स्वीकार करता है, उसी प्रकार प्लेटो ने होमर के प्रति अपने आकर्षण को स्वीकार किया है। "मैं स्वीकार करता हूँ कि होमर के प्रति मेरे मन में बचपन से ही सम्मान का भाव था। जितने भी सुंदर त्रासदी लेखक हैं उन सबों में वह मौलिक कृतिकार एवं मार्गदर्शक था; किंतु सत्य के मूल्य पर किसी व्यक्ति का सम्मान अनुचित है, अतः मैं अवश्य ही कहूँगा।" (रिपब्लिक, भाग 10, तथा दि मेकिंग ऑफ लिटरेचर, पृ. 37)

सामाजिक उपादेयता एवं नैतिक उदात्तता को काव्य का सत्य मानने के कारण प्लेटो ने कवियों को बहिष्कृत करने का निर्णय किया था; क्योंकि काव्य की रचना भावावेश या भावोन्माद की स्थिति में होती है। उसका विश्वास था कि कवि सामाजिक उत्थान में कोई भी योग नहीं दे सकता। उसका कहना है कि "हम उसके (कविता के) सौंदर्य से अधिक प्रभावित हैं, विशेषतः जब वह होमर के काव्य में प्रकट होता है, किंतु इस नाते हम सत्य की अवहेलना नहीं कर सकते हैं। यदि कविता के प्रशंसक यह सिद्ध करें कि कविता न केवल आनन्दप्रद है, वरन् वह समाज और मानव जाति के लिए उपयोगी भी है, तो वास्तव में यह हमारे लिए महान हित की बात होगी।" (समीक्षा लोक पृ. 164 से उद्धृत) "अतः, अब हमारे लिए यह न्याय होगा कि हमें जिस देश को सुशासित रखना है उसमें कवि का प्रवेश निषेध कर दें; क्योंकि वह आत्मा के इस (दुर्बल) अंश को जागृत, पोषित और परिपुष्ट करता है तथा विवेक-अंश का क्षय करता है।" 'लॉज' में भी वह इसी तरह की बात कहता है। (लॉज, 801 सी. डी.)

अभिप्राय यह कि कविता उसे उसी सीमा तक ग्राह्य थी जो समाज एवं मानव-जाति के लिए उपयोगी हो। वह कवि को प्रत्येक आत्मा में असाधु प्रकृति की प्रतिष्ठा करने वाला तथा अज्ञान तत्त्व का परिपोषक मान कर, तिरस्कृत करता है। "जैसे कोई किसी नगर को दुष्टों के हाथ में सौंप दे और श्रेष्ठतर नागरिकों का संहार कर दे उसी प्रकार से, हम कहेंगे कि अनुकर्ता कवि प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा में असाधु प्रकृति की प्रतिष्ठा करता है, वह आत्मा के अज्ञान तत्त्व का परितोष करता है जो महान और क्षुद्र का भेद नहीं कर सकता वरन् वह यह समझता है कि एक ही वस्तु कभी महान होती है, कभी क्षुद्र और ऐसी छायाओं का सर्जन करती है जो सत्य से बहुत दूर होती है।" (गणतंत्र 10)

प्लेटो मानता था कि कविता किसी दैवी प्रेरणा का परिणाम है। उसने अपने 'आयोन' नामक ग्रंथ में इस प्रकार का विचार व्यक्त किया है। कवि काव्य-सर्जन के क्षणों में असामान्य स्थिति में रहता है, अतः उसके द्वारा निर्मित काव्य असत्य, क्षुद्र, अज्ञान युक्त एवं हानिकारक है। "काव्यदेवी सर्वप्रथम अपने ही मनुष्यों को प्रेरित करती है जिससे सभी अच्छे कवि—महाकाव्य एवं गीतिकाव्य रचने वाले अपनी कविता अपनी कला द्वारा नहीं अपितु प्रेरणा के कारण बना सकें। जिस प्रकार सिबली देवी के उत्सव विलासी पुजारी नृत्य के समय भावावेश की स्थिति में रहते हैं, उसी प्रकार प्रगीतकाव्यकार भी काव्य-निर्माण के समय मस्तिष्क की स्वाभाविक स्थिति में नहीं रहते।" (द मेकिंग ऑफ लिटरेचर से उद्धृत पृ. 38) उसके अनुसार कला ज्ञान नहीं दैवीप्रेरणा है। कवि को भावाविष्टावस्था में तनिक भी ज्ञान रहता कि वह क्या कर रहा है। इस स्थिति में वह अपने ज्ञान को खो देता है, फलतः उसके तर्क और विवेक तिरोहित हो जाते हैं। इस दशा में वह अनैतिक बातों का प्रचार करने लग जा सकता है; क्योंकि उसे अपने पर कोई नियंत्रण नहीं रहता। ऐसा देखा जाता है कि कवि देवी-देवताओं के संबंध में भी अनैतिक तथ्यों का वर्णन कर तथा उनके चरित्र का दुर्बल पक्ष चित्रित कर उन्हें क्रूर अधम और नृशंस सिद्ध करते हैं। इसका प्रभाव पाठक वर्ग पर बुरा पड़ता है और वे यह सोचने लग जाते हैं कि जब हमारे देवता ऐसा करते थे जो हम क्यों न करें। देवी-देवताओं एवं अन्य पात्रों के चारित्रिक अधःपतन का चित्रण करने के कारण ही प्लेटो ने होमर की भी निन्दा की थी। होमर ने नरक का जो भयंकर वर्णन किया है, वह पाठकों पर अशुभ प्रभाव उत्पन्न करने वाला है।

प्लेटो के मतानुसार कवि में किसी विषय का वास्तविक चित्र उपस्थित करने की क्षमता नहीं होती; क्योंकि वह जिस पदार्थ का वर्णन करता है, उसका उसे ज्ञान नहीं होता, वह सारी बातें कल्पना के आधार पर ही लिखता है। कवि-वर्णित विषय का विशेषज्ञ तो होता नहीं, उलटे उससे अनभिज्ञ होता है। वह काव्य में सत्य दृष्टि के अभाव को उसका दुर्बल पक्ष मानता है। होमर ने जिस युद्धकला एवं विधिशास्त्र का वर्णन किया है, उससे वह स्वयं अनभिज्ञ था। इस संबंध में वह उससे प्रश्न करता है—

"मेरे प्रिय होमर ! यदि तुम गुण में, ज्ञान में सत्य के सम्पर्क से दूर नहीं हो जिस प्रकार (हमारी परिभाषा के अनुसार) केवल झलक (इमेज) अंकित करनेवाला अनुकर्ता है, यदि तुम सत्य के अत्यधिक निकट हो और यदि तुम जानते हो कि कौन से क्रिया-कलाप मनुष्यों को सामुदायिक या वैयक्तिक रूप से अच्छा या बुरा बताते हैं तो बताओ कि किस नगर के शासन में तुमने सुधार किया है और कौन नगर लाभान्वित हुआ।" प्लेटो का कहना है कि कवि मानवता का शिक्षक या गुरु नहीं हो सकता और न उससे किसी का सुधार संभव है। "यदि होमर और हेसियाड के समकालीन यह समझते हैं कि वे मनुष्यों को गुणों की शिक्षा देने में समर्थ हैं तो क्या वे उन कवियों को इसी प्रकार गाते हुए घूमने-फिरने देते ? क्या वे उनके साथ न लगे रहते, चाहे जितना व्यय होता; और यदि वे कवियों को ठहरने के लिए राजी न कर पाते तो क्या उनके साथ हर जगह तक लगेलगे न फिरते जब तक पर्याप्त शिक्षा न पा लेते ? किंतु, लोगों ने ऐसा नहीं किया।" (पाश्चात्य समीक्षा-सिद्धांत पृ.27 से उद्धृत)

प्लेटो के काव्यालोचन का आधार शिवत्व एवं मंगल भाव है। वह 'गणतंत्र' में एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना करता है जहाँ के व्यक्ति चरित्रवान्, विद्वान् एवं न्यायप्रिय हों। कविता का मूल्यांकन करते समय वह उसकी कलात्मक समृद्धि को उतना महत्त्व नहीं देता जितना कि उसके नैतिक पक्ष को। वह कविता जो हमारे चरित्र का विकास एवं भावों का परिष्कार नहीं कर सकती, वह कितनी भी सुंदर क्यों न हो आदर्श समाज के लिए त्याज्य है। 'गणतंत्र' में जहाँ उसने आदर्श राज्य आदर्श समाज एवं आदर्श व्यक्तियों की कल्पना की है, वह कैसे सहन कर सकता था कि उसमें वासनाओं को उभाड़नेवाली कविता को स्थान दिया जा सके। उसने आदर्श समाज के निर्माण के लिए शासक वर्ग में केवल दार्शनिकों को ही नियुक्त करने का निर्णय दिया था और पचास वर्ष से कम अवस्था वाले व्यक्ति

को शासक बनाना अनुचित समझता था। सामाजिक दृष्टि से कला को भी वह जीवन को उन्नीत करने का सहकारी वस्तु मानता है और नागरिकों पर पड़ने वाले मंगलमय प्रभाव तथा चरित्र को सुधारने की दृष्टि से उसका महत्त्व आँकता है। यदि आदर्शराज्य के संरक्षक उसे (काव्य को) न चाहें तो उसका उपयोग न किया जाय। समाज को उन्नत करने तथा व्यक्तियों के चारित्रिक निर्माण एवं वैदुष्य की स्थापना करने में काव्य का कितना योग है, इस दृष्टि से विचार करने पर प्लेटो द्वारा निर्मित मानदण्ड पर काव्य खरा नहीं उतर सका, फलतः उसने उसकी विगर्हणा की।

प्लेटो ने काव्य-विषय के नियमन की भी व्यवस्था की है। उसका अभिमत है कि यदि समाज के विधायक एवं विनायक कवियों को आदर्श गणतंत्र में स्थान देना चाहें तो उन्हें उनके ऊपर कठोर नियंत्रण रखना होगा। वे कवियों के समक्ष ऐसे वर्ण्यविषयों को उपस्थित करें जो समाज के लिए कल्याणकारी हों। कविता का विषय देवताओं की स्तुति एवं श्रेष्ठ तथा नेक व्यक्तियों की प्रशंसा तक ही परमित होना चाहिए और उसके उन अंशों को निकाल देना चाहिए जो बच्चों तथा समाज में अमंगलकारी प्रभाव उत्पन्न करनेवाले हों। उसने बताया कि कवि देवी देवताओं के चरित्रगत दोषों का वर्णन न करे और उनके पारस्परिक संघर्ष और कलह, वैमनस्य तथा कुटिलता की बातों की चर्चा करे। कवि के ऊपर इस बात का नियंत्रण रहे कि वह ईश्वर को दुःखदायी चित्रित न करे, यदि वह उसके इस रूप का चित्रण करता है तो इसके लिए उसे कारण प्रस्तुत करना होगा। उसी कवि को रचना करने की अनुमति प्राप्त होगी जो पचास से अधिक वय का होगा और जिसने परोपकार एवं उदारता के कार्य किए होंगे। ऐसे कवियों की रचनाएँ यदि कला की दृष्टि से उत्तम न भी होंगी तो भी उनका चुनाव होगा। अन्य कवियों को रचना करने की सुविधा न होगी और न कोई अमर्यादित, असमर्थित एवं अनधिकृत रचनाओं को सुना सकेगा। इस प्रकार का कठोर नियंत्रण रखते हुए भी प्लेटो कवि एवं काव्य को बहिष्कृत करने का ही निर्णय देता है।

प्लेटो का काव्य-विवेचन तत्कालीन परिस्थितियों पर अधिष्ठित है जिसमें उसकी वैयक्तिक रुचि का अधिक योग है।

अनुकरण-सिद्धांत

प्लेटो ने कला को प्रकृति की अनुकृति (इमीटेशन) या नक़ल कहा है। वह प्रथमतः चित्रकला का उदाहरण देकर कला की प्रकृति का विवेचन करता है,

तत्पश्चात उसे कविता पर घटाता हैं। कला को प्रकृति की अनुकृति कहने का प्लेटो का अभिप्राय क्या है? उसके अनुसार कलाकार किसी प्रकार भी हमारे सामने जीवन का यथार्थ रूप प्रस्तुत नहीं कर सकता, अपितु वह उसकी छाया का चित्र खींच सकता हैं। वह असल की प्रतिच्छवि का ही चित्र उरेहता हैं। प्लेटो का कथन हैं कि कलाकार का संबंध आभास या छाया की छाया से हैं। वह उस जगत् का चित्र खींचता हैं जो मिथ्या हैं; अत: वह वास्तविकता का चित्रकार न होकर आभास या छाया का चितेरा हैं। वह आभास का ही अनुकरण करता हैं, वास्तविकता का नहीं। वह उस छाया का अनुकरण करता हैं जो सत्य से दूर हैं। यह भौतिक जगत्, विचार जगत् की छाया हैं, और कलाकार उसी छाया का चित्र खिंचता हैं, अत: वह सत्य से अत्यंत दूर जा पड़ता हैं। विचार जगत् नित्य और सार्वभौम हैं तथा विश्व के समस्त उपादान उसी के प्रतिविम्व स्वरूप हैं। प्लेटो का विचार हैं कि महाकाव्य और त्रासदी भी वस्तुसत्ता का सत्य प्रकट न कर उसकी छाया ही प्रकट करते हैं; वे वास्तविकता का चित्र न खींच कर उसके स्थान पर भ्रान्ति को उपस्थित करते हैं। मनुष्य वास्तविक या विचार जगत् के अस्तित्व से अनभिज्ञ होकर उसकी छाया का नक़ल को देखकर ही भ्रमवश उसे वास्तविक समझ लेता हैं। वढ़ई द्वारा निर्मित पलँग उस पलँग की छाया हैं जो ईश्वर के मन में विद्यमान हैं। वस्तुत: वही आदर्श पलँग हैं। इसके बाद चित्रकार उसका चित्र तैयार करता हैं। वढ़ई द्वारा निर्मित पलँग पहले ही एक पलँग की नक़ल था, पर जव चित्रकार ने उसका चित्र बनाया तो वह उस नकल की भी नकल हो गया। इस प्रकार चित्रकार द्वारा प्रस्तुत चित्र वास्तविक चित्र से तीन गुना दूर हो गया। अत:, सारी कलाएँ जो अनुकृति की भी अनुकृति हैं। वास्तविक या सत्य की भी अनुकृति नहीं होतीं। इस प्रकार कला अपने में तृतीय श्रेणी का कार्य हैं। प्लेटो के अनुसार कलाकार प्रकृति के समक्ष आईना रखने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पाता; वह असत्य का चित्र खींच कर भ्रमोत्पादन के अतिरिक्त कुछ नहीं करता।

प्लेटोकृत काव्य की व्याख्या पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव हैं और इसका ऐतिहासिक कारण भी हैं। उसका युग यूनान के इतिहास में ह्रासोन्मुखकाल एवं उसके चारित्रिक अध:पतन का था। राजनैतिक जीवन निम्नस्तर का हो गया था और साहित्यिक विकास की गति अवरुद्ध थी। ग्रीककला के आश्चर्यजनक विकास का युग समाप्त हो गया था तथा कलाकारों की मौलिकता नष्ट हो गई

थी। ऐसी गिरी हुई स्थिति में वहाँ के दार्शनिकों एवं वागीशों ने साहित्यिक चिंतन की दिशा का निर्देशन किया।

चूँकि जीवन के सभी क्षेत्रों में अराजकता छायी हुई थी, अत: राजनीति, शिक्षा एवं आचार आदि सभी शास्त्रों में उच्छृंखलता व्याप्त हो गई थी; सारा राष्ट्रीय जीवन वैषम्यपूर्ण था। उस समय ऐसे नेतृत्व की अपेक्षा थी जो अपनी मान्यताओं द्वारा नया प्रकाश दे सके। प्लेटो ने ऐसी ही विषम वेला में दर्शन एवं साहित्य का नेतृत्व किया। उसने तत्कालीन गत्यवरोध के प्रति आवाज उठायी और क्रांतिकारी निर्णय दिया। उस समय महाकाव्य, त्रासदी, कॉमदी एवं गीतिकाव्य सभी की दशा चिंताजनक थी और सभी लेखक निम्नकोटि के अनुकर्ता हो गए थे तथा उनके द्वारा निर्मित साहित्य कलुषित एवं चरित्र को भ्रष्ट करने वाला था। प्लेटो ऐसे साहित्य के साथ सामंजस्य स्थापित करने में असमर्थ था जो न तो सामाजिक कल्याण कर सके और न व्यक्तिगत जीवन को ऊँचा उठाने वाला हो। यूनान का नाट्य साहित्य ऐन्द्रिक उत्तेजना को उभारने वाला था और त्रासदी के पात्र पारस्परिक ईर्ष्या, गाली-गलौज, लड़ाई एवं प्रेम के भाड़े तथा अस्वस्थ रूप से युक्त रहते थे। महाकाव्यों में देवताओं एवं श्रेष्ठ व्यक्तियों का चरित्रांकन निम्नकोटि का होता था और उनमें हीन कोटि के दोषयुक्त चरित्रों का वर्णन रहता था। प्रेम के चित्रों को देखकर जनता रोमांचित हो जाती थी और तत्कालीन जनजीवन पर उनका अस्वस्थकर प्रभाव पड़ता था। अत:, उपर्युक्त सभी बुराइयों को देखकर ही प्लेटो ने काव्य एवं कला की नीतिपरक व्याख्या पर बल दिया और उनके प्रति कड़ा रुख अख्तियार किया। यदि तत्कालीन परिस्थिति पर विचार किया जाय तो बहुलांश में प्लेटो का साहित्यादर्श औचित्यपूर्ण दिखलाई पड़ेगा।

उसकी काव्य-विषयक आपत्तियाँ मुख्य रूप से ज्ञान-मीमांसा या तत्त्व-चिंतन पर आधृत हैं। वह अपनी ज्ञान-मीमांसा के सिद्धांत के आधार पर ही काव्य का प्रतिरोध करता था। कविता के ऊपर उसका प्रधान अभियोग यह था कि वह भावुकता को बढ़ाती है और उत्तेजना उत्पन्न करती है। एक दार्शनिक के नाते प्लेटो का बौद्धिकता की अपेक्षा भावुकता एवं आवेश का विरोध करना उचित ही था। उसका कहना था कि बुद्धिमान व्यक्ति ज्ञान के आवेश को दबायें, उसे नियंत्रित करें। उसके अनुसार कविता सत्य से दूर एवं अनुचित स्थान से उद्भूत होती है; क्योंकि कवि जिस विषय का वर्णन करता है, उसके व्यवहार एवं निर्माण के ज्ञान का उसमें अभाव रहता है। वह मनुष्य की आत्मा के निम्न अंश की उपज है और रागात्मकता का उद्रेक कर समाज का अहित करती है, अत: उस पर नियंत्रण ..क है।

काव्य का वर्गीकरण

प्लेटो ने काव्य के तीन प्रकार किये हैं—गीत, महाकाव्य और नाटक। उसके अनुसार रूप की दृष्टि से वर्णनात्मक कविता के ये ही विभाग संभव हैं। इसका प्रथम विभाग विशुद्ध वर्णनात्मक है जिसका रूप रौद्रस्तोत्र (डिथेराम्बिक) में दिखाई पड़ता है और द्वितीय प्रकार अनुकरणात्मक कविता का है जो त्रासदी एवं कॉमदी के रूप में विभाजित है। इस विभाग में कवि अपने वर्णन को निर्वैयक्तिक रूप से व्यक्त करता है; उसमें उसका व्यक्तित्व छिपा रहता है। तीसरा भेद मिश्रित काव्य का है जिसमें वह (कवि) आंशिक रूप से अपनी ओर से कहता है और कुछ पात्रों के द्वारा व्यक्त कराता है। इस प्रकार के काव्य का प्रतिनिधि महाकाव्य होता है जिसमें गीत और नाटक दोनों शैलियों का समन्वय होता है।

प्लेटो के अनुसार काव्य-रचना का महत्त्वपूर्ण अंश सामंजस्य है जिसके अंतर्गत क्रम, नियंत्रण एवं नियमों की सुरक्षा का समावेश किया गया है। उनका कहना है कि श्रेष्ठ कलाकार के लिए आवश्यक है कि वह कथा वस्तु का चयन अस्तव्यस्त रूप में न करे और भावों के विचारपूर्ण समन्वय तथा कथावस्तु के सामंजस्य पर ध्यान दे। सफल काव्य-रचना के लिए नियमों का ज्ञान तथा अभ्यास आवश्यक है। त्रासदी के संबंध में विचार करते हुए उसने बतलाया कि इसमें श्रेष्ठ एवं भद्रजीवन का अनुकरण होना चाहिए। इसका प्रभाव श्रेष्ठ नाटककार, श्रेष्ठ समाजसेवी एवं श्रेष्ठ नैयायिक के समान होता है। श्रेष्ठ त्रासदी के उद्देश्य की पूर्णता भय तथा करुणा के भावों को उभारने में ही संभव है। त्रासदी के देखने से जिस प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है, उस पर उसने वैज्ञानिक ढंग से विचार किया है। प्लेटो ने उपहासास्पद एवं बेढंगे कार्यों को कॉमदी का मूलाधार बताया है। उसका अभिमत है कि हँसी आने का मुख्य कारण है समाज अथवा मानवीय क्षेत्र में अन्य व्यक्तियों के अहंकार की विफलता अथवा उनकी हेठी का प्रमाणित होना। इसका (हँसी का) आधार व्यक्ति का गर्व, ज्ञान या किसी प्रकार की श्रेष्ठता का भाव है।

भाषण शास्त्र

प्लेटो ने भाषण शास्त्र के संबंध में भी मौलिक सिद्धांतों की स्थापना की है। उसके पूर्व यूनान के दो लेखकों-गोर्जियास तथा थ्रेसीमेकस-ने भाषण कला पर जो नया आंदोलन चलाया था प्लेटो ने उनकी कड़ी आलोचना की। उसने वाङ्शैली

में तड़क-भड़क एवं अलंकारों के प्रयोग की आवश्यकता पर बल दिया था और वे इसे साधारण बोलचाल की भाषा से ऊपर उठाना चाहते थे। अपनी पुस्तक 'गॉर्जियास' एवं 'फेड्रस' में उसने इस विषय का विवेचन किया था। पूर्ववर्ती भाषणशास्त्रियों की आलोचना करते हुए प्लेटो ने बताया कि वागीश झूठे तर्क देकर, शब्दों को तोड़मरोड़कर श्रोता के ऊपर प्रभाव जमा लेते हैं और अपने मत के अनुकूल उन्हें बना लेते हैं; अतः इस कार्य से सत्य की अवहेलना होती है। श्रोता को भड़कीले शब्दों के प्रयोग द्वारा अपने अनुकूल बनाने का कार्य औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता। भाषणकला के लिए विषय या वस्तु का पूर्णज्ञान सुस्थिर विचार के लिए आवश्यक है और इसकी सफलता के लिए अभ्यास भी एक अनिवार्य तत्त्व है। प्रवृत्ति, ज्ञान और अभ्यास द्वारा वागीश भाषणकला में सफलीभूत हो सकता है। श्रोताओं की सामयिक रुचि, परिवर्तनशील भावनाओं एवं स्वभाव आदि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना भाषणशास्त्री के लिए आवश्यक है। प्लेटो वास्तविक भाषण को आत्मा की वार्ता कहता है।

प्लेटो की रचनाओं को देखकर कहा जा सकता है कि पाश्चात्य काव्यालोचन का वास्तविक सूत्रपात उसके द्वारा ही हुआ। उसने कुछ ऐसी समस्याएँ छोड़ीं जिनका समाधान बाद की पीढ़ी को करना पड़ा। उसने जहाँ पाश्चात्य काव्यालोचन को सुनियोजित किया, वहाँ कुछ ऐसी मान्यताएँ भी प्रस्तुत कीं जो प्रत्येक युग के लिए सत्य सिद्ध हुईं। उसने सत्य की अनुकूलता को कलात्मक उत्कृष्टता का मानदण्ड सिद्ध किया।

Plekhanov G. V. (प्लेखानव) रूसी आलोचक। दे. Marxism

Plot (प्लॉट) कथानक

नाटक, उपन्यास या कहानी के कथानक को प्लॉट कहते हैं, जिसमें घटनाओं की सरल अथवा जटिल शृंखला होती है। अरस्तू ने नाटक में कथानक को अधिक महत्त्व दिया था; किंतु सम्प्रति चरित्र-चित्रण की अपेक्षा इसका महत्त्व कम हो गया है। उसके अनुसार कथानक नाटक या महाकाव्य का अनिवार्य तत्त्व है। (दे. Novel, Drama and Epic)

Plotinus (प्लाटिनस) – प्रसिद्ध सौंदर्यशास्त्री दे. History of Aesthetics

Poesy (पोएजी) काव्य (कला)

पोएजी का अर्थ काव्यकलाओं में एक है। इसके अंतर्गत काव्य रूप, रचना एवं काव्य-संबंधी व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक लेखन आ जाता है।

Poet (पोएट) काव्यकार या कवि। दे. Poetry

Poetaster – (पोएटास्टर) पद्यकार, तुक्कड़ – ऐसा व्यक्ति जो छन्द की पंक्तियाँ जोड़े या तुकबन्दियाँ करे; उसमें काव्य-प्रतिभा का अभाव होता है।

Poetics (पोइटिक्स) काव्यशास्त्र – ऐसा शास्त्र जिसमें काव्य या साहित्य के विविध तत्त्वों का सैद्धांतिक विवेचन किया जाय। दे. Criticism

■

Poetry (पोएट्री)

काव्य, कविता

काव्य का अर्थ कवि कर्म है। अँग्रेजी में पोएट्री शब्द ग्रीक शब्द 'पोइएतेस' से उत्पन्न है, जिसके क्रिया रूप 'पोइएइन' का अर्थ सृजन करना या निर्माण करना है। काव्य या कविता के संबंध में पाश्चात्य जगत् में अत्यधिक विचार हुआ है और कवि की महत्ता प्रतिपादित की गई है। पाश्चात्य मनीषी अन्य कलाओं की भाँति कविता को अनुकरण मानते हैं। अरस्तू के अनुसार कविता छन्दोबद्ध अनुकृति है। वहाँ कवि-कर्म को अत्यंत श्रेष्ठकर्म मानकर साहित्य के सभी अंगों में काव्य की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है और प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक आलोचकों ने काव्य के संबंध में अधिक सूक्ष्म विचार किया है। स्वयं कवियों ने भी काव्य को सभी साहित्यांगों में उच्च स्थान प्रदान किया है। कवि को वहाँ विशिष्ट प्रतिभा-सम्पन्न प्राणी माना गया है और काव्य-प्रतिभा को ईश्वरीयदेन (Godgift) की संज्ञा प्रदान की गई है। यह सत्य है कि पाश्चात्य आलोचना के उषःकाल में प्लेटो ने काव्य और कवि की विगर्हणा की थी और उन्हें अपने नगर राज्य से बहिष्कृत करने का आदेश दिया था, फिर भी इससे कविता या कवि का महत्त्व कम नहीं हुआ। परवर्ती आलोचकों ने कवि-कर्म की महत्ता स्वीकार कर इसे मानव मन और मस्तिष्क को झंकृत या स्पंदित कर जीवन का नव निर्माण करने वाला साधन कहा। अरस्तू के अनुसार कवि-प्रतिभा का वास्तविक रूप अनुकरण में निहित है। सर फिलिप सिडनी के मतानुसार

कवि-प्रतिभा ईश्वरीय वरदान है जिसके लिए अनुकरण और अभ्यास आवश्यक है। होरेस का कथन है कि कवि जीवन को ऊर्ध्वगति प्रदान करता है और लॉर्ड बेकर ने काव्य और कवि को आत्मा को श्रेष्ठ बनाने वाला तथा मन को आनन्द प्रदान करने वाला कहा। बेन जॉनसन का कहना है कि कवि दैवी प्रेरणा तथा ईश्वरीय अनुभूति से सम्पन्न होने के कारण जीवन को आदर्श पथ पर पहुँचाता है। उसके अनुसार वह स्रष्टा तथा सत्य का प्रतिष्ठापक है। शेक्सपियर ने तन्मयता के गुण की समानता के कारण कवि, पागल और प्रेमी को समकोटिक माना है। मिल्टन के अनुसार काव्य की भाँति कवि का जीवन सुंदर होता है।

वर्ड्सवर्थ के अनुसार कविता मानव-हृदय को, मानवात्मा को, आनन्द से तरंगायित कर व्यापकत्व का अनुभव कराती है। (दे. पश्चिमी आलोचनाशास्त्र, पृ. 277-278)

आलोचकों ने अनेक प्रकार की काव्य की परिभाषाएँ दी हैं, यहाँ मुख्य लक्षणों पर विचार किया जाएगा। प्लेटों ने काव्य या कला को प्रकृति का अनुकरण कह कर कवि और काव्य की निन्दा की थी। उसके अनुसार कविता अनैतिकता को प्रश्रय देती है; क्योंकि इसमें भावुकता या भावावेश का तत्त्व प्रबल होता है। वह मिथ्या और अवास्तविकता का प्रचार कर हमारी भावनाओं को उभारती है। उसके विचारानुसार कवि जो कुछ भी कहता है वह भावावेश में कहता है, अतः वह मनुष्यों की वासनाओं को प्रोत्साहन प्रदान करता है। कवि कविता में सत्य की अनुकृति न कर अनुकृति की अनुकृति करता है, अतः वह हेय है काव्य सत्य से दूर है – Imitation of an imitation, thrice removed from the truth. अरस्तू ने काव्य को एक कला माना जिसका मूल अनुकरण है। उसके अनुसार काव्य की आत्मा अनुकरण है। पर, अनुकरण का अर्थ नकल न होकर कलात्मक पुनर्निर्माण या पुनः सृजन है। उसने भाषा के माध्यम से अनुभूति और कल्पना के द्वारा जीवन के पुनः सृजन को काव्य माना।

लौंजाइनस ने औदात्य या Sublimity को काव्य का मूल तत्त्व या आत्मा स्वीकार किया। उसके अनुसार "वही काव्य-सृष्टि उत्कृष्ट कही जा सकती है, जो पाठकों को एक बार नहीं, वरन् बार-बार उत्तेजित और उद्वेलित करसके, जो विभिन्न पेशे, जीवन, आकांक्षाओं, युगों और भाषाओं के मनुष्यों को, बार-बार पढ़ी या सुनी जाने पर, प्रभावित कर सके।" मिल्टन के मतानुसार काव्य में राग और वासनात्मक

प्रवेश को महत्त्व दिया जाना चाहिए। Poetry should be simple, rensuous and Passionase. अर्थात कविता सरल और रागात्मक हो।

डॉ. जॉनसन के अनुसार कविता छन्दोमयी वाणी है – Poetry is a metrical composition. उन्होंने अपनी अन्य परिभाषा में कहा कि "कविता सत्य और आनन्द के मिश्रण की कला है जिसमें बुद्धि की सहायता के लिए कल्पना का प्रयोग किया जाता है।" Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imigination to the help of reason.

ड्राइडेन ने कविता में सांगीतिक तत्त्व को महत्त्व देते हुए कहा कि कविता व्यक्त संगीत है – Poetry is articulate music. वर्ड्सवर्थ के अनुसार कविता प्रबल भावों को सहज उच्छलन है जिसकी उत्पत्ति शान्तिमय क्षणों में संचित अनुभूतियों से होती है। Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes its origin from emotion recollected in tranquility.

कॉलरिज ने अपना काव्य-लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा कि कविता सर्वोत्तम शब्दों का उत्तम रचना-विन्यास है — Poetry is the best words in their best order. उसने अपने अन्य काव्य-लक्षण में कविता को अनुपम वरदान कहा है जिससे प्रत्येक पदार्थ के आवृत्त सौंदर्यान्वेषण की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न होती है — Poetry has been to me its own exceeding great reward, it has given me the habit of wisting to discover the good and beautiful in all that meets and surrounds me. उसने काव्य में हृदय और मस्तिष्क दोनों का संयोग अपेक्षित माना है और केवल भावना या केवल बौद्धिकता को हेय कहा है। काव्यगत आनन्द सौंदर्य पर आश्रित रहता है, वह कोई स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। सौंदर्य कल्पनाशक्ति पर आश्रित रहता है। It (Poetry) is the excitement of emotion for the purpose of imediate pleasure through the medium of beauty. शेली के अनुसार सरस काव्य के लिए करुणा आंवश्यक है — our sweetest songs are those that tell us saddest thought. उसने कविता को कल्पना की अभिव्यक्ति कहा — Poetry is the expression of imagination. शेली ने पक्षियों के कलरव की भाँति काव्य को अयाचित और अनायास माना है। उसकी परिभाषा में भावपक्ष की उपेक्षा कर कल्पना का प्राधान्य घोषित किया गया है।

भाव के अभाव में कल्पनामयी उक्तियाँ प्रहेलिका बन जाती हैं। कार्लाइल के अनुसार कविता संगीतमय विचार है — Poetry we will call musical thought. ले हन्ट के मत से कविता कल्पनात्मक मनोवेग है — Poetry is imaginative Passion. मैथ्यू अर्नाल्ड ने काव्य में नैतिक पक्ष को महत्त्व देते हुए उसे जीवन से संपृक्त किया। उसके अनुसार नैतिकता से विरोध रखनेवाली कविता जीवन का विरोध करती है। कविता जीवन की व्याख्या है — Poetry is the criticism of life. Poetry against towards moral ideas is against to wards life. सौंदर्यवादी कवि एडलर एलन पो ने काव्य को सौंदर्य की लयपूर्ण सृष्टि बतलाया — I would define in brief the Poetry of words as rhythmical creation of beauty. हडसन का कहना है कि काव्य जीवन की व्याख्या, कल्पना और मनोवेग तीनों का समन्वय है — Poetry is interpretation of life through imagination and emotion. मेकॉले ने काव्य को चित्रकला की अभिधा प्रदान की है — By Poetry we mean the art of employing words in such a manner as to Produce an illusion on the imagination the art of doing by means of words, what the painter does by means of colours. टी. एस. इलियट के अनुसार कविता व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं, व्यक्तित्व से पलायन है — Poetry is not the expression of Personality but it is an escape from the personality. हेजलिट के अनुसार काव्य कल्पना की भाषा है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं में कविता के चार तत्त्वों का विवेचन किया गया है — बुद्धितत्त्व, भावतत्त्व, कल्पनातत्त्व और शैली तत्त्व। काव्यालोचकों ने काव्य को जीवन से अलग करके देखा है अथवा इसे जीवन की आलोचना माना है। काव्य के दो पक्ष हैं — अंतरंग और बहिरंग। अंतरंग पक्ष के अंतर्गत कल्पना, अनुभूति अथवा भाव सौंदर्य का विवेचन होता है तो बहिरंग तत्त्व में उसके रूप, आकृति और अभिव्यंजना के साधनों की परिगणना की जाती है।

काव्य के तत्त्व

काव्य के प्रमुख तत्त्वों में अनुभूति, कल्पना और अभिव्यक्ति प्रधान हैं। सृष्टि के सौंदर्य को देखकर कवि के हृदय-प्रदेश में जो भावतरंगें उद्‌बुद्ध होती हैं, उनको व्यक्त करने के लिए उसका मन मचल जाता है और उसे वह भाषा के माध्यम

से अभिव्यक्त करता है। भावानुभूति का एक मात्र आधार उसका हृदय होता है। कवि बाह्य जगत् को अथवा अंतर्जगत् को भी आधार बना कर अपने हृद्‌गत भावों की अभिव्यंजना करता है। उनकी अनुभूतियाँ उनके व्यक्तित्व की उमड़न है। अनुभूति को या कवि के पूर्व अनुभवों को पुनरुत्पादित करने का कार्य कल्पना करती है। वह अनुभूति को आलंबन तक पहुँचाने में सहायक होती है। कल्पना का कार्य संश्लेपण करना है, वह विशृंखलित भावों को एकरूपता प्रदान करती है तथा जगत् और जीवन के प्रति कवि के बिखरे हुए भावों का कवि-मानस में एक संशिलष्ट चित्र उपस्थित करती है। कल्पना कवि की सृजनात्मक वृति है, जिसके द्वारा वह विचारों, भावों और अनुभूतियों का मूर्ति-विधान करता है। पाठक भी कल्पना की संश्लेपणात्मक प्रक्रिया द्वारा कवि के भावों को अपने हृदय में उतारता है। कल्पना सभी प्रकार के मानसिक बोध का मूलाधार है, जिसमें केवल नवसर्जन की क्षमता है। वह अतीत के अनुभवों की पुनरावृत्ति भी करती है। उसके द्वारा कवि नवनिर्माण की शक्ति से सम्पन्न हो जाता है और अपने भावों को अनुभूतिगम्य बनाता है। कल्पना कवि के विचार और भाव का विस्तार, अभिवृद्धि तथा रूप-परिवर्तन भी करती है। यद्यपि काव्य-सृजन में कल्पना का अत्यधिक महत्त्व है तथापि इसे उसका एक मात्र तत्त्व नहीं माना जा सकता, वह काव्य या साहित्य की साधिका है। साध्या नहीं। पाठक को प्रसन्न और आनन्दित करने में कल्पनाशक्ति का महत्त्वपूर्ण योग होता है और वह काव्य को आकर्पक बनाती है।

काव्य के भावपक्ष के अंतर्गत उसके विषय का भी विवेचना होता है। काव्य का विपय शाश्वत, विश्वजनीन, सौंदर्यपूर्ण, विराट् और महिम हो। मानव हृदय की वे भावानुभूतियाँ (मूलप्रवृत्तियाँ) जो सनातन होती हैं, यदि उन्हें ही काव्य का विपय बनाया जाय तो वह निश्चय ही कालजयी और स्थायी होगा। प्रत्येक युग में ऐसे भावों का रूप आच्छादित होकर भी एक होता है। अतः, काव्योत्कर्प के लिए कवि को चाहिए कि वह मानव के उन मूलभूत विचारों और भावों का वर्णन कर अपनी कृति में प्रतिप्ठित करे। कवि के व्यक्तित्व का निर्माण देशकाल की परिधि एवं सांस्कृतिक परिवेश में होता है, अतः, वह अपने को जीवन और जगत् की समस्याओं से असंपृक्त नहीं कर सकता। पहुँचे हुए कवि की वाणी में जन-जीवन का स्वर मुखरित होने लगता है। अतः, विपय की दृष्टि से काव्य का वर्ण्य विश्वजनीन हो। वह समय और देश की सीमा से परे होकर मानव हृदय की भावनाओं का संस्पर्श करे। कवि देश, काल, जाति, वर्ग, राष्ट्र और वातावरण

तथा परिस्थितियों का इस प्रकार चित्रण करे, जिनसे उनमें विविधता में भी एकता और मानवीय तत्त्वों के प्राधान्य के कारण आंतरिक ऐक्य और एकसूत्रता स्थापित हो सके। वह किसी देश विशेष की स्थिति का इस प्रकार चित्रण करे कि सभी देशवासियों के साथ उसका रागात्मक संबंध स्थापित हो जाय। काव्य में सौंदर्य तत्त्व की विद्यमानता यथेष्ट रूप से होनी चाहिए। कवि जीवन के स्थूल बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा उसके सूक्ष्म भावसौंदर्य का चित्रण अधिक करे अर्थात रूप सौंदर्य और भाव सौंदर्य के अंकन में समानुपात, औचित्य और संतुलन पर ध्यान रखे। अंगों के गठन की अपेक्षा भावों की कोमल कमनीयता का चित्रण काव्योत्कर्ष को महनीय बनाता है। कवि विषयानुरूप उसके सौंदर्योद्घाटन में प्रवृत्त हो। महिम, विराट् और उदात्त तत्त्व काव्य को उत्कर्ष प्रदान करने वाले हैं। काव्य का विषय जितना ही महनीय, विराट् और भव्य होगा, उसमें उतना ही अधिक स्थायित्व और आकर्षण का समावेश होगा। कवि उदात्त सौंदर्य और महान चरित्र की सृष्टि कर मानव-चेतना को अधिक अभिभूत कर सकेगा। कवि मानवप्रकृति के अतिरिक्त मानवेतर प्रकृति अर्थात प्रकृति चित्रण को भी काव्य में स्थान दे। वह प्रकृति का चित्रण कर पाठकों को निगूढ़ रसमग्रता से चकित और चमत्कृत कर सकता है। काव्योत्कर्ष का आधार उच्चादर्श और महान दार्शनिक चिंतन का समावेश भी है। कवि अपनी उच्च चिंतना और आध्यात्मिक उन्मेष के कारण जीवन का अधिक स्वस्थ और रागात्मक स्वरूप गुंफित कर सकता है। इसी दार्शनिक चिंतन के द्वारा काव्य में अनेकता के बीच एकता तथा परिवर्तनों के बीच शाश्वत भाव का मर्मोद्घाटन होता है। विराट् दार्शनिक चिंतन की पीठिका उसमें राग का तत्त्व प्रबल रहे।

इसी क्रम में काव्य के बाह्य तत्त्व अर्थात शैली प्रदत्त पर भी विचार किया जाता है। काव्य के बाह्य तत्त्वों के अंतर्गत अभिव्यंजना की विभिन्न प्रणालियों — अलंकार, छन्द, भाषा, प्रतीक, बिम्ब, शब्द-चयन, मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग आदि पर विचार किया जाता है। जिस काव्य में अभिव्यक्ति और अनुभूति के तत्त्वों में सम्यक् सामंजस्य दिखाई पड़े, वह वास्तव में उत्कृष्ट और स्तरीय होगा। अलंकारों के प्रयोग से भाषा अधिक प्राणवन्त, प्रभावपूर्ण और प्रभावाभिव्यंजक बनती है, किन्तु शर्त यही है कि अलंकार विषय के साथ संपृक्त हों, रचना में उनका स्वतंत्र अस्तित्व न रहे। उनके प्रयोग में अत्यधिक संयम और कौशल की अपेक्षा है वे प्रस्तुत भावधारा के पोषक तथा सहायक होकर प्रयुक्त हों। काव्य में छन्द की उपयोगिता असंदिग्ध है जिससे उसमें नादसौंदर्य और

सांगीतिक तत्त्व का आधा न होता है, फिर भी छन्दहीन रचनाएँ भी महत्त्वपूर्ण हुई हैं।

काव्य प्रयोजन

पाश्चात्य आचार्यों ने काव्य के प्रयोजन-संबंधी चार प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं —

क— विचारकों का एक मत काव्य का प्रयोजन केवल लोकमंगल या विश्वकल्याण मानता है। ऐसे मत के पोषक हैं — प्लेटो, रस्किन और टॉलस्टॉय

ख— दूसरे मत के अनुसार काव्य का उद्देश्य केवल आनन्द प्रदान करना या मन:प्रसादन है। ऐसे आलोचकों में प्रमुख हैं — शिलर, पेटर, शेली आदि रोमांटिक आलोचक और कवि।

ग— तीसरे मत के अनुसार काव्य का प्रयोजन नीति-सापेक्ष आनन्द है। ये आनन्द को स्वीकार करके भी काव्य का प्रमुख प्रयोजन नैतिक शिक्षा प्रदान करना मानते हैं। अरस्तू, ड्राइडेन, मैथ्यूआर्नल्ड आदि इस मत के अनुयायी हैं ।

घ— चौथे मत के अनुसार काव्य का कोई प्रयोजन नहीं, वह स्वयं साध्य है। इस मत का अनुमोदन कलावादी आचार्यों ने किया है। ब्रेडले, क्रोचे आदि इस मत को मान्यता प्रदान करते हैं।

ग्रीक आलोचना के प्रारंभिक काल में ही काव्य के प्रयोजन संबंधी परस्पर विरोधी मत स्थिर हो चुके थे, जिनका पल्लवन परवर्ती युग में हुआ। हेसिऑड के अनुसार काव्य का प्रयोजन है उपदेश देना तो महाकवि होमर आनन्द को ही काव्य का प्रयोजन सिद्ध करते हैं। पलेटो ने एक दार्शनिक और समाज सुधारक के रूप में काव्य और कला के लक्ष्य पर विचार कर अपना यह मत स्थिर किया कि लोकमंगल ही कला या काव्य का परम प्रयोजन है। इसी कारण उसने होमर के काव्य की आलोचना की थी। वह राज्य और मानव के लिए उपयोगी होने पर ही काव्य को ग्राह्य समझता था।

No poet is to compose any verses which offend the views of law and justice. (Law 80/CD) The right function of art is to put before the soul the images of what is

intrinsically great and beautiful. प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने विशुद्ध सौंदर्यशास्त्री दृष्टि से काव्य की व्याख्या की और उसके दो प्रयोजनों पर विचार किया — ज्ञानार्जन या शिक्षा तथा आनन्द। उसने बताया कि "कला का विशिष्ट उद्देश्य आनन्द है, पर यह आनन्द नीति सापेक्ष है — यह अनैतिक नहीं हो सकता।" लोंजाइजनस ने बताया कि काव्य के तीन प्रयोजन हैं — शिक्षा देना, आह्लाद प्रदान करना और अपनी बात को स्वीकार कराना। आगे चल कर उसने अपने इस मत में संशोधन कर काव्य का चरमोद्देश्य चरमोल्लास प्रदान करना माना। होरेस ने इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार करते हुए बतलाया कि काव्य का उद्देश्य है उपयोगिता (शिक्षा) एवं आनन्द प्रदान करना, परंतु स्तरीय काव्य में शिक्षा तथा आनन्द दोनों का समन्वय होना चाहिए। वह काव्य को मानव को सभ्य बनाने का साधन मानता है; क्योंकि इसके द्वारा ही मनुष्य के मन में उदात्त भावनाएँ भर जाती हैं और उसे सुबुद्धि प्राप्त होती है।

नव्यशास्त्रीवादी आलोचकों ने काव्य का परम प्रयोजन आनन्द को ही माना था, पर कतिपय आलोचक नैतिक उपयोगिता को ही उसका चरम लक्ष्य स्वीकार करते थे, यद्यपि आनन्द और नीत्युपदेश का भी उन्होंने समन्वय किया था; किन्तु उनका मुख्य लक्ष्य नीत्युपदेश ही रहा। प्रसिद्ध फ्रेंच आलोचक लॉ बोस्यू के अनुसार The aim of the epic is moral instruction disguised under the allegory of action. ड्राइडेन ने बतलाया कि काव्य का प्रयोजन मधुर रीति से शिक्षा देना है — To teach delightfully is the function of Poetry. जर्मन विद्वान् शिलर के अनुसार काव्य का उद्देश्य आनन्द प्रदान करना है। जॉनसन ने शिक्षा को प्रमुखता प्रदान कर आनन्द को शिक्षा से ही उत्पन्न माना। वह पाठकों को प्रभावित करना भी काव्य का एक अन्य प्रयोजन मानता है रोमांटिक कवियों ने काव्य के नैतिक पक्ष का परित्याग कर केवल अभिव्यक्ति सौंदर्य पर बल दिया है। कॉलरिज के अनुसार काव्य का प्राथमिक माध्यम आनन्द है, यद्यपि कवि अपने पाठकों को नीति का उपदेश प्रदान करता है। वह कहता है कि सौंदर्य के माध्यम से प्राप्त आनन्द ही काव्य का चरम लक्ष्य होना चाहिए। पर, वर्ड्सवर्थ ने काव्य का एक मात्र लक्ष्य आनन्द प्रदान करना नहीं माना। उसके विचार से पाठकों के हृदय पर सद्प्रभाव उत्पन्न करना ही काव्य का उद्देश्य होना चाहिए। वह काव्य को नैतिक और मानसिक स्वास्थ्य-सुख के लिए उपयोगी मानता है, जो पाठकों का ज्ञानवर्धन भी करे। काव्य भावनाओं का परिष्कार कर उसे अधिक संतुलित, शुद्ध तथा प्रकृति के अनुरूप बनाये। लेहंट ने कविता का

उद्देश्य आह्लाद और उत्कर्ष माना है। रोमांटिक विचारधारा के पाश्चात पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि पुन: लोकमंगलकारी मत की ओर उन्मुख हुई और रस्किन ने अधिकाधिक जनसमूह का अधिकाधिक हित ही साहित्य का ध्येय स्वीकार किया। टॉलस्टॉय ने कला को मानव एकता का साधन माना था। वे कला को मानव कल्याण का एक अनिवार्य साधन मानते हैं। "कला, वास्तव में मनुष्यों के मेल का साधन है। वह उन्हें एक अनुभूति में बाँधती है। जीवन, व्यक्ति और मानव-समाज के कल्याण की ओर प्रगति के लिए अनुभूति का यह बंधन अनिवार्य है।" मैथ्यू आर्नल्ड भी इसी दृष्टिकोण का समर्थक है। वह लोकमंगल को ही साहित्य का आदर्श निकष मानता है। वह नीति के प्रति विरोध को जीवन के प्रति विरोध स्वीकार करता है तथा नीति-सापेक्ष आनन्द को कला का मूलोर्द्धश्य मानता है। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में कलावादियों ने नीति के साथ कला या काव्य के संबंध को अनुचित बताया। स्विनबर्न ने कला का मूल्यांकन करने के लिए नैतिक आदर्श को अनावश्यक बतलाया था। पुन: वाल्टर-पेटर, ह्विसलर आदि ने इस स्वर को और भी अधिक मुखरित किया और क्रोचे के विचारों में भी इसकी संगति मिली। ऑस्कर वाइल्ड और डॉक्टर ब्रैडले तो कलावाद के प्रबल पक्षधर थे, अत: उन्होंने कला को नीति से सर्वथा पृथक् सिद्ध किया। वे कवि प्रतिभा पर नीति का बंधन स्वीकार नहीं करते; उसके स्वच्छ स्फुटन को मान्यता प्रदान करते हैं। आधुनिक युग के आलोचकों में आई. ए. रिचार्डस ने काव्य के लिए नैतिकता को आवश्यक मानकर कलावाद की आलोचना की और लोकमंगल को उसका चरम लक्ष्य अंगीकार किया। उनका कहना है कि काव्यगत मूल्य का निर्धारण संस्कृति, धर्म, शिक्षा आदि को आधार बना कर किया जा सकता है, जिसका लक्ष्य भावनाओं का परिष्कार एवं सद्भावों का प्रसार है। जागरुक कलाकार अपनी कृतियों में सौंदर्य (आनन्द) और लोकमंगल का सामंजस्य स्थापित करता है।

इसी संदर्भ में यह प्रश्न विचारणीय है कि काव्य के साथ छन्द का क्या संबंध है। कविता और छन्द में अभिन्न संबंध है और यही तत्त्व है जिससे गद्य में उसे पृथक् करता है। पाश्चात्य साहित्यालोचकों के बीच यह अत्यंत विवादास्पद प्रश्न रहा है कि छन्द काव्य का अनिवार्य तत्त्व है या गौण। अरस्तू के पूर्व वहाँ काव्य में छन्द का अत्यंत महत्त्व स्वीकार किया जाता था। पर, अरस्तू ने छन्द को काव्य का अनिवार्य तत्त्व नहीं माना। उसके अनुसार छन्दविहीन गद्य में भी उच्च कोटि का काव्य लिखा जा सकता है। सिडनी, शेली, कॉलरिज, होपकिन्स आदि ने छन्द को काव्य का मूल तत्त्व स्वीकार नहीं किया। सिडनी का कहना था कि छन्द काव्य

का अलंकरण है, मूल तत्त्व नहीं। कॉलरिज ने कहा कि छन्द के अभाव में भी श्रेष्ठ काव्य की सत्ता हो सकती है—Poetry of the highest kind many exhist without metre. छन्द तो वस्तुत: काव्य में ऊपर से थोपा गया पदार्थ है, वह आकस्मिक वस्तु है। आधुनिक युग में छन्द का अधिक विरोध हुआ और उसके लिए अनेक तथ्य प्रस्तुत किये गए। छन्द विरोधियों का कहना है कि मनुष्य के विचार-जगत् में छन्द का कोई महत्त्व नहीं है; क्योंकि वह न तो छन्द में सोचता है और न छन्द में कल्पना करता है, अत: फिर छन्द में रचना क्यों करे। जब कवि के मन में कोई भाव या विचार आता है तो उसमें कोई क्रम या व्यवस्था नहीं रहती (दे. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत, पृ. 258-260)। विचार कभी सूक्ष्म, स्थूल, लघु और विराट् होते हैं, अत: विचारों के स्वाभाविक रूप को छन्द का बंधन दे देना स्वयं कला के प्रति या अभिव्यक्ति के प्रति अन्याय करना है। छन्द विरोधियों की भाँति छन्द के समर्थकों के भी विचार अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। अरस्तू ने महाकाव्य का विवेचन करते समय विषयानुरूप छन्दों के प्रयोग पर बल दिया था। कार्लाइल ने कविता में छन्द और संगीत दोनों को आवश्यक माना था। छन्द समर्थक आचार्य काव्य और छन्द के अटूट संबंध की कल्पना करते हैं। उन्होंने अपने मत के समर्थन में कहा है कि यही कारण है कि सभी प्राचीन कवियों ने छन्दों में ही महाकाव्यों की रचना की है। छन्द के प्रयोग से काव्य प्रभविष्णु बनता है और उसे कण्ठस्थ करने में सुगमता होती है। छन्द के कारण काव्य उच्छृंखल न होकर संयमित होता है। वर्ड्सवर्थ ने छन्द को काव्य का अनिवार्य तत्त्व न मानकर भी इसकी महत्ता को स्वीकार किया था। छन्द के प्रयोग से कविता में सिमेट्री आती है और काव्य को गरिमामय बनाने में इसका बहुत बड़ा योग रहता है। छन्द की समस्या नाद से संबद्ध है। इसके प्रयोग से काव्य में नाद-सौंदर्य आता है और वह सांगीतिक प्रभाव से युक्त हो जाता है। यूरोप में तुकांत काव्य की भाँति अतुकांत रचनाओं का पर्याप्त प्रचार हुआ है।

पाश्चात्य विचारकों ने काव्यभाषा पर भी विचार किया है। इस संबंध में विचारकों के दो वर्ग हैं—काव्यभाषा अकृत्रिम या स्वाभाविक तथा जनजीवन के निकट हो या वह अलंकृत और कृत्रिम रहे।

अरस्तू ने काव्य-भाषा पर विचार करते हुए स्पष्टता और असाधारणत्व को महत्त्व दिया था और शब्द चयन काव्य की प्रकृति के अनुसार करना चाहा था। नव्यकलासिकल युग में काव्य भाषा में काट-छाँट, तराश, नक्काशी और

चमक-दमक की प्रधानता थी, फलत: वर्ड्सवर्थ ने उसमें प्राणरस का संचार करने के लिए सरल और बोलचाल की भाषा अपनाने पर बल दिया था। गद्य और छन्दात्मक रचना की भाषा में कोई तात्त्विक अतर न हो। वह ग्राम्य भाषा के प्रयोग का पक्षधर था, पर ग्राम्य भाषा से उसका आशय हृदय के तीव्र भावावेग को अभिव्यक्त करने वाली आडम्बरहीन सरल और परिष्कृत भाषा से था।

पाश्चात्य आलोचकों ने विषय वस्तु के आधार पर काव्य के दो वर्ग किए हैं—वस्तु परक (Objective) और व्यक्तिपरक (Subjective) इन्हें बाहचार्थ निरूपक और अंतरंग निरूपक भी कहते हैं। वस्तुपरक या वर्णनात्मक काव्य के अंतर्गत महाकाव्य और रूपक आते हैं। इनमें प्राय: अतीत कालीन घटनाओं और पात्रों का चित्रण किया जाता है। व्यक्तिपरक काव्य में लिरिक, एलिजी आदि आते हैं। इनमें कवि की अनुभूति के क्षणों का प्राधान्य होता है।

काव्य के प्रथम वर्ग में कवि जो कुछ भी देखता सुनता है, उसका निर्लिप्त भाव से वर्णन करता है; किन्तु द्वितीय वर्ग में उसे देखे या सुने गए पदार्थों को अपनी व्यक्तिगत भावनाओं से रंजित करना पड़ता है। अत:, वस्तुपरक काव्य में कवि का व्यक्तित्व नहीं झलकता, किन्तु व्यक्तिपरक काव्य में रचयिता के व्यक्तित्व या उसकी स्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है।

Practical Criticism (प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म)

व्यावहारिक आलोचना दे. Criticism

Primitivism (प्रिमिटिविज्म) आदिमवाद

आदिमवाद ऐसी प्रवृत्ति को कहते हैं, जिसमें मानवता के विकास की प्रारंभिक अवस्था को गौरव प्रदान कर उसका अनुकरण किया जाय। प्रत्येक युग में बीते हुए या अतीतकाल के ऐसे युग की स्मृति विद्यमान रहती है, जिसमें जीवन के उच्चतम रूपों की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक युग के व्यक्ति प्राचीन वीरों, महापुरुषों एवं महात्माओं के जीवन को आदर्श मान कर उनसे प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं और उनके चरित्र का वर्णन करते रहे हैं। प्रगति की धारणा अतीत के स्वर्णिम युग की प्रशंसा कर समकालीन जीवन को विकृत मानती है। पुनर्जागरण काल में यूरोपवासी स्वाभाविक रूप से यूनान के गौरव और रोम के वैभव को प्राप्त करने के लिए आकृष्ट हुए थे। कोई भी जाति ह्रासोन्मुख या विपन्न होने पर

आदिम युग के स्वर्णिम क्षणों का स्मरण कर वर्तमान अधोगति को विस्मृत करती है और उससे प्रेरित होकर प्रगति की ओर अग्रसर होती है। आदिम प्रवृत्ति के प्रति आकर्षण की भावना के तीन मनोवैज्ञानिक कारण बतलाये गए हैं—प्रथम तो दूरी का आकर्षण है अर्थात जो वस्तु प्राचीन होती है या जो बात पुरानी पड़ जाती है उसके प्रति लोगों का अधिक आकर्षण बढ़ जाता है। अतीत के दिनों में प्रमाण करने की प्रवृत्ति आदिमवाद का दूसरा आकर्षण है। इसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य अपने विगत जीवन के श्रेष्ठ और उत्तम क्षणों की चिंता कर अपने प्राचीन गौरव को अक्षुण्ण रखना चाहता है। प्रत्येक मनुष्य के मन में प्राचीन सुंदर दिनों के प्रति आकर्षण का सामान्य भाव होता है। तीसरी प्रवृत्ति के अनुसार यह विश्वास किया जाता है कि विद्वानों के मस्तिष्क की अपेक्षा लोकमानस अधिक उर्वर हुआ करता है। साहित्य में आदिमता का प्रवर्तन या प्राचीनता के प्रति मोह नवीनीकरण की प्रेरणा का परिचायक है जो किसी परिपाटी या परम्परा को नष्ट होने या सड़ने से बचा लेती है। फ्रायड ने अचेतन के राज्य में आदिम प्रवृत्ति का अन्वेषण कर बताया था कि यह समाज के साँचे और नियमों के साथ सदा संघर्षरत रहती है।

Problem play (प्रॉब्लम प्ले) समस्यानाटक

यूरोप में व्यक्तिगत सामाजिक या राजनीतिक समस्याओं को आधार बना कर जिन नाटकों की रचना हुई, उन्हें समस्या नाटक कहा गया। इब्सन तथा बर्नाडशॉ इस प्रकार के नाटककारों के अग्रणी माने जाते हैं। इस प्रकार के नाटकों के प्रणेता प्राय: बुद्धिजीवी होते हैं और चिंतन तथा नाट्य-रचना उनका साधन होती है। यदि समस्या नाटकों में विचार पक्ष के साथ-ही-साथ चरित्र-सृष्टि पर बल दिया जाय या समर्थ रूप से चरित्रांकन किया जाय तो निश्चय ही वह कृति सजीव होगी, किन्तु समस्या नाटक में समस्या का विवेचन ही प्रमुखता पाता है। और नाट्यतत्त्व उपेक्षित हो जाता है। समस्या नाटकों में रूढ़िविध्वंसक विचार प्रस्तुत किए जाते हैं और परंपरागत विचारों और आचारों के प्रति प्रतिक्रिया का भाव व्यक्त किया जाता है। पाठकों की विचार-शक्ति को उद्‌बुद्ध करना ही समस्या नाटक का प्रधान लक्ष्य होता है और उसी में उसकी सफलता निहित रहती है। नाटक की समस्या का संबंध जीवन की किसी गंभीर या दु:खद स्थिति से होता है और नाटककार उसका समाधान प्रस्तुत करता है। इसमें पात्र संयत होते हैं और घटनाएँ बौद्धिक वातावरण से पूर्ण एवं स्वाभाविक होती है तथा भाषा में गंभीरता रहती है।

यथातथ्यता को पाठकों के समक्ष उपस्थित करता है। विद्वानों ने यथार्थवाद को शैली न मानकर एक विचारधारा कहा है। इसमें निश्चित समस्याओं का समावेश किया जाता है, जो यथार्थवादी साहित्य के लिए उपयुक्त होती हैं या हुआ करती हैं। प्रसिद्ध यथार्थवादी आलोचक जॉर्ज लूकाय के अनुसार सच्चे यथार्थवादी साहित्य में लेखक जो कुछ भी अपने आसपास देखता है उसका चित्रण निर्भय होकर ईमानदारी के साथ करता है। वस्तु का पूर्ण और विस्तृत विवरण से यथार्थ की प्रतीति होती है। "यथार्थवाद वह साहित्यिक संयोग है, जो चुनाव तथा रचना के माध्यम से अपने वास्तविक विचारों को समुन्नत रूप में पाठकों के सामने उपस्थित करता है।" यथार्थवादी साहित्यकार समाज के चित्र को नग्न रूप में रखता है और उस स्थिति में वह उनके परिणामों पर विचार नहीं करता। श्री प्रेमचन्द के अनुसार "यथार्थवाद चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्नरूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। उसके चरित्र अपनी कमजोरियाँ और खूबियाँ दिखाते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं और चूँकि संसार में सदैव नेकी का फल नेक और बदी का फल बद नहीं होता, बल्कि उसके विपरीत हुआ करता है, नेक आदमी धक्के खाते हैं यातनाएँ सहते हैं, मुसीबतें झेलते हैं, अपमानित होते हैं उनको नेकी का फल उलटा मिलता है। प्रकृति का नियम विचित्र है।" (गद्य तरंगिणी पृ.52 उपन्यास नामक लेख) पर यथार्थवाद में समाज की केवल दुर्बलताओं और विद्रूपता का ही चित्रण होता है और न नग्न-चित्रण को ही यथार्थवाद कहते हैं। यथार्थवाद समाज और जीवन के संघर्ष को वाणी देकर उनका वास्तविक चित्र उरेदता है। वह मानव तथा समाज को एक इकाई का रूप प्रदान करता है, उनके खण्ड चित्र को प्रस्तुत नहीं करता। इसमें जीवन के स्वस्थ उपकरणों का अभाव नहीं, उनका सद्भाव होता है। हाँ, यह अवश्य है कि यथार्थवाद और प्रकृतिवाद के नाम पर कुछ ऐसे साहित्य की सृष्टि हुई जिनमें विकृत तथा असंतुलित चरित्रों की अवतारणा हुई, पर इस प्रकार के अस्वस्थकर साहित्य को यथार्थवाद नहीं कहा जा सकता। इसमें मानव व्यक्तित्व को बाधित करने वाले तत्त्वों को पूर्णत: बहिष्कृत किया जाता है और इसकी तीन सीमाएँ निर्धारित की जाती हैं—सम्पूर्णता, स्वतंत्र जीवन-चित्रण तथा मानव-संबंध। वह युग के जनसमूह की सच्ची भावना को आत्मसात् कर ऐसे साहित्य की सृष्टि करता है जो ऐसी भावना का वाहक हो। यथार्थवाद समाज की कुत्साओं, कुप्रवृत्तियों तथा कुप्रथाओं का चित्रण कर उनकी ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करता है, पर लेखक

स्वयं इनमें रस नहीं लेता। यथार्थवादी लेखक जीवन की गंदगियों को नहीं देखता और न जहाँ अश्लीलता के आने की संभावना होती है, वह सतर्कता के साथ अपनी प्रतिभा का उपयोग करता है। वह जीवन के सत्यों को सत्य के रूप में स्वीकार करता है, पर उसके शुभाशुभ पक्ष की व्याख्या नहीं करता। वह आदर्शवादी की भाँति जीवन को अपूर्ण नहीं मानता। यथार्थवादी मनुष्य की त्रुटियों और बलहीनताओं को उसका धर्म मानता है और उनकी परख कर उनका सूक्ष्म विवेचन करने में ही अपनी कला की सार्थकता समझता है। उसे मनुष्य की बौद्धिक शक्तियों के प्रति अविश्वास नहीं होता, वह मानवता को समझने के लिए उसकी सहज वृत्तियों का मूल्यांकन करता है। यथार्थवादी जीवन और उसके समस्त अंगों को यथार्थ मान कर ही उनको परखने का प्रयास करता है और इसी रूप में वास्तविक यथार्थवादी कला की उत्पत्ति होती है। यथार्थवादी लेखक का ध्येय वास्तविकता का तद्रूप चित्र उपस्थित करना है। वह व्यक्ति को उसके वास्तविक परिवेश के साथ चित्रित कर घटनाओं के साथ चरित्रों के जीवन का योग उपस्थित करता है जीवन का प्रत्यक्षीकरण करता है। यथार्थवादी उपन्यासों में इस तथ्य पर विचार नहीं किया जाता कि उसमें मनोरंजकता है या नहीं, उसमें वैज्ञानिक दृष्टि से तथ्यों का पर्यवेक्षण कर चित्रण में पूर्णतः निर्वैयक्तिकता का परिचय दिया जाता है।

वस्तुपरक दृष्टिकोण को यथार्थवाद कहते हैं, इसमें आदर्शवाद से सर्वथा भिन्न प्रकार की कल्पना होती है। यह जीवन को यथार्थरूप में स्वीकार कर उसे यथावत् प्रस्तुत करने में अपने लक्ष्य की सिद्धि समझता है। इसमें कला के क्षेत्र में जीवन और जगत् के यथावत् चित्रण पर बल दिया जाता है। "यथार्थवादी अपनी भावनाओं, कल्पनाओं तथा विचारों को प्रतिपाद्य विषय से अलग रखकर वस्तु पर ही ध्यान केंद्रित करता है; वह अपने जीवन का तटस्थ द्रष्टा और चितेरा मान कर चलता है। उसका विश्वास है कि तथ्य का शुद्ध रूप में ग्रहण ही चिंतन और कला की वास्तविक सिद्धि है—अपनी भावनाओं और विचारों में रँगकर रोमानी या आदर्शवादी कलाकार वस्तु के स्वरूप को विकृत कर देता है। भौतिक जीवन में चरम आस्था यथार्थवाद का आधार है—वह जीवन को उसके यथार्थ रूप में स्वीकार कर चलता है और उसे यथावत् प्रस्तुत करना उसका लक्ष्य रहता है।" (डॉ. नगेन्द्र, रस-सिद्धांत, पृ.335 प्रथम संस्करण) यथार्थवाद में मानव के आंतरिक पक्ष को अनावृत्त किया जाता है।

उन्नीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक चिंतन में अभूतपूर्व प्रगति के चिह्न दिखाई पड़े और उसने जीवन के सभी क्षेत्रों को आच्छादित कर दिया। डार्विन तथा हक्सले ने जीवविज्ञान की दिशा में जो महत्त्वपूर्ण अन्वेषण किया, उसने मानव अस्तित्व की यथार्थता को सिद्ध किया। भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में जिन नवीन तथ्यों का उद्घाटन किया गया, उसने कल्पना की अपेक्षा तथ्य में विचित्रता का समावेश किया। विकासवाद के निष्कर्षों से ज्ञान की अन्य शाखाएँ भी प्रभावित हुईं और कामटे, सेन्ट तथा साइमन प्रभृति दार्शनिकों ने वस्तुवादी एवं निश्चयवादी मान्यताओं को सथापित किया। फ्रायड के मनोविश्लेषण और मार्क्स के अर्थ विज्ञान ने भी यथार्थवाद को अनुप्राणित किया। यथार्थवाद पर विज्ञान का अत्यधिक प्रभाव पड़ा और आलोचकों ने इसे विज्ञान की भावात्मक या कलात्मक प्रतिच्छवि कहा। फ्रायड ने बतलाया कि चेतन और अवचेतन की अपेक्षा अचेतन मन अधिक महत्त्वपूर्ण है और व्यक्ति की बाह्य परिस्थितियों से अधिक उसके आंतरिक स्वरूप का मूल्य होता है। फ्रायड के अतिरिक्त युंग एवं एडलर ने मन की सूक्ष्म विवेचना की और मनुष्य के अन्दर काम भावना की प्रबलता को स्वीकार किया। मनोविश्लेषण-सिद्धांत ने सिद्ध कर दिया कि जो मूर्त्त और प्रत्यक्ष है वही वास्तविक नहीं है, अपितु जो मन के भीतर रहकर विकसित होने वाला भाव है; वह भी यथार्थ होता है। यथार्थ वाद में मनोविश्लेषण और मनोविज्ञान की उपलब्धियों को आत्मगत कर मानसिक यथार्थ का चित्रण किया गया और मानव के अंतर्मन में परिचालित वृत्तियों का यथावत चित्रण करना आवश्यक माना गया। यथार्थवाद में कवि की अंतस्तल व्यापिनी चेतना का सत्य प्रकाशित हुआ और साहित्य को वैयक्तिक एवं अंतर्मुखी पदार्थ माना गया। (दे. फ्रायडवाद)

मार्क्स ने नवीन प्रकार के समाजिक दर्शन को जन्म दिया और हीगेल के द्वन्द्वन्याय तथा आदर्शवादी चिंतन को भौतिक रूप प्रदान किया। उसने अव्यक्त आदर्शों और अमूर्त्त तत्त्वों की अवहेलना कर समाज के भौतिक आदर्श की उत्कृष्टता सिद्ध की और उसे प्रत्यक्ष तथा यथार्थ स्वीकार किया। उसने आर्थिक दृष्टि से समाज में चलने वाले द्वन्द्व (वर्ग संघर्ष) की व्याख्या की और सर्वहारा वर्ग की विजय में पूर्ण आस्था प्रकट की। मार्क्स ने इतिहास की अर्थमूलक व्याख्या प्रस्तुत की और उसके आलोक में सामाजिक स्थिति को परखने का प्रयत्न किया। मार्क्स-दर्शन से प्रभाव ग्रहण करने के कारण यथार्थवाद में सामाजिक तत्त्व की एकांत प्रधानता हुई और वह सामाजिक यथार्थवाद के रूप में परिणत हो गया। (दे. सामाजिक यथार्थवाद तथा मार्क्सवाद) मार्क्सवाद ने भौतिक जीवन में चरम

आस्था व्यक्त की, जिससे यथार्थवाद पूर्णतः अनुप्राणित हुआ। इस प्रकार यथार्थवादी विचारधारा या साहित्य चिंतन के उन्नयन में वैज्ञानिक प्रगति या विकासवाद, मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण तथा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का महत्त्वपूर्ण योग दिखाई पड़ा। साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद का कब प्रादुर्भाव हुआ, इसकी कोई निश्चित तिथि निश्चित नहीं की जा सकती; पर फ्रांस में फ्लावर्ट रचित 'मॉदम वावेरी' के प्रकाशन (1856 ई.) से इसका प्रारंभ माना जा सकता है। 1850 ई. में कोर्वे ने अपने प्रदर्शन में यथातथ्य शैली का व्यवहार किया था और उसी क्रम में 'रियलिज्म' शब्द का भी प्रयोग किया गया था। इस आंदोलन का सर्वाधिक प्रतिफलन फ्रांस में हुआ और वहाँ से रूस, स्कैंडीनेविया, जर्मनी तथा इंगलैंड में इसका प्रचार-प्रसार हुआ। उपन्यास के क्षेत्र में फ्रांस में अनेक यशस्वी लेखक उत्पन्न हुए जिनमें जोला, मोंपासा, फ्लावर्ट आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। विक्टर ह्यूगो ने भी यथार्थवाद के क्षेत्र में नये प्रयोग किये और 'पेरिस का कुबड़ा' तथा 'अभागे का भाग्य' नामक उपन्यासों में समाज के उपेक्षित और निम्नवर्ग के व्यक्तियों का चित्रण कर उनमें मानवीय मर्यादा तथा आत्मगौरव की प्रवृत्तियों का व्याख्यान किया। फ्लावर्ट ने साहित्य के माध्यम से दैनिक जीवन के छोटे तथा महत्त्वहीन चित्रों का अंकन किया और नगण्य चित्रों का साहित्यिक दृष्टि से उच्च स्तर पर पहुँचाया। कुर्बे ने उपन्यास के संबंध में कहा था कि उसके चरित्र जनसाधारण से लिए जाएँ और गीतिकाव्यकार को जीवन के प्रति निर्वैयक्तिकता का भाव हो। उसके अनुसार उपन्यासकार नायक के चयन में पुण्यात्मा, पापी या सुंदर असुंदर पर विचार न कर यह ध्यान दे कि वह हमारे दैनन्दिन जीवन से सम्बद्ध है या नहीं। बालजाक ने जीवन के कटु अनुभव के आधार पर पतनोन्मुख बुर्जुआ समाज को निरावृत्त किया और पतितों, अपराधियों और अत्याचारियों के चित्रण में सफलता प्राप्त की। बाल्जाक स्वच्छन्दतावादी उपन्यासकार माने जाते हैं, पर उनकी गति यथार्थोंमुख है। जोला ने समाज की गति तथा उसकी प्रगतिशीलता का सम्यक् उद्‌घाटन नहीं किया पर उन पर फोटोग्राफी के कैमरा और प्रयोग की विधियों का पूर्ण प्रभाव रहा। रूस में यथार्थवाद ने विभिन्न रूपों में आश्रय ग्रहण किया और उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तुत हुईं। यह ठीक है कि यथार्थवादी आंदोलन फ्रांसीसी उपन्यासकारों द्वारा पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त कर सका, पर तुर्गनेव और टाल्सटाय द्वारा वह रूस में नए रूप में विकसित हुआ। रूसी उपन्यासकारों ने यथार्थवाद के अतिवादी रूप को नष्ट कर दिया और उसके शिल्प में भी भारी परिवर्तन किया। मनोवैज्ञानिक यथार्थ के रूप में दोस्तोवस्की की रचनाएँ अधिक

लोकप्रिय हुईं। वहाँ समाजवादी यथार्थवाद को पल्लवित और पुष्पित होने का अधिक अवसर प्राप्त हुआ। गोर्की ने अपने उपन्यासों में सर्वहारा वर्ग की अवस्था का चित्रण किया और मार्क्सवाद के आधार पर वर्गसंघर्ष और सामाजिक क्रांति की रूपरेखा प्रस्तुत की।

जीवन की वास्तविकता पर बल देने के कारण यथार्थवादी रचनाओं में स्थानीय वातावरण के निर्माण की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। लेखक प्रकृति के प्रत्यक्ष दृश्य, प्रचलित प्रथाओं और विश्वासों के अतिरिक्त जनसाधारण की भाषा, संवाद और स्थानीय वातावरण का विधान करता है तथा चित्रण को अधिक स्वाभाविक बनाने के लिए जनबोलियों का विशेष प्रयोग करता है। वह विज्ञान तथा व्यापारिक क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्दों तथा पारिभाषिक शब्दों का भी व्यवहार करता है और दस्तावेजों, पत्रों, संस्मरणों को अंतर्भुक्त कर वर्गित वातावरण की तथ्यात्मकता की प्रतीति कराता है। यथार्थवादी लेखक भद्देपन का भी हू-ब-हू चित्रण करता है और प्रकृति के यंत्रालेखन को ही कला का आदर्श मानता है। वह जीवन का यथार्थ से भी अधिक पैना, अधिक सम्पूर्ण तथा अधिक प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत करता है। यथार्थवादी कला में जीवन की प्रस्तुति नैतिकता से परे और तथ्यपरक होती है और उसमें अनुभव के प्रति ईमानदारी तथा प्रयोजन की संभाव्यता रहती है। यथार्थवादी रचनाओं की शैली व्यंग्यप्रधान होती है और उसमें समाज के दुर्बल पक्ष पर कशाघात करने के लिए तिक्त और झनझना देने वाली भाषा प्रयुक्त होती है।

Reflective Essay (रेफ्क्लेक्टिव एसे) विचारात्मक निबंध दे. Essay

Regionalism (रिजनलिज्म) आँचलिकता

राष्ट्र के किसी अंचल विशेष के निवासियों के जीवन, संस्कृति, रहन-सहन आदि को विषय बना कर रचना करने की प्रवृत्ति को आँचलिकता कहते हैं। इसमें लेखक के प्रदेशगत प्रेम की व्यंजना होती है। वह अपनी रचनाओं का घटना स्थल किसी विशेष भूखण्ड या स्थान को रखता है और उसका इस प्रकार चित्रण करता है कि उक्त प्रांत की जीवन-पद्धति, भाषा, दृश्य पीठिका, वेशभूषा, आचार और प्रकृति का रूप प्रतिमूर्त्तित हो सके। इस प्रकार की प्रवृत्ति अधिकांशतः कथा-साहित्य में परिलक्षित होती है और प्रत्येक समृद्ध साहित्य में इसके प्रभूत उदाहरण प्राप्त होते हैं। इसमें लेखक अधिकांशतः स्थानीय बोलियों का प्रयोग

करता है जिससे उसकी रचना पाठक के लिए रस-ग्रहण में बाधक सिद्ध हो जाती है; क्योंकि वह स्थानीय भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण उसका अर्थ बोध प्राप्त करने में ही उलझा रह जाता है। उपन्यास या कहानियों में लेखक किसी अंचल के पूर्ण परिवेश को उपस्थित कर वहाँ की भू-प्रकृति और वातावरण को रूपायित करता है। इसके लिए उसे स्थानीय जीवन की विविधता, वहाँ की सांस्कृतिक स्थिति, भौगोलिक विवरण एवं भाषा का परिज्ञान आवश्यक होता है। इस प्रकार के साहित्य की सृष्टि में लोकतंत्रीय भावना का विकास निहित है और लेखक उसे देश के राष्ट्रीय जीवन में प्रदेशगत आसक्ति और अंचल विशेष के निवासियों की विचारधाराओं को वाणी देकर उनकी भावनाओं को मिलाता है। यदि भाषा का वैशिष्ट्य बाधक न बने तो ऐसा साहित्य लोकजीवन को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत कर सकता है। आँचलिक साहित्य में स्थानीयता, यथार्थता और लोकतंत्रीय भावना का प्राधान्य होता है। अँग्रेजी में हार्डी, जार्ज इलियट तथा आर्नल्ड बैनेट ने आँचलिक उपन्यासों की रचना की है। हिंदी में फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, हिमाशु श्रीवास्तव, उदयशंकर भट्ट तथा शिव प्रसाद मिश्र 'रूद्र' ने आँचलिक उपन्यासों का प्रणयन कर भारत के विशेष अंचलों के जीवन-दर्शन एवं परिवेश का चित्रण किया है। आंचलिक उपन्यासों में यदि स्थानीय लोगों की चारित्रिक रेखाओं को उभारने का प्रयास किया जाय और स्थानीय बोलियों को समझने के लिए आवश्यक निर्देश दिए जाएँ तो संप्रेषणीयता का अभाव नहीं रहेगा और पाठकों के समक्ष ग्रामीण जीवन का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत होगा।

Reminiscence (रेमिनिसेन्स) संस्मरण

अतीत की स्मृतियों को जब कलाकार अत्यंत व्यंजनामयी शैली में व्यक्त करता है तो उसे संस्मरण कहते हैं। इसमें लेखक की कोमल अनुभूतियों की व्यंजना होती है, जिसमें उसके अनेक स्मरणीय अनुभव अनुरंजित होते हैं। संस्मरण में लेखक उन्हीं चीजों को वर्णन करता है, जिन्हें कि वह देखता या सुनता है। लेखक के व्यक्तिगत सम्पर्क के परिणाम-स्वरूप विगत जीवन की स्मृतियाँ अत्यंत सरस और प्राणवन्त होकर संस्मरणों में व्यक्त होती हैं। संस्मरण में लेखक जीवन के केवल महत्त्वपूर्ण अनुभवों या तथ्यों का ही वर्णन नहीं करता, बल्कि उसमें अल्प महत्त्व के छोटे-छोटे तथ्य भी अभिव्यक्ति पाते हैं। इसमें तथ्यों का अधिक उल्लेख होता है और कल्पना का स्थान गौण रहता है। इसका कारण यह है कि लेखक उन्हीं बातों का कथन करता है जिन्हें कि उसने स्वयं अनुभव किया है या देखा

है। संस्मरण में इतिहास के तत्त्व अधिक रहते हैं और देशकाल का चित्रण किया जाता है पर इसमें इतिहास की भाँति केवल विवरण प्रस्तुत नहीं किया जाता; लेखक का उद्देश्य पाठक को प्रभावित कर उसके हृदय पर छाप छोड़ना होता है। संस्मरण लेखक के लिए आवश्यक है कि उसमें स्वाभाविकता, सहृदयता, सूक्ष्म विश्लेषण की शक्ति, चित्रण की सजीवता तथा तटस्थता आदि गुण विद्यमान हों। संस्मरण और रेखा चित्र में समानता होते हुए भी कुछ भिन्नता होती है। रेखा चित्र में केवल चारित्रिक विशेषताएँ व्यक्त होती हैं और संस्मरण में लेखक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उभरा रहता है। दोनों का ही मूलाधार अतीत या विगत जीवन की स्मृतियाँ होती हैं, पर उनके प्रस्तुतीकरण में अंतर होता है; उनमें विधागत भिन्नता होती है। दोनों में विषय का नियोजन भिन्न ढंग से किया जाता है। "संस्मरण में ऐसी सभी स्मृतियों की योजना की जाती है जिनके परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति पर प्रकाश डाला जा सकता है; किन्तु रेखाचित्र में उन्हीं स्मृतियों की योजना की जाती है जिनसे चित्रण प्रखर और प्रकाशमय हो उठता है।" आत्मकथा और संस्मरण में विधागत भिन्नता होती है। आत्मकथा भी एक प्रकार का संस्मरण है, पर दोनों में अंतर यह है कि आत्मकथा में लेखक के जीवन का क्रमबद्ध वर्णन होता है तो संस्मरण में क्रमबद्धता अनिवार्य नहीं होती।

Renaissance (रनेसांस) पुनर्जागरण युग

पाश्चात्य आलोचना का वह युग जो 15वीं, 16वीं शताब्दी तक विद्यमान रहा और इस कालावधि में आलोचना के क्षेत्र में सर्वतोमुखी विकास हुआ तथा अतीत की आलोचनात्मक कृतियों का पुनरन्वेषण एवं पुनराख्यान किया गया। यह सांस्कृतिक महाक्रांति का उन्मेष करने वाला सशक्त आंदोलन था जिसने साहित्य, समाज, राजनीति तथा धर्म को पूर्णतः प्रभावित किया और मध्यकालीन अन्ध विश्वास और रूढ़िवादिता के ऊपर विज्ञान और विवेक की विजय का समारम्भ किया।

मध्यकाल या धार्मिक युग (अन्ध विश्वास से पूर्ण) के पश्चात यूरोप में नई जीवन-पद्धति को लेकर पुनर्जागरण या पुनरूत्थान का आविर्भाव हुआ था, जिसके प्रखर प्रकाश में धार्मिक अन्ध विश्वास का अन्धकार तिरोहित हो गया। चर्च द्वारा नियंत्रित, कुण्ठित और आहें भरती हुई मानवता को एकबार पुनः स्वच्छन्द वातावरण में साँस लेने का अवसर प्राप्त हुआ। यह रूढ़िबद्ध धार्मिक अन्धविश्वास के प्रति मानववादी विचार का विद्रोह था, जिसने चर्च-प्रेरित पारलौकिक आदर्शों का प्रबल

विरोध किया। पुनर्जागरण युग ने यूरोपीय जनजीवन में बुद्धिवाद की अवतारणा **की** और मध्ययुग की धार्मिकता का अन्त किया। इस युग में वैज्ञानिक विकास **या** प्रगति के चरण सुदृढ़ हो रहे थे और कोलम्बस, वास्कोडिगामा प्रभृति नाविकों **ने** नई दुनियां तक का पता लगाया। आर्थिक क्षेत्र में भी नवीन क्रांति हुई और औद्योगिक क्रांति की लपेट में तत्कालीन जीवन आ गया। राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन में नवीन क्रांति के आने से मध्यकालीन वंधन टूट गए और मुद्रण-कला के आविष्कार के कारण व्यक्ति को ज्ञान-प्राप्ति और ज्ञान-प्रसार की सुविधाएँ प्राप्त हुईं। पुनर्जागरण की नूतन विचारधारा से सारा यूरोपीय साहित्य प्रभावित हुआ, फलतः नवीन साहित्य-दर्शन का उदय हुआ। कैथोलिक मत के स्थान पर प्रोटेस्टेन्ट सुधारवाद की स्थापना हुई, जिसने मध्यकालीन अन्ध विश्वासों एवं धार्मिक रूढ़ियों के वंधन तोड़ दिये। चर्च ने धार्मिक विश्वास को बढ़ावा देकर साहित्य और जीवन को दूर कर दिया था और दोनों के बीच चौड़ी खाई पड़ गई थी। सामंतों की शक्ति के क्षीण होने से नवीन राष्ट्रीयता का जन्म हुआ और जनता में जीवन के प्रति अनुराग तथा आस्था का बीज-वपन हुआ। कोपर्निकस तथा गैलीलियों ने अपनी वैज्ञानिक खोजों से जन-मन में जीवन के प्रति आकर्षण का भाव पैदा किया, फलतः साहित्य और आलोचना के क्षेत्र में भी नवीन जीवन-प्राण का स्पन्दन नवीन प्रभाव की सृष्टि करने लगा और लोगों के मन में आशा का अरुणोदय हुआ। प्रेस के आविष्कार से प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध होने लगे और लोगों का ध्यान क्लैसीकल (शास्त्रीय) साहित्य के अध्ययन की ओर लगा। बाइविल पादरियों के चंचुग से निकल कर जनता के हाथ में आ गया और सबको उसके अध्ययन के अवसर आये। प्राचीन ग्रीक और रोमीय साहित्य के अनुवाद प्रस्तुत किए गए और उन पर नये ढंग से विचार-विमर्श होने लगा।

पुनर्जागरण काल में आलोचना का द्रुतगति से विकास होने लगा और प्लेटो, अरस्तू आदि के ग्रंथों का पुनराख्यान तथा पुनरन्वेपण प्रारंभ हुआ। विचारों ने अरस्तू के विरेचन सिद्धांत (Catharsis, कैथारसिस) की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की और उसका संबंध चिकित्साशास्त्र से स्थापित किया। उसके अनुसार यह चिकित्साशास्त्र का शब्द है जिसका अर्थ 'शुद्धि की क्रिया' से है।

पुनर्जागरण के प्रथम चरण में इटली के आलोचकों का प्रभाव यूरोप पर छाया रहा। मार्कोवीदा (1527 ई.) ने अरस्तू को अपना आदर्श माना और 'पोइतिका'

की टीका लैटिन में लिखी। इसी समय त्रिसीनो ने भी 'पोइतिका' की टीका इतालवी में प्रकाशित की। वीदा ने कवियों को शास्त्रीय लेखकों के अनुकरण की सलाह दी विशेषत: वर्जिल की जो उसके विचार से होमर से भी बढ़कर था। इस युग के आलोचकों ने काव्य, काव्य-रूप, महाकाव्य, हास्य-सिद्धांत तथा पूर्ववर्ती आलोचकों के मत का विवेचन किया, पर उनके विचार में अधिक परिपक्वता नहीं थी। कास्तेलवेत्रो (1570 ई., पोएटिक्स) ने नाटक की समीक्षा प्रस्तुत कर उसी नाटककार को सफल कहा, जो वस्तुसंकलन, कालसंकलन तथा देश संकलन को अपने नाटक में भंग न करे। त्रिसानो ने प्राचीन छन्दों का वर्णन किया और शैलीगत वैशिष्ट्य पर जोर देते हुए स्पष्टता, भव्यता, सौंदर्य तथा तीव्र प्रवाह को शैली का प्रधान तत्त्व स्वीकार किया। तासो नामक आलोचक ने रोमांसिक महाकाव्य के स्वरूप और आदर्श का निरूपण किया। उसने ऐतिहासिक कथा वस्तु, वस्तुसंकलन, आनन्द तथा सच्चे धर्म (ईसाई मत) के समावेश द्वारा रोमांसिक काव्य के स्वरूप-निर्माण की बात कही। पैत्रीजी ने कविता की काव्यमयी शैली को महत्त्व दिया और बताया कि उसका विषय निश्चित नहीं रहता। कविता का क्षेत्र विस्तृत है, जिसमें कला, विज्ञान और इतिहास सबका वर्णन हो सकता है। अन्य आलोचकों में मिन्तरनो और स्कैलीगर उल्लेखनीय हैं। मिन्तरनो ने कवि को सदाचारी और विद्वान होना आवश्यक माना तथा स्कैलीगर ने भी कवि के पाण्डित्य की महिमा गाई। इस युग में आलोचना-साहित्य प्रभूत मात्रा में निर्मित हुआ, पर उसमें नव्यता न होकर चर्वित चर्वण अधिक था।

पुनर्जागरण की भावना का प्रभाव फ्रांस के साहित्य पर भी पड़ा और साहित्यकों का ध्यान अरस्तू, होरेस, सिसेरो और क्विन्टीलियन की रचनाओं की ओर गया। इस समय फ्रांसीसी साहित्य शास्त्री मुख्यत: दो तथ्यों पर अत्यंत गंभीरता के साथ विचार-विमर्श कर रहे थे—भाषणशास्त्र तथा छन्दशास्त्र। प्रथम पर रोमीय भाषण शास्त्रियों, विशेषत: होरेस के विचारों का प्रभाव था और छन्द-संबंधी वाद-विवाद में छन्द, लय और काव्य में तुक के प्रयोग पर तर्क-वितर्क होता रहा। इस युग के आलोचकों में रैबले, दोले, मारा, वोदाॅ आदि महत्त्वपूर्ण हैं। मारो के अनुसार काव्य में प्रेम का वर्णन होना चाहिए और उसे शास्त्रीय नियमों, शैली तथा अलंकारों से मुक्त कर देना चाहिए। पर, परंपरावादी एवं पुरातनवादी आलोचकों ने इस मत का घोर विरोध किया। ईसाई पादरियों के प्रभाव को ग्रहण कर सागों (1536 ई.) ने साहित्य की नैतिक व्याख्या की और बताया कि काव्य और नीति में घनिष्ठ संबंध है।

पुनर्जागरण काल में इंगलैंड की साहित्यिक चेतना में अत्यंत तीव्र रूप से परिवर्तन की। प्रक्रिया दृष्टिगोचर हुई। ग्रीक लैटिन और इटैलियन प्रभाव से वहाँ का समीक्षा-सिद्धांत अनुप्राणित था। यह काल अँग्रेजी साहित्य के लिए भूमिका निर्माण करने वाला था। इटली के मानवतावाद से प्रभाव ग्रहण कर साहित्य की नयी व्याख्या होने लगी और प्राचीन मतों को वहीं तक स्वीकार किया गया, जहाँ तक वे मानवीय बुद्धि के लिए स्वीकार्य थे।

पुनर्जागरणकाल में इंगलैंड की आलोचनात्मक उपलब्धियाँ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस युग में अँग्रेजी आलोचना में शास्त्रीयता का अधिक प्रचार हुआ और आलोचकों का ध्यान अलंकरण, रूप, शैली, पद-योजना, भाषा तथा काव्य के दार्शनिक पक्ष के प्रश्नों की ओर गया। इस युग के आलोचकों में सिडनी, बेन जॉनसन, ड्राइडेन आदि महत्त्वपूर्ण हैं। जॉन्सन की 'डिस्कवरीज' को इस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समीक्षा कृति होने का गौरव प्राप्त हुआ। जॉन्सन ने उचित शैली तथा स्वस्थ विचार (वस्तु) को काव्य का आवश्यक तत्त्व स्वीकार किया। इन पर अरस्तू, होरेस तथा क्विन्टीलियन का अत्यधिक प्रभाव था। इन्होंने 'कविता को सवाक् चित्र तथा चित्र को मूक कविता' कहा।

सर फिलिप सिडनी ने 'एपोलॉजी ऑफ पोएट्री' तथा 'डिफेन्स ऑफ पोएजी' नामक दो पुस्तकें लिखी हैं। उसने गॉसन के आक्षेपों का उत्तर देने के लिए ही अपने ग्रंथ का निर्माण किया था। उसका जिस मसय आविर्भाव हुआ उस समय सभ्य लोगों ने कविता की उपेक्षा की और शिष्ट समाज से उसका बहिष्कार हुआ। सिडनी (दे. सिडनी) ने काव्य के स्वरूप और जन-जीवन पर पड़नेवाले उसके प्रभावों पर विचार किया तथा तत्कालीन मनोवृत्ति का अध्ययन कर काव्य के मानववादी विचार और व्यापक तथ्य की व्याख्या कर उसे समादृत किया। उसने बताया कि काव्य हेय नहीं है, वह ज्ञान की जननी है। अतः, इस माता की अवहेलना करना समाज के लिए उचित नहीं है। कविता की उपयोगिता सिद्ध कर उसने तत्कालीन आलोचकों—स्टीफेन गौसेन (1579 ई.) के आक्षेपों का निराकरण किया। सिडनी के अनुसार काव्य का प्रयोजन आनन्दपूर्ण शिक्षा प्रदान करना है। उसके आविर्भाव के कुछ वर्ष पूर्व इंगलैंड की साहित्यिक मान्यताओं पर प्लेटो की विचारणा का अधिक प्रभाव था। शुद्धतावादी (प्यूरिटन्स) आलोचकों ने प्लेटो के समान ही काव्य को निकृष्ट, हेय, अनैतिक, मिथ्या तथा उत्तेजक सिद्ध करते हुए उस पर आक्षेप किया था। जर्मन दार्शनिक 'कार्नेलियस एग्रिया' ने भी काव्य पर

तीन अभियोग लगाये थे। (क) काव्य निरर्थक एवं समय को नष्ट करने वाला है। (ख) यह असत्य का जनक है। (ग) उसकी बुरी एवं अकल्याणकारी भावनाएँ मानव-चरित्र को अध:पतन की ओर उन्मुख करती हैं। सिडनी के समक्ष काव्य के बचाव के लिए वही स्थिति थी जो प्लेटो के आक्षेपों से बचाने के लिए अरस्तू की थी। जिस प्रकार अरस्तू ने अपने तर्कों द्वारा, प्लेटो के आक्षेपों का उत्तर देकर, काव्य की महत्ता स्वीकार की थी, उसी प्रकार सिडनी ने भी पूर्ववर्ती आलोचकों के आक्षेपों का निराकरण कर काव्य की महनीयता प्रतिष्ठित की। उसने अपने प्रसिद्ध निबंध 'इन डिफेन्स ऑफ पोइट्री' में सभी आक्षेपों का उत्तर देकर उनकी निस्सारता सिद्ध की। यह ग्रंथ उसकी मृत्यु के दस वर्षों के उपरांत 1595 ई. में प्रकाशित हुआ।

बेकन भी इस युग का उल्लेख्य आलोचक था।

यों तो पुनर्जागरण काल का प्रभाव सम्पूर्ण यूरोप पर पड़ा, किन्तु इटली, फ्रांस और इंगलैंड में इसका प्रोज्ज्वल रूप प्रकट हुआ और इन देशों के विद्वानों ने काव्य, महाकाव्य, नाटक (त्रासदी, कॉमदी) आदि के अतिरिक्त भाषण-कला पर भी युगोचित संदर्भ में नये ढंग से विचार किया। भाषण द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं उसके सांस्कृतिक विकास का मूल्यांकन किये जाने के कारण इस कला को उच्च स्थान प्राप्त हुआ। पुनर्जागरण युग में भाषण-कला के विषय, शैली, भाषा-प्रवाह, लय, अलंकार-प्रयोग के संबंध में विचार-विमर्श हुए और तत्संबंधी अनेक ग्रंथों की रचना हुई। इस युग में काव्य को नैतिक शिक्षा प्रदान करने का प्रभावपूर्ण माध्यम माना गया और ट्रेजेडी तथा कॉमेदी की सुरुचिपूर्ण व्याख्या हुई। कॉमेदी का उद्देश्य कोरे हास्य की सृष्टि न होकर चारित्रिक दोषों का शमन करना माना गया और गीतिकाव्य के स्वरूप-निरूपण में व्यक्तिगत तीव्रानुभूति का प्राधान्य स्वीकार किया गया। ट्रेजडी को जीवन का पोषक मानते हुए उसे जीवन को भव्य एवं उच्च धरातल पर स्थित करने वाला माना गया, जिसमें असत् के ऊपर सत् की विजय प्रदर्शित की जाती है।

Reportage (रिपोर्ताज) एक प्रकार का काव्य रूप

द्वितीय महायुद्ध के समय यूरोपीय साहित्यकारों ने एक नवीन साहित्य विधा का आविष्कार किया, जिसे रिपोर्ताज कहते हैं। इसे अमेरीकी तथा सोवियत साहित्यकारों ने जीवन्त रूप में व्यक्त किया। 'रिपोर्ताज' शब्द फ्रेंच भाषा का है जो अँग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' का समानार्थी है। पर रिपोर्ट और रिपोर्ताज में अन्तर

है। रिपोर्ट में तथ्य का अंकन किया जाता है; किन्तु रिपोर्ताज में कल्पना का भी रंग रहता है। रिपोर्ताज पत्रकारिता के निकट है या उसका एक अंग है। इसमें लेखक तथ्य के साथ कल्पना तथा भावना का समावेश कर उसे 'कलात्मक बना देता है। फलत: रिपोर्ताज में वस्तुगत तथ्य के साथ कलात्मकता का इस प्रकार योग रहता है जिससे यह पाठकों के आकर्षण का केंद्र बन जाता है। इसमें आँखों देखी घटना या कानों से सुनी हुई बात का साहित्यिक ढंग से वर्णन होता है, जिसमें पाठकों को प्रभावित करने की अपूर्व शक्ति होती है। घटना का प्राधान्य होने से इसमें कथा के भी तत्त्व समाविष्ट हो जाते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि लेखक को वस्तुस्थिति का सम्यक् ज्ञान हो तथा विषय की पूर्ण जानकारी रहे। लेखक सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति से सम्पन्न हो तथा उसमें संवेदनानुभूति रहे। इसमें घटना से सम्बद्ध पात्रों का चित्रण यथार्थ, प्रभावपूर्ण और निखरा हुआ होना चाहिए। रिपोर्ताज में आकार की कोई सीमा नहीं होती, पर इसे यथासंभव अनावश्यक विस्तार से बचना चाहिए। लेखक परिमित क्षेत्र में अनेक तथ्यों को प्रस्तुत करे।

Rhapsode (रैप्सोड) चारण

Rhapsody (रैप्सोडी) चारणगीत

सम्प्रति इसका प्रयोग भावोत्तेजक गीत के अर्थ में अधिक होता है। प्राचीन समय में चारण मधुर कण्ठ से महाकाव्यों का पाठ कर जनता को मुग्ध किया करते थे। इनकी पाठ-शैली मोहक तथा भावोत्तेजक होती थी और वे कवि भी हुआ करते थे।

Rhetoric (रेटॅरिक) भाषणशास्त्र, भाषणकला, अलंकारशास्त्र—

वह शास्त्र जिसमें भाषण के विभिन्न तत्त्वों का विवेचन हो।

Rhyme (राइम) तुक, तुकांत

किसी छन्द के दो चरणों के अंत में किया गया अन्त्यानुप्रास का विधान या अन्त्यध्वनियों की अनुरूपता या अनुरूप ध्वनियों की आवृत्ति।

■

Richards I.A. (आई. ए. रिचार्डस)
(1893-1985)

अँग्रेजी आलोचक। रिचार्ड्स आधुनिक युग के पांक्तेय समीक्षकों में परिगणित होते हैं। उनकी प्रसिद्ध रचनाओं के नाम हैं—

'द फाउन्डेशन्स ऑफ इस्थेटिक्स' (1922 ई.),

'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' (1923 ई.),

'सायन्स एण्ड पोयट्री' (1926 ई.),

'प्रिंसीपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' (1929 ई.)

'प्रैक्टीकल क्रिटिसिज्म' (1929 ई.),

'द फिलॉसफी ऑफ रेहटोरिक' (1936 ई.),

'कॉलरिज ऑन द इमैजिनेशन' (1934 ई.)

'द स्पेकुलेटिव इन्सटुमेन्टस' (1936 ई.), 'हाउ टु रीड ए पेज'

'द मिनसिअस ऑफ द माइन्ड' आदि। इनका विश्वविख्यात ग्रंथ।

'प्रिंसीपुल्स ऑफ लिटरैरी क्रिटिसिज्म' (साहित्यालोचन के सिद्धांत) है, जिसमें रिचार्ड्स के आलोचना-विषयक सैद्धांतिक मतों का गुंफन किया गया है। उन्होंने अपने सैद्धांतिक विचारों का व्यावहारिक रूप अपने 'प्रैक्टीकल क्रिटिसिज्म' नामक

ग्रंथ में प्रस्तुत किया है। इसमें 13 कविताओं की व्यावहारिक समीक्षा करने के पश्चात आलोचनात्मक सूत्रों का उपस्थापन हुआ है। 'द फाउन्डेशन ऑफ इस्थेटिक्स' नामक ग्रंथ की रचना जेम्स वुड और सी. के. ऑग्डेन की सहायता से हुई है, जिसमें सौंदर्य की परिभाषा का विवेचन कर उन सबों में मनोवैज्ञानिक आधार का प्राधान्य स्वीकार किया गया है। इसमें आवेगों के सामंजस्य तथा सन्तुलन को कला और सौंदर्यानुभूति का उद्देश्य माना गया है। 'दि मीनिंग ऑफ मीनिंग' की रचना ऑग्डन के सहलेखन में की गई है। इसमें लेखकों ने मुख्यतः अर्थ-विज्ञान का विवेचन कर भाषा के तथ्यात्मक और रागात्मक स्वरूप का निरूपण किया है। 'सायन्स एण्ड पोयट्री' में वैज्ञानिक विकास के संदर्भ में कविता के भावी स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है और उसकी उपयोगिता सिद्ध की गई है। 'द फिलॉसफी ऑफ रेहटॅरिक' में मेटाफर या रूपक की महत्ता प्रतिपादित की गई है। सम्प्रति रिचार्ड्स 'बेसिक इंगलिश' में अधिक रुचि ले रहे हैं।

रिचार्डस ने अर्थ-विज्ञान को प्रकाश में लाने का अथक परिश्रम किया है। उनके चिंतन का आधार रूपक है। रिचार्ड्स का समीक्षा-सिद्धांत मनोवैज्ञानिक मूल्यवाद के नाम से विख्यात है; उनकी आलोचना का मुख्यधारा मनोविज्ञान है। वे काव्य और विज्ञान में अन्तर स्थापित करते हुए सभ्यता की सुरक्षा का आधार या प्रमुख साधन कविता को मानते हैं। उन्होंने सम्प्रेषणीयता के सिद्धांत (Communication) की स्थापना कर यह सिद्ध किया है कि कला मनुष्य की सम्प्रेषणीयता का उत्कृष्ट रूप है। उनके साहित्य-संवंधी विचार के दो रूप हैं—मूल्य-संबंधी और कला-संबंधी, वे प्रेषणीयता को काव्य का अचेतन तत्त्व मानते हैं। रिचार्ड्स ने काव्य-भाषा पर भी गंभीरता पूर्वक विचार किया है और समीक्षा तथा समीक्षक के गुणों का विश्लेषण किया है।

उनके अनुसार एक श्रेष्ठ आलोचक के तीन गुण होते हैं—मूल्य का निर्णय करना और मूल्यों का पारखी होना, कलात्मक कृति के अनुरूप, अपनी झक को दूर कर, मानसिक अनुभव प्राप्त करना तथा कृतियों की प्रधान विशेषताओं के अनुसार कलाकारों के अनुभवों में भेद प्रस्तुत करना। वे कविता को अनुभव-मात्र मानते हैं। उन्होंने विज्ञान तथा मनोविज्ञान की सहायता ग्रहण कर कविता की महत्ता स्वीकार की है और सिद्ध किया है कि भौतिक प्रगति के साथ कविता की महत्ता भी बढ़ती जाएगी। कविता के विरुद्ध उठाए गए विज्ञान के समर्थकों का उन्होंने विभिन्न दृष्टिकोणों से उत्तर देकर विज्ञान के आतंक को मिटाने का प्रयास किया

हैं। उन्होंने प्रभाववादियों और कलावादियों के तर्कों का सयुक्तिक खंडन किया और बताया कि सौंदर्य और कला का जीवन के साथ निकटतम संबंध है। उनके अनुसार जो मूल्यवान है, वहीं सौंदर्य है अर्थात सौंदर्य में मूल्य का समावेश होता है। वे कला-चिंतन तथा समीक्षा को अधिकाधिक वैज्ञानिक रूप प्रदान करते हैं और अपना यह निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं कि साहित्य का उद्देश्य पाठक या श्रोता में संतुलित मनोवैज्ञानिक स्थिति का निर्माण करना है। उनका काव्य-विवेचन शब्द-शक्तियों से प्रारंभ होता है। वे शब्द को काव्य की इकाई मानते हैं। भाषा का कार्य साहित्य में विशेष रूप से अर्थ-वहन करना है। अर्थग्रहण द्वारा ही पाठक प्रभावित होता है। रिचार्ड्स ने अर्थ के चार प्रकारों का निर्देश किया है—अर्थ (सेंस), भाव (फीलिंग), ध्वनि (टोन) तथा आकांक्षा (इंटेशन)। इन चारों उपकरणों के सम्मिलन से ही भाषा के सम्पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति होती है; किसी एक ही अंग को लेकर चला जाय तो भ्रम और अनर्थ की आशंका बनी रहती है। अर्थ या सेंस के द्वारा भाषा के सामान्य अर्थ का ज्ञान होता है और पाठक या श्रोता का ध्यान किसी स्थिति की ओर आकृष्ट होता है। भाव या फीलिंग वस्तु के साथ लेखक के राग-बन्ध को द्योतित करता है। कविता में भाव की प्रधानता होती है और विज्ञान में इसका गौण महत्त्व होता है। विज्ञान में अर्थ की महत्ता होती है। जब पाठक वस्तुस्थिति का बोध करना चाहता है तो उसके प्रति उसके मन में अनुराग की प्रबलता होती है; भावों का कोई वैयक्तिक रंग होता है। अर्थ का हमारे भाव-निकाय से संबंध है। जब लेखक भाव को अभिव्यक्त करने के लिए कुछ चुने हुए विशेषणों, क्रिया या क्रिया विशेषणों का प्रयोग करता है तो उसकी भाषा अलंकृत हो जाती है। लेखक पाठक या श्रोता के अनुरूप अनजाने या जानबूझ कर भाषा का प्रयोग करता है; इसे ही ध्वनि कहते हैं। आकांक्षा या इंटेशन प्रत्येक कृति में निहित चेतन या अचेतन लक्ष्य को कहते हैं। रिचार्ड्स रूपक के प्रयोग को काव्यभाषा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष मानते हैं; क्योंकि रूपकों में अनेक अर्थों की संसृष्टि होती है। इससे काव्य-भाषा की शक्ति का विस्तार होता है। रूपक में सूचना, भाव, संकेत आदि घनीभूत होकर विद्यमान रहते हैं और इस प्रकार उसमें अर्थ में कई स्तर और पक्ष सन्निविष्ट होते हैं। उनके अनुसार छन्द में भाव, अर्थ और ध्वनि का समान महत्त्व होता है।

"जिसे आलोचक का आसन मिलता है वह मूल्यों का निर्णेता होता है। कलाएँ अनिवार्यतः, और कलाकार के मन्तव्य से निरपेक्ष, अस्तित्व की स्वरूपिणी होती हैं। मैथ्यू आर्नल्ड ने जव यह कहा कि कविता जीवन की आलोचना होती है तो

वह एक ऐसी बात कर रहे थे जो एक दम प्रत्यक्ष है पर जिसकी बराबर उपेक्षा की गई है। कलाकार का काम तो उन अनुभूतियों को अंकित कर देना एवं चिरस्थायी बना देना होता है जिन्हें वह सबसे अधिक मूल्यवान समझता है और वही ऐसा आदमी होता है जिसके पास अंकनीय मूल्य मूल्यवान अनुभूतियाँ होने की सबसे अधिक सम्भावना होती है। कलाकार वह बिन्दु है जहाँ मन का विकास सुव्यक्त हो उठता है। उसकी अनुभूतियों में कम-से-कम उन अनुभूतियों में जो उसकी कृति को मूल्यवान बनाती है-ऐसे आवेगों का सामंजस्य लक्षित होता है, जो अधिकांश लोगों के मन में अस्तव्यस्त, परस्पर अन्तर्भूत तथा द्वन्द्वरत हुआ करते हैं। जो कुछ अधिकांश लोगों के मन में अव्यवस्थित रूप में विद्यमान होता है, उसकी कृति उसी को व्यवस्था देती है। यदि अव्यवस्था में से व्यवस्था का विकास करने में उसकी विफलताएँ अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक परिपुष्ट हो जाती हैं तो उसका कारण-कम—से-कम कुछ हद तक—कलाकार का प्रबलतर साहस होता है: यह उसकी स्पृहा का दण्ड एवं उसकी उपेक्षाकृत अधिक नम्यता का परिणाम होता है। परंतु, जब वह सफल होता है तो उसकी सिद्धि का मूल्य सदैव पूर्णतर संगठन में प्रकट होता हैं जिसके फलस्वरूप प्रतिचेष्टा तथा क्रियाशीलता की अधिक सम्भावनाओं की उद्‌भावना होती है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 293) रिचार्ड्स साहित्य को एक उपयोगी वस्तु मानकर उसकी उपयोगिता मनोवैज्ञानिक भूमिका पर सिद्ध करते हैं। साहित्य का कोई स्वतंत्र क्षेत्र नहीं होता, उसकी उपयोगिता अन्य वस्तुओं की ही भाँति होती है। वे कला का नीति के साथ संबंध स्थापित कर उसके प्रचलित स्वरूप को संकुचित मानते हैं। उनके अनुसार साहित्य सार्वजनिक वस्तु है और प्रेषणीयता उसका अनिवार्य गुण है। कलाकार यदि स्वान्तः सुखाय भी कला-सृष्टि करे, तब भी उसमें प्रेषणीयता लगी रहती है। वे कलाओं को मनुष्य की सम्प्रेषणीयता का उत्कृष्ट रूप मानते हैं और उसे (सम्प्रेषणीयता को) कला का तात्त्विक धर्म स्वीकार करते हैं। वह कला से बाह्य नहीं है। प्रेषणीयता का अभिप्राय कलाकार या साहित्यकार द्वारा श्रोता या पाठक के मन में स्वानुभूत भाव की दशा को उत्पन्न करना है। कलाकार जब किसी भाव की अनुभूति करता है तो उसका आवेष्ट न के साथ विशेष प्रकार का संबंध स्थापित हो जाता है। उसकी सफलता इसमें है कि वह अपनी रचना के द्वारा पाठकों के मन में वैसी ही अनुभूति और आवेष्ट न का अनुभव करा दे। सम्प्रेषण-प्रक्रिया की सफलता के लिए कलाकार में व्यापक अनुभव का होना आवश्यक है और उसे प्रेषणीय भाव का स्पष्ट और पूर्ण बोध रहे। सम्प्रेषण में

कुछ विशेष परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की एक समान अनुभूति होती है। "सम्प्रेषण उस समय होता है जब कि कोई व्यक्ति अपने परिवेश में इस रूप में क्रिया-सम्पादन करता है कि दूसरा व्यक्ति उससे प्रभावित हो उठता है और दूसरे व्यक्ति को उसी प्रकार की अनुभूति होती है जैसी अनुभूति पहले व्यक्ति को होती है। दूसरे व्यक्ति की अनुभूति आंशिक रूप में पहले व्यक्ति की अनुभूति के फलस्वरूप होती है। संप्रेषण एक जटिल प्रक्रिया है और यह द्विधा सम्पादित होता है। प्रथम व्यक्ति (कलाकार) और द्वितीय व्यक्ति (प्रमाता) की अनुभूति समान होती है और प्रमाता की अनुभूति कम या अधिक मात्रा में कलाकार की अनुभूति के आश्रित होती है।" (साधारणीकरण: एक शास्त्रीय अध्ययन)

रिचाईस मूल्यवादी विचारक हैं। उन्होंने काव्य या कला के मूल्य का विवेचन मनोवैज्ञानिक आधार पर किया है। काव्य-रचना का मानवीय क्रिया होने के कारण उसका मूल्य मानव की अन्य क्रियाओं की ही भाँति होता है। वे कलाओं को मनुष्य के अंकित मूल्य विचारों का सुरक्षित भण्डार मानते हैं। उनके अनुसार किसी वस्तु के मूल्यवान होने का अभिप्राय आवेगों की सक्रियता तथा उनकी एषणाओं की संतुष्टि है। कला का आस्वाद है मूल्यवान मन:स्थिति की उत्पत्ति। उनके 'मूल्य सिद्धांत' में ही काव्य का प्रयोजन भी निहित है। उनके अनुसार काव्य का प्रयोजन है मानवीय अनुभूति के क्षेत्र को व्यापक बना कर उनके परस्पर सहयोग की व्यवस्था करना। काव्य पाठक के मन में ऐसी संतुलित मन:स्थिति उत्पन्न करता है जिसमें बाह्य क्रिया के लिए तत्परता भी रहती है। उन्होंने आवेगों के दो रूप निर्धारित किए हैं—वासना या तृष्णा (Expectancy) और वितृष्णा या घृणा (aversion) प्रथम प्रकार के आवेग प्रवृत्ति मूलक हैं और द्वितीय प्रकार के आवेग निवृत्तिमूलक। इन्हें मुख्यत: अचेतन की क्रिया कहा जाता है। साहित्य का मूल्य हमारे आवेगों में संगति और संतुलन स्थापित करना है। जिन साधनों के द्वारा मानवीय अनुभूतियों का क्षेत्र विस्तृत बनता है, साहित्य उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और शक्तिशाली साधन है। साहित्य का उद्देश्य पाठक या श्रोता के मन में शून्य की स्थिति उत्पन्न करना नहीं होता और न उसे उत्तेजित कर बाह्य क्रिया से निरत कर देना होता है।

रिचाईस कला के नैतिक सिद्धांत को प्रश्रय देकर कला और जीवन के अभेद संबंध की स्थापना करते हैं। इसीलिए उन्होंने ब्रेडले के कलावादी सिद्धांतों का खण्डन किया है वे शेली की भाँति इस विचार के पोषक हैं कि नैतिकता का

शिलान्यास कवियों द्वारा किया जाता है, धर्मोपदेशकों द्वारा नहीं। रिचार्ड्स एक वैज्ञानिक अन्वेषक हैं और उनकी समीक्षा का आधार मनोवैज्ञानिक है। वे सौंदर्यवादियों के सौंदर्य की परिभाषाओं का मूल्यांकन कर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को ही प्रमुखता देते हैं। उन्होंने समीक्षाशास्त्र का संबंध विज्ञान के साथ स्थापित किया है।

Riddle (रिडल) मुकरी

लोक प्रचलित पहेलियों को रिडल कहते हैं।

Romance (रोमांस) रम्याख्यान या रोमांचक काव्य

रोमांस शब्द का प्रयोग ऐसी रचनाओं के लिए होता है, जिनमें वीर और शृंगारस की गाथाएँ पद्यबद्ध होती हैं। इनमें प्रेम, वीरता, साहस तथा अद्भुत और असम्भाव्य घटनाओं का वर्णन किया जाता है। प्रारंभ में इसका प्रयोग भाषा के अर्थ में किया जाता था। लैटिन भाषा जिस समय फ्रांस में कुलीन भाषा के रूप में प्रचलित थी, उस समय लैटिन से भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए फ्रेंच को रोमांस भाषा कहा जाता था। आगे चल कर इसका अर्थ विस्तार हुआ और फ्रेंच, इतालवी तथा स्पेनिश भाषाएँ 'रोमांस भाषाएँ' कही जाने लगीं। जब इन भाषाओं में साहित्य-रचना होने लगी तो लैटिन रचनाओं से विभेद प्रकट करने के लिए इन भाषाओं की कृतियाँ रोमांस कही जाने लगीं। कालांतर में ऐसी रचनाएँ गद्य और पद्य दोनों में होने लगीं और इनमें अद्भुत और विस्मय जनक घटनाओं का समावेश करते हुए प्रेम और वीरता की कथाएँ कही जाने लगीं। इस प्रकार की रचनाएँ मध्य युग में लिखी गईं।

यूरोपीय साहित्य में कई प्रकार की रचनाओं को रोमांस के नाम से अभिहित किया जाता है। प्रथम शती से लेकर तृतीय शताब्दी तक ग्रीक रोमांस अधिक लोकप्रिय हुए जिनमें शृंगारिकता और प्रणयव्यापार का प्राधान्य था। इनमें नायक तथा प्रमुख पात्र शौर्य का भी प्रदर्शन करते थे। मध्ययुग में रोमांस इटली, जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड तथा स्पेन आदि देशों में प्रमुख काव्य-रूप में प्रतिष्ठित हुआ और स्वच्छन्दतावाद का साहित्यिक आंदोलन तो रोमांसिक तत्त्वों से आपूर्ण ही रहा। आधुनिक युग में कविता तथा कहानी में रोमांसिक तत्त्वों का अभाव नहीं है।

रोमांस कथा महाकाव्य से मिलती जुलती है, किंतु इसमें महाकाव्य की अपेक्षा कथा की संगठना ढीली और अनियंत्रित होती है। रोमांस के विभिन्न अंग महाकाव्य की भाँति एक निश्चित व्यवस्था के भीतर सम्बद्ध नहीं होते; उसमें कथा-वर्णन की दक्षता सर्वत्र विद्यमान नहीं रहती है। महाकाव्य के नायक की भाँति रोमांस के भी नायक या अन्य पात्र शौर्य-शक्ति से सम्पन्न होते हैं, पर उनमें नैतिक दृष्टि उतनी सुदृढ़ नहीं होती। महाकाव्य की तरह इसकी सामाजिक पीठिका स्पष्ट नहीं होती; किंतु नारी पात्रों का स्वरूप आकर्षक और सुंदर होता है पुरुषों की अपेक्षा वे अधिक चमत्कारक चित्रित होती हैं। रोमांस में कल्पना का उन्मुक्त वैभव प्रदर्शित होता है और शौर्य तथा प्रणय को उसका प्रमुख विषय बनाया जाता है।

रोमांचक आख्यान या रोमांस महाकाव्य से सर्वथा पृथक् काव्यविधा है। इसमें आवेगशील उत्तेजना का प्राधान्य होता है। इसमें कथानक को बढ़ाया जाता है; फलतः वस्तुतत्त्व विकसित नहीं होता। रोमांचक आख्यानों में सुंदर कथात्मक वर्णन अवश्य प्राप्त होते हैं; किंतु विशिष्ट साहित्यिक औदार्य उनकी वस्तुकल्पना में व्यक्त नहीं होता। रोमांचककाव्य का उद्देश्य मनोरंजन होने के कारण इसमें चरित्र-चित्रण की प्रधानता न होकर घटनाओं का प्राबल्य होता है और महाकाव्य की तरह इसमें सहजता और स्वाभाविकता न होकर अतिकाल्पनिकता और रहस्यात्मकता का परिवेश उभरा होता है। रोमांस के पात्र मानवीय न होकर असामान्य और असाधारण होते हैं और वे असामान्य ढंग का व्यवहार करते दिखाई पड़ते हैं।

महाकाव्य की भाँति रोमांस में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावनाएँ प्रतिफलित नहीं होती, बल्कि इसमें व्यक्तिगत झगड़े मिथ्याभिमान से पूर्ण होते हैं और उनमें मर्यादा का ध्यान नहीं रहता। युद्ध और दुस्साहस के कार्य को इसमें फैशन के रूप में ग्रहण किया जाता है और राष्ट्रीय भावनाओं की प्राप्ति तो आकस्मिक होती है। रोमांस में नैतिकता और धर्म मानवीय प्रदर्शन का काम न कर ऊपर से आरोपित होते हैं और वे कठोर नियम या सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। रोमांचक काव्य में विकसनशील महाकाव्यों के रोमांचक तत्त्वों का विकास देखा जाता है। इनमें युद्ध, प्रेम, भयंकर यात्रा का अत्युक्तिपूर्ण वर्णन होता है। रोमांचक महाकाव्य किसी महान उद्देश्य से प्रेरित होकर नहीं रचे जाते, उनका ध्येय मनोरंजक कथा कहना मात्र होता है। रोमांचक महाकाव्यों के वीर पात्र वीरभावना से प्रेरित नहीं होते और न वे वीरता का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इसका कथानक यथार्थ जीवन पर आश्रित नहीं होता, पर वह प्राणवन्त और आकर्पक होता है। रोमांचक

महाकाव्य में रोमांचक और नाटकीय तत्त्व दोनों होते हैं, पर यदि उनमें नाटकीयता का अभाव हुआ तो वे रोमांचक कथाकाव्य बन कर रह जाते हैं। स्पेन्सर का 'फेयरी क्वीन' रोमांचक महाकाव्य का उदाहरण है।

Romantic age (रोमांटिक एज) स्वच्छन्दतावादी युग

यूरोपीय आलोचना के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी की साहित्यिक विचारणा को स्वच्छन्दतावादी युग की अभिधा प्रदान की गई है। आलोचना की यह धारा नव्यशास्त्रवादी साहित्य-सिद्धांत के नियमों और मानों के विरुद्ध विद्रोह करती है और प्राचीन साहित्य चिंतन से सर्वथा विच्छिन्न होकर प्रवाहित होती है। इस साहित्यधारा में उन्मुक्त भावधारा का प्रबल वेग दृष्टिगोचर होता है और परिपारी विहित परम्पराभुक्त विचार-पद्धति के स्थान पर कवि की आत्मानुभूति और कल्पना को प्रधानता दी जाती है। "रोमांटिक साहित्य वस्तुतः जीवन के उस आवेगमय पहलू पर जोर देने के कारण अपना यह रूप धारण कर सका है जो कल्पना प्रवण अंतर्दृष्टि द्वारा चालित किंवा प्रेरित होता है और स्वयं भी इस प्रकार की अंतर्दृष्टि को चालित और प्रेरित करता रहता है।" (रोमांटिक साहित्यशास्त्र, भूमिका, पृ. 1) इस साहित्य में कल्पना और आवेग का योग है और यह साहित्य व्यक्तिनिष्ट अराजकता का प्रतीक है।

स्वच्छन्दतावाद का प्रथम उन्मेष काव्य के क्षेत्र में हुआ और यूरोप के प्रायः सभी देशों में स्वच्छन्द चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति साथ-साथ हुई। पर, इसका सर्वप्रथम उद्भव जर्मनी और इंगलैंड में हुआ और फ्रांस में यह आंदोलन 1830 ई. में आरंभ हुआ। इटली में इस भावधारा का प्रवर्त्तन 1816 ई. के आसपास हो चुका था। इस प्रकार इस साहित्यिक आंदोलन का परिवेश क्रमशः सम्पूर्ण यूरोप हो जाता है और इसे यूरोपीय आंदोलन कहा जा सकता है। विद्वानों ने इसे पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था और स्थितियों की प्रतिक्रिया का परिणाम स्वीकार किया है। चूँकि यूरोप की ऐतिहासिक स्थितियों में समानता थी, अतः इसका प्रभाव समस्त महादेश पर दृष्टिगोचर हुआ। इसके मूल में औद्योगिक क्रांति और विज्ञान के बढ़ते हुए चरण हैं और इसका उत्स व्यावसायिक क्रांति की उथल पुथल है जो साहित्य में कल्पना के अविरल प्रवाह तथा निविड़ आवेग के रूप में प्रस्फुटित हुई। व्यावसायिक और औद्योगिक क्रांति ने नये समाज को जन्म दिया और वैज्ञानिक साधनों के उपयोग के कारण प्राचीन जीवनमूल्यों पर प्रबल आघात पड़ा तथा परंपरागत सामाजिक व्यवस्था की शृंखलाएँ छिन्न-भिन्न हो गईं।

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में कतिपय दार्शनिकों की स्थापनाओं ने भी काव्य-दर्शन में मौलिक परिवर्तन किया और उनके प्रभाव में आकर (विशेषत: काण्ट फिक्टे, शेलिंग) काव्य में विवेक तथा रीति के स्थान पर अंतप्रेरणा, अंतर्दृष्टि, अंत-प्रकाश, कल्पना तथा आनन्दातिरेक का प्राबल्य हुआ। इसी समय सौंदर्यदर्शन की नवीन भूमिका प्रस्तुत हुई और फ्रांस की राज्य क्रांति ने इसे प्रेरणा प्रदान की। यूरोप के अन्य राष्ट्रों की तुलना में जर्मनी, फ्रांस और इंगलैंड वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगिक विकास की दृष्टि से अधिक सशक्त थे, फलत: रोमांटिक साहित्य की अवतारणा इन्हीं देशों में हुई। इस युग की समीक्षा-पद्धति दोष-दर्शन के सीमित क्षेत्र से ऊपर उठ कर सौंदर्य-दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित हुई और उसने साहित्य के स्वस्थ और स्पष्ट स्वरूप की स्थापना की।

ऐतिहासिकों का कथन है कि स्वच्छन्दता के बीज का अंकुरण 18वीं शताब्दी के पूर्व हो चुका था जो 19वीं शती में आकर पल्लवित और पुष्पित हुआ। रेनेवेलेक का कहना है कि "आलोचना के इतिहास में काव्य की भावात्मक अवधारणा का अभ्युत्थान, ऐतिहासिक दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा, अनुकरण-सिद्धांत का, नियमों और शैली का विवलित निरसन—ये सब परिवर्तन के निश्चित लक्षण हैं और ये 19वीं शती के आरंभ की अपेक्षा 18वीं शती में ही प्रस्फुरित हो उठे थे।" जर्मनी के स्वच्छन्दतावादी आलोचकों में लेसिंग, जे. ई. श्लेगेल, फ्रीड्रिख श्लेगेल, एफ. एच. नोवालिस, शिलर तथा महाकवि गेटे प्रसिद्ध हैं; पर इन सबों में अधिक ख्याति गेटे को मिली। लेसिंग की प्रसिद्ध कृति 'लाओकून' 1766 ई. में प्रकाशित हुई। इसमें चित्रकला, मूर्त्तिकला तथा कविता की मौलिक विशिष्टताओं का उद्घाटन किया गया है। उसने चित्रकला और कविता में अंतर उपस्थित करते हुए इस तथ्य का खण्डन किया कि चित्र मूक कविता है और कविता मुखर चित्र। उसके अनुसार प्रत्येक प्रतिभाशाली कलाकार अपने मार्ग का स्वयं निर्माण करने में समर्थ है। वह कलाकार को बन्धनमुक्त मानकर, उसकी किसी प्रकार की परतंत्रता को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं था। उसके अनुसार कवि, चित्रकार तथा मूर्त्तिकार सभी एक शाश्वत और सार्वजनिक सत्य की अभिव्यक्ति करते हैं। फ्रीडिख ने इस तथ्य की स्थापना की कि साहित्य की शक्ति धन, धर्म और राज्य की शक्ति से भी अधिक ऊँची है और इसमें मनुष्य के समग्र बौद्धिक जीवन का समावेश होता है। गेटे महान कवि और युगप्रवर्तक आलोचक था। सेंट व्यव ने उसे सभी युगों का महानतम समीक्षक कहा है। वह कला की पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थक था। उसका कहना था कि कलाकार सदा अंतर्जगत् की प्रेरणा से कार्य करे। उसने कविता को

आत्माभिव्यक्ति कहा जिसमें कवि को वैयक्तिक संतुष्टि प्राप्त होती है। उसके उद्गार इस प्रकार हैं—"मेरी कृतियाँ महान आत्म स्वीकृति के अंश हैं।" "मेरी सम्पूर्ण कविता कृतियाँ अवसर सापेक्ष कृतियाँ हैं।" "वास्तविक रचनात्मक शक्ति अचेतन में होती है।" "कलाकार जन्मजात होता है", "कविता प्रेरणा है-प्रतिभा है।" गेटे के अनुसार कलाशक्ति निरंकुश और जन्मजात है और कविता वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। जब कलाकार कला-निर्माण के समय उसके प्रभाव-मूल्य पर ध्यान नहीं रखता तभी कला-कृति में सौंदर्याधान होगा। "काव्य शिक्षा-प्रद होना चाहिए, परंतु प्रच्छन्न रूप से। वह पाठक का ध्यान संवेद्य मूल्यवान् विचार की ओर आकृष्ट करे, परंतु उससे शिक्षा पाठक स्वयं ही ग्रहण करे, जैसे जीवन से करता है।"

फ्रांस में विक्टर ह्विगो (1802-1885) ने स्वच्छन्दतावाद का अग्रदूतत्व किया। वह कला को सभी प्रकार के बंधनों तथा पूर्वाग्रहों से मुक्त करना चाहता था। उसने 'क्रामवेल' (1827 ई.) की भूमिका में कविता की गत्यात्मक तथा प्रतीकात्मक व्याख्या प्रस्तुत की। वह कलाकृति में अंतरंग क्रम तथा शैली और कथ्य की एकान्विति पर बल देकर विरोधी तत्त्वों के बीच सामंजस्य स्थापित करता है तथा असुंदरता और विलक्षणता के श्रेष्ठतर संश्लेषण को कलाकार का मुख्य कर्त्तव्य मानता है। ह्विगो के दृष्टिकोण को ग्रहण कर शार्ल्स औगुस्ताँ तथा सैंतब्यूव ने फ्रेंच आलोचना को समृद्ध किया। ब्यूव ने प्रकृति-विज्ञान के सिद्धांत को साहित्य में उतार कर यह सिद्ध किया कि साहित्य भी पेड़-पौधों की तरह विकसित होता है। उसने यह विचार प्रकंट किया कि कलाकार बाह्य आरोपित नियमों से मुक्त है, किंतु उसे अपने व्यक्तित्व के अस्तित्व के नियमों का पालन करना चाहिए। वह व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता है, जिसके बिना वह जी नहीं सकता। उसने प्राचीन आलोचना-पद्धति को व्यर्थ समझ कर अस्वीकार कर दिया तथा नये नियमों को अपनाने पर जोर दिया। किसी कृति की आलोचना करते समय कृतिकार के व्यक्तित्व के आलोक में उसकी परख करनी चाहिए, ऐसा उसका विचार था। उसके अनुसार साहित्यकार के व्यक्तित्व में ही साहित्य का मूल विद्यमान है।

इंगलैंड में स्वच्छन्दतावादी आंदोलन का प्रादुर्भाव विलियम वर्ड्सवर्थ की 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिका से होता है। उसकी भूमिका को स्वच्छन्दतावादी काव्य-चिंतन का घोषणापत्र कहा जाता है। इसमें उसने रोमांटिक जीवनमूल्यों, नवीन अर्थों, संदर्भों और अभिव्यक्ति की प्रणालियों का अन्वेषण किया है तथा

ह्रासग्रस्त नव्यशास्त्रीय काव्य-परंपरा का निषेध कर काव्य के शाश्वत मूल्यों की उद्भावना की है। आंग्ल स्वच्छन्दतावादी काव्य-चिंतन के विकास में वर्ड्सवर्थ, शेली, कॉलरिज, कीट्स, बायरन, सदे, लेह हंट, चार्ल्स लैम्ब, डिक्विन्सी तथा विलियम हैजलिट का महत्त्वपूर्ण योग है। वर्ड्सवर्थ कविता के स्वरूप निरूपण में सहजानुभूति तीव्रभावाभिव्यक्ति के अतिरिक्त सामान्य दैनिक जीवन की भाषा के प्रयोग पर बल देता है तथा भावना को महत्त्व देने के कारण ग्रामीण तथा साधारण जीवन के चित्रण को आवश्यक मानता है। उसने कविता की परिभाषा देते हुए कहा—"कविता मानव मन की प्रवल वेगवती भावनाओं की सहज उमड़न है जिसकी उत्पत्ति प्रशांत क्षणों में स्मृत मनोवेगों से होती है।" वह काव्य-रचना के लिए भावों के सहज उच्छलन तथा साधारण काव्य-शैली को उसका अनिवार्य उपादान स्वीकार करता है तथा अरस्तू की भाँति कथानक अथवा परिस्थिति को प्रधान न मान कर अनुभूति की मुख्यता स्वीकार करता है। काव्य के विविध उपकरणों में वह निरीक्षण शक्ति, भावप्रवणता, विचारणा, ललित कल्पना तथा विवेक को क्रमशः महत्त्व प्रदान करता है तथा महान कलाकृति को सदा मनुष्य की अन्तः सत्ता की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मानता है।

कॉलरिज कवि के अतिरिक्त दार्शनिक, सौंदर्यशास्त्री तथा आलोचक के रूप में परिगणित होता है। उसने 'बायोग्राफिया लिटरेरिया' नामक महनीय आलोचना-ग्रंथ का प्रणयन किया है। उसने दर्शन और काव्य के अविच्छिन्न संबंध की चर्चा की है तथा कल्पना शक्ति को दिव्यप्रेरणा एवं ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति की सहोदरा माना है। उसने कल्पनाशक्ति को ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति के समान घोषित किया और बतलाया कि कल्पना ससीम जीवात्मा में असीम ब्रह्म की शाश्वत सृजन-शक्ति की आकृति है। वह कल्पना-शक्ति को अलौकिक मानकर उसे समष्टि-मानस का प्रतिनिधि कहता है। "मेरे विचार में कल्पना तो मुख्य होती है या गौण। मुख्य कल्पना तो मेरे अनुसार समस्त मानवीय ज्ञान की जीवंत शक्ति और प्रमुख माध्यम होती है, वह असीम में होने वाली अनन्त सृजन-प्रक्रिया की ससीम मन में आकृति होती है। गौण कल्पना को मैं कल्पना की छाया-मात्र समझता हूँ, सचेतन संकल्प-शक्ति के साथ उसका सह-अस्तित्व होता है, परंतु फिर भी माध्यम का प्रकार वह वैसी ही होती है जैसी मुख्य कल्पना—अंतर होता है मात्रा का और क्रिया-विधि का। पुनः सृजन के निमित्त उसका तिरोधान, विकिरण, विघटन होता है, या जहाँ यह प्रक्रिया असम्भव होती है वहाँ भी आदर्शीकरण तथा एकीकरण का प्रयत्न तो होता ही है। वह मूलतः

सजीव होती है—वैसे ही जैसे (वस्तुओं के रूप में) सभी वस्तु मूलत: अचल और निर्जीव होती है। इसके विपरीत, ललित कल्पना की क्रीड़ा का अचलता और निर्दिष्टता के क्षेत्र के अतिरिक्त और कोई ठिकाना नहीं होता। ललित कल्पना, वास्तव में, देश काल के अनुशासन में मुक्त स्मरण की एक रीति है- और कुछ नहीं वह इच्छा शक्ति के उस अनुभव मूलक व्यवहार से पुष्ट और परिवर्तित होती है जिसे हम चयन शब्द से व्यक्त करते हैं।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 166)

शेली स्वच्छन्दतावादी युग (1792-1822 ई.) का महान साहित्य-चिंतक और कवि है। उसने अपने प्रसिद्ध निबंध 'डिफेंस ऑफ पोयट्री' में अपनी साहित्यिक मान्यताओं का निरूपण किया है। कल्पना शक्ति को काव्य का प्रमुख उपादान मानते हुए शेली ने कविता को कल्पना की अभिव्यक्ति कहा जो मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। उसके अनुसार पक्षियों के कलरव की भाँति कविता अपाचित और अनायास होती है। वह आयास रहित स्वाभाविक काव्य-रचना का समर्थक है। काव्य के उद्देश्य पर विचार करते हुए उसने कहा-"कविता प्रत्येक वस्तु को रुचिरता प्रदान करती है। जो परम सुंदर है उसके सौंदर्य की वह अभिवृद्धि करती है और जो अत्यंत कुरूप है उसमें सौंदर्य का समावेश करती है वह भय और उल्लास, शोक एवं आह्लाद, चिरन्तनता और परिवर्तनशीलता का संयोग कराती है। अपने कोमल भार से वह विरोधी तत्त्वों का भी एकान्वय सम्भव कराती है।" (पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परंपरा, पृ. 180)

स्वच्छन्दतावादी साहित्य-चिंतन के अनुसार काव्य में व्यक्तिवाद की प्रधानता होती है और उसमें भावप्रवणता तथा कल्पनाशीलता का विशेष स्थान रहता है। अनुभूति की प्रधानता के कारण कवि काव्य में वैयक्तिक सौंदर्य, प्रेम, विराट् तत्त्व, रहस्यानुभूति, विषाद, असंतोष तथा स्वातंत्र्यलालसा की अभिव्यक्ति करता हैं। इसकी शैलीगत विशेषताओं में मानवीकरण, बिम्ब-विधान, प्रतीक योजना तथा संगीतात्मकता को स्थान दिया गया है। यह काव्य कल्पना की उर्वरता तथा भावावेग की संजीवनी शक्ति पर आधृत है तथा इसमें कल्पना की उन्मुक्तता और भावावेग की तीव्रता प्रभावोत्पादकता की सृष्टि करती है। रोमांटिक काव्य नवीन सौंदर्य-चेतना को जाग्रत कर सामाजिक रुचि का परिष्कार न कर उसमें एक नवीन सौंदर्यचेतना का संचार करता है। हृदय के गंभीर भावावेश की अभिव्यक्ति करने

के कारण रोमांटिक साहित्य में भावोष्णता विद्यमान रहती है। रोमांटिक जीवन दृष्टि जीवन और जगत् के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जो मानव-अस्तित्व के मूल में अनुस्यूत है। मनुष्य में रागात्मक सत्ता को प्रेरित करने के कारण यह प्रवृत्ति सार्वभौमिक और सार्वयुगीन है तथा प्रत्येक साहित्य में भावात्मक सत्ता के रूप में स्थित रहती है। इसमें पुरातनता, रूढ़िप्रियता, परंपराप्रेम, जड़ता की ओर उन्मुख नैतिक बंधनों के प्रति आग्रह, धार्मिक संकीर्णता, राजनीतिक दमन, आर्थिक वैषम्य के प्रति विद्रोह का स्वर परिलक्षित होता है तथा सर्जन, सजगता और गतिशीलता इसके स्वाभाविक उपादान हैं। "रोमांटिक साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है, जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह से धन-संश्लिष्ट निविड़ आवेग की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड़ आवेग—वे दो निरंतर घनीभूत मानसिक वृत्तियाँ ही इस व्यक्तित्व-प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी हैं।" (डॉ. देवराज उपाध्याय, रोमांटिक साहित्यशास्त्र, भूमिका, पृ. 2) स्वच्छन्दतावादी आलोचकों ने अनुभूति की अभिव्यक्ति को ही कला की संज्ञा दी और मानसिक क्रिया में ही कला की सत्ता स्वीकार करने वाले नवीन मानदण्ड की स्थापना की। इस दृष्टि से साहित्य में विषय वस्तु का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता, अपितु मानसिक प्रक्रिया ही घटना या व्यापार को आकार प्रदान कर मन की क्रिया को रूप देती है जिसके कारण सारे काव्य व्यापार का क्षेत्र मनोमय हो जाता है। कला को मानसिक अभिव्यंजना कह कर स्वच्छन्दतावादी आलोचकों ने सौंदर्य के साथ अभिव्यंजना का योग कराया है। इस आलोचना-सिद्धांत के अनुसार सौंदर्य का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता; वस्तुतः अभिव्यंजना ही कला का आदर्श होता है। कला को प्रेषणीय अभिव्यंजना कहना चाहिए, उसमें केवल अभिव्यंजना का ही तत्त्व प्रधान नहीं होता, प्रेषणीयता का भी तत्त्व समाहित होता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य-चिंतन के अनुसार आनन्द सौंदर्य का अनुवर्ती है और सौंदर्य कल्पना पर आश्रित है तथा आह्लादतत्त्व काव्य में स्वतंत्र न होकर सौंदर्य का अनुयायी होता है। इसमें साहित्य को व्यक्तिगत प्रतिभा का प्रकाशन कहा गया है जिसमें रचयिता की अनुभूतियों, वेगों और भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति होती है। साहित्य में कल्पना के अजस्र प्रवाह का रूप दृष्टिगोचर होता है जिसे कवि एक दिव्यशक्ति के रूप में प्राप्त करता है। इस युग के आलोचकों ने काव्योपयुक्त भाषा, छन्दः प्रयोग, सहज तथा स्वाभाविक अलंकारों के प्रयोग पर बल दिया है तथा जीवन में प्रयुक्त भाषा को काव्य के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं किया है। वह साधारण भाषा की अपेक्षा स्थिति

और भाव के अनुरूप भाषा के वैविध्य पर बल देता है। रोमांटिक आलोचक भावना को काव्य का प्रमुख उपादान घोषित करता है और अन्य उपादानों का इसी में समावेश करता है। रोमांटिक कवि आत्मप्रेरणा से परिचालित होकर ही काव्य की रचना करता है। पेटर के अनुसार सुंदर के साथ अद्‌भुत का संयोग ही स्वच्छन्दतावादी कला का प्राण तत्त्व है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार स्वच्छन्दतावादी काव्य-सिद्धांत की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—स्वच्छन्दतावादी काव्य-चिंतन में आत्मा की शान्ति की अपेक्षा आत्मा के उद्वेलन, मन्थन या उल्लास को अधिक मूल्यवान् माना गया है। वह वैशद्य के स्थान पर वैचित्र्य तथा समृद्धि का अनुरागी है और मूर्त्त के स्थान पर अमूर्त्त का उपासक है। "गरिमा का वह उपासक है, उदात्त और भव्य के प्रति उसके मन में अबाध आकर्षण है—पर उसका उदात्त और भव्य असीम से जुड़ा हुआ है। व्यक्त की अपेक्षा अव्यक्त या अर्द्धव्यक्त, गोचर की अपेक्षा रहस्य की कामना ही यहाँ प्रमुख है। अनुभूति के क्षेत्र में ज्ञान की अपेक्षा जिज्ञासा का महत्त्व यहाँ अधिक है, बोध से संवेदन अधिक मूल्यवान् है—विचार से वासना की शक्ति कहीं अधिक प्रबल है। कला के क्षेत्र में सामंजस्य उसकी अपनी परिभाषा है; वह संतुलन कम-से-कम बहिरंग संतुलन को कला का क्षुद्र उपाय समझता है, सामंजस्य का उसके लिए अत्यंत गंभीर और आध्यात्मिक अर्थ है: सामंजस्य उसके लिए बहिरंग तथा यांत्रिक कर्म न होकर कवि की प्रसवरत चेतना की क्रिया है।" रस सिद्धांत, पृ.331

■

Romanticism (रोमांटिसिज्म)
स्वच्छन्दतावाद

उन्नीसवीं शताब्दी की उन्मुक्त काव्यधारा जो यूरोप में अत्यंत प्रबल रूप में प्रवाहित हुई वह स्वच्छन्दतावाद के नाम से अभिहित हुई। अँग्रेजी काव्य में एक विशेष युग स्वच्छन्दतावादी युग के नाम से विख्यात है। 'रोमांटिसिज्म' शब्द रोमांस से बना है जिसका मूल अर्थ 'रोमांस' भाषा में लिखित कृति से है। इसकी परिधि में फ्रेंच, इतालियन, स्पेनिश प्रावेंशल आदि सात भाषाओं का नाम आता है। 'रोमांस' शब्द लैटिन के रोमेनस (Romanus) से निष्पन्न है। इसके लिए फ्रेंच में Romaz (रोमाज) का प्रयोग होता है। अँग्रेजी में रोमांटिसिज्म का प्रयोग 1654 ई. के आसपास होने लगा था जो मनगढ़ंत या कपोल कल्पित जैसे हीन अर्थ में व्यवहृत होता था। अठारहवीं शताब्दी में इसका प्रयोग व्यापक अर्थ में होने लगा और उसे 1798 ई. में अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त हुई। साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम श्लेगेल ने रोमांटिसिज्म और क्लासिसिज्म में अंतर स्थापित करते हुए आभिजात्य साहित्य की तुलना में नवीन साहित्य को स्वच्छन्दतावादी साहित्य की अभिधा प्रदान की। उसके अनुसार आभिजात्य या क्लासिकल साहित्य में असीमता से सम्बद्ध भावों और संवेगों को सीमा में आबद्ध कर अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया जाता है। अँग्रेजी में काल्पनिक और अवास्तविक कथा या कहानी जैसी वस्तु को रोमांटिसिज्म कहा गया था। वाल्टरपेटर के मतानुसार स्वच्छन्दतावादी चेतना के अनिवार्य तत्त्व हैं विस्मय, कुतूहल तथा सौंदर्य के प्रति

आकर्षण। हेज के अनुसार स्वच्छन्दतावादी कल्पना का स्रोत कुतूहलजन्य आश्चर्य, विस्मय तथा रहस्य की भावना है। वे रहस्य को ही रोमांस का सारतत्त्व मानते हैं। अठारहवीं शताब्दी के आगमन के साथ इसका संबंध विषाद और अवसाद से स्थापित हो गया था और फ्रांसीसी में इसके लिए रोमांटिक (Romantique) शब्द रूसो द्वारा (1776-77) प्रयुक्त हुआ। फ्रांस में यह शब्द अधिक लोकप्रिय हुआ और अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक जर्मनी में भी इसका प्रयोग हुआ। इंगलैंड तथा जर्मनी दोनों देशों में स्वच्छन्दतावादी आंदोलन 1790 ई. में प्रारंभ हुआ और 1800 से 1830 ई. तक यूरोप से सभी देशों में किंचित् परिवर्तन के साथ अत्यंत तीव्र गति से प्रसरित हुआ। साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम जर्मनी में ही इसका प्रयोग हुआ था। जर्मन स्वच्छन्दतावादी काव्य का विवेचन करते हुए हेन का कहना है "वह गीतों, चित्रों, इमारतों और जीवन में मध्ययुगीन काव्य की नव जागृति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। किंतु, इस काव्य का मूल स्रोत ईसाई धर्म है, वह ईसा मसीह के रक्त से उत्पन्न भावना का पुष्प है।" रोमांटिसिज्म रोमांटिक भावना का द्योतक है। जीवन जगत् तथा कला के क्षेत्र में रोमांटिक होने की विशेपता को रोमांटिसिज्म कहते हैं। कॉम्पटन रिकेट के अनुसार "रोमांटिसिज्म सामान्यत: कला की शब्दावली में, तीव्र संवेदनाओं उच्च कल्पना प्रवण अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हैं; यद्यपि हमारा संबंध इसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति से ही है, तथापि रोमांटिसिज्म एक कल्पनाप्रवण दृष्टिकोण है, जिसने कला के अनेक रूपों को प्रभावित किया है और दर्शन तथा इतिहास पर भी अपनी छाप लगा दी है।" वाल्टर पेटर के अनुसार "सौंदर्य के साथ अनूठेपन का योग ही कला में रोमांटिक स्वरूप का निर्माण करता है, और प्रत्येक कलात्मक सर्जन में सौंदर्य-लालसा एक निश्चित तत्त्व होने के कारण, सौंदर्यलालसा के साथ जिज्ञासा का योग रोमांटिक स्वभाव का निर्माण करता है।" ए.एफ. स्कॉट ने रोमांटिसिज्म का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा है : "रोमांटिसिज्म सशक्तरूप में अहंवादी है। इसमें वैयक्तिक, अनुभूतिप्राण जीवन और सर्जन प्रेरणा के सक्रिय पुनर्जागरण की प्रधानता है।" लिगवी और कजामियाँ के अनुसार "रोमांटिक चेतना की परिभाषा अनुभूतिशील जीवन की प्रबल प्रधानता के रूप में ही की जा सकती है, जो कल्पना-प्रधान दृष्टि के प्रयोग द्वारा उत्तेजित या संचालित होती है; और बादलों में ऐसे प्रयोग को प्रोत्साहित या संचालित करती है। एबरक्रॉम्बी ने स्पष्ट शब्दों में उसकी मूल प्रेरणा का निरूपण किया है। उनके अनुसार "जब जीवन की समग्र वास्तविकता में आंतरिक अनुभव सर्वोपरि महत्त्व प्राप्त करता है, वरन् इससे भी आगे, जब एकमात्र

उसी का महत्त्व होता है, तब रोमांटिसिज्म का उदय होता है। वास्तव में एक व्यापक कथन के रूप में, रोमांटिसिज्म की इससे अधिक सही परिभाषा नहीं की जा सकती कि वह आंतरिक अनुभव पर आस्था रखने की प्रवृत्ति है।" एफ.एल. लूकस ने मनोविज्ञान के आधार पर रोमांटिसिज्म की परिभाषा इस प्रकार प्रस्तुत की है : "मैंने संकेत किया है कि रोमांटिसिज्म के सभी रूपों का सामान्य तत्त्व बंधनों को दूर करना है, जो यथार्थ-संबंधी और समाज-विषयक बोध के द्वारा मन के अपेक्षाकृत आदिकालीन और आवेगशील पहलू पर थोपे जाते हैं।" (सभी परिभाषाएँ संस्कृत कविता में रोमांटिक प्रवृत्ति नाम शोध प्रबंध से उद्धृत की गई हैं पृ. 16-21) उपर्युक्त परिभाषाओं में व्यापक विचारों के आधार पर रोमांटिक काव्य के तत्त्वों की विशेषताओं का पर्यवेक्षण किया जा सकता है —

क— रोमांटिसिज्म में तीव्र संवेदनाओं तथा अनुभूतियों का प्रकाशन होता है।

ख— वह कला के अनेक अंगों में अभिव्यक्त होता है।

ग— साहित्य और कला के अतिरिक्त दर्शन और इतिहास के विविध क्षेत्रों में भी रोमांटिक प्रवृत्ति प्रकट होती है।

घ— कला में निहित सौंदर्य तत्त्व अपूर्वता और अनूठेपन के समावेश से रोमांटिक कलाकृति का रूप ग्रहण कर लेता है।

ङ— सौंदर्य-लालसा में जिज्ञासा की वृत्ति के योग में रोमांटिक स्वभाव निर्मित होता है।

च— रोमांटिक काव्य में अहंवादिता मूल रूप में होती है जिसमें अनुभूतिप्राण जीवन की प्रधानता के साथ नवसर्जन की प्रेरणा की महत्ता प्रतिपादित की जाती है।

छ— इसमें प्राचीन नियमों और रूढ़ियों से मुक्ति और नवीनता की लालसा सन्निहित है।

ज— रोमांटिक चेतना में अनुभूतिशील जीवन की प्रधानता और कल्पना के साथ भावना का महत्त्व होता है। यह संवेदनशीलता और अंतर्मुखता को जागरित करता है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार रोमांटिसिज्म की परिभाषा इस प्रकार है। "सौंदर्य के बँधे-सधे आयोजनों, घिसे घिसाये उपमानों और पिटी-पिटाई उत्प्रेक्षाओं पर आधारित चिंतन-शून्य काव्य-रूढ़ियों से मुक्ति पाया हुआ चित्त

मानवता के मापदण्ड से सब कुछ को देखता है और फिर कल्पना के अविरल प्रवाह से धन-संश्लिष्ट आवेगों की वह उर्वर भूमि प्रस्तुत होती है जो रोमांटिक या स्वच्छन्दतावादी साहित्य के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध होती है। मानवीय दृष्टि के कवि की कल्पना, अनुभूति और चिंतन के भीतर से निकली हुई, वैयक्तिक अनुभूतियों के आवेग को स्वत: समुच्छित अभिव्यक्ति — बिना किसी आयास के और बिना किसी प्रयत्न के, स्वयं निकल पड़ा हुआ भाव स्रोत — ही छायावादी कविता का प्राण है।" (हिंदी साहित्य, पृ. 463) रोमांटिक काव्य में परम्परा विहित और परम्परायुक्त भावदृष्टि के बदले रचयिता की स्वानुभूतिपरक आवेगधारा और कल्पना की प्रधानता होती है और वह कल्पना प्रवण अंतर्दृष्टि द्वारा संचालित तथा प्रेरित होता है। यह अंतर्जगत् तथा उसकी सर्जनशीलता में आस्था प्रकट करता है। इसमें व्यक्तित्व की सर्वस्वीकृत प्रधानता के अतिरिक्त परम्परा के प्रति विद्रोह तथा भाव प्रवणता, कल्पनाशीलता एवं तीव्रानुभूतियों का उन्मुक्त संचार होता है। कवि की आत्मानुभूति वैयक्तिक सौंदर्य प्रेम, विराट्तत्त्व, रहस्यानुभूति, विपाद और असंतोष, स्वातंत्र्यलालसा तथा कल्पनासृष्टि के विविध रूपों में प्रखर होकर व्यक्त हो उठती है। रोमांटिक काव्य की शैलीगत विशिष्टताओं में मानवीकरण, बिम्बविधान, प्रतीक योजना, संगीतात्मकता और गीतितत्त्वों का समावेश किया जाता है। इसमें रूढ़िवादी जीवन दृष्टि के स्थान पर जीवन का यथार्थवादी दृष्टिकोण निहित है। रोमांटिक कवि नूतन सौंदर्य चेतना को जागरित कर समाज में नवीन सर्जन-प्रेरणा का संचार करता है। स्वच्छन्दतावाद की उत्सभूमि उस मानसिक गठन में है जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह में धन-संश्लिष्ट निविड़ आवेग का प्राधान्य होता है।

स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तन में बाह्य परिस्थितियों का भी महत्त्वपूर्ण योग था। फ्रेंच क्रांति ने तत्कालीन जीवन को आन्दोलित कर दिया था तथा वैज्ञानिक आविष्कारों, यातायात के नवीन साधनों और व्यावसायिक क्रांति ने मनुष्य में नई चेतना को जागृत किया। व्यावसायिक क्रांति के फलस्वरूप राजनीतिक और आर्थिक शक्ति सामंत वर्ग के हाथ में न रहकर व्यवसायी वर्ग के हाथ में चली गई। फ्रेंच क्रांति ने कैथोलिक चर्चों के विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया और उसके साथ सामंतों की प्रभुसत्ता भी जाती रही। नयी व्यवस्था के कारण चर्च की अपार सम्पत्ति जब्त कर ली गई और धर्म के प्रति लोगों की आस्था हट गई। सामाजिक संबंधों पर समानता की भावना पर अधिक बल देने के कारण सामंतों के विशेषाधिकार छीन लिए गए और धर्म तथा शिक्षा का आधार धर्म की अपेक्षा

मानवीय स्वीकार किया गया। औद्योगिक क्रांति के साथ सामंती युग का स्थान पूँजीवादी युग ने ग्रहण किया और इस व्यवस्था के आधार पर जीवनादर्श में भी परिवर्तन हुए। इंगलैंड की सर्व साधारण जनता रोजगार के नवीन साधनों को प्राप्त कर व्यावहारिक दुनियादारी की ओर उन्मुख हुई। पर, ब्रिटेन का विचारशील और संवेदनशील जगत् विचित्र प्रकार की मानसिक अशान्ति से ग्रस्त था। रूसो की विचारधारा से प्रभावित होकर लोग क्रांति की ओर अग्रसर हो रहे थे। 1789 की फ्रेंच क्रांति ने तत्कालीन जनमानस को झकझोर दिया और यूरोप की प्राचीन संस्कृति में परिवर्तन के चिह्न दृष्टिगोचर हुए। जहाँ इस क्रांति ने धर्म, राज्य-व्यवस्था तथा परंपरागत संस्कारों को बदला वहीं साहित्य के क्षेत्र में भी नवीन जीवन दृष्टि का उन्मेष हुआ और साहित्यकारों ने प्राचीनता का त्याग कर नवीन भाव रश्मियों से साहित्य का शृंगार किया। रूसो इस रोमांटिक विचारधारा का प्रतिनिधि था, उसने स्वतंत्रता पर बल देकर लोगों के मन में विद्रोह का स्वर मुखरित किया। 'प्रकृति की ओर लौटने' का नारा उसी का था। फलतः स्वतंत्रता की लालसा, बंधन को तोड़ने की इच्छा तथा प्रकृति के प्रति आकर्षण ने साहित्य को अनुप्राणित किया और उसमें उपर्युक्त सभी तत्त्वों की अभिव्यक्ति हुई।

रूसो का मानवतावाद का अँग्रेजी काव्यधारा पर प्रवल प्रभाव पड़ा। उसकी पुस्तकों 'सोशलक्रॉन्ट्रैक्ट' तथा 'ऐमली' ने विद्युत की भाँति यूरोप को चमत्कृत कर दिया और स्वतंत्रता, समता तथा बंधुत्व के नारे से सारा महाद्वीप गुंजायमान हो उठा। रोमांटिक लेखकों ने रूसो से अनुप्रेरित होकर वाह्यबंधनों के प्राचीन को तोड़ कर जन स्वातंत्र्य का पोषण किया। वह बाह्य जगत् में तथा अपने प्रेम के आदर्श में निरंतर विरोध का भाव देखकर ऐसे जगत् का साक्षात्कार करने के लिए उद्यत हो उठता है जहाँ सदा प्रेम का महोत्सव सम्पन्न होता रहता है। फ्रेंच में 'रोमांटिक' शब्द साहसशील, भावुक और कल्पनाशील का द्योतक है जो आगे चलकर स्वच्छन्दतावादी काव्य आंदोलन के लिए प्रयुक्त हुआ।

इंगलैंड में स्वच्छन्दतावादी काव्य का प्रारंभ वर्ड्सवर्थ कृत लिरिकल बैलेड्स के प्रकाशन के साथ 1798 ई. से माना जाता है; किंतु अनेक विद्वान इस धारणा को भ्रमपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार अनेक कवि नव्य क्लासिकी काव्य की काव्य परंपरा से हट कर स्वच्छन्द भूमि पर काव्य रचना कर रहे थे और उनकी रचनाओं में ही स्वच्छन्दतावादी काव्य का बीजवपन हुआ था। वे रोमांटिक घेरे के बाहर के अल्प ख्याति लब्ध कवि थे जिनमें टामसन, कॉलिन्स, ग्रे तथा कूपर के नाम

उल्लेखनीय हैं। अठारहवीं शती के अन्तिम चरण में हुए ब्लेक तथा बर्न्स कालावधि की दृष्टि से भले ही क्लासिकी परंपरा के कवि हों, पर प्रवृत्ति की दृष्टि से वे उन्नीसवीं शताब्दी के कवियों के अति निकट थे। स्वच्छन्दतावादी कवियों की प्रथम पीढ़ी वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज और रॉवर्ट सदे की थी और द्वितीय पीढ़ी में बायरन, शेली और कीट्स आते हैं। प्रथम पीढ़ी की राजनीति, सामाजिक तथा कलागत मान्यताएँ द्वितीय पीढ़ी की मान्यताओं से सर्वथा भिन्न थी। स्वच्छन्दतावादी आंदोलन यूरोपीय आन्दोलन था जिसमें यूरोप के सारे राष्ट्रों की काव्यात्मक प्रवृत्तियों में समानता थी। "विज्ञान के अभ्युदय और औद्योगिकता के प्रसार ने नए वर्ग और नवीन सामाजिक व्यवस्था को जन्म दिया। अंशतः इस पूँजी वादी ज़गत् द्वारा प्रस्तुत स्थितियों तथा समस्याओं की प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप स्वच्छन्दतावाद का जन्म हुआ। यूरोप की स्वच्छन्द काव्यधारा भावना के स्तर पर नए युवा और नवीन जीवन-मूल्यों के अन्वेषण तथा स्वीकृति का परिणाम है।" (अँग्रेजी की स्वच्छन्द कविता, पृ. 41) विलियम ब्लेक (1757-1827) संक्रांति काल का कवि था जिसकी कविताओं में तर्क वुद्धिवाद के प्रति विरोध तथा अध्यात्मवाद के प्रति समर्थन का स्वर था। उसकी कविताएँ सहज स्वाभाविक, प्रतीकवादी तथा रहस्यात्मक थीं और उनमें जीवन और जगत् के सामान्य तथा उपेक्षणीय विषयों का वर्णन किया गया था। उसने फूल, पत्ते, पहाड़, नदी, झरने, तारे, आकाश, शेर और कुत्तों को अपने काव्य का विषय बनाकर इनमें असामान्यता और विलक्षणता की सृष्टि की। वह पशु-पक्षियों में भी ईश्वरत्व की छाया देखता था। उसकी भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और सांगीतिक थी। रॉबर्ट बर्न्स (1759-1796 ई.) स्काटलैंड के एक किसान परिवार में उत्पन्न हुआ था। उसने अपने गीतों में देश की भूमि, खेत, खलिहान, ग्राम्यजीवन, जातीय परंपरा और स्थानीय वातावरण का सजीव चित्र प्रस्तुत किया। उसने सामान्य जनजीवन के दुःख-सुख, आशा-निराशा, श्रम-संघर्ष, उपलब्धि-अभाव तथा शक्ति और सीमा को बड़ी स्वाभाविकता के साथ अपनी कविताओं में उतारा। उसने जनपदीय शब्दों को अपनी कविता में गौरवपूर्ण स्थान दिया। उसकी कविता में क्रांतिवाद का स्वर झंकृत हुआ है और स्वतंत्रता के प्रति तीव्र आसक्ति एवं वैयक्तिकता के प्रति पूर्ण आग्रह है। विलियम वर्ड्सवर्थ (1770-1850 ई.) ने अपने सुदीर्घजीवन में परिमाण के विचार से अधिक रचनाएँ की फलतः उसकी कृतियाँ एक ओर जहाँ अधिक भावप्रवण, श्रेष्ठ तथा हृदयावर्जक हैं; वहीं दूसरी ओर अत्यंत सामान्य कोटि की भी हैं। शेली ने उसकी कविता के चार चरण बतलाए हैं — आरंभ में वे

उदात्त, वेदनापूर्ण, प्रभावयुक्त तथा गम्भीर थीं और आगे चल कर श्रीहत् और गद्यात्मक हो गईं। उसने सामान्य जनजीवन को जनभाषा में अभिव्यक्त किया और नवयुग की भावधारा को अभिव्यक्त करने के लिए नये माध्यम की खोज की। उसकी रचनाओं में जीवन सत्य की अभिव्यक्ति हुई है जो अलंकृति और यांत्रिकता से नितांत दूर और स्वाभाविक है। उसने कल्पना और अंतर्दर्शन के बल पर मनुष्य के अंदर स्थित देवत्व तथा मानवता को कविता में उतारा है और ईश्वर, मनुष्य और प्रकृति को ही अपनी कविता का विषय बनाया है। उसे प्रकृत रहस्यवादी कवि कहा जाता है।

सेमुअल टेलर कॉलरिज (1772-1834 ई.) दार्शनिक, सौंदर्यशास्त्री और कवि के रूप में विख्यात है। उसने कम कविताओं की पूँजी के बल पर अक्षय कीर्ति प्राप्त की है। उसकी प्रसिद्ध कविताओं के 'द एशियन्ट मारिनर' 'क्रिस्टाबेल', 'कुबलाखान' तथा 'डिजेक्शन ऐन ओड' है। उसकी कविताओं में अलौकिकता में लौकिकता और अतिप्राकृतिक में वास्तविकता की झलक दिखाई पड़ती है। उसने विषय वस्तु के अनुरूप छन्द, संगीत, भाषा, विम्ब और प्रतीक का प्रयोग किया है।

जार्ज गार्डन, लार्ड बायरन (1788-1824 ई.) का साहित्य असाधारण और परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का है। उसने कवि जीवन के प्रारंभ में प्रबंधात्मक तथा गीति कविताओं की रचना की है और बाद की रचनाओं में प्रकृति-प्रेम, रोमांटिक अवसाद, खिन्नता, दृश्य प्रसंगों का अंकन, अतीत के प्रति मोह, परंपरा से विद्रोह, व्यक्ति और समाज से द्वन्द्व आदि प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं। वह प्रतिभासम्पन्न कवि होते हुए भी लापरवाह तथा असावधान कलाकार था, परिमाणतः उसकी कविताएँ विशृंखल और अपरिमार्जित हैं। वह रूपाकृति और भावना के बीच आंगिक संबंध स्थापित करने वाला कवि है। बायरन के काव्य में ऐन्द्रिकता और भोगवादिता स्वर मुखर हो उठा है। पर्सी विशे शेली (1792-1822) विश्व के महान कवियों में है। उसके गीतों में वैयक्तिकता, तीव्रभावनुभूति, गेयता तथा पदलालित्य का सफल सगुंफन है। वह एक सफल गीतिकार ही नही, एक गंभीर दार्शनिक कवि भी था। शेली जन्मजात विद्रोही था। उसने रूढ़ियों और परंपराओं का आजीवन विरोध किया। उसने लंबी कविताओं में क्रांति के महत्त्व को दर्शा कर उसे अपने काव्य का विषय बनाया है। वह कल्पना प्रवण कलाकार था जिसने कल्पनामूलक सौंदर्य की रक्षा कर अपने काव्य को जीवन के नैतिक पक्ष से सम्बद्ध

किया है। शेली कल्पनात्मक प्रक्रिया के द्वारा मनुष्य की नैतिक मंगल भावना को जागृत करता है। जॉन कीट्स (1795-1821) नैसर्गिक प्रतिभासम्पन्न कलाकार था। वह बायरन और शेली की अपेक्षा सचेत कलाकार कहा जा सकता है। वह सौंदर्य और कला का कवि है तथा अपने को समाज से विलग कर शाश्वत सौंदर्य तत्त्व की अभिव्यक्ति करता है। वह अत्यंत संवेदनशील तथा कलाप्रवण कवि है। अब यहाँ स्वच्छन्दतावादी काव्य की सामान्य प्रवृत्तियों पर विचार किया जाएगा। अँग्रेजी में रोमांटिक काव्यधारा का प्रवर्तन क्लासिकल काव्य की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ था। इसके पूर्व काव्य में घोर नियमबद्धता व्याप्त थी जिसमें प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित काव्यनियमों का अन्धानुकरण किया जाता था। तत्कालीन कवि प्रेरणा की अपेक्षा कलात्मकता की ओर अधिक उन्मुख थे। रोमांटिक काव्य विद्रोही भावनाओं से युक्त था उसमें बुद्धिपक्ष की अपेक्षा हृदयपक्ष का अधिक योग था। सौंदर्यवाद रोमांटिक काव्य की प्रधान प्रवृत्ति है और कवि सौंदर्य की भावना से ही निरंतर प्रेरित होता है। उसमें प्रकृति या नारी सौंदर्य की सूक्ष्म छवि का अंकन किया जाता है तथा कवि अँपनी सौंदर्यानुभूति को काव्य का रूप प्रदान करता है। रोमांटिक सौंदर्य भावना में सौंदर्य और कौतूहल का मेल होता है और रोमांटिक कवि की सौंदर्यानुभूति उसकी आंतरिक भावना में सन्निहित रहती है। रोमांटिक काव्य की अन्य प्रवृत्ति है भावाकुल अंतर्मुखता। उसमें भावुक या अंतर्मुखी व्यक्ति की व्यक्तिगत धारणाओं का सर्वोपरि महत्त्व होता है। रोमांटिक कवि की प्रधान विशेषता है अंतर्जगत् के प्रति पूर्ण आस्था। वह सम्पूर्ण बाह्य जगत् को अपने आंतरिक आदर्शों के अनुरूप देखता है, परखता है। उसके मन में जीवन और जगत् को पूर्णत्व प्रदान करने का अपना निजी स्वप्न होता है जिसे वह यथार्थ रूप में साकार करना चाहता है। अंतर्मुखी भावाकुल कलाकार अपने कल्पनाशील मन को केवल काव्य-क्षेत्र तक ही संचरित नहीं करता, अपितु वह राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में भी रोमांटिक मनोदशा को प्रतिष्ठित करता है। सर्जन, सजगता और गतिशीलता रोमांटिक व्यक्तित्व के मौलिक लक्षण हैं और उसमें पुरातनता, रूढ़िप्रियता, परम्परा-प्रेम, जड़ता, धार्मिक संकीर्णता, राजनीतिक शोषण और आर्थिक दमन के प्रति विद्रोह का स्वर व्यक्त होता है। रोमांटिक काव्य मानव के रागात्मक तत्त्व को महत्त्व देने के कारण सार्वयुगीन और सार्वभौम होता है। इस काव्य के मूलाधार प्रत्यक्ष जगत् और ...तन जगत् नहीं होता वरन् भाव लोक और अचेतन जगत् होता है। इसका मुख्य ...तिपाद्य प्रेम होता है। स्वच्छन्दतावादी कवि ने प्रेम के दुःखद पक्ष का अधिक

निस्तेज हो जाती है। इसके अतिरिक्त कला में बुद्धि का सहयोग भी आवश्यक होता है। बुद्धि-वैभव के बिना कलाकार वस्तुओं की सम्यक् रूपेण कल्पना नहीं कर सकता। कला की सफलता इसमें है कि उसमें सत्य से मेल खाते हुए सौंदर्यतत्त्व का अधिक से अधिक समावेश किया जाय। जब सौंदर्य के लिए सत्य का बालिदान किया जाता है, तभी कला में विकृति आती है।

महान कला सौंदर्य के मूलाधार को ग्रहण कर, प्रकृति को ज्यों का त्यों पकड़ती है और दर्शकों का ध्यान उसके सुंदर स्थलों की ओर आकृष्ट करती है। कला की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसमें किसी प्रकार की अस्पष्टता या मानसिक उलझन दृष्टिगत न हो। उसकी सारी रेखाएँ स्पष्ट हों जिसमें अनेक सत्यों का समन्वय कर एक बृहत् सत्य को उद्घोषित किया जाय। श्रेष्ठ कला में शक्ति, स्पष्टता, ज्योतिर्मयता तथा दृढ़ता का समावेश होता है और अनस्थिरता, मलिनता उसके द्रारिद्रय के द्योतक हैं। कला की सृष्टि कलाकार की समग्र शक्तियों से होती है। महत्त्वपूर्ण योग रहता है। कविता की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए रस्किन ने कहा कि जो कल्पना द्वारा उदात्त भावों के उदात्त क्षेत्र की ओर संकेत करे, वही कविता है। प्रेम, श्रद्धा, प्रशंसा, आनन्द, घृणा, क्रोध, भय तथा विषाद की गणना उदात्त भावों में की गई है। ये ही भाव उदात्त और रुचिर क्षेत्र में जब अनुरूप परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं, तब वे काव्यात्मक भावों का रूप ग्रहण कर लेते हैं। कवि-कल्पना और भावक की कल्पना का सहयोग काव्य के लिए आवश्यक होता है।

Russian Critism (रसियन क्रिटिसिज़्म) रूसी आलोचना

रूस में आलोचना का सूत्रपात पीटर प्रथम की कृतियों से 18वीं शताब्दी के मध्य में हुआ। उसने फ्रांसीसी तथा शास्त्रीयता वादी परंपरा के आधार पर साहित्य की सृष्टि की। छन्दशास्त्र के क्षेत्र में वासिली किरिलोविच त्रेद्याकोवस्की (1703-1769 ई.) ने सिद्धांत-निरूपण किया और व्याकरणिक प्रयोगों के आधार पर भाषा का स्थान स्थिर कर आलोचना का उन्नयन किया। पीटर ने भाषा को परिष्कृत कर नई वर्णमाला प्रचलित की। इसी समय निकोले भिखायलोविच काराम्जिन तथा वास्ली आंद्रेयेविच झुकोवेस्की की कृतियों में स्वच्छन्दतावाद के दर्शन हुए। झुकोवेस्की ने पुश्किन प्रभृति लेखकों का मार्ग-दर्शन भी किया। 19वीं शताब्दी में शेलिंग, फिक्टे तथा हीगेल से प्रभावित होकर रूसी आलोचना में महान सैद्धांतिक परिवर्तन के चिह्न दृष्टिगोचर हुए।

विसारियन ग्रिगोयेविच बेलिंस्की

(1811-1848 ई.) ने सर्वप्रथम रूसी आलोचना को उन्नत किया। वह प्रतिभासम्पन्न आलोचक और गंभीर दार्शनिक था। 1834 ई. में उसकी आलोचनात्मक कृति 'लिट्रेरी ड्रीम्स' प्रकाशित हुई, जिसमें तत्कालीन साहित्य का सर्वेक्षण किया गया था।

रूसी आलोचना में दो स्पष्ट रेखाएँ देखी जाती हैं — क्रांति के पूर्व रूसी आलोचना (1840 ई. से 1917 ई. तक) तथा क्रांति के पश्चात रूसी आलोचना। बेलिंस्की ने कठमुल्लेपन का विरोध करते हुए स्वतंत्र चिंतन की आवश्यकता पर बल दिया। "सम्प्रदाय और मत से जिसने अपने को बाँध लिया है, बुद्धि उससे पनाह माँगती है। क्या यह सच नहीं है कि प्रायः सभी पागल अपनी बातचीत में अद्‌भुत सूझबूझ का परिचय देते हैं, लेकिन तभी तक जब तक कि उनकी 'धुन' उनके सिर पर सवार नहीं हो जाती।" (दर्शन साहित्य आलोचना, पृ.4) वे कविता को जीवन के साथ संबद्ध कर उसमें जीवन पहले और बाद में कला का अन्वेषण करते हैं। "साहित्य को अनिवार्यतः जाति के आंतरिक जीवन का दर्पण और उसका प्रतीक होना चाहिए। किंतु, यह किसी तरह भी साहित्य की व्याख्या नहीं है, यद्यपि उसके अत्यंत आवश्यक गुणों में से एक अवश्य है।" (वही, पृ. 14)

अलेक्जेण्डर इवानोविच हर्जन (1812-1870)

बेलिंस्की के पश्चात हर्जन उल्लेखनीय आलोचकों में आते हैं। उन्होंने परंपरावाद या शास्त्रीयतावाद और स्वच्छन्दतावाद की तर्क संगत व्याख्या की तथा यथार्थवादी विवेचन को अधिक महत्त्व प्रदान किया। यह रूस का क्रांतिकारी चिंतक था जिसने जीवन, इतिहास, विकास तथा पद्धतियों में द्वन्द्ववाद को अध्ययन की सर्वोपरि पद्धति स्वीकार की। वह मार्क्सवादी विचारक था। उसने मार्क्स की ऐतिहासिक दृष्टि से साहित्य का अध्ययन किया और सौंदर्य को नित्य माननेवाले आदर्शवादी सौंदर्यचिंतकों की मान्यताओं को अस्वीकृत कर उसे अनित्य माना। वह भौतिकवादी मान्यताओं को स्वीकार कर भूत को ही अनन्त मानता है। उसके अनुसार मृत्यु विनाश न होकर परिवर्तन है। मार्क्सवादी यथार्थवाद ही हर्जन के साहित्य-चिंतन की प्रधान पृष्ठभूमि है।

निकोलाई गाव्रिलोविच चर्नीशेव्स्की (1828-1889)

उसने "एस्थेटिक रिलेशन ऑफ आर्ट टु रियलिटी" (कला का वास्तविकता से सौंदर्यशास्त्रीय संबंध) नामक ग्रंथ में अपने साहित्यिक मत की स्थापना की है उसने 'क्या करें' (वाट् टू बी डन) नामक क्रांतिकारी उपन्यास की भी रचना की है। वह मूलत: सौंदर्यशास्त्रीय मीमांसक था। उसके अनुसार कला यथार्थ की अनुकृति होने के कारण उससे निकृष्ट होती है और जीवन की अभिव्यक्तियों कलात्मक अभिव्यक्तियों की अपेक्षा सुंदर हैं। "कला की कृतियाँ यथार्थ सौंदर्य से तुलना में हीन होती हैं। कारण, वास्तविकता हमारे हृदयों पर जो छाप छोड़ती है, कलाकृतियों की छाप से वह कहीं अधिक सजीव होती है। कला की कृतियाँ वास्तविक सौंदर्य से, साथ ही जो दिव्य दु:खान्त और हास्याप्रद है उससे भी हीन होती है। वे सौंदर्यानुभूति की दृष्टि से भी हीन होती हैं।" (पाश्चात्यकाव्यशास्त्र: मार्क्सवादी परंपरा, पृ. 23) उसके विचारानुसार कला का लक्ष्य उस हर चीज का सृजन करना है जो मानव के लिए रुचिकर हो सकती है। जीवन का पुन: अंकन कला की सामान्य विशेषता है और इसी में उसकी चरितार्थता निहित है।

निकोलाई अलेक्जेंद्राविच दोब्रोल्युबोध (1836-1861 ई.)

यह चेर्न्रिश्यवस्की का शिष्य था। इसने उसकी विचारधारा को साहित्यालोचन द्वारा तीव्र गति से प्रचारित किया। यह 'कला कला के लिए है' सिद्धांत का तीव्र विरोधी था। उसके विचारों में क्रांति का स्वर है जिसका सामंजस्य साहित्य के साथ स्थापित किया गया है। कालांतर में कम्युनिस्ट पार्टी की साहित्यिक नीति का निर्धारण इसी की मान्यताओं के आधार पर किया गया। यह रचनाओं में जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति को महत्त्व देता था। इसके अनुसार कला और दर्शन की सार्थकता जनता की सुसुप्त शक्तियों को जगृत करने में है। "लेखक अथवा कलाकार की सफलता उसके द्वारा चित्रित छवियों की सचाई में निहित है। यदि उनमें सचाई नहीं है, तो उनसे गलत निष्कर्ष निकाले जाएँगे और मिथ्या विचारों का जन्म होगा।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र मार्क्सवादी परंपरा पृ. 33 डॉ. नगेन्द्र) "किसी लेखक या साहित्यिक कृति को जाँचने की हमारी कसौटी यह है कि वह लेखक या साहित्यिक कृति युग और जाति विशेष की प्रकृत आकांक्षाओं को किस हद तक व्यक्त करने में सहायक होती है।" (वही, पृ. 26)

दिमित्री इवानोविच पिसारेव (1840-1868 ई.)

पिसारेव ने 'द रियलिस्ट्स' तथा 'द डिस्ट्रक्शन ऑफ एसथेटिक्स' नामक निबंधों में स्वच्छन्दतावाद, रहस्यवाद, आदर्शवाद और भावात्मकता का खण्डन कर वैज्ञानिक आलोचना का समारम्भ किया। उसके विचारानुसार उपन्यास, कविता और चित्रकला में केवल शब्दों या रंगों का ही समूह दिखाई पड़ता है। 1860 ई. के पश्चात साहित्य को विचारों तथा उद्वेगों की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम होने के कारण उसे विशेष महत्ता प्राप्त हुई और समालोचना का पर्याप्त विकास हुआ। साहित्य के माध्यम से देशवासियों ने नया विचार प्राप्त किया और शिक्षा की प्रगति के साथ साहित्य की भी प्रगति हुई और यथार्थवादी विचारधारा का प्रचार हुआ। पर, स्वच्छन्दतावादी और आदर्शवादी विचार के पोषक एपोलान ग्रिगोरीएव (1822-1864) ने यथार्थवादी विचारधारा का विरोध किया। वह जर्मन दार्शनिक शेलिंग से अनुप्राणित था। और काव्य में अतीन्द्रिय दृष्टिकोण, प्रतिभाज्ञान तथा स्वानुभूति व्यंजना को यथार्थ की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण मानता था। चूँकि ग्रिगोरीएव के विचार युगधारा के विपरीत थे, इसलिए उन्हें कोई विशेष श्रेय नहीं प्रदान किया गया।

भिहिलोवस्की (1842-1904)

इसने आलोचना को अधिक दार्शनिक बनाकर ख्याति अर्जित की। इसने हरबर्ट स्पेन्सर के विचारों से प्रभावित रूसी जीवनधारा की आलोचना कर अपने प्रगति के सिद्धांत की स्थापना की। इस युग के अन्य आलोचकों में के. आरसेनफ अत्यधिक प्रसिद्ध है। उसने 'क्रिटिकल स्टडीज' नामक आलोचना-विषयक ग्रंथ की रचना 1882 ई. में की। इस युग के अन्य आलोचक स्केविशवस्की ने 'रूसी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' का प्रणयन किया।

काउण्ट लिओ तॉलस्तॉय (1828-1910 ई.)

तॉलस्तॉय प्रसिद्ध कथाकार और चिंतक था। उसने 'कला क्या है?' (वाटइज आर्ट) नामक ग्रंथ में कला के उद्देश्य एवं स्वरूप पर मौलिक ढंग से विचार किया है। (दे. Tolstoy लियो तॉलस्तॉय) वह बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न विश्वप्रसिद्ध कथाकार था। उसके अनुसार कला वह माध्यम है जिसके द्वारा कलाकार अपनी अनुभूत भावनाओं से दूसरों को प्रभावित करता है और जो कृति यह प्रभाव उत्पन्न करने में अक्षम होती है, उसे कला की कोटि में परिगणित नहीं किया जा सकता।

केवल कलाकार के युग तथा वर्ग को प्रभावित करनेवाली कला निम्न स्तर की मानी जाती है। कला का लक्ष्य धर्म, करुणा, प्रेम और शुभ भावनाओं का प्रतिपादन करना है। उदात्त भावना से रहित कला में यदि मानवमात्र को प्रभावित करने की क्षमता हो तो भी उसे कला का विकृत रूप ही कहा जा सकता है। कलात्मक सृजन की प्रक्रिया पर विचार करते हुए उसने कला के स्वरूप का इस प्रकार वर्णन किया है "कलात्मक सृजन — और वैज्ञानिक सृजन भी — ऐसी मानसिक क्रिया है जो स्पष्ट भावनाओं (अथवा विचारों) को इतना स्पष्ट रूप प्रदान कर देती है जिससे वे भावनाएँ (अथवा विचार) दूसरों तक पहुँच जाती हैं।"(पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 205) इस प्रकार सफल कलाकार को अपनी उत्कृष्ट भावना के परितोष द्वारा आनन्द का अनुभव होता है। कलाकृति को हृदयंगम करनेवालों को भावना की वैसी हीं उत्कृष्टता और उसके परितोष का, उस भावना के प्रति समर्पण का, उसके अनुकरण और उसके प्रभाव ग्रहण करने का और इस सृजन-प्रक्रिया में कलाकार को जो अनुभूति हुई हो उससे क्षणिक तादात्म्य का आनन्द उपलब्ध होता है।" (वही, पृ. 206) "जो कुछ पहले अप्रत्यक्ष, अनुभूत और अगम्य था वह भावना की गहराई से इतना मूर्त्तिमन्त हो उठता है कि सभी को ग्रह्य हो जाय और इस प्रकार की रचना ही कलाकृति है।" (वही, पृ. 206)। तॉलस्तॉय की क़लाविषयक अवधारणा नैतिकतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित है। वह 'कला कला के लिए है' इस सिद्धांत का विरोधी है।

क्रांति के पश्चात रूसी आलोचना

अक्टूबर 1917 की क्रांति के पश्चात रूस में सोवियत साहित्य का निर्माण अत्यंत तीव्रगति से हुआ। ऐतिहासिकों ने क्रांति के पश्चात सोवियत साहित्य को पाँच युगों में विभक्त किया है — 1917 से 1921 का समय 'युद्ध तथा कम्यूनिज्म का युग' है और 1921 से 1928 तक का युग आर्थिक पुनर्निर्माण तथा नवीन आर्थिक नीति अपनाने का है। 1928 से 1939 तक का समय पंचवर्षीय योजनाओं के अपनाने का है और 1939 से 1945 तक का युग द्वितीय महायुद्ध तथा उसके पश्चात का युग है। युद्ध के पश्चात रूस में सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हुए उससे साहित्य बच नहीं सका और उसमें नवीन विशेषताओं का समावेश हुआ। सोवियत रूस के प्रारंभिक दस वर्षों में प्रत्येक लेखक को किसी गोष्ठी का सदस्य बनना पड़ता था, पर अपवाद स्वरूप कुछ ऐसे लेखक भी थे जो सदस्य नहीं भी थे, किंतु ऐसे लोंगों की संख्या न्यून थी। ऐसी

गोष्ठियों में 'द फ्यूचरिस्ट्स', 'प्रोलेटकल्ट' तथा 'द सिरेपियन्स'प्रमुख थीं। इन गोष्ठियों ने गद्य-साहित्य का पर्याप्त विकास किया। 'द फ्यूचरिस्ट्स' से 'लेफ्टफ्रन्ट इन आर्ट' नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ था और 'द सिरेपियन्स' से 'लिट्रेरीनोट्स' नामक पत्रिका प्रकाशित हुई थी। समाजवादी यथार्थवाद (सोशलिस्ट रियलिज्म) (दे. Socialist Realism) की स्थापना के पूर्व रूस में समीक्षकों के दो वर्ग थे। पंहला वर्ग मार्क्सवादी विचारकों का था और दूसरा मार्क्सवाद के विरोधियों की विचारधारा का था। मार्क्सवादी विचारक रूपवाद (Formalism), प्रतीकवाद (Symbolism) तथा भविष्य वादियों (Futurists) के विरोधी और इनकी मान्यताओं से पूर्ण मुक्त थे। रूपवादी नियमित प्रणाली से साहित्य का विवेचन प्रस्तुत कर कलाकृति के मूल्यांकन में रूप तथा रचना-कौशल को विशेष महत्त्व प्रदान करते थे। उस समय के आलोचकों में 'तोमाशेवस्की', 'झिरमुन्स्की', 'आइकेनबाउम', 'तिनियानोव', 'बेली' तथा 'इक्लोवस्की' आदि रूसी साहित्य के साथ अन्य साहित्य का अध्ययन कर आलोचना के स्वतंत्र मानदण्ड का निर्माण करने में दत्तचित्त थे और 'सीरापियन'वर्ग इस विचार से अधिक क्रियाशील था। इन विचारकों पर अराजकतावाद का प्रभाव था और इन्होंने कला को जीवन की तरह ही सत्य तथा निरुद्देश्य घोषित किया था। रूपवादी विचारक श्क्लोवस्की के मतानुसार कला-सृष्टि के हेतु विषयवस्तु की भाँति कला-कौशल का भी उतना ही महत्त्व था। रूपवाद की ही एक शाखा 'शिल्प-संगठन' (Constructivism) के रूप में विकसित हुई थी जिसके अनुसार साहित्य की प्रमुख शक्ति शब्द था। इस शाखा के विचारकों में 'जेलिंस्की' तथा 'सेलविंस्की' प्रसिद्ध थे। 1936 ई. में रूस में रूपवाद का घोर विरोध हुआ और भयंकर आंदोलन प्रारंभ हुआ और उसका महत्त्व नि:शेष हो ही गया।

आलोचना के विकास की दृष्टि से 1932 का वर्ष विशेष महत्त्व का है। सोवियत रूस में इसके पूर्व भी मार्क्सवादी आलोचना का सूत्रपात हो चुका था और मार्क्स, ऐंजेल्स, प्लेख्नोव तथा लेलिन आदि की रचनाएँ द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की उपपत्तियों के आधार पर एक सुनिश्चित मानदण्ड प्रस्तुत कर चुकी थीं। प्लेख्नोव (1856-1918 ई.) ने इतिहास की व्याख्या करते हुए कला को सामाजिक तत्त्व सिद्ध किया। (दे. Plekhanov) उसकी "कला और सामाजिक जीवन" (आर्ट एण्ड सोशल लाइफ) नामक ग्रंथ का प्रकाशन 1912 ई. में हुआ। उसके अनुसार युग की विचारधारा का समाज पर प्रभाव पड़ता है और सामाजिक परिवर्तन के साथ विचारधारा भी परिवर्तित होती है। वह कला का उद्देश्य

व्यक्ति-चेतना का विकास तथा समाज-पद्धति में सुधार स्वीकार करता है। उसका कथन है कि कला का संबंध श्रम से है और कला श्रम को आसान बनाती है। श्रम कला से अधिक प्राचीन है। कला श्रम के लिए है, श्रम कला के लिए नहीं।

रूसी क्रांति के पश्चात लेलिन, मैक्सिम गोर्की, लूनाचार्स्की तथा चर्नोशेब्स्की ने समाजवादी यथार्थवाद के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण योग दिया। मार्क्स ने साहित्य के संदर्भ में लोककल्याण पर बल दिया और ऐतिहासिक भौतिकवाद के द्वारा साहित्येतिहास के क्षेत्र में अभूत पूर्व मौलिक दृष्टि प्रदान की। मार्क्सवादी विचार को राजनीति में रूपायित करने वाले लेनिन ने इसी मान्यता को साहित्य में भी उतारा। उसने कम्यूनिस्ट पार्टी के साथ साहित्य के संबंध को स्थापित कर घोषित किया कि साहित्य पार्टी के सिद्धांतों के प्रचार का माध्यम है। वह साहित्य को पार्टी के सामाजिक तथा आर्थिक कार्यक्रम का अविभाज्य अंग मानता है और इस आकांक्षा की पूर्ति न करनेवाले साहित्य का विरोध करता है तथा उसे वैयक्तिक साहित्य की संज्ञा प्रदान करता है।

गोर्की (1868-1936 ई.)

प्रकृतवाद का विरोधी और यथार्थवाद का समर्थक है। उसने प्रकृतवादी साहित्य को 'तथ्यों का साहित्य कहा जिससे साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का विकास होता है। यथार्थवाद की परिभाषा में उसने कहा कि "सच्चा, कोरा (बिना रंग किए) व्यक्तियों एवं सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण यथार्थ है।" वह आर्थिक संबंधों को वर्ग संघर्ष का कारण मानकर ऐसे समाजवादी यथार्थवाद में विश्वास करता है जो वर्तमान का मूल्यांकन कर भावी समाजवादी उच्चादर्शों का प्रकाश डाले। गोर्की के प्रतिनिधित्व में नवीन आलोचना-सिद्धांत का उदय हुआ जिसमें साम्यवादी विचारकों के अतिरिक्त असाम्यवादी लेखकों ने भी योग दिया। रूसी सर्वहारा वर्ग के लेखकों का आधिपत्य सर्वत्र मान्य हो चुका था और 'रसियन एसोशियेशन ऑफ प्रोलेटेरियन राइटर्स' की स्थापना हो गई थी। कालांतर में जब लोगों को ज्ञात हुआ कि इस संस्था से रूसी जनता की आकांक्षाएँ पूर्ण नहीं हुईं तो 'सोवियत लेखक संघ' के नाम से एक अन्य संस्था की स्थापना हुई। गोर्की स्टालिन के सहयोग से नए प्रयोग में निरत हुआ और 1934 ई. के आसपास समाजवादी यथार्थवाद का चित्र स्पष्ट होने लगा और यही सोवियत लेखकों की कल्पना का प्रमुख लक्ष्य सिद्ध हुआ।

1940 ई. के पश्चात रूसी आलोचना में दो विचारधाराएँ दिखाई पड़ी जिनमें एक का संबद्ध तद्युगीन राष्ट्रवादी चिंतन से है और दूसरी समाजवादी यथार्थवाद पर आधृत है। इस युग के आलोचकों में 'एण्टोकोलस्की' 'युकोवस्की' तथा 'पेस्टनाक' प्रसिद्ध हैं। रूस के प्रसिद्ध आलोचकों में 'राल्फ फाक्स' तथा 'लूनाचार्स्की' की देन महत्त्वपूर्ण है। दोनों ने मार्क्सवादी आलोचना की स्थापनाओं के विकास में अत्यधिक योगदान दिया। रूसी आलोचना पर क्रूशेव की भी विचारधारा का प्रभाव देखा जाता है और उससे प्रभावित साहित्य की प्रगति 1956 ई. में हुई। उसने 1961 ई. में रूसी लेखकों की एक बैठक बुलाई जिसमें कम्यूनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम पर विचार व्यक्त करने के लिए आदेश दिया तथा स्वयं एक लेख लिख कर लेखकों की स्वतंत्रता का विरोध किया। वह इस विचार से सहमत नहीं था कि दल के अनुशासन के कारण लेखक की रचना-स्वतंत्रता कुण्ठाग्रस्त हो जाती है। साम्प्रतिक रूसी आलोचना में श्रमिक महत्त्वपूर्ण भूमिका उपस्थित कर उसके नायक के रूप में जनता का प्रतीक बना हुआ है। अब समाजवादी यथार्थवाद का भी वहाँ विरोध प्रारंभ हो गया है और रूसी आलोचना व्यक्तिवादी धारा से अपने को मुक्त करने में कृत संकल्प है।

Saga (सागा) गाथा

'सागा' का अर्थ है कुछ कहा जाना, कथित अथवा आख्यात। इस प्रकार की कहानियाँ आइसलैंड में प्रचलित थीं जिनमें आइसलैंड परिवार अथवा नार्वे नरेशों का इतिहास वर्णित था। इसमें राजाओं की वंशगाथा के अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों की वीरता का भी वर्णन होता था। इनमें मिथ्या गाथाएँ भी रहती हैं, जिनमें गप्प और कल्पित बातों की भरमार होती है। कालांतर में इसका अर्थ विस्तार हुआ और यह कथा किसी भी वीरतापूर्ण कहानी के लिए प्रयुक्त होने लगी। इसमें साहसिक कहानियों को भी स्थान मिला और एक ही परिवार की भी कथाओं का समावेश हुआ। इनके लेखक का नाम अज्ञात रहता था और ये बारहवीं शती तक मौखिक रूप में ही प्रचलित थीं और लोक कण्ठस्थ करके इनका पाठ किया करते थे।

Sainte-Beuve (सैंत ब्यव) 1804-1869 ई.

फ्रेंच आलोचक। सैंत-ब्यव फ्रांस के कीर्तिलब्ध आलोचकों में है जिसे यूरोप के अन्य देशों में भी महत्त्व प्राप्त है। उसकी महान कृति Portraits (पोर्ट्रेट्स)

या 'व्यक्तिचित्र' है जो 1862 से 1871 ई. तक नौ भागों में प्रकाशित हुई थी। उसकी आलोचना के विकास के तीन सोपान हैं उग्र स्वच्छन्दतावादी (1824-1831 तक), प्रभाववादी (1831-1848 ई. तक) तथा निर्णयात्मक (1849-1869 ई. तक)। उसने किसी साहित्यकार की कृति के मूल्यांकन के लिए साहित्यकार के जीवन और व्यक्तित्व के अध्ययन पर ज़ोर दिया था। उसका कहना है— 'साहित्य-साहित्यिक कृतियाँ – मेरे लिए, शेश मानवों और मानवीय संगठनों से भिन्न नहीं हैं। मैं किसी कृति का रसास्वादन कर सकता हूँ, लेकिन व्यक्ति के ज्ञान के बिना, उसका निर्णय करना मेरे लिए कठिन है। यह मैं बिना किसी हिचकिचाहट के कहता हूँ। जैसा वृक्ष होगा, वैसा ही फल होगा। इस प्रकार साहित्यिक अध्ययन मुझे स्वाभाविक रूप से नैतिकता के अध्ययन की ओर ले जाता है।' वह जीवन चरित्र की ओर विशेष उन्मुख हुआ था और किसी लेखक का मूल्यांकन या विवेचन करने के पूर्व लेखक की वंश-परंपरा, शारीरिक गठन, आवेष्टन, प्रारंभिक शिक्षा तथा उसके अनुभवों की जानकारी करना आवश्यक समझता था। उसके अनुसार किसी लेखक के संबंध में निर्णय देना सहज है, पर व्यक्ति के विषय में नहीं। वह लेखक के जीवन चरित्र को उसकी कृतियों के अध्ययन की अपेक्षा अधिक महत्त्व देता था।

ब्यव जीवन के आरम्भिक दिनों में फ्रांसीसी स्वच्छन्दतावाद से संबद्ध था, फलतः उसकी मान्यताएँ उससे ही संवर्द्धित हुईं। स्कॉरजेम्स का कहना है, 'वह ऐसे काल में उत्पन्न हुआ था जब विज्ञान का प्राधान्य था और व्यक्ति सामान्य रूप से इसी के आधार पर सभी समस्याओं के निराकरण के लिए प्रयत्नशील था। अतएव वह वैज्ञानिक युग की निष्पत्तियों से विशेष रूप से प्रभावित हुआ और इन्हीं के आधार पर साहित्यिक के मानदण्डों को निर्धारित करने का प्रयत्न करने लगा।' उसने लेखक की जीवनचरितात्मक आलोचना को मनोवैज्ञानिक बोध एवं सहज बोध की प्रक्रिया कहा है। अपने युग में प्रचलित विज्ञान के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए उसने वैज्ञानिक या प्रकृतिवादी आलोचना को अपनाया। उसका कहना है — "अब मेरे पास केवल एक विनोद है, मैं विश्लेषण करता हूँ, मेरा दृष्टिकोण वनस्पतिशास्त्रवेत्ता का दृष्टिकोण है; मैं मन का विश्लेषण प्रकृतिवादी के रूप में करता हूँ। व्यक्तिचित्र 3.546। (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 183) उसने प्रकृति-विज्ञान की मान्यताओं को आलोचना के क्षेत्र में व्यवहृत किया। वह मानता है कि पेड़-पौधों की भाँति साहित्य का विकास होता है। वह परंपराविहित मार्ग का त्याग कर कलाकार को बाह्य आरोपित बंधनों से मुक्त करना चाहता

था। वह मानता था कि कलाकार बाह्य आरोपित बंधनों से मुक्त होते हुए भी व्यक्तित्व के अस्तित्व के नियमों का अनुपालन करे। अतः, कलाकार पूर्णतः स्वतंत्र होकर भी अस्तित्व के नियमों में आबद्ध रहे। उसके अनुसार आलोचक का कार्य है कलाकार के संबंध में निर्णय न देकर उसे समझाना। वह कलाकार के व्यक्तित्व में साहित्य का मूल खोजता था और कलाकारों का वैज्ञानिक और कलात्मक अध्ययन एक साथ करना चाहता था। वह इस विचार का समर्थक था कि आलोचक में जब तक स्वयं कलात्मक क्षमता न होगी, तब तक वह किसी कलाकार का मूल्यांकन नहीं कर सकेगा। कलाकार के रचनात्मक कार्य को पुनर्रचनात्मक रूप में परखना ही आलोचक का मुख कर्त्तव्य कर्म है। व्यक्ति के पहचानने पर उसके कार्य की स्वयं परख हो सकती है। आलोचक का कर्त्तव्य है कि वह लेखक के व्यक्तित्व और प्रतिभा की भिन्नता के अन्तर का उद्‌घाटन करे। उसने आभिजात्य (क्लासिकल) साहित्य और उसके स्रष्टा की प्रशंसा करते हुए कहा "आभिजात्य साहित्यकार वह प्राचीन लेखक है जो प्रशंसा का पात्र होने के कारण सामान्य श्रेणी में प्रतिष्ठित हो चुका हो और जिसे अपनी विशिष्ट शैली में प्रमाणस्वरूप स्वीकार किया जाता हो।" "वह एक ऐसा कृतिकार है जिसने मानव-मन को समृद्ध किया हो, उसके ज्ञान-भंडार की अभिवृद्धि की हो और उसे एक पग अग्रसर किया हो, जिसने किसी संदिग्ध सत्य का नहीं, नैतिक सत्य का अन्वेषण किया हो; अथवा उस हृदय में जहाँ सब कुछ अभिज्ञात और अनावृत्त प्रतीत होता था, किसी शाश्वत भावना का दिग्दर्शन कराया हो; जिसने अपने विचार,पर्यवेक्षण या आविष्कार व्यक्त किये हों।" (पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परंपरा, पृ. 185)

Samuel Johnson (डॉ. सेमुअल जॉन्सन)

अँग्रेजी आलोचक। (1709-1784) डॉ. जॉन्सन नव्यशास्त्रवाद का प्रबल समर्थ तथा इस युग का श्रेष्ठ और महान आलोचक था। उसे अँग्रेजी आलोचना का एकछत्र शासक कहा जाता है। उसका 'दि लाइब्ज ऑफ द पोयटस' नामक ग्रंथ अँग्रेजी के स्तरीय ग्रंथों में परिगणित होता है। इसमें प्रतिपादित विचार समय की मलिनता में धूमिल नहीं हुए हैं और न वे अनद्यतन बने हैं। उसकी समीक्षाएँ "द जेंटलमैंस मैगजीन", 'द रैम्बलर 'द आइडलर' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं जो आज भी उपलब्ध हैं। टी. एस. इलियट ने अँग्रेजी के तीन महानतम समीक्षकों में डॉ. जान्सन को परिगणित किया है। अन्य दो हैं — ड्राइडेन और

कॉलरिज। विद्वानों ने उसे प्रतिष्ठित मान्यताओं का नायक तथा क्लासिकवाद का पुरोधा कहा है। मैथ्यू आर्नोल्ड के अनुसार जॉन्सन के बाद साहित्य के नेता तो अनेक हुए पर शासक एक भी नहीं हुआ। उसके कुछ मत तो आज भी मूल्यवान बने हुए हैं और कुछ का ऐतिहासिक महत्त्व है। उसने अँग्रेजी के कई साहित्यकारों का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उसकी रचनाओं में नव्यशास्त्रीय आलोचना-पद्धति का चरमोत्कर्ष दिखाई पड़ता है। उसने कला को जीवन के यथार्थ निरूपण से संबद्ध किया था। उसके अनुसार साहित्य यथार्थ में समुपस्थित सत्यों एवं घटित होनेवाली घटनाओं का निरूपण करता है। सत्य इसका प्रमुख उपजीव्य है और सत्य की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम होने के कारण नाटक को जीवन का दर्पण कहते हैं। उसने समीक्षा का आधार विवेक बुद्धि को माना है। उसके अनुसार समीक्षक का कर्त्तव्य है कि वह समीक्षा को "अज्ञानजन्य अव्यवस्था, मन की उड़ानों और इसी प्रकार की अन्य अस्वस्थ प्रवृत्तियों से बचाकर विवेकपूर्ण ढंग से उसे प्रस्तुत करे।" "समीक्षक का काम न तो निन्दा करना है और न प्रशंसा करना, वरन् उसे चाहिए कि वह विवेक का आलोक आलोच्य कृति पर डाले और उस प्रकाश में उसे जो दिखलाई पड़े उसे वह कहे।"

उसके अनुसार कवि-कर्म सामान्य की अभिव्यक्ति करने में है, व्यक्ति विशेष की नहीं। वह काव्य का लक्ष्य प्रमाता को प्रभुदित करना मानता है तथा उसका कल्याण करना। वह कविता में संगीत की अव्यवस्था या बेसुरापन को पसंद नहीं करता, उसे लयबद्ध कविता के छन्द अच्छे लगते हैं। उसने पदों के संघटन में समरूपता का समर्थ किया है और इसके अभाव को निन्दनीय माना है। जो कविता पाठकों के मनोवेग को प्रदीप्त करती है, वही सार्थक है। उसने सत्याश्रित काव्य का समर्थन कर ऐसे कथानक या घटनाओं को संदेह की दृष्टि से देखा है जो कल्पनाश्रित हैं। जन्सन को काव्यगत न्याय तथा नैतिक सत्य का अनन्य प्रस्तोता माना जाता है। वह इस विचार का पोषक है कि यथार्थ शिक्षाप्रद होने के कारण नैतिक होता है।

जॉन्सन ने आलोचना के कार्य को अत्यंत गंभीर मान कर किसी अच्छे और संतुलित आलोचक को तद्विषयक खतरों से बचने का अनुरोध किया है। आलोचक का ज्ञान व्यापक हो और वह आलोच्य कृति का तल्लीनता के साथ अध्ययन करे तथा उसकी संवेदना के साथ तादात्म्य स्थापित कर उसके संबंध में अपना निर्णय दे। उसका कहना है कि आलोचक परंपरा प्राप्त प्रतिमानों को स्वीकार करे या

उसका विरोध। इस संबंध में उसने दो नियम निर्धारित किये हैं — प्रथम वे नियम हैं जिनका आधार प्रकृति है जो सार्वभौम और अनिवार्य है तथा दूसरे नियम परंपरा से संबद्ध हैं जिनमें परिवर्तन की संभावना बनी रहती है। "लेखक का प्रथम प्रयास प्रकृति और परंपरा में भेद करना होना चाहिए अर्थात जिसकी प्रतिष्ठा उपयुक्त होने के नाते हुई है और जो प्रतिष्ठित हो जाने के कारण उपयुक्त हैं : इन दोनों का भेद उसे हृदयंगम कर लेना चाहिए जिससे वह नवीनता लाने की लालसा से अनिवार्य सिद्धांतों का अतिक्रमण न करे और न ऐसे नियमों को, जिनके प्रवर्तन का अधिकार किसी साहित्यिक तानाशाह को न था, तोड़ने के आवश्यक डर के मारे अपनी दृष्टि की परिधि में आए हुए सौंदर्य का समावेश करने से विमुख हो।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 118) उसने संपूर्ण आलोचना में सामान्य तथा वस्तुपरकता के प्रति विशेष आकर्षण प्रकट किया है। उसके अनुसार कविता की भाषा सर्वजनसुलभ होनी चाहिए तथा उसमें अन्य विषय की पदावली का प्रयोग न किंया जाय; क्योंकि इससे भाषा दूर्बोध हो जाती है।

"एडीसन ने सच्चे समालोचक का यह लक्षण बताया है कि वह दोषान्वेषण के बजाय सौंदर्य की ओर इंगित करता है। परंतु, प्रतिभा सम्पन्न एवं ज्ञानवान् व्यक्ति के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वह मुख्यत: ऐसे लेखकों के अध्ययन में निरत हो जहाँ दोष-दर्शन की अपेक्षा उसे सौंदर्य ही अधिक मिले; क्योंकि आलोचना का कर्त्तव्य न तो किसी रचना का अवमूल्यन करना होता है और न आंशिक विवेचन द्वारा उसे गरिमा-मंडित करना — उसका कर्त्तव्य तो विवेक के आलोक में जो दीखे उसका उद्‌घाटन करना और सत्य के निर्देश में जो निर्णय हों उनका आख्यान करना है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 114) उसके अनुसार कोई कवि मानव-प्रकृति का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर उसके आधार पर कृति का निर्माण कर तो वह युगों तक जनता में सम्मान प्राप्त करेगी। उसने लिखा है "काव्य में सामान्य प्रकृति के सत्य एवं नैतिकता के प्रस्तुतिकरण के अतिरिक्त अन्य कुछ बहुतों को, और बहुत समय तक, आनन्द नहीं प्रदान कर सकता है।" वह काव्य की नैतिकता, सामान्यता एवं यथार्थता का प्रबल समर्थक है। वह मानता था कि काव्य में ऐसा जीवन न प्रस्तुत किया जाय जो इस दृश्य जगत् में न दिखाई पड़े। अयथार्थ का चित्रण करने वाला साहित्य मूल्यहीन हो जाता है। वह मानता है कि कवि नैतिकता के आधार पर वस्तु का चुनाव करे उसके अनुसार, "यह ठीक है कि प्रकृति का अनुकरण करना कला की महानतम उत्कृष्टता है, परंतु प्रकृति के उन अंशों का चुनाव करना अवश्यक है, जो अनुकरण के लिए सर्वाधिक उचित

हैं। जीवन प्राय: भावावेगों से विकृत रहता है या दुष्टताओं से कुरूप बन जाता है, इसलिए उसके प्रस्तुतिकरण के समय अपेक्षाकृत अधिक सावधानी बरतनी चाहिए।" (समीक्षालोक, पृ. 349)उसके अनुसार कवि आनन्द ही नहीं देता, शिक्षा भी देता है। काव्य प्रकृति का अनुकरण है और प्रकृति मूलत: सर्वत्र एक-सी ही होती है। वह काव्य में स्पष्टता और सरलता का हिमायती है। स्वाभाविक विचार को स्वाभाविक भाषा में व्यक्त करना चाहिए। अलंकरण के सायास साधनों को उसने गर्हित माना है। "अलंकृत विशेषणों और चमत्कारपूर्ण उक्तियों से पूर्ण कई पंक्तियों का लिखना सरल है और सहज शोभा से युक्त दो-चार पंक्तियाँ लिखना अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। इसके लिए सावधानी और कौशल की आवश्यकता पड़ती है।"

Samuel Taylor Coleridge (सैमुअल टेलर कॉलरिज) 1772-1834

अँग्रेजी कवि और आलोचक। सैमुअल टेलर कॉलरिज कवि, आलोचक और दार्शनिक है। उसमें कवि-कल्पना की सर्जनात्मक प्रतिभा विद्यमान थी तथा सत्समालोचक की संवेदनशीलता एवं विचारक की प्रखर चिंतनशक्ति का समन्वय था। उसने 'बायोग्राफिया लिटरेरिया' नामक युग प्रवर्त्तक आलोचना ग्रंथ की रचनां की थी। वह दर्शन और काव्य का अविच्छिन्न संबंध मानते हुए तत्त्वचिंतन के आधार पर काव्यालोचन की स्थापना करता है।

कॉलरिज अत्यंन अध्ययन शील और जर्मन साहित्य एवं दर्शन का निष्णात पण्डित था। उसने कल्पना-संबंधी मत का प्रतिपादन अत्यंत गंभीरता एवं मौलिकता के साथ किया है। उसका मत इतना मौलिक है कि कल्पना और कॉलरिज अभिन्न से हो गए हैं। उसके कल्पना-सिद्धांत पर कॉण्ट और शेलिंग के विचारों का प्रभूत प्रभाव देखा जाता है। चिंतन का स्रोत अन्यत्र रहते हुए भी उसके विवेचन पर उसकी निजी अनुभूति की अमिट छाप दृष्टिगोचर होती है। उसने कल्पना-सिद्धांत की व्याख्या दार्शनिक धरातल पर की है।

कॉलरिज के अनुसार कवि कल्पना दैवी और अलौकिक शक्ति है, वह समष्टि मानस की प्रतिनिधि है। कलाकार कल्पना-शक्ति से सम्पन्न होकर चेतन और अचेतन मन और प्रकृति, विषय और विषयी में सामंजस्य स्थापित करता है। उसने अन्य रोमांटिक विचारकों की भाँति काव्य में अनुभूति की सचाई, अभिव्यंजना की सरलता तथा अकृत्रिमता को महत्त्व दिया है। उसके अनुसार जिन कवियों में इन

गुणों का अभाव है। उन्हें कवि नहीं कहा जा सकता। वह न तो केवल भावना को काव्य के लिए पर्याप्त मानता है और न केवल बौद्धिकता को। उसने श्रेष्ठ काव्य के लिए दोनों को एकीकृत करने पर बल दिया है। वह मानता है कि कवि के लिए कल्पना-शक्ति की भाँति निरीक्षण शक्ति का भी उतना ही महत्त्व है। कल्पना के द्वारा अंतर्जगत् और बाह्यजगत् के बीच पूर्ण एकीकरण होता है। "कल्पना की व्यापक प्रक्रिया के अंतर्गत दृश्य जगत् और मानसजगत् दोनों समन्वित हो जाते हैं यह कार्य सम्पन्न कैसे होता है? कॉलरिज का कथन है कि कल्पना की शक्ति अलौकिक है। वह समष्टि मानस की प्रतिनिधि है। उस ईश्वरीय सत्ता में यह दृश्य जगत् भी उद्‌घाटित होता है। समष्टि मानस से ही दृश्यजगत् का उत्सारण होता है। व्यष्टि मानस (कवि का हृदय) इसी समष्टि मानस को अपने भीतर समेटता है। समष्टि मानस इस दृश्यजगत् को साकार करता है, और इस प्रकार कविकल्पना में विषय और विषयी या मन और प्रकृति का समाहार होता है।" (नया साहित्य नये प्रश्न, पृ. 76) कल्पना-शक्ति के दो रूप हैं — दृश्य जगत् के नाना रूपों का उद्‌घाटन करनेवाली शक्ति तथा व्यष्टि मानस द्वारा दृश्यजगत् को अपने में विलय करनेवाली शक्ति (दे. वही पृ. 76)

उसने कल्पना की दो कोटियाँ निर्धारित की हैं — प्राथमिक कल्पना (Primary Imagination) या मुख्यकल्पना एवं गौण-कल्पना (Secondary imagination)। वह गौण कल्पना को ही कवि कल्पना मानता है। "मेरे विचार में कल्पना या तो मुख्य होती है या गौण। मुख्य कल्पना तो मेरे अनुसार समस्त मानवीय ज्ञान की जीवंत शक्ति और प्रमुख माध्यम होती है, वह असीम में होनेवाली अनन्त सृजन-प्रक्रिया की ससीममन में आकृति होती है। गौण कल्पना को मैं मुख्य कल्पना की छाया मात्र समझता हूँ, सचेतन संकल्प-शक्ति के साथ उसका सह-अस्तित्व होता है, परंतु फिर भी माध्यम का प्रकार वह वैसी ही होती है जैसी मुख्य कल्पना – अन्तर होता है मात्रा का और क्रिया-विधि का। पुनः सृजन के निमित्त उसका तिरोधान, विकिरण, विघटन होता है, या जहाँ यह प्रक्रिया असम्भव होती है वहाँ भी आदर्शीकरण तथा एकीकरण का प्रयत्न तो होता ही है। वह मूलतः सजीव होती है – वैसे ही जैसे (वस्तुओं के रूप में) सभी वस्तु मूलतः अचल और निर्जीव होती है।" "इसके विपरीत, ललित कल्पना की क्रीड़ा का अचलता और निर्दिष्टता के क्षेत्र के अतिरिक्त और कोई ठिकाना नहीं होता। ललित कल्पना, वास्तव में, देश-काल के अनुशासन से मुक्त स्मरण की एक रीति है — और कुछ नहीं, वह इच्छा-शक्ति के उस अनुभवमूलक व्यापार से पुष्ट और

परिवर्तित होती है जिसे हम 'चयन' शब्द से व्यंजित करते हैं। परंतु, साधारण स्मृति की भाँति ललित कल्पना भी अपनी सम्पूर्ण सामग्री साहचर्य-नियम से यथावत् ग्रहण करती है।" (दे. पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 166)

गौण कल्पना मुख्य कल्पना की छाया है और उसी पर कला के निर्माण का उत्तरदायित्व रहता है। वह मुख्य कल्पना के ज्ञान-संबंधी उपादानों की पुनर्रचना कर उन्हें मूर्त्त रूप तथा आकार प्रदान करती है। कॉलरिज के अनुसार कल्पना ऐसी निर्माणकारी शक्ति को कहते हैं जो मानवीय ज्ञान के तत्त्वों को संगठित तथा समन्वित कर एकरूपता प्रदान करती है जिसका संश्लिष्ट रूप कलाकृति है। कॉलरिज ने 'बायोग्राफिया' के चतुर्थ अध्याय में फैन्सी और इमैजिनेशन के अन्तर को स्पष्ट किया है। "सर्वप्रथम फैन्सी अर्थात संयोगात्मक मानसिक शक्ति जड़ और निश्चित स्वरूपवाली होती है। यह सामग्री न तो किसी सजीव शक्ति द्वारा आत्मसात् अथवा एकीकृत होती है और न वह दिक्काल के संबंध में नियोजित होती है। वह स्मृति पर आधृत होती है और केवल यांत्रिक रीति से उस पर व्यवस्था का आरोप होता है। चेष्टा का नितांत अभाव नहीं होता, किंतु वह मुख्य रूप से चयन (च्वायस) तक ही सीमित रहती है। फैन्सी की क्रिया से उत्पन्न मानसिक चित्रों में वह जीवंत एकरूपता नहीं होती, जो इमैजिनेशन की शक्ति में होती है। ....कल्पना नवनिर्माण का कार्य करती है — विचार तथा पदार्थ के बीच मध्यस्थ बन कर। उसकी मध्यवर्ती स्थिति विशेष महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि उसका सारा कार्य समन्वयात्मक होता है।" (दे. साहित्य-सिद्धांत, पृ. 104 - 105 डॉ. राम अवध द्विवेदी)

काव्य के स्वरूप और उद्देश्य पर विचार करते हुए कॉलरिज ने कहा "कविता रचना का वह विशिष्ट प्रकार है, जो वैज्ञानिक कृतियों से इस बात में भिन्न है कि उसका प्रस्तावित प्रत्यक्ष उद्देश्य आनन्द होता है, सत्य नहीं, और जिसमें अन्य सब रचना प्रकारों (जिनका उक्त लक्ष्य उसके समान ही होता है) यह भेद होता है कि पूर्ण रचना वही आनन्द प्रदान करने का प्रयत्न करती है जो प्रत्येक घटक के अंग में प्राप्त होने वाले विशिष्ट परितोष के अनुरूप हो।"

"परंतु यदि सच्ची कविता की परिभाषा देनी हो तो मेरा उत्तर यह है कि वह ऐसी होनी चाहिए जिसके विविध भाग परस्पर एक दूसरे को सहारा दें और एक दूसरे की व्याख्या करें और सब अपने-अपने अनुपात में छन्दविधान के साथ समंजस हों तथा उसके उद्देश्य एवं ज्ञात प्रभावों का उन्नयन करें।" "अन्त में

सदबुद्धि कवि-प्रतिभा की काया है, ललित कल्पना परिच्छद, मनोवेग जीवन और कल्पना उसकी आत्मा है जो सर्वत्र और सब भागों में व्याप्त रहती है तथा सबको मिलाकर एक गरिमामय एवं सम्प्रेषणीय पूर्णता का निर्माण करती है।" कॉलरिज के अनुसार काव्य में सौंदर्यतत्त्व मुख्य है, किंतु वह कल्पना पर आश्रित है।



Sarcasm (सारकाज़्म)
कटाक्ष

एक अलंकार। उद्दिष्ट व्यक्ति पर आघात करने के लिए या उसका उपहास करने के लिए जब कटुता और व्यंग्य से पूर्ण उक्ति का प्रयोग किया जाय तो सारकाज़्म होता है। इसमें कटुता और व्यंग्य का प्रत्यक्ष प्रयोग किया जाता है।

Satire (सैटायर) व्यंग्य या उपहास काव्य

उपहास काव्य की परिधि अत्यंत विस्तृत है जिसके अंतर्गत गद्य और पद्य दोनों ही समाविष्ट हैं। गद्य, पद्य उपन्यास, निबंध, नाटक सभी में व्यंग्य के तत्त्व निहित रहते हैं। सभी साहित्यों में उपहास काव्य की रचना होती रही है। इसका उद्‌भव ग्रीक साहित्य में हुआ था जिसके उदाहरण अरिस्टोफेनिस के व्यंग्य नाटक हैं। लैटिन साहित्य में भी होरेस, पर्सियस और जुवेनल ने व्यंग्य काव्यों की रचना की है।

सैटायर शब्द का अर्थ चमक रहित काव्य या unpolished Verse है। इसका उद्देश्य कुरूपता, अनैतिकता और आडम्बर की आलोचना कर उनमें सुधार लाना होता है। इसके लिए आवश्यक है कि कवि की मनोभावना तथा अंतर्भावना पर ध्यान दिया जाय। रिचर्ड गारनेट के अनुसार सैटायर की परिभाषा इस प्रकार है — "अपने साहित्यिक रूप में उपहास हास्यास्पद अथवा कुरूप तत्त्वों से उत्पन्न मनोरंजन अथवा घृणा की भावना की सफल अभिव्यक्ति है। हास्य का अंश स्पष्ट

रूप से द्रष्टव्य होना चाहिए और प्रकाशन-शैली में साहित्यिक चमत्कार होना भी आवश्यक है। बिना हास्य-भावना के सैटायर केवल 'इनवेक्टिव' अर्थात निन्दा तथा साहित्यिक सौंदर्य के अभाव में वह केवल भड़ैती मात्र बन कर रह जाता है।" (साहित्य रूप, पृ. 261) इसमें रचयिता मानवीय दुर्गुण और दुर्बलताओं का उद्घाटन कर उन्हीं को लक्ष्य बनाते हुए अपना व्यंग्य बाण छोड़ता है। इसमें वर्ग विशेष की भी आलोचना होती है। इसमें कुत्सित चेष्टाओं और भावनाओं का भी प्रकाशन होता है, जिसे हेय माना गया है। इसका स्वीकृत उद्देश्य है व्यक्तिगत या सामूहिक अथवा वर्गगत बुराइयों का पर्दाफाश कर् उनका उन्मूलन करना। प्रतिहिंसा की भावना से प्रेरित होकर रचा गया उपहास काव्य काम्य नहीं होता और निरर्थक हँसी उत्पन्न करने वाले उपहास काव्य को भी हेय दृष्टि से देखा गया है। यदि नवोत्थान, सुधान और परिष्कार की भावना से ऐसे काव्य का प्रणय़न किया जाय तो वह स्वागतार्ह है। व्यक्ति और समाज की त्रुटियों का प्रकाशन कर कवि यदि उनके दोषों का उद्घाटन कर सके और उनके निराकरण की व्यवस्था करे तो ऐसा काव्य उच्च स्तर का माना जाएगा। ऐसा हास्य सुधार का साधन माना जाता है। 'सैटायर' लैटिन शब्द सैटुरालैक्स से बना है जिसका अर्थ विविध संग्रह है।

Satre Jean Paul (ज्यां पाल सार्त्र)

सुप्रसिद्ध फ्रेंच उपन्यासकार एवं दार्शनिक।

दे. Exhistentialism

Schiller (शिलर) (1759-1805)

प्रसिद्ध जर्मन आलोचक, कलाशास्त्री, कवि, नाटककार एवं दार्शनिक। उसने 'भावप्रवण कविता' (Ubernaive and sentimentalische Dichtung) नामक आलोचक विषयक ग्रंथ की रचना 1785-86 ई. में की थी। उसका सुप्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथ 'फिलोसोफ़िश ब्रीफ' 1785 ई. में प्रकाशित हुआ। शिलर का आविर्भाव उस समय हुआ जब जर्मनी में शास्त्रवादी (क्लासिक) और स्वच्छन्तावादी (रोमांटिक) विचारधाराएँ प्रबल हो उठी थीं। उस पर काण्ट के विचारों का प्रभाव था, पर उसने अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से विकसित किया। 'सरल तथा भावप्रवण कविता' नामक रचना में शिलर ने अपने सौंदर्य-सिद्धांत के आधार पर काव्यकला की व्याख्या की और साहित्य के विभिन्न रूपों का वर्गीकरण

क्रिया। उसने अपने सिद्धांत में गेटे की सहज एवं आभिजात्यवादी या शास्त्रवादी प्रवृत्ति का विरोध कर अपनी भावुक और स्वच्छन्द प्रतिभा की प्रतिप्ठा थी। वस्तुतः शिलर के समय से ही जर्मनी में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का प्रारंभ हुआ।

शिलर ने काण्ट के इस विचार को सौंदर्यानुभूति मस्तिप्क के ज्ञान विभागों की सामंजस्य युक्त क्रीड़ा है, अपने क्रीड़ा प्रवृत्ति नामक मत में अधिक स्पष्ट किया। उसके अनुसार सौंदर्य जहाँ एक ओर प्राकृतिक नियमों से स्वतंत्र है, वहाँ दूसरी ओर नैतिक नियमों से मुक्त भी। वह सौंदर्य को व्यवहार जगत् की स्वतंत्रता मानता है। सौंदर्य रूप तथा वस्तु की संयोजक कड़ी है और रूप का आश्रय ग्रहण कर कवि वस्तु की सृष्टि करता है। चूँकि मनुष्य रूप और वस्तु दोनों है, अतः इनमें संतुलन की आवश्यकता है। यह संतुलन मनुष्य के मन में विद्यमान क्रीड़ा प्रवृत्ति द्वारा संभव है और यही (क्रिड़ा प्रवृत्ति) सौंदर्य की सृष्टि करती है। कला एक प्रकार की अचेतन और आनन्ददायक क्रिया है। कला के नियम प्राकृतिक आवश्यकताओं के अनुसार न होकर नैतिक आदर्शों के आधीन होते हैं और कला की क्रीड़ा में नियम का अनुगमन किया जाता है। पर, कला के नियमों का प्राकृतिक तथा नैतिक नियमों के साथ कोई द्वन्द्व नहीं होता। उसके अनुसार सौंदर्य मूलक विचारों से पूर्ण होकर ही संवेदनशील प्राणी विवेकयुक्त बन सकता है। क्रीड़ा में रत रहने पर ही मनुष्य में पूर्णता आती है और यही उसकी सौंदर्यानुभूति का यथार्थ क्षण कहा जाता है। शिलर के अनुसार मनुष्य की शिक्षा देने में सौंदर्यशास्त्र की उपयोगित्रा निहित उसके अनुसार सौंदर्य की उपासना द्वारा मनुष्य शिव तक पहुँच कर ऐसी स्थिति में आ जाता है जहाँ उसे तर्क या बुद्धि के आश्रय की आवश्यकता नहीं रह जाती। उसने कवि को प्रकृति का स्वरूप या प्रकृति का अन्वेपी कहा है। प्रथम स्थिति में वह सरल कवि होता है और द्वितीय स्थिति में भावुक। वह कवित्व प्रेरणा को अमर मानता है जिसका मानवता के बीच कभी लोप नहीं होता। वह तभी लुप्त होगी जब स्वयं मानव या मानवता अपने को मानव समझने की वृत्ति का लोप कर दे। "इस प्रकार मानव प्रकृति की सरलता से विच्छिन्न होकर भी, कवित्व-शक्ति खो नहीं देता, केवल वह क्षमता एक अन्य दिशा की ओर क्रियाशील होती है।"[पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंमरा पृ. 139] उसके मतानुसार कवि प्रकृति से ही आलोक और भावोष्णता प्राप्त करता है और प्रकृति ही सशक्त रूप से कवि की आत्मा को आन्दोलित करती है। "कवि की आत्म प्रकृति से ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति प्राप्त करती है। कृत्रिम, संस्कृति-अन्वेषी मानव में वह कवि की आत्मा केवल प्रकृति को ही सम्वोधित करती है। उसके क्रिया-कलाप का अन्य

कोई भी रूप काव्य की आत्मा से दूर जा पड़ सकता है। अत:, यह कहा जा सकता है कि तथाकथित वाग्ग्वैदग्ध्यपूर्ण रचनाओं को काव्यात्मक शब्द से अभिन्न मानना गलत है, यद्यपि फ्रेंच साहित्य को जो प्रतिष्ठा मिली उसके कारण बहुत समय तक उक्त रचनाओं को काव्यात्मक माना जाता रहा।" [पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 139]

शिलर कविता के मूलभूत विचार की दृष्टि से कवि को प्रकृति का संरक्षक मानता हैं। कवि स्वयं को प्रकृति की अभिव्यक्ति बनाता है। उसके अनुसार सभी कवि "अपने समय और अपनी सांयोगिक परिस्थितियों के अनुसार, जिन्होंने उनकी शिक्षा-दीक्षा को सामान्यत: प्रभावित किया है अपनी-अपनी मन: स्थितियों के अनुसार, या तो भाव-प्रवण या सरल कविता रचने वाले होंगे।" [वही, पृ. 137] वह कविता को समग्र रूप में मानवता की अभिव्यक्ति मानता है। उसके अनुसार काव्य-प्रतिभाकी दो अभिव्यक्तियाँ हैं। वह स्वच्छन्दतावादी आधुनिक कविता को भावप्रवण कहता है जिसमें यूनानी कविता की स्वाभाविक सरलता नहीं है।

Scholasticism (स्कॉलैस्टिसिज्म) विद्वद्वाद या शास्त्रमोह

यूनान में उदार कलाओं को सिखाने वाले मध्य युगीन शिक्षण-संस्थाओं के विद्वानों के कार्य को विद्वद्वाद की संज्ञा दी गई थी; कालांतर में धर्मशास्त्र तथा दर्शन की शिक्षा देने वालों को भी यही संज्ञा प्राप्त हुई। पुनर्जागरण काल में लोगों ने सम्पूर्ण मध्ययुग को घृणा की दृष्टि से देखने के लिए स्कॉलैस्टिक शब्द का ही प्रयोग किया और आधुनिक युग में यह शब्द मध्ययुगीन धार्मिक चिंतना का वाचक बन गया। आधुनिक युग में इस शब्द का अर्थ मध्ययुग का धार्मिक और दार्शनिक विचार हो गया। आज इस नाम को धारण करनेवालों का विचार है कि मध्ययुगीन विचारधारा सत्य और शुद्ध है तथा उसके सिद्धांतों में इस प्रकार के तत्त्व निहित हैं जिनमें आज की समस्याओं, विशेषकर साहित्य और समीक्षा की समस्याओं का, समाधान ढूँढ़ा जा सकता है। मध्ययुग में इसमें दैवीज्ञान के प्रति आस्था का भाव था और लोगों का विश्वास था कि इसके द्वारा ही सत्य की सिद्धि संभव है। उस समय अरस्तू की तर्क पद्धति और ईसाई धर्मशास्त्र के बीच सामंजस्य स्थापित होने के कारण आधारभूत सिद्धांतों में ऐक्यमत्य हो गया था।

Schopenhaver (शॉपेनहॉवर) जर्मन दार्शनिक। दे. History of Aesthetics.

Screen (स्क्रीन) यवनिका

रंगमंच के पीछे का पर्दा जो नेपथ्य और रंगमंच के बीच विभाजक रेखा की भाँति होता है। यह रंगमंच पर घटित होने वाले कार्य व्यापार की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। दे. Drama.

Sculpture (स्कल्पचर) मूर्त्तिकला–दे. Art

Shadowplay (शैडोप्ले) छायानाट्य–पुत्तलिकाओं की छायाकृतियों द्वारा किया गया छायानाट्य शैडोप्ले कहा जाता है।

Shelley P. B. (परसी विशी शेली) (1792-1822 ई.)

अँग्रेजी कवि और आलोचक। आलोचक के रूप में शेली की ख्याति उसके सुप्रसिद्ध निबंध 'डिफेन्स ऑफ पोएट्री' के कारण है। उसकी मान्यताएँ प्लेटो की दार्शनिक निष्पत्तियों से अधिक प्रभावित हैं। उसने कल्पना को काव्य-सर्जन का प्रमुख साधन मानकर कल्पना और प्रेरणा के सामंजस्य पर विशेष बल दिया है। उसने अपने पत्रों में भी समालोचनात्मक विचार व्यक्त किया है। उसके अनुसार कविता कल्पना की अभिव्यक्ति है। वह कल्पना-शक्ति को काव्य का प्रमुख उपादान मानता है। "कविता को, सामान्य अर्थ में, कल्पना की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है और कविता का उद्‌भव मानव के साथ ही सहज रूप से हुआ है। जिस प्रकार वातचालित विपंची पर चिर चंचल वायु के नित्य परिवर्तित स्पर्शों से निरंतर बदलते हुए राग का उदय होता है, उसी प्रकार मनुष्य भी एक यंत्र है जिस पर बाह्य एवं आन्तरिक प्रभाव-क्रम छाप छोड़ जाता है।" वीणा पर वायु के झोकों से उठने वाली स्वर-लहरी की भाँति कवि का हृदय भी कल्पना-शक्ति के आरोहावरोह से संचालित होता है। उसने आयास-रहित स्वाभाविक काव्य-रचना पर बल दिया है।

काव्य की समता पक्षियों के अयाचित और अनायास कलरव से करते हुए उसने काव्यसृष्टि को अनायास माना है। विद्वानों का कथन है कि इस प्रकार का विचार कवि को आलसी और अकर्मण्य बनानेवाला है। शेली के काव्य-संबंधी विचार इस प्रकार हैं–

"कवि चिरंतन, असीम एवं अद्वैत का समभागी होती है; उसकी काव्यधारणाओं में, देश, काल एवं संख्या का कोई महत्त्व नहीं होता। पुरुष-भेद एवं देश-भेद तथा

कालगत अवस्थाओं को व्यंजित करने वाले व्याकरण-रूप, ये सभी उच्चतम काव्य के संदर्भ में, काव्यत्व का क्षय किए बिना, परिवर्तनीय हैं।" भाषा, रंग, रूप-आकार, धार्मिक एवं नागर कार्य-प्रवृत्ति—ये सब कविता के उपादान एवं साधन हैं। उस अलंकार विशेष के अनुसार जिसमें कार्य को कारण का पर्याय माना जाता है, इन्हें कविता भी कह सकते हैं, परंतु सीमित अर्थ में कविता, विशेषत: छन्दोबद्ध कविता उस भाषाविन्यास को व्यक्त करती है जिसका सृजन मानव के अदृश्य स्वभाव में प्रच्छन्न आसन पर प्रतिष्ठित राजन्य शक्ति के द्वारा होता है। और इसका उद्भव भाषा की प्रकृति से ही होता है; भाषा, रंग, आकार अथवा गति की अपेक्षा हमारे अन्तरतम की वासनाओं एवं क्रियाकलाप का अधिक प्रत्यक्ष निरूपण करती है।

"कविता शाश्वत सत्य-रूप में अभिव्यक्त जीवन का ही प्रतिबिम्ब है। कविता मानव-स्वभाव के अपरिवर्तनीय रूपों के अनुसार स्रष्टा के मन में अवस्थित कार्य-व्यापारों की सर्जना होती है और स्रष्टा का मन सभी के मन का बिम्ब होता है। कविता सार्वजनीन होती है-मानव-स्वभाव के विविध सम्भावित रूपों में जिन प्रेरक हेतुओं और कार्यों का स्थान होता है उन सबसे संबंध के बीज उसमें विद्यमान रहते हैं।" "कविता का चिरसंगी है आनन्द। जिन प्राणों का वह स्पर्श करती है वह आह्लाद से पुष्ट उसकी बुद्धिमत्ता ग्रहण करने के लिए उन्मुक्त हो जाते हैं।" "जिन तत्त्वों का सृजन कविता ने किया है आचारशास्त्र उनका विन्यास करता है।" "अत:, कवि के लिए यह उचित नहीं कि वह अपनी धारणाओं का समावेश करे; क्योंकि उसकी ये धारणाएँ अपने देशकाल में सीमित होती हैं और कविता उनसे मुक्त होती है।"

"जिनमें कवित्व-शक्ति महान होने पर भी उतनी प्रखर नहीं होती, वे प्राय: उसमें किसी नैतिक उद्देश्य का समावेश करते हैं और जिस अनुपात में वे हमें अपना ध्यान उस ओर केंद्रित करने पर विवश करते हैं उसी अनुपात में उनकी कविता अपना प्रभाव खो बैठती है।"

"कवित्व-शक्ति के दो कार्य होते हैं—एक में वह ज्ञान, शक्ति और आनन्द के नये उपादानों की सर्जना करती है; दूसरे में वह इन सबको एक विशेष लय के अनुकूल अभिव्यक्त और विन्यस्त करने की इच्छा तथा 'शिव' एवं 'सुन्दर' की प्रेरणा जगाती है।".

"कविता सचमुच एक दिव्य शक्ति है। वह ज्ञान का केंद्रबिन्दु भी है, परिधि भी; उसमें समस्त विज्ञान का अंतर्भाव है—वे सब उसी के अधीन होने चाहिए।"

"कविता सर्वाधिक सुखी एवं श्रेष्ठतम मनों के श्रेष्ठतम और सबसे अधिक सुखी क्षणों का लेखा जोखा है।" "इस संसार में जो श्रेष्ठतम और सुंदरतम है कविता उसे अमर कर देती है; जीवन चक्र के बीच-बीच में जो अदृश्यमान छवियाँ आ जाती हैं उन्हें वह पकड़ लेती है और उन्हें भाषा अथवा आकार का आवरण देकर मानव के समक्ष प्रस्तुत कर देती है और वे उन व्यक्तियों के प्रति सदृश आह्लाद का मधुर संवाद वहन करती हैं जिनमें वैसी ही दिव्य प्रेरणाओं का निवास तो होता है, परंतु जिनकी आत्मा के गह्वरों में से उन्हें वस्तुजगत् में अभिव्यक्ति पाने का कोई मार्ग नहीं होता। कविता मानवात्मा द्वारा अनुभूत दिव्य संस्पर्शों को क्षय से बचाती है।" "कविता प्रत्येक वस्तु को रुचिरता प्रदान करती है। जो परम सुंदर है उसके सौंदर्य की अभिवृद्धि करती है और जो अत्यंत कुरूप है उसमें सौंदर्य का समावेश करती है। वह भय और उल्लास, शोक और आह्लाद, चिरंतनता और परिवर्तनशीलता का संयोग कराती है। अपने कोमल भार से वह विरोधी तत्त्वों का भी एकान्वय सम्भव कर देती है।" [पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 168-182]

शेली ने टॉमस लव पीकाक के 'कविता के चार युग' नामक निबंध के विरोध में अपना सुप्रसिद्ध निबंध लिखा था। पीकॉक ने विज्ञान के महत्त्व का प्रतिपादन कर काव्य-सर्जन को अर्थहीन बताया था। शेली ने उसके विचारों का प्रतिवाद कर कविता के पक्ष का समर्थन किया। 'डिफेन्स ऑप पोएट्री' की रचना 1821 ई. में हुई थी। उसने कवि को नीतिशास्त्रों का जनक एवं धर्मों का शिक्षक-प्रचारक कहा। वह केवल कलाओं का ही उद्‌भावक नहीं होता। कवि शाश्वत, अनन्त एवं अद्वैत का सहभागी है और उसकी कृति शाश्वत सत्य-रूप में अभिव्यक्त जीवन का तद्रूप प्रतिबिम्ब है। कविता ऐसे नायकों की सृष्टि करती है जिनके अनुरूप हम अपने चरित्र का निर्माण करें।

शेली ने भाषा को कल्पना की अन्यतम कृति माना है और जल तथा तरंग की भाँति भाषा और कल्पना में भेद किया है। भाषा का भावों से सीधा संबंध है और कल्पना से भिन्न भाषा का कोई रूप नहीं होता। मानव चैतन्य के साथ कविता की प्रवृत्ति सहजात होती है। उसने काव्य के सभी विधानों में महाकाव्य को उत्तम कहा है; क्योंकि इसमें अन्यान्य रूपों का अंतर्भाव हो जाता है। कविता मनुष्यों के अज्ञानावरण को हटाकर उसे आदर्श की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करती

है। वह मानव-मानस को विकसित करने के लिए अपार क्षेत्र का उद्घाटन करती है। वह काव्य का प्रयोजन आनन्द मानता है।

Short Story (शॉर्ट स्टोरी) कहानी

कहानी साहित्य की अति प्राचीन विधा है, यह उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव-सृष्टि। आधुनिक कहानी का जो स्वरूप है, वह बहुत कुछ पाश्चात्य साहित्य की देन है उसका विकास पश्चिम में ही हुआ है। आज की कहानी में अतिमानवीय घटनाओं को स्थान नहीं दिया जाता; उनके स्थान पर वैज्ञानिकता का समावेश किया जाता है। प्राचीन कहानी में जीवन के बाह्य पक्षों का उद्घाटन किया जाता था; आज की कहानी में मनुष्य की अन्तर्वृत्तियों का अन्वेषण एवं विश्लेषण किया जाता है। आज की कहानी में कथा का तत्त्व कम है; उसमें चरित्र-चित्रण एवं मनोविज्ञान को अधिक महत्त्व मिला है। अनेक पाश्चात्य मनीषियों ने कहानी को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है।

भारतवर्ष में कथा-साहित्य की अत्यंत प्राचीन परंपरा रही है और इसके सूत्र वेदों, रामायण, महाभारत, पुराण तथा बौद्धजातकों में उपलब्ध होते हैं। मिस्र में ईसा से हजारों वर्ष पूर्व कहानी-संग्रह प्राप्त होते हैं और हेब्रू साहित्य में कहानी के प्राचीन रूपों की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार यूनान, रोम, स्वेडन, डेनमार्क, इंगलैंड और फ्रांस में भी साहसिक एवं रूमानी कहानियों की रचना हुई है। विद्वानों नेप्लेटो कृत 'रिपब्लिक' तथा जेनोफोन की 'साइरोपीडिया' में भी कथातत्त्व को स्वीकार किया है। होमर के महाकाव्य में छोटी-छोटी कथाओं का भंडार है। कालांतर में यूरोपीय साहित्य में प्रेम, शौर्य और साहसिक घटनाओं के आधार पर छोटे-बड़े आख्यानों की रचना हुई। मध्य युग में यूरोप में कथात्मक साहित्य को रोमांस के नाम से अभिहित किया जाता था। इस प्रकार देखा जाता है कि विश्व साहित्य में कहानी का विकास प्रारंभ से ही होता रहा है। आधुनिक युग में छोटी कहानी का जो विकास हुआ है उसमें उन्नीसवीं शताब्दी के अमेरिकी लेखकों का बहुत बड़ा योगदान रहा है और उन्होंने यूरोपीय लेखकों की अपेक्षा इस क्षेत्र में अधिक योग दिया है।

कहानी को परिभाषित करते हुए विद्वानों ने दो तथ्यों पर ध्यान दिया है—उसके आकार एवं पढ़ने में लगनेवाले समय पर। प्रसिद्ध अँग्रेजी उपन्यासकार एच. जी. वेल्स के अनुसार कहानी ऐसी कथा है जो एक या आधे घंटे में पढ़ी जा सके।

प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक एडलर एलन पो के मतानुसार कहानी उस कथा को कहते हैं जो एक ही बैठक में समाप्त हो सके और उसके पढ़ने में आधे घंटे से लेकर दो घंटे का समय लगे। उपर्युक्त लेखकों के विचार से लघुता कहानी का आवश्यक तत्त्व या अंग है। लघु कथा वर्णनात्मक शैली में लिखी जाती है। प्रेमचन्द्र का कहना है कि "अनुभूतियाँ ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं।" "सबसे उत्तम क़हानी वह होती है जो किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर आधारित हो।" बाबू गुलाब राय के अनुसार "छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति केंद्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला वर्णन हो।" कहानी लघु आकार की वह गद्य-रचना है जिसमें जीवन के एक अंग विशेष को कम पात्रों अथवा चरित्रों के द्वारा कम-से-कम घटनाओं में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया जा सके।

कहानी में जीवन के किसी अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित किया जाता है, जो अपने में पूर्ण होता है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसके पात्र, कथानक तथा शैली सबका सहयोग होता है। इस प्रकार कहानी की तीन विशिष्टताएँ दिखाई पड़ती हैं—आकार की लघुता, संवेदना की एकता और प्रभावान्विति। कहानी का प्रारंभ और अंत नाटकीय तथा प्रभावपूर्ण होना चाहिए तथा उसमें मनोरंजनात्मक शैली के साथ कल्पना का सम्यक् योग रहे।

• कहानी और उपन्यास—कहानी और उपन्यास में कई दृष्टियों से समानता होने पर भी दोनों के आकार और शिल्प में यथेष्ट अंतर है यद्यपि इनके उद्देश्य तथा प्रतिपादन-शैली में भी भेद है। किसी बड़े उपन्यास के आकार को छोटा कर दिया जाय तो कहानी नहीं बन सकती, अतः उपन्यास के किसी खंड को कहानी नहीं कहा जा सकता, दोनों में मौलिक भेद होता है। उपन्यास में जीवन की समग्रता होती है अर्थात उसमें मानव-जीवन का सर्वांगीण चित्र उपस्थित किया जाता है, पर कहानी में जीवन के एक ही पक्ष की झलक होती है। उपन्यास में जीवन का पूर्णवृत्त रहता है और कहानी में उसका सूक्ष्म अंश निहित रहता है। उपन्यास में अनेक प्रकार के पात्र, अनेक प्रकार की घटनाएँ एवं अनेक प्रकार की परिस्थितियाँ रहती हैं, पर कहानी में पात्र कम होते हैं और उसमें जीवन की किसी एक स्थिति का चित्रण होता है। उपन्यास की कथावस्तु जटिल होती है, पर कहानी में जीवन के एक ही मार्मिक पक्ष का उद्घाटन करने वाली अल्प घटना या कथा का समावेश

किया जाता है। उपन्यास में चित्रण का वैविध्य होता है तो कहानी में कहानीकार की दृष्टि किसी एक लक्ष्य की ओर संलग्न रहती है। उपन्यास में भावों का विस्तार होता है तो कहानी में भावों की तीव्रता होती है। उपन्यास में जीवन की व्याख्या होती है तो कहानी में जीवन की अनुगुंज सुनाई पड़ती है। उपन्यास में घटनाओं की शृंखला होती है और एक ही साथ समानांतर रूप से कई कथाएँ चलती हैं; पर कहानी में ऐसा नहीं होता, उसमें घटनाएँ न होकर एक सुसंगठित कथा रहती है। उपन्यास में अनेक समस्याओं और अनेक चरित्रों के माध्यम से जीवन की किसी समस्या का समाधान अत्यंत विस्तार के साथ प्रस्तुत करता हुआ समय का काफी रूप ग्रहण करता है, परं कहानी के चरित्र और घटना वैविध्य की ओर न जाकर जीवन के किसी एक लक्ष्य की ओर केंद्रस्थ होते हैं। कहानी की सफलता उसके कथन के ढंग में है और लघुता में ही उसका गौरव निहित है। उपन्यास का लक्ष्य विषय का वैविध्य है तो कहानी में विषय का एकत्व उसका प्रतिपाद्य होता है। कहानी एकोन्मुख होकर हमारे चित्र को झंकृत् कर देती है तो उपन्यास जीवन के विविध क्षेत्रों की झाँकी प्रस्तुत कर हमारी जिज्ञासा की शांति करता है। उपन्यास में चरित्र के उतार-चढ़ाव और तत्संबंधी विविध भंगिमाओं और वातावरण के विस्तार को प्रदर्शित किया जाता है पर कहानी में चरित्र का विस्तार नहीं होता और न वर्णन की प्रधानता होती है। पात्रों का वाहुल्य उपन्यास में ही संभव होता है, कहानी में नहीं। कहानी में चरित्र के विकास की पूरी गुंजाइश नहीं होती, उसमें चरित्र की एक झलक-मात्र मिलती है। कहानी संक्षिप्तता के कारण व्यंजनाप्रधान और प्रभावपूर्ण होती है, पर उपन्यास में बिखराव अधिक होता है।

कहानी और निबंध–कहानी और निबंध में प्रभाव की दृष्टि से साम्य है। निबंध (ललित निबंध) और कहानी दोनों में ही जीवन का एक खण्ड चित्रित किया जाता है और लेखक मनोरंजक, चित्ताकर्षक एवं प्रभावशाली दृश्य को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करता है। निबंध में लेखक का व्यक्तित्व प्रधानता से व्यंजित होता है और कहानी की भाँति वह भी संवेदना को उद्‌बुद्ध करता है; किंतु दोनों में शैलीगत भिन्नता होती है। कहानी की शैली विश्लेषणात्मक होती है तो निबंध की वर्णनात्मक/कहानीकार पात्रों की मानसिक स्थिति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करता है और उन परिस्थितियों की भी प्रस्तुति करता है जिनके द्वारा पात्रों का चारित्रिक विकास होता है। कहानी में पात्रों तथा घटनाओं के माध्यम से आश्चर्यजनक संजीवता और गति उत्पन्न की जाती है और कौतूहल तथा जिज्ञासावृत्ति के कारण उसके कार्य-व्यापार में आकर्षण बना रहता है। निबंध में गंभीर विचारों का संगुंफन

होता है, फलत: उसमें कल्पना के तत्त्व अल्प-मात्रा में रहते हैं और लेखक विषय-समस्या से सम्बद्ध बौद्धिक विश्लेषण एवं शुष्क ज्ञान को व्याख्येय बनाता है। निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है तो कहानी में उसका आभास मात्र होता है। चूँकि निबंध का उद्देश्य किसी विषय या समस्या का बौद्धिक विश्लेषण प्रस्तुत करना होता है, फलत: उसमें गांभीर्य बना रहता है; अत: उसको समझने के लिए विशेष योग्यता अपेक्षित होती है, पर कहानी का स्वारस्य तो सामान्य व्यक्ति भी प्राप्त कर सकता है।

कहानी और जीवनी–कहानी में किसी की जीवनी नहीं होती, वह किसी के जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर लिखी जाती है। जीवनी में किसी व्यक्ति की वास्तविक जीवन-गाथा पूरे विस्तार के साथ प्रस्तुत की जाती है, पर कहानी वास्तविक नहीं होती और न उसमें विस्तार होता है; वह कल्पनाश्रित होती है। एकांगिता और प्रभावान्विति कहानी के अनिवार्य अंग होते हैं।

कहानी और रिपोर्ताज–रिपोर्ताज में वास्तविक घटना का विवरण प्रस्तुत किया जाता है, पर कहानी में घटना होती ही नहीं; यदि हो भी तो उसका वास्तविक होना आवश्यक नहीं है।

कहानी और गद्यगीत–संगीत के अभाव के कारण कहानी गद्यगीत के निकट है, पर दोनों के प्रस्तुतीकरण और टेकनीक में भिन्नता होती है। गद्यगीत में कल्पना, भावना और अनुभूति की प्रधानता होती है और वह मुख्यत: आत्मगत (सब्जेक्टिव) होता है, किंतु कहानी विषयगत होती है और उसमें घटना की अपेक्षा होती है। गद्यकाव्य घटना-विहीन होता है और उसमें लेखक के हृदयोद्‌गार प्रमुखता पाते हैं।

कहानी के तत्त्व — कथा — साहित्य के अंतर्गत आने के कारण कहानी के भी छ: तत्त्व हैं — कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण (देशकाल) उद्देश्य और शैली।

(1) कथावस्तु – कहानी में कथा का आकार संक्षिप्त होता है और इसमें जीवन के किसी एक अंग की व्याख्या की जाती है। इसके कथानक में विस्तार नहीं होता और न प्रासंगिक घटनाओं का समावेश होता है। घटनाओं के अनावश्यक विस्तार की ओर ध्यान न देकर कहानीकार कथा के ऐसे पक्ष का उद्‌घाटन करता है, जो श्रोता या पाठक के मन में उत्सुकता जगाए। उत्तम कहानी

वह होती है जो चरम विकास पर पहुँच कर समाप्त हो जाय और पाठकों को अपनी ओर से सोचने का अवकाश मिले। कहानी की कथा में प्रारंभ से ही पाठक की उत्सुकता रहती है और वह उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। यदि उसकी समाप्ति अकस्मात् हो जाय तो वह उत्तम कहानी समझी जाती है। उसका प्रारंभ और अंत नाटकीय ढंग से होना चाहिए। कहानी का विषय कुछ भी हो सकता है। उसका संबंध जीवन के किसी पक्ष से, इतिहास, पुराण, साहित्य, पत्र-पत्रिका तथा दैनिक घटनाओं से होता है। कहानी में यदि कई घटनाएँ हों, तो उनमें एकता और अन्विति का रहना आवश्यक है। कहानी का प्रारंभ किसी प्रकार के संघर्ष से होकर क्रमशः विकसित हो चरमसीमा पर पहुँच जाता है और वहाँ कौतूहल का नाटकीय और चमत्कारिक ढंग से अंत होता है। इसमें घटना और पात्र परस्पर मिले रहें और कथानक निर्जीव न होकर आकर्षक और सजीव हो।

(2) चरित्र-चित्रण — आधुनिक कहानी में कथा-वस्तु को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता जितना कि चरित्र-चित्रण को। कहानी में पात्रों की संख्या अधिक नहीं होनी चाहिए; क्योंकि ऐसी स्थिति में उनका निर्वाह करना संभव नहीं होता। इसमें पात्रों के जीवन का सम्पूर्ण अंश चित्रित नहीं होता और न चरित्र के पूर्ण विकास का अवसर ही प्राप्त होता है। इसमें व्यक्ति के चरित्र के ऐसे अंश को ग्रहण किया जाता है, जिससे उसका व्यक्तित्व चमक उठे। कहानी के पात्रों को सजीव और व्यक्तित्वपूर्ण होना आवश्यक है। इसमें चरित्र के विकास का अवसर नहीं होता, बने-बनाये चरित्र का वर्णन होता है। इसमें चरित्र में क्रमशः परिवर्तन न होकर एक साथ होता है और चरित्र का केवल उद्घाटन होता है, विकास नहीं। कहानी में मानव-चरित्र के केवल आकर्षक अंश पर ही लेखक की दृष्टि जाती है और वह उसके रोचक अंश का वर्णन कर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने में समर्थ होता है।

कहानी में चरित्र-चित्रण की दो विधियाँ अपनायी जाती हैं — विश्लेपात्मक या प्रत्यक्ष ढंग से अथवा परोक्ष या नाटकीय ढंग से। प्रथम में लेखक अपनी ओर से चरित्र के विषय में कहता है और द्वितीय में वार्तालाप के द्वारा पात्रों के चरित्र का उद्घाटन होता है। या तो स्वयं पात्र अपने विपय में कुछ कहता है या अन्य पात्र उसके संबंध में कह कर उसके चरित्र का विश्लेषण करते हैं।

(3) कथोपकथन — वार्तालाप या कथोपकथन के द्वारा पात्रों के आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति होती है। कहानी में कथोप-कथन द्वारा पात्रों के चरित्र पर

प्रकाश ही नहीं पड़ता, वरन् कथा का भी विकास होता है और वर्णन में रोचकता तथा प्रवाह आता है। कहानी का कथोप-कथन सजीव, प्रसंगानुकूल, संक्षिप्त, संगत, चमत्कारपूर्ण तथा परिस्थिति के अनुरूप होना चाहिए। इसमें पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हो तथा उसमें हास्य और व्यंग्य का भी पुट रहे।

(4) देशकाल या वातावरण — कहानी में उपन्यास की तरह वातावरण के विस्तारपूर्वक चित्रण का अवसर नहीं रहता, पर इसमें वातावरण का महत्त्व होता है। प्रत्येक कहानी में एक विशिष्ट प्रकार का जीवन विशेष परिवेश में अंकित होता है। आंचलिक कहानी में तो स्थानीय वातावरण के चित्रण का ही महत्त्व होता है और ऐतिहासिक कहानी में तो तत्कालीन वातावरण का चित्रण आवश्यक हो जाता है। कहानी तभी सजीव और आकर्षक होती है जबकि उसमें वातावरण का स्वाभाविक रूप प्रदर्शित किया जाय। देशकाल को स्पष्ट करने और परिस्थिति से परिचय प्राप्त करने के लिए कहानी में वातावरण के चित्रण की आवश्यकता होती है, जो भौतिक और मानसिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। पात्रों के क्रिया-कलाप, प्राकृतिक परिवेश, चरित्रों का व्यवहार एवं वार्तालाप आदि के द्वारा वातावरण का निर्माण होता है। वातावरण पर कहानी के विषय तथा उद्देश्य का भी प्रभाव पड़ता है।

(5) उद्देश्य — कहानी केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं लिखी जाती, वरन् उसका कुछ निश्चित उद्देश्य या प्रयोजन होता है। पर, यह उद्देश्य प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष होता है अर्थात कहानी कार कथा या पात्र अथवा परिस्थिति या वातावरण के द्वारा अपने जीवन-दर्शन को प्रगट करता है। कहानी कभी सामाजिक या नैतिक प्रतिमानों के समर्थन के लिए भी लिखी जाती है। कहानी के उद्देश्य और विषय दोनों ही निश्चित होते हैं, पर कभी-कभी लेखक केवल कलात्मक उद्देश्य की सिद्धि के लिए ही कहानी का प्रणयन करता है। कहानी के उद्देश्य के माध्यम से लेखक के जीवन-विषयक दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त होता है। कहानीकार समाज की विभिन्न परिस्थितियों एवं समस्याओं से संबद्ध अपना दृष्टिकोण तथा उनके निदान को कहानी का उद्देश्य बनाता है। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कहानी को विभिन्न विधानों और शैलियों में प्रकट करता है और उद्देश्य के अनुसार ही कहानी के विषय का निर्वाचन करता है। कहानी के माध्यम से लेखक जीवन की विभिन्न समस्याओं के प्रति अपना जो कुछ विचार प्रकट करता है, उसे उद्देश्य कहते हैं।

(6) शैली — शैली कहानी का वह तत्त्व है जिसका संबंध उसके सभी अंगों से है। शैली के माध्यम से ही कथाकार अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है या उसे प्रेषणीय बनाता है। प्रत्येक लेखक की शैली भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। कोई मुहावरेदार भाषा का प्रयोग कर शैली को सरल बनाता है तो कोई शब्द-सौष्ठव से पूर्ण और भावाभिव्यंजक शैली का अवलंब ग्रहण कर उसे गंभीर बना देता है। शैली की सुंदरता उसकी सरलता में है। साधारण जीवन को व्यक्त करनेवाली कहानी की शैली बोलचाल की भाषा में होनी चाहिए। ऐसी भाषा में लोच होती है और वह गतिशील बन जाती है। कहानी में हास्य, व्यंग्य, विनोद का पुट रहना आवश्यक है और इसकी भाषा पात्रों की प्रकृति और वातावरण या परिवेश के अनुकूल हो। कहानी की शैली यथासंभव अनलंकृत, सहज और चुटीली हो तथा उसे बोझिल न बनाया जाय। ऐतिहासिक या भावनाप्रधान कहानियों की शैली में गंभीरता का होना आवश्यक है। कहानी का विषय कितना भी गम्भीर या सुंदर क्यों न हो यदि उसकी शैली प्रभावपूर्ण न हुई अर्थात उसे सुंदर ढंग से प्रस्तुत न किया गया तो वह आकर्षक नहीं हो सकती। भाषा, भाव तथा कल्पना के सम्यक् योग के कारण तथा बाह्य प्रकृति के दृश्यों का चित्रण कर लेखक कहानी में मनोरम बनाने में सक्षम होता है।

कहानी का आदि और अंत — कहानी का आदि और अंत आकर्षक होना चाहिए। उसका प्रारंभ इस प्रकार हो कि पाठक का ध्यान शीघ्र आकृष्ट हो जाय। यथासंभव कहानी को बीच से ही प्रारंभ कर देना चाहिए। यदि कहानी का प्रारंभ आकर्षक नहीं हुआ तो पाठक की कौतूहल-वृत्ति जाग्रत न हो सकेगी। उसका प्रारंभ या तो किसी महत्त्वपूर्ण वार्तालाप से या किसी दृश्य के चित्रण अथवा वातावरण के निर्माण या चरित्र के विश्लेषण से होना चाहिए। कहानी का अंत यदि अधिक चमत्कार पूर्ण नहीं हुआ तो उसका सारा सौंदर्य नष्ट हो जाता है। उसका अंत आकस्मिक ढंग से या नाटकीय रूप में हो और लेखक उस विषय में पाठकों को सोचने के लिए मसाला इकट्ठा कर दे। कभी-कभी तो ज्योंही कहानी चरम सीमा पर पहुँचती है कि उसका अंत हो जाता है और यह अंत अत्यंत रोचक होता है।

शीर्षक — कहानी के आदि और अंत की भाँति उसके शीर्षक का भी महत्त्व है। उसका शीर्षक आकर्षक, लघु और कहानी के विषय को व्यक्त करने वाला होना चाहिए या उसमें कहानी का उद्देश्य निहित हो। कहानी की समस्त संवेदना शीर्षक में ही लगी रहती है।

कहानी कहने के ढंग — कहानी कहने के तीन ढंग हैं — वर्णनात्मक या ऐतिहासिक, आत्मकथात्मक और पत्रात्मक या डायरीनुमा। वर्णनात्मक शैली की कहानी में स्वयं लेखक दर्शक की भाँति विवरणात्मक ढंग से कहानी कहता है। आत्मकथात्मक कहानी में कोई प्रमुख पात्र या कई पात्र अपनी कथा स्वयं कहते हैं अथवा दूसरों के जीवन में घटित घटना को सुनकर वर्णन करते हैं। कभी-कभी कहानी का विस्तार विविध पात्रों के पत्रों के उत्तरप्रत्युत्तर के रूप में या डायरी के रूप में होता है।

कहानी के प्रकार — कहानी के कई प्रकार हैं — कथाप्रधान, घटनाप्रधान, सामाजिक और राजनैतिक कहानी, चरित्रप्रधान, भावनाप्रधान, मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक कहानी। इनमें प्रत्येक कहानी की शैली और उनके प्रस्तुतीकरण में अंतर होता है। कथा-प्रधान कहानी में वस्तुवर्णन या घटनाओं का प्राधान्य होता है और अन्य तत्त्वों की उपेक्षा की जाती है। चरित्र प्रधान कहानी में चरित्र-चित्रण की प्रधानता होती है और ऐसी कहानियों में घटना या कथा का अंश अल्प होता है। इन कहानियों में चरित्र के विकास या परिवर्तन को दिखाया जाता है। घटनाप्रधान कहानी में दैवयोग से घटनेवाली घटनाओं और संयोग का अधिक वर्णन होता है। इसमें लेखक घटनाओं के घात-प्रतिघात पर बल देता है। प्रधान कहानियों में वातावरण पर जोर देकर कहानी की परिस्थितियों के किसी विशेष अंग का अधिक विस्तार करते हुए मुख्य भावना की प्रधानता दिखाई जाती है। ऐतिहासिक कहानियों की रचना इतिहास की किसी प्रसिद्ध घटना के आधार पर होती है। मनोवैज्ञानिक कहानियों में पात्रों की मन:स्थिति का विश्लेषण किया जाता है। इनके अतिरिक्त भी कहानियों के कई प्रकार हैं; जैसे हास्य प्रधान कहानी, प्रकृतिवादी कहानी, यथार्थवादी कहानी, आदर्शवादी कहानी और प्रतीकवादी कहानी आदि।

Short Story Writer (शॉर्ट स्टोरी राइटर) कहानीकार

दे. Short Stroy

Simile (सिमिलि) उपमा

एक अलंकार जिसमें दो भिन्न पदार्थों में समता स्थापित की जाय अथवा एक वस्तु से दूसरी वस्तु की समता वाच्य रूप से हो। इसके वाचक So, As, like,

Resemble, just as even as, as so, just as आदि हैं। जैसे उसकी आत्मा नक्षत्र या तारे की भाँति थी – His soul was like a star.

Sketch (स्केच) रेखाचित्र

साहित्य की एक आधुनिक विधा (form of literature)। यह कहानी और निबंध के बीच की स्वतंत्र साहित्य-विधा है। रेखाचित्र को शब्द चित्र भी कहा जाता है। इसमें शब्दों का चित्र इस प्रकार उपस्थित किया जाता है जिससे किसी व्यक्ति या घटना का सजीव चित्र प्रस्तुत हो सके और व्यक्ति, घटना, वातावरण या प्रसंग साकार हो उठें। रेखाचित्रकार एक कुशल चित्रकार की भाँति घटनाओं, व्यक्तियों या दृश्यों का जीवंत चित्र उरेहता है। जिस प्रकार चित्रकार तूलिका का प्रयोग कर अपना कौशल प्रदर्शित करता है, उसी प्रकार रेखाचित्रकार शब्दों का कुशल प्रयोग कर चित्र प्रस्तुत करता है और इसी में उसकी पटुता प्रकट होती है। रेखाचित्र को मुखर शब्दचित्र कहते हैं। इसमें विवरण की प्रधानता नहीं होती, चरित्रांकन पर अधिक बल दिया जाता है। लेखक अल्प शब्दों में मर्मस्पर्शी भावों की व्यंजना करता है। रेखाचित्रकार के लिए हृदय की संवेदनशीलता तथा सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति के अतिरिक्त शब्द कला का पारखी होना आवश्यक है तथा उसमें कल्पना और विश्लेषण-शक्ति भी हो। रेखाचित्र के विषय अनेक हो सकते हैं जड़ प्रकृति के विविध दृश्यों के अतिरिक्त पशु, पक्षी मनुष्य एवं उसका परिवेश। इसमें विषय के किसी एक पक्ष का इस प्रकार चित्रांकन किया जाता है जिसिसे कि उसका सारा चित्र पाठकों के समक्ष झूम जाता है। इसके अनेक प्रकार हो सकते हैं। वर्णनात्मक, संस्मरणात्मक, संवेदनात्मक, व्यंग्यात्मक, रूपात्मक और मनोवैज्ञानिक। रेखाचित्रकार को जीवन का व्यापक अनुभव होना चाहिए और उसमें बुद्धि, भाव और कल्पना का सम्यक् समावेश हो। रेखाचित्र में चरित्र के आंतरिक व्यक्तित्व या मनःस्थिति का वर्णन शब्दों की रेखाओं द्वारा किया जाता है। रेखाचित्र और कहानी में साम्य होते हुए भी तात्विक भिन्नता होती है रेखाचित्र का वर्ण्यविषय यथार्थ पर आधृत होता है तो कहानी का कथानक काल्पनिक। रेखाचित्र में संस्मरणात्मक तत्त्व अधिक होते हैं और निबंध में विश्लेषण का प्राधान्य होता है। निबंध और रेखाचित्र दोनों में हीं लेखक का व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है, पर रेखाचित्र में उसका आभास-मात्र होता है और निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप होती है। निबंध में लेखक की आत्मानुभूति की झलक मिलती है और रेखाचित्र में किसी वस्तु या व्यक्ति का चित्रण होता है।

Socialism (सोशलिज्म) समाजवाद

दे. Marxism

Socialist Realism (सोशलिस्ट रियलिज्म) समाजवादी यथार्थवाद

यह यथार्थवादी आंदोलन का नव्यतम रूप हैं। जिसमें समाजवाद की ओर अग्रसर होनेवाले समाज की विविध प्रवृत्तियों को यथार्थवादी शिल्पविधान द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। (दे. Marxism) इस विचारधारा का प्रतिपादन 1932 ई. में रूसी लेखकों के प्रयत्न से किया गया था, जिसका प्रमुख उन्नायक गोर्की था। समाजवादी विचारधारा में दो प्रकार की प्रवृत्तियों का समवेत स्वर है — राजनीतिक दृष्टि से यह समाजवादी विचारधारा का पोषक है तथा साहित्यिक दृष्टि से यथार्थ के प्रति इसमें विशेष आग्रह परिलक्षित होता है। 23 अप्रैल 1932 ई. को रूसी लेखकों ने समाजवादी यथार्थवाद को इस प्रकार परिभाषित किया था — "समाजवादी यथार्थवाद सोवियत कलात्मक साहित्य का प्रमुख स्वरूप है, अतएव यह कलाकारों से यथार्थ के क्रांतिकारी विकास के सत्य एवं ऐतिहासिक दृष्टि से सूक्ष्म विवेचन की अपेक्षा रखता है। इस परिप्रेक्ष्य में कलात्मक विवेचन की सत्यता एवं सूक्ष्मता की दृष्टि से उसे वैचारिक परिवर्तन तथा श्रमिकों के यथार्थवादी स्तर पर शिक्षा आदि को भी महत्त्व प्रदान करना होगा।"

समाजवादी यथार्थवाद के आधारभूत तत्त्व इस प्रकार हैं —

क— इसमें वस्तुगत यथार्थ का उसके क्रांतिकारी विकास की भूमिका पर यथार्थवादी दृष्टि से चित्रण किया जाता है।

ख— यह एक प्रकार का नया मानवतावाद है जिसमें मनुष्य की असीम शक्ति पर विश्वास किया जाता है।

ग यह मनुष्य को प्रकृति की सभी शक्तियों पर विजय प्राप्त करते हुए शक्तिपुंज के रूप में देखता है।

घ— यह व्यक्ति से अधिक समाज को महत्त्व देता है और परिवर्तित होने वाले संबंधों तथा चेतना के बीच के संघर्ष को कला की प्रेरक शक्ति मानता है। इसके अनुसार कला आत्मा की अभिव्यक्ति न होकर सामाजिक संबंधों की पृष्ठभूमि में आत्माविष्करण-मात्र है। इसमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित जीवन-दृष्टि को महत्त्व प्राप्त हुआ है तथा

समाज-विकास की द्वन्द्वमूलक प्रक्रिया की भूमिका में प्रगतिशील एवं प्रतिगामी शक्तियों की परख की जाती है।

ङ— यह समाज में व्याप्त वर्ग संघर्ष एवं वर्गीय असंगतियों का गंभीर अध्ययन एवं विश्लेषण कर भविष्य के लिए एक क्रांतिकारी, रचनात्मक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पन्न तर्कसंगत विजन का मूर्त्तीकरण करता है।

च— यह वस्तुगत यथार्थ को उसकी समस्त सजीवता, सचाई तथा तीव्रता के रूप में चित्रित करने के लिए आग्रह प्रकट करता है। यह यथार्थ के चित्र को सक्रिय मनुष्य के चित्र को सम्पूर्ण भूमिका में उभारना चाहता हैं। समाजवादी यथार्थवाद में समाजवादी वास्तविकता का अंकन न होकर यथार्थ जीवन का समाजवादी दृष्टि से अंकन होता है। इसके अनुसार लेखक को सामाजिक विकास की द्वन्द्वात्मक भूमिका को आत्मसात् करके ही यथार्थ की ओर अग्रसर होना चाहिए। "समाजवादी यथार्थवाद के मूल में मार्क्स तथा एन्जेल्स द्वारा प्रतिपादित भौतिकवाद की वह विकास मूलक धारणा है जो दो परस्पर विरोधी तत्त्वों के वीच चलने वाले चिरंतन संघर्ष की भूमि में प्रतिक्षण एक नये परिवर्तन की सूचक बनती है और यह परिवर्तन यांत्रिक भौतिकवादियों के मत के विपरीत सदा ही एक गुणात्मक विकास की योजना करता है।" (आलोचना अंक 28, पृ. अक्टूबर 1963 ई.) यह सिद्धांत केवल वृहत् आकार के साहित्य में या साहित्य रूपों में ही प्रतिफलित होता हैं जिसके अंतर्गत महाकाव्य, उपन्यास या अधिक-से-अधिक नाटकों की परिगणना की जा सकती हैं। इनमें समाजवादी यथार्थवाद के अनुरूप चारित्रिक सृष्टि संभव है। समाजवादी यथार्थवाद के समीक्षक मुख्यतः उपन्यासों को ही दृष्टि में रखकर उसके स्वरूप की विवेचना करते हैं। लघु आकार के साहित्य रूपों में इसकी व्याप्ति नहीं होती। यह सिद्धांत बहुत अंश तक आशावादी है और कलुपित तथा विच्छिन्न समाज में भी मनुष्य के विकास की वैयक्तिक और सामाजिक शक्ति में विश्वास करता है। इसका स्वरूप क्रांतिकारी है; यह सर्वहारा तथा प्रगतिशील सामाजिक शक्तियों का आकर्षक चित्र अंकित करता है। इसके अनुसार साहित्य श्रमिक वर्ग को सामाजिक आदर्शों की शिक्षा देने का एक माध्यम है। यह मानवतावादी होते हुए भी अंतर्राष्ट्रीयतावादी है। तथा आधुनिक अमानवीय एवं अयथार्थ

विचारधाराओं का विरोध करता है। इसके अनुसार बोध-गम्यता साहित्य का विशिष्ट गुण है। यह सोद्देश्य एवं प्रचारवादी साहित्य का स्वरूप प्रस्तुत करता है।



Soliloquy (सोलिलोकि)
स्वगत कथन या स्वगतभाषण

नाटक में जब कोई पात्र अपने मन की बात को मन में कहे। उसका कथन रंगमंच पर स्पष्ट सुनाई पड़ता है, पर मानलिया जाता है कि पात्र अपने मन में भाषण कर रहा है। प्राचीन समय में इसका प्रयोग अधिक होता था, पर अब इसे अस्वाभाविक माना जाता है।

Speculative Criticism (स्पेकुलेटिव क्रिटिसिज्म) सैद्धांतिक आलोचना - दे. Criticism

Spiritualism–(स्पिरिचुअलिज्म) अध्यात्मवाद या परमार्थवाद

इस सृष्टि के निर्माण में किसी अलक्ष्य दैवी शक्ति का हाथ होने और इस पर नियंत्रण रखनेवाली शक्ति में विश्वास रखना अध्यात्मवाद है। अध्यात्मवादी के अनुसार उस अलक्ष्य शक्ति या ईश्वर की अगणित शक्तियाँ अनेक रूपों में संसार की प्रत्येक घटना और प्रत्येक जीव के भाग्य का संचालन करती हैं और वही जीव को कार्यों की ओर प्रवृत्त करती हैं। वह परमात्मा या सार्वभौम शक्ति के अस्तित्व में विश्वास करता है और उसे ही विश्व का सर्वस्व स्वीकार करता है। अध्यात्मवाद की भावना मानव चिन्तन की चिरंतन प्रवृत्ति है जिसका रूप आदिम सभ्यता से लेकर आधुनिक कला तक दिखाई पड़ता है। आदिम मानव दैवी शक्ति को ही मनुष्य को हानि-लाभ का नियामक मान कर उसके प्रतिकार के लिए व्रत,

कर्मकाण्ड, अनुष्ठान आदि का विधान करता था और यह प्रवृत्ति आज भी विद्यमान है। जब इसी तथ्य की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है तो उसे आध्यात्मिक साहित्य कहते हैं। विश्व-साहित्य का अधिकांश अध्यात्मवादी विचारों से अभिप्रेरित है। लेखक अपनी रचनाओं में आत्मा, भक्ति, परमात्मा, कर्मवाद, मोक्ष तथा तत्त्वमीसांसा को स्थान देता है तो उसे आधात्मिक साहित्य कहते हैं। अध्यात्मवाद ईश्वर को सर्वव्यापी, विभु और परमात्मा मानता है और उसकी भक्ति से मनुष्य विश्रान्ति और शक्ति का अनुभव करता है। भक्त ईश्वर से ऐसे गुणों की परिकल्पना करता है जो मनुष्य में नहीं हैं। वह मानता है कि ईश्वर हमारे बाहर भी है और भीतर भी। आध्यात्मवादी आत्मा और परमात्मा के एकत्व पर बल देकर उसके अंतर्यामीत्व को स्वीकार करता है। मनुष्य और ईश्वर का एकत्व ही दार्शनिक परंपरा की आधारभूत विचारण है। भक्त अपने मन में ईश्वर की महानता संजोकर ईश्वर की कृपा से ही आध्यात्मिक अनुभव को प्राप्त करना चाहता है अर्थात उसका विश्वास है कि आध्यात्मिक अनुभूति ईश्वरीय कृपा से ही प्राप्त होती है। वह भगवान के साथ व्यक्तिगत संबंध स्थापित कर ईश्वर के समक्ष अपने को तुच्छ समझता है और उसके प्रति नम्रता और आत्मसमर्पण की भावना व्यक्त करता है। वस्तविक परमार्थ सत्ता व्यक्तित्व एवं अवैयक्तिकता की समस्त अवधारणाओं से परे हैं और उसे किसी शब्द के द्वारा व्यक्त करने में अक्षम होने के कारण उसे 'निरपेक्ष तत्त्व' कहा जाता है। अपनी समस्त सत्ता का आधार और लक्ष्य समझने के कारण मनुष्य उसे ईश्वर की अभिधा प्रदान करता है।

Sonnet (सॉनेट) चतुर्दशपदी

एक प्रकार का काव्य रूप। सॉनेट का प्रचलन यूरोपीय साहित्य तथा अँग्रेजी में अधिक है। इसका मूल रूप 'सोनेटा' (लैटिन) है जिसका अर्थ है गीत। इसका प्रवर्त्तक प्रसिद्ध इतालवी कवि पेट्रार्क माना जाता है। शनैः शनैः यूरोपीय भाषाओं में इसकी रचना होने लगी थी। अँग्रेजी में शेक्सपिअर, मिल्टन, बायरन तथा कीट्स प्रभृति कवियों ने सॉनेट की रचना की है। सॉनेट चतुर्दश पंक्तियों का छन्द है जिसके दो भाग हैं—आक्टेव (आठ पंक्तियाँ) तथा सेस्टेट (छः पंक्तियाँ)। आक्टेव में विषय का प्रवेश होता है तो सेस्टेट में उपसंहार। इसकी तुक कवि की इच्छा पर निर्भर रहती है। प्रथम आठ प्रक्तियों में कवि किसी विषय का कथन करता है और शेष पंक्तियों में उसकी व्याख्या की जाती है। इसमें भावना विलास के अतिरिक्त विचार-तत्त्व भी रहते हैं और भावना पर विचार का अंकुश रहने के

कारण (इसमें) स्वाभाविक रूप से गांभीर्य बना रहता है। इसकी तुक-योजना चमत्कारपूर्ण होती है और भाषा में गंभीरता, मंदगति तथा प्रौढ़ता रहती है। कवि कृत्रिम भाषा का प्रयोग कर काव्य-प्रतिभा प्रदर्शित करता है। पीटार्क की तुक योजना—क ख ख क; क ख ख क (8) ग घ ड.; ग घ ड. (छ:)।

Stage (स्टेज) रंगमंच

ऐसा उन्नत मंच जिस पर प्रेक्षकों के समक्ष नाट्याभिनय किया जाय। रंगमंच के चार भाग होते हैं—नेपथ्य, पार्श्व, दृश्य-विधान के उपकरण तथा मंच का अग्रभाग।

Style (स्टाइल) शैली

शैली से तात्पर्य रचना-प्रणाली या रीति से है। साहित्य या कला में विषयवस्तु के अतिरिक्त अभिव्यंजना-प्रणाली या रूपविधान का भी महत्त्व होता है और इस विषय का अध्ययन शैली के अंतर्गत किया जाता है। शैली साहित्य के बाह्य आकर्षण को कहते हैं। शैली के अंतर्गत गद्य तथा पद्य की कलागत समस्याओं का विवेचन किया जाता है। इसके माध्यम से लेखक अपनी कृति के कलापक्ष को समृद्ध करता है। 'स्टाइल' शब्द ग्रीक के stylos (स्टाइलोस) तथा लैटिन के stylus (स्टाइलस) से संबद्ध है। 'स्टाइलस' का अर्थ है 'लिखने की नोकदार कलम'। कालांतर में स्टाइल के अनेक अर्थ विकसित हुए—लिखने का ढंग, लिखित रचना, लेखक विशेष की अभिव्यक्ति की विशिष्टता, साहित्यिक रचना की रूपगत विशेषताएँ, बोलने का लहजा, रीति या प्रथा, किसी कलाकार की रचना-पद्धति की विशिष्टता या किसी युग, देश या वर्ग विशेष के कलाकारों की रचना-पद्धति की विशिष्टता। (साहित्य-विज्ञान, पृ. 209)

कलाकार की मनोगत भावनाओं को मूर्तरूप प्रदान करने वाले सहज साधन का नाम स्टाइल है। इसके द्वारा साहित्य या काव्य का बाह्य रूप तो अलंकृत होता ही है, उसका भावगत रूप भी विकसित होता है। शैलीगत सौंदर्य पर ही भाव-सौंदर्य की सार्थकता निर्भर करती है। शैली का जन्म तभी होता है जब लेखक में अंतर्दृष्टि और आत्मदर्शन की सम्यक् अभिव्यक्ति हो। प्रत्येक लेखक की आंतरिक भावनाओं के अनुसार शैली का विशिष्ट महत्त्व है। उसमें उसके व्यक्तित्व की भी अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार शैली के दो तत्त्व दिखाई पड़ते हैं—वस्तुतत्त्व और व्यक्तित्व तत्त्व अर्थात बाह्य और आन्तरिक तत्त्व। पाश्चात्य

आलोचकों ने शैली के संबंध में विभिन्न प्रकार से विचार व्यक्त किये हैं। प्लेटो के अनुसार शैली विचार का तात्त्विक रूप है। जब विचार को तात्त्विक रूप दे दिया जाता है तो शैली का उदय होता है। "अरस्तू ने शैली को वर्णन का उपयुक्त ढंग एवं भाषागत वैशिष्ट्य का साधन माना है।" शैली ने वाणी में वैशिष्ट्य (चमत्कार) का समावेश होता है। "गेटे ने शैली को लेखक के मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि क़हा।" किसी लेखक की शैली उसके मस्तिष्क की सच्ची प्रतिलिपि है। शॉपनहावर ने शैली को आत्मा का मुखाकृति-शास्त्र कहा है। "शैली आत्मा की मुखाकृतिशास्त्र (सामुद्रिक) है।" चेस्टरफील्ड ने शैली को विचारों की वेशभूषा कहा है। "शैली विचारों की वेशभूषा है। बफन के अनुसार शैली स्वयं व्यक्ति है और वह उसकी प्रकृति का अंग है। मरी के मतानुसार शैली लेखक के विशिष्ट चिंतन या भाव को प्रेषित करने का साधन है।" शैली भाषा की वह विशेषता है जो लेखक के विशिष्ट भाव या चिंतन को ठीक-ठीक रूप से प्रेषित करती है। लुकस के मतानुसार शैली संपर्क एवं उद्दीप्ति का साधन है। "शैली वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य दूसरों से सम्पर्क स्थापित करता है। ... साहित्यिक शैली वह साधन है जिससे एक व्यक्ति दूसरे को उद्दीप्त करता है।" (दे. साहित्य-विज्ञान, पृ. 210-211) उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर शैली के निम्नांकित तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं—(क) शैली विचार का तात्त्विक रूप, भाषागत वैशिष्ट्य का स्रोत वर्णन का उपयुक्त ढंग, मस्तिष्क की प्रतिलिपि, आत्मा की मुखाकृति, विचारों की वेशभूषा, अभिव्यंजना का वैयक्तिक वैशिष्ट्य भाषा की प्रेषण-क्षमता, तथा संपर्क एवं उद्दीप्ति का साधन है। ये सभी तत्त्व विषयानुसार चार वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं—वक्ता, विषय, अभिव्यक्ति तथा श्रोता से संबद्ध। शैली का लेखक की वैयक्तिक विचारधारा वैशिष्ट्य एवं उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों से घनिष्ठ संबंध होता है। यह विचार या विषय वस्तु का माध्यम है तथा भाषा-प्रयोग का वैशिष्ट्य एवं प्रेषणीयता है। शैली पर पाठक या श्रोता की विशिष्टता का प्रभाव पड़ता है। सभी तत्त्वों के आधार पर कहा जा सकता है व्यक्ति, विषय, भाषा तथा प्रयोजन के अनुसार अभिव्यंजना की प्रणाली में जो विशिष्टता आती है, उसे शैली कहते हैं। अतः, लेखन-पद्धति या अभिव्यंजना प्रणाली के वैशिष्ट्य का ही नाम शैली है। शैली का संबंध व्यक्ति से होता है और व्यक्ति विशेष से संबद्ध विशिष्ट पद्धति ही शैली है।

विषय के अनुसार शैली के अनेक प्रकार होते हैं—वर्णनात्मक शैली, चित्रणात्मक शैली, विवेचनात्मक शैली, विवरणात्मक शैली, व्याख्यात्मक शैली तथा

भावात्मक शैली। लेखक का व्यक्तित्व ही शैली का मूल होता है। प्रत्येक लेखक की अभिव्यंजना-प्रणाली, शब्दावली, विषय प्रतिपादन की पद्धति में भिन्नता होती है। साथ ही उसकी अपनी रुचि और अरुचि भी होती है। शैली के निर्माण में मन, बुद्धि और आत्मा के अतिरिक्त लेखक के संस्कार, वातावरण, अध्ययन, स्वभाव तथा चरित्रगत अनेक सूक्ष्म विशेषताओं का भी हाथ होता है।

शैली का विषय वस्तु से घनिष्ठ संबंध है। यदि उदात्त विषय हुआ तो उसकी अभिव्यक्ति गरिमायुक्त शैली होगी। तुच्छ विषयों की शैली सरल और सहज होती है। विषय के अनुरूप शैली के निर्माण में ही दोनों का सामंजस्य वना रहता है। अनुभूति और भावना का भी शैली पर प्रभाव पड़ता है। शैली-निर्माण में सर्वाधिक महत्त्व शब्दों का है। अतः, लेखक को शब्दों के स्वभाव एवं गुण से परिचित होना आवश्यक है। उत्तम शैली में लेखक को विचार करना पड़ता है कि किस प्रकार के शब्दों का प्रयोग उचित है और किस प्रकार के शब्द वर्ज्य हैं। शैली के निर्माण में अलंकारों, मुहावरों, लोकोक्तियों तथा प्रतीकों का महत्त्वपूर्ण योग होता है। वाक्य शैली का अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। वाक्यों के गंठन से ही शैली में वैशिष्ट्य आता है। गद्य-शैली में गति और प्रवाह का होना आवश्यक है।

शैली का प्रधानगुण स्पष्टता है। इसका तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी लिखा जाय वह स्पष्ट हो और पाठक या श्रोता को उसका अभिप्राय ज्ञात हो जाय। यदि प्रचलित और उपयुक्त शब्दों का वाक्य में प्रयोग किया जाय तो शैली में स्पष्टता आती है। शैली पर चिंतन का भी प्रभाव पड़ता है अस्पष्ट और उलझे हुए विचारों के कारण शैली में अस्पष्टता आ जाती है। विशेषणों, समस्तपदों, अलंकारों आदि का अत्यधिक प्रयोग होने से शैली में दोष आ जाता है। औचित्य शैली का आवश्यक गुण है और इसका अभाव शैली का दोष माना जाता है। जटिलता, दुरूहता, कृत्रिमता और बोझ के कारण शैली में दोषाधान होता है और ये उसके अपकर्ष के कारण बनते हैं। संक्षिप्तता शैली को आकर्षक बनाती है। इसमें सजीवता होती है और पाठक शीघ्र प्रभावित हो जाता है। रचना में क्लिष्टशब्दावली, जटिल वाक्य विन्यास, स्पष्टता, सरलता और स्वाभाविक प्रवाह के अभाव में कृत्रिमता आ जाती है और ऐसी शैली बोझिल बन कर पाठकों को बौद्धिक व्यायाम कराने लगती है। शैली में भावों, विचारों और अभिव्यंजना-प्रणाली में सामंजस्य होना चाहिए। यदि अभिव्यक्ति में असंबद्धता,

विचार-शृंखला में अपूर्णता, शब्दों और वाक्यांशों की पुनरावृत्ति, विचारों में शैथिल्य हो तो शैली दोषपूर्ण हो जाती है। ऐसे दोष बौद्धिक असंयम और अनुशासनाभाव के कारण उत्पन्न होते हैं, अतः लेखन कला का सतत् अभ्यास शैली की प्रौढ़ता के लिए आवश्यक है।

Sublime (सब्लाइम) उदात्त

दे. Longinus

Surrealism (सुररियलिज्म) अतियथार्थवाद

काव्य और चित्रकला का आधुनिक सिद्धांत जिसका जन्म फ्रांस में हुआ। अतियथार्थवाद फ्रांसीसी सौंदर्य-चिंतन का चरम सोपान है जिसका उद्‌भव 'दादावाद' की एक शाखा के रूप में हुआ था। प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्त होने पर राजनैतिक तथा सामाजिक आंदोलन के पश्चात अतियथार्थवाद का जन्म हुआ। 'दादावाद' की स्थापना 1916 ई. में हुई थी और 'अतियथार्थवाद' का जन्म 1922 ई. में हुआ। यह एक प्रतिक्रियावादी आंदोलन था, जो युद्धोत्तर काल की अस्तव्यस्त परंपरा के प्रतिक्रिया-स्वरूप उदित हुआ था। साहित्यिक दृष्टि से यह प्रतीकवाद, दादावाद तथा स्वच्छन्दतावाद के निकट है और इसकी मान्यताएँ हीगेल, मार्क्स, फ्रायड तथा बर्गसां क मतों से उपकृत हैं। फ्रांसीसी और ब्रितानी विद्वानों ने इस मतवाद की उत्पत्ति दो प्रकार से स्वीकार की है। फ्रांसीसी विद्वान इसे 'दादाइज्म' से निःसृत मानते हैं जबकि अँग्रेज विद्वानों के अनुसार स्वच्छन्दतावादी विचारधारा ही वीसवीं शताब्दी में अतियथार्थवाद के रूप में परिवर्तित हुई। ऐतिहासिक दृष्टि से इसे आधुनिक संस्कृति की अनिवार्य उपलब्धि कहा जाता है। इसके आद्य प्रवर्त्तक फ्रांस के आंद्रेब्रेतों थे जिन्होंने अतियथार्थवाद का प्रथम घोषणापत्र 1924 ई. में प्रकाशित किया था। उनके विचारों का सार इस प्रकार है। "विशुद्ध स्वयंचालित मनोवैज्ञानिक क्रियाओं से भाषण, लेखन या अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों द्वारा विचारों को सत्य रूप में प्रकट किया जा सकता है। तर्क बुद्धि के बाह्य नियंत्रण से एवं सौंदर्य व नैतिक तथ्यों से मुक्त, स्वयं पूर्ण विचार क्रियाओं पर भी यह सिद्धांत लागू होता है। अब तक उपेक्षित क्रिया-साहचर्यों की श्रेष्ठ सत्यता का अतियथार्थवाद विश्वास करता है, ख्वाब के निर्णायक सामर्थ्य व अचेतन विचार क्रिया के निष्काम क्रीड़न का विश्वास करता है। इन्हीं से जीवन की सम्पूर्ण समस्याओं का हल किया जा सकता है।" (आधुनिक चित्रकला का

इतिहास, पृ. 258) ब्रेतों इस विचार का पोषक था कि बौद्धिक विचारक्रिया से जीवन के अत्यल्प अंश का ही परिज्ञान संभव है जिसे मनुष्य भ्रम से सम्पूर्ण सत्य मानता है। जब आंद्रेब्रेतों तथा पॉल एलुअर्द ने दादावाद से अपना संबंध-विच्छेद कर नई दिशा के अन्वेषण की आवश्यकता का अनुभव किया तभी इस आंदोलन का जन्म हुआ। प्रथम महायुद्ध के समय ज्यूरिच राष्ट्रों के साहित्यकारों द्वारा दादावाद की स्थापना हुई थी जो सर्वग्रासी विद्रोह की भावना पर आधृत था तथा वह निराशावादी भावना से आपूर्ण था। इन कविताओं में आत्मप्रकाशन की वैयक्तिक स्पृहा की अभिव्यक्ति हुई थी। इस आंदोलन का सूत्रपात रोमानिया के लब्धप्रतिष्ठ लेखक ज़ारा द्वारा 1916 ई. में पेरिस में हुआ था। युद्धोत्तर पीढ़ी के अनेक विद्रोही साहित्यकार इस आंदोलन की ओर आकृष्ट हुए थे और इनके द्वारा इसमें विध्वंसक भावना तीव्र हो उठी। वस्तुतः त्रिस्तान ज़ारा ही दादावाद का (दे. Dadaism दादावाद) सशक्त अधिनायक था, पर उसके दुर्बल होने पर यह आंदोलन नष्टप्राय हो गया और दादावादी लेखकों ने एक ने एक नए आंदोलन को जन्म दिया और उसकी अभिधा अतियथार्थवाद दी। उसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई—"अतियथार्थवाद विशुद्ध या मानसिक यांत्रिकता है जिसके माध्यम से सभी प्रकार के बौद्धिक नियंत्रणों समस्त सौंदर्यमूलक धारणाओं और बौद्धिक नियमों से उपराम होकर विचार की वास्तविक प्रक्रिया को मौखिक रूप से अथवा लेखन से किसी प्रकार से व्यक्त किया जाता है।" (आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान, पृ. 95)

अतियथार्थवादी विचारधारा के मूल में फ्रायड तथा उसके समर्थकों के मत अनुस्यूत हैं।

प्रथम महायुद्ध की विभीषिका से त्रस्त कलाकार यथार्थ से संबंध विच्छेद कर एक ऐसे लोक का मार्ग खोजने लगे जहाँ उनकी मानसिक रुग्णता की अभिव्यक्ति हो। वे वास्तविकता से ऊब कर कठोर यथार्थ के साथ समझौता नहीं कर सके और मन के गह्वरों में प्रवेश कर कला-सृष्टि में संलग्न हुए। यह आंदोलन चित्रकला के माध्यम से काव्य या साहित्य के क्षेत्र में अवतरित हुआ था। अतियथार्थवादी चिंतन के अनुसार इस सामान्य जगत् से भी परे एक जगत् है जो अधिक यथार्थ है और वह जगत् अचेतन जगत् का है। आज जो अतियथार्थवाद को रूप मिला है उस पर फ्रायड के विचारों की प्रगाढ़ छाया है। फ्रायड ने जीवन की ग्रंथियों को सुलझाने के लिए स्वप्नों को साधन बनाया था और अतियथार्थवादियों ने भी

इसी क्षेत्र से प्रेरणा ग्रहण की थी। ब्रेतों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। "यह अन्तिम एकीकरण अतियथार्थवाद का प्रमुख लक्ष्य है। समाज का आज जो रूप है उसमें आंतरिक यथार्थ और बाह्य यथार्थ में असंगति है, और यही असंगति मनुष्य के दुःख का प्रधान कारण है, यद्यपि उसकी गतिशीलता का स्रोत भी है। इस असंगति के कारण हमने यह भी काम समझ लिया है कि जब अवसर मिले इन दोनों यथार्थों को एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर दिया जाए, एक को दूसरे पर हावी न होने दिया जाए, और न पहले पर और दूसरे पर एक साथ आचरण किया जाए, क्योंकि उसका अर्थ होगा कि वे दोनों यथार्थ एक दूसरे से इतने पृथक् नहीं हैं जितना लोग समझते हैं। मेरा यह विश्वास है कि जो लोग यह प्रकट करते हैं कि वे दोनों यथार्थों पर एक साथ आचरण करते हैं वे या तो हमें धोखा देते हैं, या वे किसी उद्वेगकारी भ्रान्ति के शिकार हैं। इन दोनों यथार्थों पर एक साथ आचरण न करने के बजाय एक के बाद दूसरे पर यथाविधि आचरण करना अधिक संगत है, उससे हम इन यथार्थों के पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण एवं अंतर्गति का आकलन कर सकते हैं। इस अंतर्गति को विस्तार भी दिया जा सकता है, कारण-इन दोनों सहवर्ती यथार्थों की प्रवृत्ति एकरूप होने की है।" "स्वप्न और यथार्थ-ये दोनों परस्पर-विरोधी अवस्थाएँ प्रतीत होती हैं, किंतु मैं इनके भावी एकीकरण में विश्वास करता हूँ। मैं समझता हूँ कि ये निरपेक्ष यथार्थ-अतियथार्थ—में परिवर्तित हो सकते हैं।

मैं उस परिवर्तन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ, यद्यपि मैं जानता हूँ कि उस सिद्धि में मैं कोई योग नहीं दे सकूँगा, किंतु मृत्यु की मुझे परवाह नहीं, यदि मैं उस आनन्द को भोग सकूँ, जो अन्ततः इस एकीकरण से सुलभ होगा।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्रः सिद्धांत और वाद, पृ.160-161) अतियथार्थवादी स्वप्न तथा कविता की प्रक्रिया को समान स्वीकार करते हैं और उनके अनुसार कलाकृति का अमरत्व स्वप्निलता की मात्रा पर आधृत है। वह कलाकृति जो कौशल तथा यथार्थ रूप से असम्बद्ध स्वप्नों को अभिव्यक्त करती है, वह उतनी ही स्थायी होती है। प्रसिद्ध अंग्रेज अतियथार्थवादी हर्बर्ट रीड का कथन है कि यदि हम अपने स्वप्नों को दूसरों से कहें तो अजस्र गति से काव्य-सर्जन में समर्थ हो सकेंगे। पर, स्वप्नों को शब्दों में बाँध कर प्रकट करना कठिन व्यापार है। रीड के अनुसार अर्धसुषुप्ति की अवस्था ही काव्य-रचना के लिए सर्वथा उपयुक्त समय है। इसी सिद्धांत पर अतियथार्थवादियों का स्वतः चालित लेखन आधृत है और यही उनके समस्त रचनात्मक साहित्य का आधार है। वे रचना की प्रेरणा बाह्य जगत् से ग्रहण न कर

अंतर के स्वप्नजगत् से लेते हैं और समस्त साहित्य तथा कला की व्याख्या स्वतः चालित लेखन के ही सिद्धांत पर करते हैं। वे अंतर्मन की असंगत कल्पनाओं को व्यक्त करने में प्रयत्नशील रहते हैं तथा चेतन और अचेतन के बीच पड़नेवाली दीवार को तोड़कर एक ऐसे अतियथार्थ जगत् की रचना करना चाहते हैं जहाँ वास्तविकता और अवास्तविकता, विचार और क्रिया मिल कर समस्त जीवन को प्रेरणा प्रदान करते हैं। अतियथार्थवादी जिस मानसिक जगत् का चित्रण करता है वहाँ चेतन और अचेतन इस रूप में मिल जाते हैं कि उनमें भेद ज्ञात नहीं होता और स्वप्न, सत्य, यथार्थ तथा कल्पना की सीमाएँ टूट कर एक दूसरे में प्रवेश कर जाती हैं। वे कला और स्वप्न के संबंध में अपरिहार्य संबंध की स्थापना करते हैं। अतियथार्थवादी साधारण अनुभव को स्वीकार नहीं करता वह उसे मान्यता प्रदान करता है जिसकी प्राप्ति अवचेतन से होती है। वह अचेतन के सागर में डूबे हुए अपने व्यक्तित्व से कल्पना, स्वप्न, दिवास्वप्न, फेंटेसी आदि को ग्रहण कर उन्हें कला के माध्यम से प्रकट करता है और इस कार्य में स्वतः चालित लेखन की पद्धति को ग्रहण करता है। वह अपने दृष्टिकोण की सामग्री को मनोविश्लेषणशास्त्र से प्राप्त कर उसे प्रतीकों द्वारा व्यक्त करता है। वह हीगेल के द्वन्द्वात्मक सिद्धांत में आस्था रख कर जगत् का विकास दो विरोधी तत्त्वों के समन्वय में देखता है तथा वर्गसां की विचारधारा से प्रभावित होकर संसार को निरंतर प्रवाहशील मानता है। वह निरीश्वरवादी है और जगत् को स्वतः उत्पादित एवं नितान्त प्राकृतिक मान कर उसके निर्माण में किसी सृष्टिकर्ता की पूर्वनियोजित व्यवस्था में विश्वास नहीं रखता। इस दृष्टि से वह मार्क्सवाद के निकट है उसके अनुसार इतिहास व्यवस्था की अपेक्षा अव्यवस्था का तथ्य प्रकट करता है। अचेतन और अर्द्धचेतन को प्रकट करने के कारण अति यथार्थवाद में प्रतीकों का बाहुल्य होता है और उनका अर्थ आधुनिक मनोविश्लेषणशास्त्र के ही आधार पर जाना जाता है। अतियथार्थवादी सम्पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थक है और वह अपने बहिर्जगत् के प्रतिबन्ध को नहीं मानता। वह प्रचलित नैतिकता का विरोधी है और उसे आमूल सड़ागला मानता है। वह आवेगों को पूर्णतम स्वतंत्रता देने के पक्ष में रहता है और इस तथ्य में विश्वास प्रकट करता है कि कोई कार्य नियंत्रण और दमन से न होकर प्रेम और भ्रातृत्व द्वारा होता है।

यद्यपि अतियथार्थवाद का जन्म फ्रांस में हुआ था तथापि यह अन्य देशों में भी बढ़ा। इंगलैंड में इसके पोषक हर्बर्टरीड हैं। फ्रेंच कवियों में हर्बर्ट डेन्स, रेने,

ज्याँकांक्त्यों प्रमुख हैं। पाल एलुअर्द तथा लुइस आर्गन की कविताओं में अतियथार्थवादी प्रवृत्तियों का दृढ़ आधार दृष्टिगोचर होता है।

अतियथार्थवाद की काफी आलोचना भी हुई है और इसे विरोधों का सामना करना पड़ा है। कॉडवेल के अनुसार यह पूँजीवादियों का अन्तिम विद्रोह है। यह विद्रोह एक अराजकतावादी विद्रोह है जो पूँजीवादी सभ्यता की प्रगति से ऊब कर अपने अस्तित्व को प्रतिष्ठित करने के लिए व्यक्तिस्वातंत्र्य के नाम पर समस्त सामाजिक बंधनों को तोड़ देना चाहता है। इसके विरोधियों के अनुसार अतियथार्थवादी कला में विरोधाभासों की भरमार है और इसी कारण वह शक्तिहीन ज्ञात होती है। यह ऐसी भ्रामक धारणा पर आश्रित था जिसके कारण इसकी प्रगति अवरुद्ध हो गई और असर्जक विद्रोह की भावना के कारण यह शिथिल पड़ गया। यद्यपि इसमें काव्य-सृजन की क्षमता है, पर यह मनोराज्य की मरीचिका में भटकने के कारण विद्रूप तथा विलक्षण बिम्बों की योजना को ही काव्य स्वीकार करता है। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक कवियों ने इससे संबंध-विच्छेद कर अपने को अन्य संगठनों से संबद्ध कर लिया। इटली के कवियों ने अपना संबंध फासीवाद के साथ स्थापित कर लिया और अनेक कवि सर्वहारावर्ग के गीत गाने लगे। अतियथार्थवादी यांत्रिक सभ्यता की एकरूपता से त्रस्त होकर अर्थहीन मूर्त्तियों और बेडौल खिलौनों का निर्माण कर अपनी प्रतिभा को मुक्त अभिव्यक्ति प्रदान करता है। कॉडवेल ने अतियथार्थवाद के विरोध में अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रकट किया है—"प्रत्येक सोपान में पूँजीवादी विरोधाभास से कविता की वस्तु और शिल्प को एक अभिनव विकास मिला है, अत: 'कला के लिए कला' के आंदोलन से लेकर अतियथार्थवाद तक कला को एक नई शिल्पगत उपलब्धि हुई है, किंतु यह उपलब्धि स्थायी नहीं है अतियथार्थवादी आंदोलन के अंतर्गत शिल्प साधनों और काव्यवस्तु के बीच जो विरोधाभास समाहित है वह विस्फोटक स्थिति तक पहुँच चुका है यह शिल्पात्मक आंदोलन अपने ही विरोधी तत्त्वों की ओर मुड़ रहा है फलत: आज शिल्पात्मक आंदोलन के विरोध में सामाजिक संदर्भ से युक्त काव्य-वस्तु के आंदोलन की संभावनाएँ बढ़ गई हैं इसके अंतर्गत शब्द एक नए संदर्भ से युक्त होंगे और काव्य का सम्पूर्ण स्वरूप परिवर्तित हो जाएगा।" (आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान, पृ. 103-104) आधुनिक युग में अतियथार्थवाद मृतप्राय हो चुका है।

Symbol (सिम्बल) प्रतीक

उस विशेष संकेत को प्रतीक कहते हैं जिसका प्रयोग किसी अन्य अर्थ के लिए किया जाय। इसके तीन तत्त्व हैं—विशेष संकेत चिह्न का होना-अनेकार्थता तथा अप्रस्तुत अर्थ की विशेषता। जब उपमान किसी अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं तो

उन्हें प्रतीक कहा जाता है। प्रतीकों के तीन प्रकार हैं-संकेतात्मक, व्यंग्यात्मक तथा आरोप मूलक।

Symbolic Drama (सिम्बोलिक ड्रामा) प्रतीकात्मक नाटक

प्रतीकात्मक नाटक में मानवविचारों या भावों को नाटकीय रूप प्रदान किया जाता है अर्थात इसके पात्र साधारण मानव न होकर मानवीय विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके माध्यम से नाटककार मनुष्य की आंतरिक भावनाओं संघर्षों एवं भावावेगों को प्रतीक के द्वारा वर्णित करता है।

Symbolism (सिम्बोलिज्म) प्रतीकवाद

प्रतीकवादी आंदोलन का सूत्रपात उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में फ्रांस में हुआ था जिसने तत्कालीन साहित्य के सभी रूपों एवं कला के सभी क्षेत्रों को उपकृत और अनुप्राणित किया। यह आंदोलन स्वच्छन्दतावाद की अतिशय भावुकता और आग्रह के प्रति प्रतिक्रिया स्वरूप उदित हुआ था। फ्रांस में स्वच्छन्दतावाद के विरोध में पारनेशियनवाद नामक काव्यधारा का प्रवर्त्तन हुआ था, जिसमें स्वच्छन्दतावाद की कुछ प्रवृत्तियां का बहिष्कार कर अन्य प्रवृत्तियों को प्रतिष्ठित किया गया। इसे स्वच्छन्दतावाद की एक शाखा कहा जा सकता है या यह प्रकारांतर से स्वच्छन्दतावाद की ही एक धारा थी जो उसके विरोध में प्रवहमान हुई थी। पारनेशियनवाद में व्यक्तित्व मुक्ति का क्षणिक आवेग प्रदर्शित होता है और कवियों ने आयाससाध्य शैली तथा स्थिर छन्द विधान के प्रति आग्रह का भाव दिखलाया है। इस काव्यधारा का आरंभ थियोफिल गोतियर के काव्य से माना गया है जो 'कला कला के लिए है' सिद्धांत के प्रति आस्था रखता था। उसने शिल्पात्मक कौशल के माध्यम से काव्यात्मक सौंदर्य की उद्भावना की है। फ्रांस में प्रतीकवादी आंदोलन का उन्मेष इसी पीठिका पर हुआ जिसका नेतृत्व पॉल वर्लेन ने किया और बादेलेयर, स्टीफेन मलार्मे, रिम्बाद, पॉल वैलेरी, क्लादेल, पीग्वी आदि कवियों द्वारा यह प्रौढ़त्व को प्राप्त हुआ। 1886 ई. में 'फिगेरो' नामक पत्रिका के प्रकाशन से यह आंदोलन प्रारंभ हुआ और इसमें उसका घोषणापत्र प्रकाशित हुआ। साहित्य में यह आन्दोलन बहुमुखी विकास का परिचायक था और इसमें अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ समाविष्ट हो गई थीं। इस काव्य-चिंतन का उद्योतन बुद्धिवादी विचारणा के विरोध में हुआ था और इसमें आदर्शवादी एवं रहस्यवादी दार्शनिकों ने भी महत्त्वपूर्ण योग दिया था। इन दार्शनिकों के अनुसार बुद्धि जीवन के रहस्यमय तत्त्वों को व्यक्त करने में अक्षम है। चूँकि ये तत्त्व जीवन

के मूलाधार है, अतः इनकी उपलब्धि में ही मानवीय चेतना का मूलधर्म निहित है। "कला के क्षेत्र में इस विचारधारा का रूपायन जीवन की असीमता, रहस्यात्मकता और कल्पनाप्रवण आध्यात्मिकता के आग्रह के रूप में हुआ था। कालांतर में इन्हें ही कला का आधारभूत तत्त्व मानलिया गया। काव्य के क्षेत्र में बौद्धिकता का निराकरण होता गया और उसके अंतर्गत अन्तरात्मा के रहस्यमय एवं गहनस्तरों की अनुभूति को स्पष्ट करने का प्रयास प्रमुख बन गया।" (आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान, पृ. 78) 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में फ्रांस से प्रारंभ होकर यह आंदोलन सम्पूर्ण यूरोप में फैल गया और इसका प्रभाव 20वीं शताब्दी के प्रथम चरण तक व्याप्त रहा। इंगलैंड में इस विचारणा ने डब्ल्यू. वी. यीट्स (आयरिश) और टी. एस. इलिएट को भी प्रभावित किया और रूसी कवि ब्लोक, अमरीकन हत्थार्न और ह्विटमैन भी इससे अनुप्राणित हुए।

प्रतीकवादी काव्य की मान्यताएँ बहुमुखी थीं। प्रतीक का अभिप्राय ऐसी कविताओं से है जिनमें किसी प्रकार के प्रस्तुत के स्थान पर उससे भिन्न किन्हीं अंशों में सादृश्य रखने वाले अन्य अप्रस्तुतों का प्रयोग किया जाता है। ऐसी कविताओं में आध्यात्मिक या ईश्वर-विषयक प्रेम कविताएँ आती हैं या सभी प्रकार की कविताओं में प्रतीक शैली प्रयुक्त होती है। जब कोई वस्तु अपने से भिन्न वस्तु शब्द या चिह्न का संकेत करे तो उसे प्रतीक कहते हैं; जिसकी अपनी निजी सार्थकता होती है। प्रतीकवाद में प्रस्तुत का चित्रण इस प्रकार होता है कि उससे कुछ भिन्न अर्थ का अवबोध हो या प्रस्तुत से अधिक अर्थ की प्रतीति हो। पर जो अन्य अर्थ का बोध होता है वह प्रस्तुत अर्थ से साम्य रखता है। जब प्रसिद्ध उपमान किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाते हैं तो वे प्रतीक का रूप ग्रहण कर लेते हैं। जिस भाव या विचार को व्यक्त करना होता है, प्रतीक उसे सहज भाव से ही अभिव्यक्त करते हैं और संवेगों को प्रभावोत्पादक ढंग से उद्दीप्त करते हैं। "इस प्रतीकात्मक भाषा का जब कवि या लेखक प्रयोग करता है तब पढ़ने या सुनने में लगता है कि वाच्यार्थ ही कवि या लेखक का उद्देश्य है, फिर भी उसके कहने का ढंग कुछ ऐसा होता है कि पाठक उससे कुछ भिन्न अथवा उससे भी कुछ अधिक समझ लेता है।" (पाश्चात्य काव्यशास्त्र, पृ. 169) प्रतीकों में अभिव्यक्ति की असीम शक्ति निहित है और वे असीम व्यंजना जगाने में सक्षम होते हैं। अनेक दार्शनिक प्रतीक को जीवन का मूलाधार भान कर मानवजीवन को प्रतीक मय मानते हैं। उनके अनुसार कला प्रारंभ से ही प्रतीकात्मक है और सभी मानवीय उपलब्धियाँ चाहे वे विज्ञान, भाषा, कथा, दर्शन, धर्म, सभ्यता या दर्शन हों

प्रतीकात्मक रही हैं। प्रतीक निर्माण को मानव चरित्र की प्रमुख विशिष्टता माना गया है और इसके द्वारा मानवीय आत्म जागरण की पहचान होती है। प्रतीक में अमूर्त्त की मूर्त्त रूप में और अस्पष्ट की स्पष्ट रूप में अभिव्यक्ति होती है और मनुष्य इसके द्वारा भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत् में सामंजस्य स्थापित करता है। मनुष्य प्रतीकों के द्वारा ही अनुशासित होकर सुखी और हेय बनता है और उसे अपने चारों ओर प्रतीक का साम्राज्य दिखाई पड़ता है। स्वयं ब्रह्माण्ड भी ईश्वर का प्रतीक और मानव को ईश्वर का प्रतीक कहा जा सकता है। प्रतीक के अर्थ चार प्रकार से प्रकट होते हैं—परंपरागत चिह्नों द्वारा, साधारण तथा प्रत्यक्ष के परे के प्रेषण का माध्यम, अमूर्त्त और अप्रत्यक्ष को स्पष्ट करने के रूप में तथा चरमतत्त्व की प्रतीति के माध्यम में। प्रतीकवाद की परिभाषा प्रकट करते हुए इसे ऐसे कलावादी आंदोलन की संज्ञा दी गई है जो प्रकृतवाद के प्रतिक्रिया-स्वरूप उत्पन्न होकर परोक्ष प्रतीकों के द्वारा आध्यात्मिक मूल्यों को प्रेषित करने में समर्थ हुआ। अनेक विद्वान इसे रूपकों के माध्यम से उच्च आन्तरिक भावनाओं की अभिव्यक्त स्वीकार करते हैं। प्रतीकवाद प्रकृत पदार्थों को प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान कर अभिधात्मक शैली की अपेक्षा लाक्षणिक एवं व्यंग्यात्मक शैली में भावों एवं विचारों को व्यक्त करता है। प्रतीकवादी आंदोलन दार्शनिक तथा चिंतन प्रधान था और इसके विवेच्य विषय में संप्रेषण की प्रधानता थी। प्रतीकवादियों ने मानस को संवेग तथा संवेदन का आगार माना है और वे इस तथ्य में विश्वास रखते हैं कि मानव की सतत परिवर्तनशील चेतना ही संवेदनों के स्वरूप को बदलने का हेतु है। कलाकार इन्हीं संवेगों, जिनकी स्थिति अस्पष्ट और उलझनपूर्ण होती है, की अभिव्यक्ति करता है और नवीन अभिव्यक्ति संभावनाओं की खोज में संलग्न रहता है। प्रतीक को इन्हीं विशिष्ट संभावनाओं का विशेष घटक कहा जा सकता है। प्रतीक वादी का ध्यान सदा शब्द के सांगीतिक तत्त्व की ओर जाता है और वह मानता है कि संगीतमय शब्दों में मानवात्मा के अदृश्य स्वरूपों को व्यक्त करने की पूर्ण शक्ति होती है। वह आदर्श सौंदर्य का पोषक होता है और उसके द्वारा इसे प्राप्त करने में अपनी महनीय सिद्धि समझता है। "प्रतीकवादी वह व्यक्ति है जिसका उद्देश्य यथार्थ वस्तुओं के पक्षों या रूपों को प्रस्तुत करने की अपेक्षा विचारों को प्रतीकात्मक रूप देना हो।" अथवा वह जो प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति की अपेक्षा विचारों और भावों को अप्रत्यक्ष संकेत द्वारा प्रस्तुत करना अपना लक्ष्य बनाये और विशेष वस्तुओं, शब्दों और ध्वनियों को प्रतीकात्मक अर्थ से मण्डित करे। (पाश्चात्य काव्यशास्त्र: सिद्धांत और वाद, पृ. 227) प्रतीकवादियों का

विश्वास है कि अकेली घटनाएँ और एकाकी व्यक्ति क्षुद्र, क्षणिक और महत्त्वहीन हैं, यदि उन्हें शाश्वत सत्यों के प्रतीक के रूप में दिखाया जाय तो वे कला के योग्य विषय हो सकते हैं। प्रतीकवादियों के अनुसार गोचर जगत् वास्तविक सृष्टि नहीं है, यह मिथ्या रूप है। वास्तविक सृष्टि तो अलौकिक और शाश्वत होती है। उस अलौकिक सृष्टि का गान करने से अभिव्यक्ति अनिवार्य रूप से रहस्यमय हो जाएगी। "अतः, वस्तु जगत् से अनुप्रेरित रचनाओं में केवल दुर्लबलताओं, नैराश्यपूर्ण विभ्रमों, गुनाहों तथा कुत्सित चेष्टाओं का वर्णन ही प्रतीकवादियों ने अधिक किया। वस्तु जगत् की कमियों और दरारों को इन कवियों ने अलौकिक सृष्टि के प्रवेश द्वार में देखा।" (आलोचना, आलोचना अंक, पृ. 174) प्रतीकवादी कवि कविता में सामान्य भाषा का प्रयोग न कर अपनी विशिष्ट अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए नए मार्गों का अनुसंधान कर नूतन बिम्बों और नवीन शिल्प विधियों का सृजन करता है। उसने भाषा की अक्षमता को समझ कर अन्य मार्गों का अन्वेषण किया है। उसका कथन था कि अनुभूत विषयों के अग्राह्य, अनुपम और अकथ्य होने के कारण उनका संकेत नहीं किया जा सकता, वे अभिव्यक्त नहीं किए जा सकते, व्यंजित हो सकते हैं।

उन्होंने नवीन बिम्बों तथा ध्वनि-संकेतों के माध्यम से अनुभूत संवेगों के सूक्ष्म तत्त्वों को प्रकट करने का प्रयास किया और ध्वनि तथा सुगंधि के संबंध में विचित्र धारणाओं का प्रवर्तन किया फलतः उनकी कविता के विषय बने-अंतर्मन की स्मृतियाँ, ध्वनि और प्रतिध्वनि, सूक्ष्म तरंगे एवं रहस्यपूर्ण संकेत। उन्होंने अस्पष्टता को काव्य का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व स्वीकार किया जिसका समर्थन तत्कालीन आलोचकों ने भी किया। प्रतीकवादी कविता में शैली और व्यंजना के ऐसे नवीन प्रयोग किए गए जिससे वह रूढ़ियों से मुक्त हो गई। उसमें परंपरागत छन्द (अलेक्ज़ेन्द्रा) को अभिव्यक्ति का बाधक मान कर या उसे अक्षम समझ कर उसकी मात्रा विषयक रूढ़ियों को समाप्त कर दिया गया। प्रतीकवादी काव्य की सृष्टि युक्त और अतुकांत छन्द में हुई और कविता तथा संगीत के बीच समन्वय की स्थापना हुई। इसमें सौंदर्य को प्रतिष्ठित कर काव्य को राजनीति से दूर रखा गया। प्रतीकवादी काव्य की उपलब्धियों पर विचार करते हुए सी. एम. बावरा ने अपना निष्कर्ष इस प्रकार प्रकट किया है "प्रतीकवादियों की शक्ति एक आदर्श के प्रति उनकी लगन में निहित थी। उसने उन्हें रुचि की और निष्ठा की भी उन असफलताओं से बचाया जो टैनीसन और ह्यूगो में देख कर हम स्तब्ध रह जाते हैं। यदि उनका संसार सीमित है तो वह निर्विवाद रूप से समृद्ध है, क्योंकि अदृष्ट

पर कोई सीमाएँ नहीं लगाई जा सकतीं। इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उनके अभ्युदय का क्रांति के रूप में स्वागत किया गया और वे कभी जो उनके उद्देश्य या उनकी शिल्पविधि को समझते तक नहीं थे, कुछ समय के लिए उनके झंडे के नीचे रहकर लड़े। यह ऐसा काव्य था जो भावना को उत्तेजित भी करता था और इसमें ईमानदारी भी झलकती थी। यह काव्य रूढ़ अलंकारशास्त्र या क्षुद्र नैतिकता में स्खलित नहीं हो जाता था, भीड़ के लिए उसमें कोई आकर्षण न था। सौंदर्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी साध्य की पूर्ति का उसमें प्रयास नहीं था। इसके अतिरिक्त प्रतीकवाद ने उन विशेषताओं की कविता में पुनः प्रतिष्ठा की जिनका अभाव हो गया था, और जो जानते थे कि कविता क्या है, उन सबने उसका स्वागत किया। एक विरोधाभास द्वारा उन्होंने आत्मपरकता के उस तत्त्व को पुनः प्राप्त कर लिया जिसका आभिजात्यवादियों ने निराकरण कर दिया था। प्रतीकवादियों ने दिखाया कि कविता आलंकारिक भी हो सकती है और वैयक्तिक भी। नवयुवक कवियों ने जो अपनी ही उत्तेजनाओं से ओत प्रोत थे, अपने बारे में लिखने का मार्ग पा लिया। संवेदना की प्रत्येक तरंग को व्यक्त करने की क्षमता से युक्त इस नवीन पद्धति ने उन्हें सिखाया कि कैसे यह किया जाए।" (पाश्चात्य काव्य शास्त्र: सिद्धांत और वाद पृ. 236-237)

प्रतीकवादी काव्य के दोषों पर भी दृष्टिपात् किया गया है। इसमें वैयक्तिक तत्त्वों का इतना प्राचुर्य था कि यह जनसाधारण से विच्छिन्न होकर कुछ चुने हुए परिष्कृत रुचि के लोगों के लिए ही बोधगम्य हो गया था और साधारण जीवन और काव्य के बीच गहरी खाई खुद गई थी। कवि अन्तःप्रेरणा से प्रभावित होने के कारण जन जीवन से दूर हो गए थे। प्रतीकवादी काव्य में आध्यात्मिक मूल्यों को अमूर्त्त प्रतीकों द्वारा प्रकट किया गया है। इसके नवीन भाव संकेतों और नूतन प्रतीक विधानों ने प्रेषणीयता की दृष्टि से प्रश्न चिह्न लगा दिया था; यही कारण था कि यह साहित्य जनजीवन से असंपृक्त हो गया। इसने हीगेल और शॉपेनहावर के जीवन-दर्शन से प्रेरणा ग्रहण की थी और रहस्यवृत्ति तथा अस्पष्टता को काव्य का अनिवार्य गुण मान लिया था।

पहले कहा जा चुका है कि फ्रांस में प्रतीकवाद का आविर्भाव वैज्ञानिक बुद्धिवाद तथा पारनेशियन सम्प्रदाय के यथातथ्य निरूपण-पद्धति की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। इन कवियों ने अपने घोषणापत्र में लिखा था कि काव्य का लक्ष्य प्रत्यों को इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य रूप प्रदान करना है, पर यही उसका अन्तिम ध्येय न

होकर मूर्त्त दृश्य को इन्द्रियग्राह्य रूप देकर आदिम प्रत्ययों से अपने निहित साम्य का परिचय देना है। 1886 ई. में वर्लेन और मलार्मे के विचारों को केन्द्र बनाकर अनेक नवयुवक कवि इकट्ठे हुए और उन्होंने दोनों कवियों की रचनाओं के आधार पर दो काव्य-वर्गों की स्थापना की। वर्लेन के अनुयायियों ने उससे आवेगपूर्ण नैराश्य के स्वर को ग्रहण कर उसका समावेश अंपनी कृतियों में किया जिसमें शैलीगत स्पष्टता और सरलता थी। मलार्मे ने जिस काव्यादर्श का प्रतिपादन किया था, उसमें दुरूहता और जटिलता थी और उसके शैली-विधान का अनुकरण सरल नहीं था। 1886 ई. के पूर्व रिम्बो की रचनाओं में इस काव्यान्दोलन की महनीय विशिष्टाओं के दर्शन हुए थे, किंतु उसका अधिक स्पष्ट रूप कालांतर में परिलक्षित हुआ। उसने बतलाया था कि उसका विश्वास सभी प्रकार के इन्द्रजालों में है और उसने स्वरों के रंगों का आविष्कार किया है। उसके अनुसार 'ए' का रंग काला है। और 'ई' का रंग श्वेत है। 'आई' का रंग लाल होता है और 'ओ' का रंग नीला। यू का रंग हरा होता है। उसका कहना था कि उसने प्रत्येक व्यंजन के जाति तथा रूप को नियत कर लय के स्वाभाविक ज्ञान से काव्य सुलभ भाषा का अन्वेषण किया है जो निश्चित ही किसी दिन अर्थ के विभिन्न स्तरों का अवबोध कराने की क्षमता प्राप्त कर सकेगी। मलार्मे प्रतीकवादियों का काव्य गुरु बना, पर वह स्वयं बोदलेयर और एडलर एलन पोसे प्रभावित था। उसने कविता को एक प्रकार की साधना और तपस्या कहा और उसे मन की शक्तियों को नियोजित करने का साधन माना। उसके अनुसार कविता दैवी आवेग या प्रेरणा न होकर शिल्पगत या दार्शनिक प्रयास है। कविता में शब्द संकेत मात्र न होकर उससे अधिक होते हैं और अर्थ उसके रूप से अभिन्न होता है। उसके अनुसार "कविता मानवीय-भाषा के आदिम और अनिवार्य लय के माध्यम से अस्तित्व के आयामों के रहस्यमय स्वरूप का प्रकाशन है। कविता हमें उद्बुद्ध करती है तथा हमें आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करती है।" (आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान, पृ. 83) मलार्मे ने काव्य को संगीत का ही एक प्रकार माना है, पर वह दोनों से उत्पन्न आनन्द को तुल्य नहीं मानता। वह रहस्यमूलक काव्यात्मक संगीत का समर्थक था जिसकी झंकार आध्यात्मिक श्रवणेन्द्रियों द्वारा ही सुनी जाती है। वह काव्यात्मक संगीत को नाम और रूप से परे तथा विचारों और शब्दों की सीमा से ऊपर मानता है जिसमें शाश्वत सौंदर्य की अभिव्यक्ति होती है। 'रिम्बाद' का काव्य प्रतीकवादी आंदोलन में नवोन्मेष का परिचायक था। उसने कविताओं में कैशोर भावनाओं की प्रगल्भ अभिव्यंजना का स्वर मुखरित

किया है। वह विश्व की समग्र अनुभूतियों को काव्य में समाहित करना चाहता था। उसकी कविता में वैयक्तिक बिम्बों का अभिनिवेश प्रचुर मात्रा में है। उसे विरोधाभास का कवि माना जाता है।

पॉलवैलरी के काव्य में सृजन और चिंतन दोनों का समन्वय है। उसकी आरंभिक कविताओं के संग्रह का नाम 'अल्बम दि वर्स एन्सिएन्स' था जिस पर मलार्मे का प्रभाव है। उसका काव्य परंपरागत शिल्प तथा छन्द-विधान से संबद्ध होते हुए भी उनसे पृथक् है। बॉदलेयर प्रतीकवाद के प्रवर्तक स्तम्भों में से एक था। उसने प्रकृति की अनुकृति की अपेक्षा निश्चित बिम्बों के चयन को महत्त्व दिया था, जिन्हें वह साधारण जीवन से चयन कर इच्छानुसार उन्नत बनाने के पक्ष में था। वह शब्दों से परोक्ष अर्थों की प्रतीति कराने के लिए उन्हें साधारण अर्थों से पृथक् करना चाहता था। वह शब्द को ऐसा घूँघरू मानता था जिससे नार होता है। वह मानता था कि काव्य एक रहस्य है जिसको स्पष्ट करने के लिए पाठक को प्रयत्नशील होना पड़ता है। आयरिश कवि विलियम वटलर यीट्स भी अँग्रेजी का प्रसिद्ध प्रतीकवादी कवि है, जिसने प्रतीकवाद को शैली का सार स्वीकार किया है। यीट्स को ब्लेक तथा शेली द्वारा प्रवर्त्तित स्वतंत्र तथा समानांतर परंपरा का अंग माना जाता है। उसके काव्य-चिंतन पर थियॉसोफी, रोजीक्रशियनों की गुह्य विद्या, हर्मेटिकल सोसायटी के अतिरिक्त भारतीय औपनिषदिक सिद्धांतों का प्रभाव है। वह कुछ निश्चित सिद्धांतों को व्यक्त करने के लिए प्रतीक को ही सशक्त माध्यम मानता था। और समसामयिक मानव को रूढ़िवादी चिंतन से मुक्त करना चाहता था। टी. एस. इलियट, एडिथ सिटवेल तथा डाइलन टामस भी अँग्रेजी के सशक्त प्रतीकवादी कवि माने जाते हैं। इनकी कविता में भी सामाजिक, दार्शनिक तथा तत्त्व मीमांसीय उपकरणों की सक्रीयता है। प्रतीकवादी आंदोलन झंझावात की भाँति आया था और उसने सम्पूर्ण यूरोपीय काव्य चिंतन को 50-60 वर्षों तक आंदोलित किया। उसने काव्य के रहस्यवादी रूप की प्रतिष्ठा कर भाषा के सांगीतिक तत्त्व की उद्भावना की और साहित्येतिहास में अनेक अमर व्यक्तित्वों की सृष्टि की। उसने क्लिष्ट विधान और सम्प्रेषणीयता की जटिलता का सृजन किया, निदान उसमें दुरूहता बढ़ती गई और पाठक उसके साथ अपने मन का सामंजस्य स्थापित करने में अक्षम हो गए। अपनी अस्पष्ट अभिव्यक्ति-कला के कारण यह आंदोलन भी निःशेष होकर इतिहास की वस्तु वन गया।

Tragi-Comedy (ट्रैजी-कॉमडी) त्रासिक कॉमदी

ऐसी नाट्यकृति जिसमें त्रासद और कामद दोनों मनोदशाओं का वर्णन हो, उसे ट्रैजी-कॉमडी कहते हैं। ऐसे नाटक में जीवनगत सुख-दुःख का गुंफन होता है और अश्रु तथा पुलक दोनों का मिश्रण रहता है। ऐसा नाटक जीवन का वास्तविक रूप प्रकट करता है। इसमें करुण तथा प्रहसनात्मक दृश्य साथ-साथ चलते हैं। नाटक की घटना त्रासद घटनाओं की ओर अग्रसर होती है, पर उनका अंत सुखमय होता है। विकासोन्मुख क्रिया-व्यापार में दुःखद स्थिति उत्पन्न हो जाती है, पर चरमसीमा में वह सुखद हो जाती है। फलतः इसके कथानक में भी दुःख-सुख के तत्त्व अनुपात में होते हैं और चरित्र एकरूप न होकर परिवर्तनशील होते हैं। इसमें दुःख-सुख के मिश्रण में निश्चित अनुपात और क्रम होते हैं।

Tragedy (ट्रेजेडी) त्रासदी

नाटक का एक प्रकार। त्रासदी ऐसा नाट्य रूप है जिसका संबंध जीवन के गंभीर पक्ष से है। इसमें जीवन के महत्त्वपूर्ण, विशाल और गंभीर पक्ष का अनुकरण किया जाता है, अतः इसकी कला उत्कृष्ट कोटि की मानी जाती है। त्रासदी में लेखक जीवन की करुणापूर्ण स्थितियों का वर्णन कर सामाजिक या दर्शक के मन में करुणा तथा भय की स्थिति उत्पन्न करता है।

'ट्रेजेडी' ग्रीक शब्द Tragos (त्रागोस) एवं ode (ओड) के योग से निष्पन्न है। जिसका अर्थ बकरी (त्रागोस) का गीत (ओड) है। ये गीत सुरा के देवता बाक्कुस की पूजा के क्रम में अजाबलि देते समय गाये जाते थे। बलि की समाप्ति के पश्चात पुजारी, कभी मिलकर और कभी विभिन्न टोलियों में विभक्त होकर, भजन-स्तोत्र (हिम्न्स) गाया करते थे और इसके अन्तराल में कोई व्यक्ति आकर काव्य-पाठ करता था, जिसका उद्देश्य गायकों को विश्राम देना होता था। यह काव्य-पाठ ग्रीक देवी-देवताओं या वीरों से संबद्ध महाकाव्यों का अंश रहता था अथवा इलियट के कुछ अंशों को गाया जाता था। इसी बीच ई. पू. 536 वर्ष में थेस्पिस ने महाकाव्य के पाठ से ही एक अभिनेता का चयन किया और बाक्कुस की वेदी पर होने वाले कोरस (सहगान) के नेता से उसका कथोपकथन कराना प्रारंभ किया। इस अभिनेता ने किसी देवता का प्रतिनिधित्व कर उसका नकली रूप बनाया था। पचास वर्षों के पश्चात ईस्किलस नामक नाटककार ने, जो त्रासदी का जन्मदाता माना जाता है, किसी कथा को अभिनेताओं या दो व्यक्तियों द्वारा

कथोपकथन के रूप में प्रस्तुत करना प्रारंभ किया। उसने कथोपकथन करने वाले व्यक्तियों के लिए सुसज्जित रंगमंच की स्थापना की, जिसे एपीसोड या उपाख्यान कहा गया। क्रमश: बैकस देवता से संबद्ध सहगान (कोरस) समाप्त हो गया और उसके स्थान पर कथा से संबद्ध गायन आरम्भ हुआ। ट्रेजेडी का मूल रूप इन्हीं गायनों में सुरक्षित है और कालांतर में सोफोक्लीज तथा यूरीग्डिज नामक नाटककारों ने इसे विकसित किया। उस समय के कथानक अत्यधिक लम्बे हुआ करते थे जो तीन या चार सौ पंक्तियों में समाप्त होते थे। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि प्राचीन त्रासदी का उद्भव कोरस या सहगान से ही हुआ।

सर्व प्रथम अरस्तू ने अपने 'काव्यशास्त्र' में त्रासदी का विशद विवेचन कर उसे शास्त्रीयता प्रदान की। यद्यपि उसके पूर्व प्लेटो ने भी इस पर विचार किया था; किंतु इसे पूर्ण शास्त्रीय स्वरूप देने का कार्य अरस्तू ने ही किया। उसने बताया कि त्रासदी में भय और करुणा द्वारा मानवीय भावनाओं का परिष्करण होता है, अत: यह महान साहित्य रूप है। उसने त्रासदी के तत्त्वों पर विचार करते हुए उसके छह प्रधान तत्त्वों–वस्तु, पात्र, विचार, भाषा, सज्जा तथा संगीत का विवेचन किया। आगे चल कर अरस्तू की मान्यताओं के आधार पर ही यूरोप में उच्चकोटि की त्रासदियाँ लिखी गईं और काव्यशास्त्रियों ने उसके स्वरूप-निर्धारण में अपनी नवीन मान्यताएँ भी प्रस्तुत की, पर त्रासदी का अरस्तू द्वारा निर्धारित रूप ही सुरक्षित रहा। ट्रेजेडी के स्वरूप-विकास में कॉलरिज, हीगेल, शॉपेनहावर तथा बर्गसां ने महत्त्वपूर्ण योग दिया।

कॉलरिज के विचार इस प्रकार हैं–"त्रासदी के अन्तिम प्रभाव में ईश्वर तथा नैतिकता के प्रति हमारी श्रद्धा और भी दृढ़ होनी चाहिए। हमने ईश्वरीय नियमों के लिए अनुराग तथा उनमें विश्वास उत्पन्न होना चाहिए। कवि का कला-प्रयोग केवल कलात्मक ही नहीं शिक्षात्मक भी है। त्रासदी के प्रगाढ़ प्रभाव में काव्य की आत्मा निहित है। त्रासदी लेखक अपने पात्रों को एक आदर्शलोक में उपस्थित कर उसकी आध्यात्मिक तथा मानसिक शक्तियों की महत्ता बतलाता है। परंतु, वह अपने पात्रों में केवल श्रेष्ठ गुणों और अतिश्रेष्ठ मानवी लक्षणों को इकट्ठा न कर उनके अवगुणों और दोषों को भी प्रदर्शित करता है। उसका उद्देश्य चरित्र जनित दोषों और अवगुणों का प्रदर्शन है।"

हीगेल–"त्रासदी अपने प्रभाव में नैराश्य का प्रसार न कर जीवन के प्रति श्रद्धा और विश्वास की नींव दृढ़ करती है। मनुष्य तथा जीवन को प्रेम और श्रद्धा की

डोर में बाँधना उसका प्रधान कार्य है। कलाकार, जीवन के दोषों, अवगुणों तथा पापों का दमन करके यह सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकता। जब श्रेष्ठ गुणों के दो विरोधी द्वन्द्वपूर्ण हो एक दूसरे का विनाश कर देते हैं, उसी में त्रासदी की आत्मा विकसित होती है। गुण तथा अवगुण के द्वन्द्व से ही त्रासदी पूर्ण नहीं होती, वह गुण के अन्तर्द्वन्द्व के ही कारण पूर्ण होती है। जब किसी नायक के गुण अपनी सीमा पार कर अतिश्रेष्ठ होने की कोशिश करते हैं तो उन गुणों में भी एक तरह का सीमोल्लंघन होता है। इसके कारण वे गुण, गुण नहीं रह जाते और उनके विनाश से ही जीवन में सामंजस्य स्थापित होता है।

श्रेष्ठ त्रासदी का नायक दृढ़ प्रतिज्ञ तथा अपने पर विश्वास रखने वाला होता है। उसके चरित्र में स्वभावतः कोई-न-कोई मानवी गुण अपनी परिधि तोड़ कर उसकी आदर्श सीमा का उल्लंधन करता है। त्रासदी के मुख्य पात्र में कुछ दैवी गुण होने चाहिए; ऐसे गुण जो उसे आदर्श स्थल पर रख सकें।"

शॉपेन हावर–"त्रासदी में कला की पराकाष्ठा प्रदर्शित होती है। इसका कारण है उसके लिखने की दुरूहता तथा उसका प्रगाढ़ प्रभाव। इसके अतिरिक्त उसमें जीवन के भयावह स्थलों का चित्रण रहता है जिससे मानव हृदय पर गहरा प्रभाव बहुत काल तक के लिए पड़ता है। त्रासदी में इच्छा शक्ति के द्वन्द्व और उसके फलस्वरूप पराजय की मानवी अनुभूति होती है। इच्छाशक्ति अपने से ही द्वन्द्व छेड़ बैठती है और इस द्वन्द्व का परिचय हमें मनुष्य के त्रास तथा क्लेश में मिलता है। त्रास और क्लेश दोनों, कुछ तो दुर्योग तथा घातक अवगुणों (जिसे हम भाग्य का प्रतीक समझते है) द्वारा मिलते हैं और कुछ मानवी दोषों के कारण उपजते हैं। इच्छाशक्ति के इस विरोध के फलस्वरूप उसका स्वयं विनाश हो जाता है। त्रासदी के द्वन्द्व में हमें जीवन तथा संसार का सम्पूर्ण ज्ञान मिलता है। हमारे दुःख तथा क्लेश हमारे ज्ञान का संशोधन करते हैं; इस संशोधन से हम पर शान्ति सरसती है और हम जीवन के सामने घुटने टेक देते हैं। त्रासदी की कला ही ऐसी कला है जिसके द्वारा हम ऐसे जगत् का अनुभव करते हैं जहाँ जीवन वांछनीय नहीं है। जब बुद्धिमान लोग त्रासदी देखते हैं तो उनके विचार में यह आता है कि जब इतने श्रेष्ठ मनुष्यों का पतन हो गया तो उनकी क्या हस्ती है और वे अपनी इच्छशक्ति को निष्प्राण कर देते हैं और जीवन को वांछनीय नहीं समझते; इसके विपरीत मूर्ख त्रासदी देखने के बाद जीवन से आकर्षित होकर उससे और भी उलझ जाते हैं।"

नीत्से–"जब हम त्रासदी देखते हैं तो स्वभावत: हममें निराशा उत्पन्न होती है, परंतु हम जीवन के उन स्थलों को भी देखते हैं जिन पर हम विजय पा सकते हैं और इस भावना से हममें आशा तथा शक्ति का संचार होता है। वास्तव में त्रासदी हमें दु:खित न कर, नायक के कुयोगों के संघर्ष द्वारा आनन्द प्रदान करती है। हम अंत में जीवन की शक्ति का अनुभव अवश्य करते हैं; परंतु हममें यही भावना स्थायी रहती है कि चाहे जीवन में शक्ति हो, मानवआत्मा उससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली है। अन्त में मानव-आत्मा की ही विजय रहती है, उसकी मर्यादा तथा उसकी आभा सदैव स्थायी रहती है। त्रासदी का ध्येय जीवन की शक्ति तथा सौंदर्य को स्फुटित कर मानवात्मा की मर्यादा की स्थापना है।"

बर्गसाँ–हमारा जीवन हमारी स्मरण-शक्ति द्वारा परिचालित है। स्मरण-शक्ति हमारी भावनाओं का संचय करती रहती है जिसके द्वारा हमारा समस्त जीवन प्रतिबन्धित रहता है। पात्रों में अनेक स्त्री, पुरुषों की स्मृति संचित रहती है और वे किसी भी पात्र के साथ अपनी काल्पनिक सहानुभूति प्रकट कर सकते हैं। इस सहानुभूति के फलस्वरूप हमारी भावनाओं तथा विचारों का परिमार्जन होता है। यह परिमार्जन हमें गौरवपूर्ण तथा उन्नत बनाता है।

श्रेष्ठ त्रासदी की रचना तभी हो सकती है जब समाज सभ्यता ग्रहण कर लेता है। जब तक समाज सभ्यता की ऐसी चोटी तक नहीं पहुँचता, जिससे उसमें मानव-स्मृतियाँ प्रचुर रूप में संचित हो जाएँ, तब तक श्रेष्ट त्रासदी का जन्म नहीं हो सकता। त्रासदी देखने के पश्चात हममें बड़प्पन की भावना जाग्रत होती है और श्रेष्ठ ज्ञान का अहंकार उपजता है। इसके साथ-साथ संभवत: हममें अपने समान साथियों को दु:खपूर्ण देख कर अपनी श्रेष्ठता तथा अभिमान का अनुभव होने लगता है, किंतु यह भावना क्षणिक होती है। सम्पूर्ण त्रासदी की विचारधारा में मृत्यु का ताण्डव दिखलाई पड़ता है। मृत्यु ही एक ऐसी घटना है जो जीवन को गौरवान्वित करती है; यह एक ऐसी वास्तविकता है जिसके कारण हम जीवन तथा उसके अजर प्रेम में और लीन हो जाते हैं। जीवन तथा मृत्यु के प्रेम के फलस्वरूप ही त्रासदी का जन्म होता है।" (सभी उद्धरण डॉ. एस. पी. खत्री लिखित 'नाटक की परख') (पृ. 165 से 170 तक) से लिए गए हैं। (त्रासदी संबंधी विशेष विवरण के लिए दे. अरस्तू Aristotle) त्रासदी में महान व्यक्ति को दु:ख भोगते हुए चित्रित किया जाता है जो सर्वगुण सम्पन्न होकर भी अपने गुणों को विस्मृत कर दु:ख उठाता है।

Transcendentalism (ट्रान्सेडेण्टलिज्म) परानुभववाद

उस दार्शनिक दृष्टिकोण को परानुभववाद कहते हैं जिसमें विश्वास किया जाता है कि आत्मा (स्पिरिट) और सूक्ष्मतर मूल्यों (वैल्यूज) का सत्य देशकाल आदि की सीमाओं से परे हैं। यह दार्शनिक मतवाद परमार्थ के अक्षेय तत्त्व पर बल देकर भौतिक और गोचर तत्त्व की अपेक्षा आध्यात्मिकता को अधिक प्रश्रय एवं महत्त्व देता है। वह तत्त्व जो दृश्य जगत् से परे हैं, दृश्यातीत और चेतना से परे हैं, उसे ईश्वर कहते हैं।

Transferred Epithet (ट्रांसफर्डएपिथेट) विशेषण विपर्यय

एक प्रकार का अलंकार जिसमें किसी विशेषण को ऐसे विशेष्य के साथ जोड़ा जाता है जिसके साथ उसका कोई संबंध नहीं रहता। इसमें किसी कथन को अधिक अर्थगर्भित बनाने के लिए विशेषण का विपर्यय किया जाता है।

Utilitarianism (यूटिलिटेरियलिज्म) उपयोगितावाद

राजनीतिक सिद्धांत। यह एक प्रकार का नैतिक सिद्धांत है जो सुखवाद पर आधृत है। सुखवाद (Hedonism) उसे कहते हैं जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का ध्येय अधिकतम सुख की प्राप्ति है। जिस कार्य से व्यक्ति अधिक सुख प्राप्त करता है, उसे उपयोगी कहते हैं और जिस कार्य से दुःख की प्राप्ति होती है, उसे अनुपयोगी कहते हैं। उपयोगितावाद राजनीतिक विचारधारा है जिसका प्रवर्तन इगलैंड में 19वीं शताब्दी में हुआ था। इसका संस्थापक जेरेमी बेंथम (1748-1832 ई.) था। उसके अनुसार उपयोगितावाद की परिभाषा इस प्रकार है—"यदि किसी वस्तु की वह विशेषता है जिसके कारण वह संबंधित व्यक्ति को लाभ, सुख, भलाई या आनंद देती है अथवा दुःख, बुराई या पीड़ा होने से रोकती है।" उपयोगितावाद 'अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख' के सिद्धांत का प्रतिपादन करता है। वह मानता है कि राज्य का कर्त्तव्य अधिकतम व्यक्तियों का कल्याण है। उसके अनुसार राज्य दैवी संस्था नहीं, एक उपयोगी संस्था है जिसका निर्माण मनुष्य ने अपने कल्याण या लाभ के लिए किया है। बेंथम ने बताया है कि सुख की प्राप्ति चार प्रकार से होती है—धर्म द्वारा, राजनीति द्वारा, नीति द्वारा तथा भौतिक साधनों द्वारा। उपयोगितावादी सिद्धांत व्यक्तिवादी है, क्योंकि उसने राज्य के कार्य-क्षेत्र को व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रसंग में परिमित कर दिया है। इसके आलोचकों का कहना है कि आज के लोक कल्याणकारी तथा

समाजवाद के युग में व्यक्तिवाद सर्वथा त्याज्य है और व्यक्तिवाद को प्रश्रय देने के कारण उपयोगितावाद भी हेय है। इसमें व्यक्तिगत हित और सामाजिक हित में समन्वय स्थापित नहीं होता। उपयोगितावाद भौतिक सुख पर बल देता है और आध्यात्मिक सुख की अवहेलना करता है। इसमें व्यक्तियों के सुखों को सामाजिक सुख का आधार माना जाता है, फलतः सामान्य सुख या सामाजिक सुख के महत्त्व को स्वीकार नहीं किया जाता। इसकी मानव प्रकृति की धारणा एकांगी या एकपक्षीय है। यद्यपि इसकी अधिक आलोचनाएँ हुई हैं, तथापि इसके गुणों का निषेध नहीं किया जा सकता। उपयोगितावाद में मानव-जीवन के कल्याण में रुचि ली जाती है और उसका क्षेत्र मानवीय जीवन, मानवीय कार्य तथा मानव कल्याण है। इसके प्रमुख समर्थक जे. एस. मिल ने व्यक्ति को समाज का एक अंग माना है। यह अनुभव पर आश्रित है और कल्पना में विश्वास नहीं करता। हैलोवेल के अनुसार "नीतिशास्त्र और राजनीतिशास्त्र को एक व्यापक वैज्ञानिक अनुभववाद के आधार पर प्रतिष्ठित करने का उपयोगितावाद एक प्रयास था।"

Walter Horatio Pater (वाल्टरपेटर) (1839-1894)

अँग्रेजी आलोचक (1839-1894) कलावादी आलोचकों में पेटर का स्थान अग्रगण्य है। उसने 'हिस्ट्री ऑफ रिनेसाँ (पुनरुत्थानवाद का इतिहास), 'इमेजिनरी पोर्ट्रेट्स' (काल्पनिक व्यक्तिचित्र), 'एप्रिसिएशन्स' (सरस समीक्षा) प्लेटो एण्ड प्लेटोनिज्म (प्लेटों और 'प्लेटोवाद') नामक ग्रंथों का प्रणयन किया है। पेटर कला की स्वतंत्र सत्ता की प्रतिष्ठा कर साहित्य का मुख्य प्रयोजन मनःप्रसादन मानता था। उसके अनुसार साहित्य का चरम मूल्य सौंदर्य है। वह मानता है कि सर्वोच्च नैतिकता कलाकार के अधीन रहती है। कला उद्देश्यहीन होती है, अतः वह नैतिकता के प्रतिमानों से मुक्त रहती है। उसके अनुसार कवियों का कर्तव्य "न उपदेश देना है, न नियमों को लागू करना और न उच्च उद्देश्यों के लिए उद्दीपित करना ही, किंतु उनका कार्य है कुछ समय के लिए केवल जीवन की मशीन से विचारों को हटाकर, उचित मनोवेग पूर्वक, उन्हें मनुष्य के अस्तित्व संबंधी उन महान घटनाओं के दृश्यों पर स्थिर करना जो किसी भी मशीन से प्रभावित नहीं होते।" वह व्यंजन की सचाई का सशक्त प्रस्तोता है। उसके अनुसार श्रेष्ठ कला में व्यंजना की सचाई मिलती है और उसका कलाकार शब्दों का अनन्य प्रेमी होता है। वह मानता है कि सच्चे कलाकार की रचनाएँ संवेदनशीलता के व्यापक पुट और प्रयोगों के समन्वय से युक्त होती हैं। पेटर कला को स्वामी के रूप में मानता है और

बताता है कि जो कला कलाकार की आत्मा में रमने के लिए जितना अवसर प्रदान करती है, उसका उतना ही अधिक नैतिक आधार महान होता है। कला में मानवात्मा की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति होती है। साहित्य का उद्देश्य "जीवन के दैनिक स्थूल पक्षों की ओर से मन हटाकर उसे मानवी अस्तित्व के सूक्ष्म पक्षों की ओर ले जाना है।" कवि होने के लिए कवि को आवश्यक है कि वह मानव बने। वह शैली को कलाकार की आत्मा को पहचानने का माध्यम मानता है। उसके अनुसार आलोचक का प्रधान कर्त्तव्य है कि वह साहित्यकार के व्यक्तित्व और उसके जीवन के सार कों उसके साहित्य में देखे और विचार करे कि उनकी अभिव्यक्ति कहाँ तक हुई है। शैली द्वारा साहित्यकार की आत्मा और उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रकट होना चाहिए। शैली के द्वारा ही कलाकार का व्यक्तित्व पहचाना जाता है। शैली-निर्माण में बुद्धि का प्रयोग आवश्यक है और इसके द्वारा कलाकार की आत्मा और उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। शैली की भव्यता विषय की भव्यता पर आश्रित रहती है।

कला और जीवन के संबंध पर दृष्टिपात करते हुए पेटर का कहना है "जीवन के कलात्मक निरूपण द्वारा इसके (जीवन के) साध्य ''और साधन समन्वित हो जाते हैं। कला एवं काव्य को इसी प्रकार के निरूपण को प्रोत्साहन देना आवश्यक है।" "महान कवि शिक्षा, नियम-निर्धारण एवं उद्बोधन का कार्य नहीं करते। वे कुछ समय के लिए मानव-जीवन की यांत्रिकता से विमुख होकर उपयुक्त संवेगों के माध्यम से, अपने विचारों को जीवन की उन महान परिस्थितियों से संबद्ध कर देते हैं जिन्हें कोई निराशापूर्ण यांत्रिकता प्रभावित नहीं कर सकती।" पेटर के अनुसार साहित्य एवं कला में जीवन की अखण्ड अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है। वह कलाकार के जीवन एवं कलात्मक सिद्धांतों में अभिन्नता का पोषक है। कलाकार तथ्य के स्थान पर तथ्य में निहित सत्य को बाँधता है।

पेटर के अनुसार आनन्दप्रद अनुभूतियाँ अनुभवग्राही मस्तिष्क में केंद्रस्थ होती हैं, अतः सौंदर्यशास्त्री उन्हें विश्वसनीय ढंग से अभिव्यक्त करे। सौंदर्य स्वतः अपने में अमूर्त्त अस्पष्ट तथा विषम होता है इसे मूर्त्तता प्रदान करने में विषयवस्तु एवं आकार का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। विषयवस्तु के अंतर्गत घटना, परिस्थिति विशेष में निहित तथ्य तथा नैतिक और बौद्धिक विचार आते हैं। आकार के माध्यम से कलाकार की स्वकीय मनःप्रसूत आंतरिक अनुभूतिपूर्ण कल्पना बाह्यरूप धारण करती है। वह विषयवस्तु और आकार की अभिन्नता सिद्ध करते हुए कहता

है "विशुद्ध अवबोधसक्षम एवं विषय के उत्तरदायित्व से मुक्त होने के लिए कलामात्र बौद्धिकता का तिरस्कार करती है। यथार्थ उदाहरण वे हैं जिनमें इनके संघटक तत्त्व इस प्रकार समन्वित रहते हैं कि न तो विषयवस्तु बुद्धि को आंदोलित कर पाती है और न कलात्मक आकार अपनी अखण्ड इकाई में कल्पनाप्रवण बौद्धिकता (imaginative reason) को प्रभावित करते हैं जिसके समक्ष हर विचार या अनुभूति को अपने संवेदनशील प्रतीकों में आवेष्टित होकर प्रकट होना पड़ता है" [आलोचना के बदलते मानदण्ड और हिंदी साहित्य, पृ. 204 से उद्धृत] पेटर के सौंदर्य-दर्शन का अन्य महत्त्वपूर्ण सिद्धांत रूपविधान है। वह उसी बिन्दु को समस्त कला का आदर्श मानता है जहाँ रूपविधान को विषयवस्तु से पृथक करना संभव न हो सके। कलाकार की महत्ता इस तथ्य पर निर्भर करती है कि जिस वंस्तु का वह वर्णन कर रहा है, वह किस कोटि की है जो उसके वैविध्य महान उद्देश्यों के साथ संबंध विद्रोह की गहराई एवं आशा के सन्देश पर आधृत है। "यह कला अच्छी होगी, पर आवश्यक नहीं कि वह महान कला भी हों। महान कला और अच्छी कला में अंतर सम्प्रति रूप-विधान पर नहीं, वस्तु पर निर्भर करता है—कम-से-कम साहित्य के क्षेत्र में तो यह सभी स्थितियों में सत्य है। कला की महानता इस पर निर्भर करती है कि वह जिस वस्तु को अनुप्राणित अथवा नियमित करती है वह किस कोटि की वस्तु हैं; उसकी विविधता, महत् उद्देश्यों से उसकी सन्धि, उसमें विद्रोह की सब उसकी महानता को निर्धारित करते हैं।" [पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 231]

कला की महानता का वर्णन करते हुए पेटर का कहना है "यदि उसे मानवता की कल्याण-साधना में, पीड़ित दमित के परित्राण में अथवा हमारी सहानुभूति के विस्तार में लगाया जाय तो वह महान कला होगी, अथवा यदि कला हमारे विषय में तथा हमारे और विश्व के संबंधों के विषय में ऐसे नए या पुराने सत्य का उद्घाटन करे जिससे हमारे ऐहिक जीवन को शक्ति मिले, अथवा दाँते की तरह वह ईश्वर की महिमा को प्रकाशित करे, तो वह कला महान होगी।"

शैली के संबंध में उसकी उक्ति है कि शैली किसी श्रेष्ठ कृति में सर्वत्र विद्यमान रहती है। किसी विशेषण से लेकर पुस्तक की प्रत्येक लय और प्रत्येक बिन्दु में उसकी गति होती है। शैली में ही साहित्य का विशिष्ट, अनिवार्य और सौंदर्य तत्त्व निहित रहता है। वह शैली को व्यक्ति आत्मपरक तथा व्यक्ति के मन की तरंग से साथ संश्लिष्ट करता है। "शैली व्यक्ति है, किंतु वह व्यक्ति नहीं

जिसके मन की तरंग मनमानी और अतर्कित, असहज और कृत्रिम है, किंतु वह व्यक्ति जिसकी अनुभूति उस वस्तु के संबंध में पूर्णतः ईमानदारी की है तो उसके लिए सबसे बड़ा यथार्थ है।"

William Wordsworth (विलियम वर्ड्सवर्थ)

1770-1850 ई. अँग्रेजी का कवि एवं आलोचक। वर्ड्सवर्थ स्वच्छन्दतावाद का युग प्रवर्तक कवि एवं प्रौढ़ आलोचक था। उसने 'लिरिकल बैलेड्स' नामक काव्य के द्वितीय संस्करण की भूमिका में अपनी काव्य-विषयक मान्यताओं की स्थापना की थी। भूमिका में उसने काव्य तथा काव्य-भाषा के संबंध में गंभीर विचार प्रकट किया है। मैथ्यू आर्नल्ड ने उसके विचारों से प्रभावित होकर उसे महान आलोचक घोषित किया था।

"Wordworth was a great critic, and it is to be sincerely regretted that he has not left us more criticism." Essays in literary criticism, first series.

वर्ड्सवर्थ ने अपने काव्य-सिद्धांत में ह्रासोन्मुख नव्य अभिजात काव्य-परंपरा का निषेध कर काव्य के शाश्वत और परीक्षित मूल्यों को सम्यक् महत्त्व प्रदान किया। उसने काव्य के स्वरूप-निर्धारण में भावना को सर्वाधिक महत्त्व देकर भी कोरी भावुकता की प्रमुखता स्वीकार नहीं की। उसके अनुसार कविता स्वतः स्फुरित सशक्त भावनाओं का उच्छलन है जिसका जन्म शान्ति के क्षणों में स्मरण किए हुए आवेगों से होता है। कविता को सहज उच्छलन कहकर उसने काव्य-विषयों की सामान्यता तथा भाषा-शैली की सरलता का संकेत किया है। "कविता बलवती भावनाओं का सहज उच्छलन होती है। शांत अवस्था में भाव के स्मरण से उसका उद्भव होता है। उस भाव का भावन किया जाता है—यहाँ तक कि एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया द्वारा—शनैः-शनैः शान्तता का लोप होकर वैसा ही भाव उत्पन्न हो जाता है जो पहले भावन का विषय रहा हो और वह भाव वास्तव में मन में अस्तित्व ग्रहण कर लेता है।" उसका कहना है कि काव्य-विषय का चयन अकृत्रिम एवं सरल हो तथा उसका संबंध ग्रामीण भावना, ग्रामीण विषय एवं ग्रामीण चरित्रों से हो। वह नितांत अकृत्रिम ग्राम्य जीवन का काव्य में चित्रण करना चाहता था। उसका कहना है कि काव्य के अध्ययन से पाठक का मस्तिष्क कुछ अंश में प्रबुद्ध होना चाहिए और उसके द्वारा भाव सशक्त और शुद्ध बने। "काव्य के द्वारा पाठक

का मस्तिष्क आवश्यक रूप से कुछ अंश में प्रबुद्ध होना चाहिए और उसके भाव सशक्त और शुद्ध बनाये जाने चाहिए।" उसके अनुसार काव्य का प्रयोजन बुद्धि, हृदय को प्रबुद्ध, सशक्त और शुद्ध करना है। "इन कविताओं का प्रमुख उद्देश्य है साधारण जीवन से घटनाओं एवं स्थितियों का चयन करना, मनुष्यों द्वारा वास्तविक रूप में प्रयुक्त भाषा में उन्हें प्रस्तुत करना, साथ-ही-साथ उन पर कल्पना का ऐसा रंग चढ़ाना, जिसके द्वारा साधारण वस्तुएँ अपने असाधारण रूप में मन के सम्मुख होती हैं। इनके अतिरिक्त और इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य इन घटनाओं और स्थिति में मानवीय प्रकृति के मौलिक नियमों का वास्तविक रूप में, उद्घाटन करते हुए, उन्हें रमणीय बना देना है।"

उसने काव्य के विभिन्न उपादानों का वर्णन करते हुए कवि की निरीक्षण शक्ति, भावप्रवणता, विचारणा, कल्पना, ललित कल्पना और विवेक को क्रमशः महत्त्व दिया है। उसके अनुसार कवि की निरीक्षण-शक्ति सामान्य जनों की अपेक्षा अधिक विकसित होती है और वह अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील और भावुक होता है। विचारशक्ति के बल पर वह काव्य के उपादानों के महत्त्व को समझता है तथा कल्पना और ललित कल्पना द्वारा उसे काव्य की पुनर्रचना में सहायता प्राप्त होती है। "कवि और सामान्य मानव में मुख्यतः अन्तर यह होता है कि किसी तात्कालिक बाह्य उत्तेजना के बिना भी कवि अपेक्षाकृत शीघ्र विचार और भावन कर सकता है और इस प्रकार उसके मन में जो विचार और भावनाएँ जन्म लेती हैं उन्हें अभिव्यक्ति देने की उसमें अधिक क्षमता होती है।" वर्ड्सवर्थ इस प्रकार के विचार और भाव को सामान्य मानव का विचार या भाव मानता है। उसने इनका संबंध नैतिक भावनाओं, प्राकृतिक संवेदनाओं तथा उन कारणों को कहा है जो इनकी व्युत्पत्ति के हेतु हैं। "कवि मानवीय मनोभावों के अनुरूप ही सोचता और अनुभव करता है। ऐसी हालत में विशद तथा स्पष्ट रूप में सोचने वाले अन्य मानवों से, उसकी भाषा तात्त्विक रूप में भिन्न कैसे हो सकती है?" कवि जन साधारण की भाषा को वास्तविक आधार बनाता है। वर्ड्सवर्थ ने घटनाओं और स्थितियों का साधारण जीवन से चयन कर उन्हें मनुष्यों की वास्तविक भाषा में प्रस्तुत किया है। उसके प्रस्तुतीकरण में कल्पना का समावेश है और घटनाओं तथा स्थितियों में मानव-प्रकृति के मौलिक नियमों के उद्घाटन में उन्हें रमणीयता प्रदान करता है। वह मानता है कि साधारण ग्राम्य-जीवन में हृदय के मूल भाव अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व होने के लिए उर्वर भूमि प्राप्त करते हैं और उसमें मनुष्यों की मूल अनुभूतियाँ अधिक सरल होती हैं। साधारण ग्राम्य जीवन में भाव प्रकृति के

स्थायी रूपों से संबद्ध रहते हैं। वह गद्य और पद्य की भाषा में तात्त्विक दृष्टि से कोई अन्तर नहीं मानता तथा तात्कालिक आनन्द निष्पन्न करने की आवश्यकता को कवि की कला का अपकर्ष नहीं समझता। इसे वह सृष्टि के सौंदर्य की स्वीकृति मानता है। उसके अनुसार कविता ज्ञान का प्राण है, उसकी शुद्धबुद्ध आत्मा है, वह रागदीप्त अभिव्यक्ति है जो समस्त विज्ञान का आश्रय है। कविता की भाषा के संबंध में उसके विचार इस प्रकार हैं—

"प्रत्येक सुंदर कविता की भाषा अधिकांश में सुष्ठु गद्य की भाषा से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं हो सकती। ... गद्य भाषा और छन्दोबद्ध रचना की भाषा में न तो कोई तात्त्विक अन्तर है, न हो सकता है। ... जिस कविता का मैं यहाँ स्तवन कर रहा हूँ, उसकी भाषा, यथा सम्भव, उसी भाषा से ग्रहण की जाती है जिसका प्रयोग मनुष्य, वास्तव में, बोलचाल में करता है।" [पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परंपरा, पृ. 143-44] वह मानव मन की भाँति कविता को अमर मानता है तथा छन्द को उपयोगी मानते हुए भी कविता और गद्य की भाषा में अन्तर नहीं मानता। छन्द के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उसने कहा—"छन्द के विषय में भी हमारी भावनाएँ यही हैं। वह समुचित, नियमित और एकविध होना चाहिए, मनमाना नहीं, जिसमें पूर्ण स्वैरता से काम लिया गया हो और जिसके आधार पर कोई निश्चय करना ही संभव न हो। एक अवस्था में तो पाठक को पूर्णतः कवि के इशारे पर नाचना पड़ जाता है कि वह मनोगत वासना के साथ जाने कौन-से बिंब और पदावली का संबंध जोड़े। दूसरी अवस्था में, छन्द कुछ नियमों में बंध कर चलता है। कवि और पाठक दोनों उन्हें सहर्ष स्वीकार करते हैं, क्योंकि वे नियत-निश्चित होते हैं और वासना में किसी प्रकार का अवरोध उपस्थित नहीं करते ... किंतु, इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिक करुण स्थितियाँ और भावनाएँ—अर्थात वे स्थितियाँ और भावनाएँ, जिनके साथ दुःख का अधिक अंश समन्वित होता है—गद्य की अपेक्षा छन्दमयी रचना में ही अधिक स्थायित्व पा सकती हैं; विशेषतः लययुक्त पद्य में।" [पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा, पृ. 151] वर्ड्सवर्थ ने बतलाया कि कविता में ज्ञान और आनन्द के साथ सत्य एवं सौंदर्य का विवेचन होता है। कविता में सत्य की अभिव्यक्ति अनिवार्यतः होती है, पर वह भाव का सत्य होता है।

Winckelmann (विन्किलमन) 1717-1768 ई.

जर्मन आलोचक और सौंदर्यशास्त्री। इसने "प्राचीनों की चित्रकला और मूर्त्तिकला का अनुकरण" नामक ग्रंथ में सर्वप्रथम ग्रीक कला का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत कर यूनानी कलाकारों की कला को अनुकरणीय बताया है। उसका कहना था कि ग्रीक कला में (भावों और अभिव्यक्ति में) उदात्त-सरलता एवं सौम्य भव्यता के दर्शन होते हैं। उसकी कृति इस विषय की प्रथम रचना थी, जिसमें कला के आन्तरिक पक्ष का उद्घाटन किया गया था। उसने इस ग्रंथ में कला की आन्तरिक विकासात्मक शैली का इतिहास प्रस्तुत किया, जो कला का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने की दिशा में प्रथम सफल प्रयास के रूप में विख्यात है। उसने ग्रीस जाकर वहाँ की तत्कालीन खुदाई के द्वारा प्राप्त मुर्त्तियों का अध्ययन किया था। कला का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में विवेचन कर उसने प्रथमतः यह निर्णय दिया कि प्रत्येक प्रकार की कला में उस युग की संस्कृति और आत्मा की अभिव्यक्ति होती है।

विन्किलमन के सौंदर्यशास्त्रीय विचार प्राचीन ग्रीककला और मूर्त्तिकला के अध्ययन के आधार स्थापित हुए हैं। उसने ऐतिहासिक दृष्टि से ग्रीक कला को चार युगों में विभक्त कर उसकी चार विशिष्ट शैलियों का विवेचन किया और बताया कि उनकी विशिष्टता का कारण वातावरण का प्रभाव है। शक्ति, शालीनता, सौंदर्य और मनोहरता ये ऐसे तत्त्व हैं, जो क्रमशः चार युगों में चार गुणों के रूप में आविर्भूत हुए। उसने चार युगों को क्रमशः प्राचीनशैली, उदात्त शैली, सुंदरशैली और अनुकृति मूलक शैली के नाम से अभिहित किया। प्राचीन युग का प्रसार प्रारंभ से लेकर फीडियास के युग तक की कला में होता है। इस युग की शैली अपने स्वरूप में रुक्ष, ओजस्वी और शक्तियुक्त है। इसमें स्पष्टता का अभाव है और दिव्यता तथा शालीनता के दर्शन नहीं होते। द्वितीय शैली उदात्त और शालीन है जिसकी समय-सीमा फीडियास से लेकर स्कोपास के युग तक है। इस शैली में ग्रीक प्रतिभा की पूर्णतम अभिव्यक्ति होती है और इसका वैशिष्ट्य उदात्तता, सादगी और एकता में है। तृतीय शैली का प्रतिनिधित्व प्रेक्सिटिलस करते हैं। इस शैली में सौंदर्य और कोमलता अधिक है। इसे सुंदर शैली कहते हैं। चतुर्थ युग अनुकर्ताओं का युग है। ये अपने पूर्वजों का अनुकरण किया करते थे। इन्हें एक प्रकार का संग्रहवादी कलाकार कहा जा सकता है। विन्किलमन ने कहा है कि अनुकरण करने वाला सदा पीछे रहा करता है।

उदात्तशैली को उसने सर्वोत्तम शैली कहा है; क्योंकि इसमें मनुष्य की आत्मा तथा शरीर की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इस शैली के कलाकारों का उद्देश्य सौंदर्य न होकर भव्यता और शालीनता का कला में समावेश करना था। इसकी विशिष्टता भव्यता, सादगी और एकता में है। इसमें शालीन सौंदर्य को व्यक्त किया गया है और शालीनता तथा सौंदर्य का समाहार हुआ है। उदात्त शैली में प्रबल संवेगों को व्यक्त न कर आत्मा की सार्थक प्रशान्ति को अभिव्यक्त किया गया है। विन्किलमन के मतानुसार "उन्हीं लोगों के चेहरे में पूर्ण सौंदर्य प्रकट होता है, जिनका मन हर तरह के उद्वेगों से रिक्त एवं प्रशान्ति है।"

उसके अनुसार आदर्श सौंदर्य ही पूर्ण सौंदर्य है और इसी को अभिव्यक्त करने में कला का सर्वोच्च लक्ष्य निहित है। अभिव्यक्ति के अभाव में सौंदर्य महत्त्वहीन हो जाता है, उसका कोई महत्त्व नहीं होता, पर अभिव्यक्ति में तीव्रता होने पर सौंदर्य क्षतिग्रस्त हो जाता है। प्रशान्ति और भव्यता की अभिव्यक्ति में सौंदर्य का सर्वोत्तम रूप प्रकट होता है।

यूनानियों के कलाकौशल ने उसे बहुत प्रभावित किया था और यूनानी मूर्त्तिकला के शारीरिक सौंदर्य के प्रति वह,अत्यधिक अभिभूत हुआ। वह कविता की भाँति मूर्त्तिकला को भी बाह्य वस्तु मानता है, जो मनुष्यों को आन्तरिक अनुभूति की ओर प्रेरित करती है। आत्मा ही कला के माध्यम से बाह्यरूप धारण करती है स्कॉट जेम्स के शब्दों में "विन्किलमन का आदर्श मस्तिष्क का स्वस्थ सामंजस्य है, यह एक स्थिरता है जो हर्षातिरेक को पूर्ण कर देती है। मस्तिष्क के इस सामंजस्य को मूर्त्तिकार शरीर के संतुलन द्वारा, कवि पद्य की संगति द्वारा तथा नाट्यकार क्रिया-व्यापार की समता द्वारा अभिव्यक्त करता है। विन्किलमन के लिए कला की समस्या बाह्य रूप की समस्या थी जो इस मुख्य विचार पर आधारित है कि बिना आत्मा के शरीर और बिना शरीर के आत्मा का अस्तित्व संभव नहीं।" [द मेकिंग ऑफ लिटरेचर, पृ. 169-173, पाश्चात्य-समीक्षा-दर्शन पृ. 208 से उद्धृत] कला के इतिहास की वैज्ञानिक खोज करने के कारण विन्किलमन का स्थायी महत्त्व है।

Wit (विट) वाग्वैदग्ध्य

'विट' का अर्थ बुद्धि है। विदग्धता या विट में "किसी परिचित शब्द के अर्थ को अनपेक्षित रूप में रखकर उसके द्वारा भिन्न अर्थ की" व्यंजना कराई जाती है।

इस प्रकार के कथन से न तो किसी को क्षति पहुँचती है और न किसी पर दोषारोपण किया जाता है। विदग्धता में हास्य का स्वरूप भी मिला रहता है जिसकी सीमा स्मित तक ही होती है। इसमें उपहास की कटु स्थिति नहीं होती, सत्य तथा प्रौढ़ अर्थ का सन्निवेश होता है। कभी-कभी सरल उक्तियों में भी विट भरा रहता है और जिस व्यक्ति को लक्ष्य करके बात कही जाती है उसे निरुत्तर हो जाना पड़ता है। इसका संबंध बुद्धि से अत्यंत निकट का है और यह वक्ता की बुद्धिशीलता और प्रत्युत्पन्नमतित्व को प्रकट करता है। यह ह्यूमर की अपेक्षा अधिक बौद्धिक माना जाता है। इसे दिमाग का खेल कह सकते हैं जो किसी शब्द की श्लेषात्मकता से उत्पन्न होता है। इसकी उपयोगिता गंभीर विषयों में नहीं होती।

Zeugma (जीऊग) पदलोपालंकार

एक अलंकार। इसका शाब्दिक अर्थ 'जुआठ' है। इसमें दो संज्ञाएँ एक ही क्रिया से संयुक्त होती हैं और यह क्रिया जुड़ी हुई दो संज्ञाओं में से एक ही के साथ उपयुक्त लगती है, अतः वह क्रिया दो स्पष्ट अर्थों का बोध कराती है जिससे हास्य की उत्पत्ति होती है।

■

विजयश्रीऑफसेटप्रिंटर्स, न्यू बहादुरपुर, मारवाड़ी कॉलोनी, पटना-16. फोन - 657554